SCHOOL ADMINISTRATION AND HEALTH EDUCATION

विद्यालय प्रशासन

एवं

स्वास्थ्य शिक्षा

दिनेशचन्द्र भारद्वाज

विद्यालय-प्रशासन
एव
स्वास्थ्य-शिक्षा

विद्यालय-प्रशासन एवं स्वास्थ्य-शिक्षा

[प्रशिक्षण विद्यालयो के नवीन पाठ्यक्रमानुसार]

प्रश्नोत्तर शैली मे

लेखक

दिनेशचन्द्र भारद्वाज

एम० ए०, बी० टी०

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

तृतीय संस्करण १९७१

मूल्य ७.००

मुद्रक

जगदम्बा प्रिंटर्स, आगरा-२

[२०/२/७१]

प्रस्तावना

इस पुस्तक का छात्रा के समक्ष प्रस्तुत करने का मूल उद्देश्य पाठय-सामग्री े चयन सम्बन्धी असुविधाओं को दूर करना है। मेरे द्वारा लिखित विद्यालय-शासन' तथा 'स्वास्थ्य विज्ञान' नामक पुस्तकें अलग अलग प्रकाशित हो चुकी हैं। स पुस्तक मे दोनो पुस्तको की पाठय सामग्री को एक स्थान पर सम्पादित कर छात्रो ी असुविधाओ का निराकरण किया गया है। इस वर्ष के प्रश्नो के उत्तर देकर तथा वीन सशोधन करके पुस्तक को और अधिक उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है। आशा है, पुस्तक का यह नवीन रूप छात्रो के लिए पूर्व की अपेक्षा अधिक सुविधाजनक होगा।

वसत पचमी
१६६८

दिनेशचन्द्र भारद्वाज

विद्यालय-प्रशासन

१

विद्यालय-प्रशासन का अर्थ तथा क्षेत्र

MEANING OF SCHOOL ADMINISTRATION AND SCOPE

Q What is the meaning of School Administration ? Discuss its need and scope

प्रश्न—विद्यालय प्रशासन का क्या अर्थ है ? उसकी आवश्यकता तथा क्षेत्र पर प्रकाश डालो।

उत्तर—

प्रशासन का अर्थ

किसी भी संस्था या व्यवस्थित ढग से चलाने के लिए प्रशासन की आवश्यकता पडती है। प्रशासन की परिभाषा एम० पी० सुखिया ने इस प्रकार दी है—"वह साधन है जिसके द्वारा किसी सगठन या संस्था का सुचारु रूप से सचालन किया जाता है, चाहे वह सगठन शासकीय, शैक्षिक या सामुदायिक हो। इससे यह स्पष्ट है कि प्रशासन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्तियों के समूह एव उनकी क्रियाओं के समन्वय से सम्बन्धित है। इस दृष्टिकोण से प्रशासन का सम्बन्ध किसी भी संस्था या सगठन के अन्तर्गत काम करने वालों तथा उनकी क्रियाओं के समन्वय से रहता है।" यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो प्रशासन के अन्दर आयोजन, सगठन, निरीक्षण पथ प्रदर्शन, नियन्त्रण और विनियमन आदि सभी तत्वों का समावेश हो जाता है।

विद्यालय-प्रशासन का अर्थ

विद्यालय प्रशासन वह कला है जिसके माध्यम से विद्यालय-सम्बन्धी समस्त मानवीय तथा भौतिक तत्वों को इस ढग से व्यवस्थित किया जाता है कि शिक्षा में विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हो सके। इस विषय में आर० पी० शर्मा लिखते हैं, "जब हम 'शिक्षालय व्यवस्था' शब्दों का प्रयोग करते हैं तब हमारा अभिप्राय केवल दफ्तर के काम, अनुशासन का ठीक रखना शिक्षकों को आदेश देना, बालकों को नियन्त्रण में रखना, चिट्ठी-पत्री भेजना आदि से नहीं होता, वरन् उसके आदर्श, उसका स्तर, उसकी नीति, उसकी कार्यवाई उसका समाज से सम्बन्ध, उसकी सार्थकता आदि

सभी बातें आती हैं।" इस प्रकार विद्यालय प्रशासन में विद्यालय की क्रियायें, अनुशासन, दफ्तर का काम आदि ही नहीं आते, वरन् इसमें कुछ ऊपर मानवीय तत्वों का भी समावेश रहता है। अन्य विद्वानों के अनुसार, "विद्यालय-व्यवस्था व्यापक अर्थ लिए हुए है और इसका मतलब स्कूल की भौतिक क्रियायें का सम्पादन करने से ही नहीं, बल्कि इसके अन्तर्गत वे सब ज्ञान आ जाते हैं जिनका बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास सम्बन्धी नीतियों के निर्माण से तथा समाज की विकास सम्बन्धी क्रियाओं से सम्बन्ध है।" इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यालय प्रशासन शब्द एक व्यापक अर्थ में प्रयोग किया जाता है। परन्तु यह बात ध्यान रखने की है कि प्रजातन्त्र के युग में विद्यालय प्रशासन एक उद्देश्य की प्राप्ति का साधन मात्र है न कि स्वयं उद्देश्य। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं प्रशासन प्रत्येक सेवक के समान है न कि स्वामी के।

विद्यालय-प्रशासन की आवश्यकता

शिक्षा में प्रशासन के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए एक विद्वान् लिखते "Education must function through a definite organization or structure of plans, procedures, personnel, material, plant and finance."[1] विद्यालय के प्रशासन को ठीक प्रकार से चलाने के लिए ही विद्यालय प्रशासन की परम आवश्यकता है। विद्यालय एक सामाजिक संस्था है। उसे एक बहुत बड़े उत्तरदायित्व का निर्वाह करना पड़ता है। विद्यालय में बालक समाज के सदस्यों के रूप में पढ़ते हैं। विद्यालय का मुख्य केन्द्र बालक है। बालक के मानसिक और शारीरिक विकास के लिए आवश्यक है कि स्कूल में योग्य अध्यापक, उपयुक्त भवन, उपयुक्त खेल कूद की व्यवस्था, उचित पाठ्य सामग्री, वैज्ञानिक समय तालिका आदि की व्यवस्था हो। यदि इन बातों को उचित रूप से पूरा नहीं किया गया तो बालक का सर्वांगीण विकास होना अत्यन्त कठिन है। इस प्रकार विद्यालय का प्रबन्ध भौतिक और मानवीय उत्थान के लिए परम आवश्यक है। डॉ० एस० एन० मुकर्जी के शब्दों में, "Educational administration is concerned with the management of things as well as with human relationship, the better working together of people. In fact it is more concerned with human beings and less with inanimate things." इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यालय प्रशासन विद्यालय की आत्मा है। बिना उचित प्रशासन के समस्त साधनों के होते हुए भी विद्यालय एक प्रकार से निर्जीव शरीर के समान है। किसी विद्यालय के अन्दर पर्याप्त मात्रा में छात्र हों, योग्य अध्यापक हों तथा अन्य पढ़ने लिखने के लिए साधन हों परन्तु बिना विद्यालय व्यवस्था के शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त करने में सफलता नहीं मिल सकती।

---

1 Arthur B. Moehlman

विद्यालय-प्रशासन के सिद्धान्त

Q What principles of administration should the school adopt to train students to be worthy citizens in a democracy ?

(A U, B T, 1958)

प्रश्न—छात्रों को प्रजातन्त्र के हेतु योग्य एवं कुशल नागरिक बनाने के लिए शिक्षालय को प्रबन्ध के किन किन सिद्धान्तों को ग्रहण करना चाहिए ?

Or

What should be the principles of school administration in a democracy ? How far do you find them followed in our schools ?

(L T 1959)

प्रजातन्त्र में शिक्षालय प्रबन्ध के क्या सिद्धान्त होने चाहिए ?

उत्तर—विद्यालय के समस्त कार्यों का सुचारु रूप से सचालन करने के लिए यह आवश्यक है कि कुछ सिद्धान्तों का निर्माण किया जाय। शैक्षिक कार्य में एक आधार और दर्शन की परम आवश्यकता है। किसी निश्चित आधार तथा सिद्धान्तों के अभाव में समस्त शैक्षिक कार्य अपंग हो जायेगा। अत विद्यालय प्रशासन के कुछ निश्चित सिद्धान्त होने चाहिए जिनका पालन करना प्रत्येक विद्यालय के लिए आवश्यक है।

१—प्रयासों का समन्वय—विद्यालय का सगठन इस प्रकार किया जाय कि उसके समस्त मानवीय तत्त्व समन्वित रूप से गठित होकर कार्य कर सकें। यदि मानवीय तत्त्वों में समन्वय नहीं होगा और वे अलग अलग व्यक्तिगत रूप से कार्य करेंगे तो विद्यालय अपने उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर सकेगा। अत विद्यालय के मानवीय तत्त्वों को सगठित किया जाय।

२—भौतिक तत्त्वों का उचित उपयोग—विद्यालय प्रशासन में दूसरी बात देखने की है कि विद्यालय के समस्त भौतिक तत्त्वों का उचित प्रकार से उपयोग हो रहा है या नहीं। भौतिक तत्त्वों से हमारा तात्पर्य विद्यालय का फर्नीचर, धन, भवन तथा खेल का मैदान आदि से है। इन सब वस्तुओं का प्रयोग इस ढंग से किया जाय कि छात्र इनसे अधिक से अधिक लाभ उठा सकें।

३—सहयोग तथा सहकारिता—विद्यालय-प्रशासन में सहयोग पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। विद्यालय में प्रशासन की नींव सहयोग के आधार पर ही डाली जाय। प्रधान अध्यापक, अध्यापक, छात्र तथा उनके अभिभावकों के सहयोग से विद्यालय का प्रबन्ध चलाना वही उत्तम है। दूसरे शब्दों में प्रबन्ध का तात्पर्य सहयोगपूर्ण जीवन से लगाया जाय।

४—सामूहिक उत्तरदायित्व—विद्यालय प्रशासन में प्रजातन्त्रात्मक भावना लाने के लिए विद्यालय प्रबन्ध में समाज के समस्त सदस्यों को सहयोग प्रदान करने

का अवसर दिया जाय। दूसरे शब्दों में विद्यालय प्रशासन में सामूहिक जिम्मेदारी हो। सामूहिक जिम्मेदारी का तात्पर्य अध्यापक, अभिभावक तथा राज्य तीनों मिलकर प्रबंध में योग दें तथा उसका उत्तरदायित्व ग्रहण करें।

५—मानवीय आधार—सबसे बड़ी बात ध्यान में रखने की यह है कि विद्यालय को एक निर्जीव यंत्र न माना जाय। यदि विद्यालय को एक निर्जीव यंत्र माना जायगा तो उसके समस्त वातावरण में जड़ता आ जायगी। जिस प्रकार कोई मशीन बिना चलाये नहीं चलती, उसी प्रकार यन्त्रवत् प्रबन्ध भी बिना जाने के नहीं चलता। हम यह ध्यान में रखना है कि अध्यापक और छात्र दोनों चेतना युक्त, क्रियाशील प्राणी हैं। उनके साथ मानवीय व्यवहार किया जाय। उनके साथ जड़ पदार्थों जैसा व्यवहार करना पूर्णतया अनुचित है। अध्यापकों को कार्य प्रदान करते समय उनकी शारीरिक और मानसिक क्षमता का भी ध्यान रखा जाय।

६—विचार विनिमय का आधार—प्रबंध में विचार विनिमय द्वारा त्रुटियों को दूर करने का प्रयास किया जाय। ऐसे अवसर प्रदान करना आवश्यक है जब छात्र, अध्यापक तथा प्रधान अध्यापक आपस में मिलकर विचार विनिमय द्वारा प्रबंध की कमी को समझने का प्रयास करें तथा सहयोगपूर्ण ढंग से उसके दोषों को दूर करें।

७—स्पष्टता तथा सुव्यवस्था—विद्यालय प्रशासन का आयोजन स्पष्ट तथा सुनिश्चित ढंग से किया जाय। अस्पष्टता और अनिश्चितता प्रशासन का सबसे बड़ा दोष है।

८—लचीलापन अनुकूलता और स्थिरता—विद्यालय के प्रशासन को अधिक जटिल न बनाया जाय। यथासम्भव उसमें गतिशीलता लाई जाय। समाज की परिवर्तनशील परिस्थितियों के साथ साथ उसमें भी परिवर्तन लाये जायें। समाज की आवश्यकताओं का भी ध्यान रखा जाय। उसमें पर्याप्त मात्रा में लचीलापन हो तथा समाज की आवश्यकताओं के अनुसार उसमें सुविधानुसार परिवर्तन भी किये जा सकें। केवल परम्परागत रूढ़ियों पर चलना प्रबंध को जटिल और जड़ बनाना है।

९—प्रत्येक बात का ध्यान रखा जाय—कुशल प्रबंधक को प्रत्येक बात का ध्यान रखकर विद्यालय के कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए। प्रबंध में छोटी छोटी बातों की भी उपेक्षा नहीं की जाय।

१०—प्रबंध को केवल साधन माना जाय—पहले हम उल्लेख कर चुके हैं कि विद्यालय प्रशासन को केवल उत्तम साधन के रूप में लिया जाय। उसे शिक्षा के उद्देश्य प्राप्ति का साधन मात्र माना जाय, न कि साध्य। शिक्षा में प्रबन्ध को सबसे ऊपर रखने के बजाय हम उसे साधन मात्र बना कर एक सेवक के रूप में उससे शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त करने हैं। प्रबंध को अधिक महत्त्व देने का मतलब विद्यालय को केवल सैनिक शिविरों में परिणत करना है।

११—स्वशासन का अवसर—आज के प्रजातन्त्रात्मक युग में प्रशासन का स्वरूप भी जनतन्त्रात्मक होना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए छात्रों को स्वशासन के अवसर प्रदान करना परम आवश्यक है। स्वशासन से छात्रों में उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है तथा उनमें नेतृत्व शक्ति विकसित होती है। वे परस्पर मिलकर काम करना सीखते हैं।

१२—स्वास्थ्य तथा चरित्र का निर्माण—बालकों के स्वास्थ्य तथा चरित्र का भी ध्यान रखना आवश्यक है। विद्यालय-प्रशासन के अन्य सिद्धान्तों के साथ-साथ स्वास्थ्य तथा चरित्र निर्माण का सिद्धान्त भी विशेष महत्त्व का सिद्धान्त है। विद्यालय में खेल-कूद, व्यायाम, डाक्टरी निरीक्षण आदि का पूर्ण प्रबन्ध हो।

१३—अभिभावकों से सहयोग लिया जाय—विद्यालय के प्रशासन में अभिभावकों का सहयोग अवश्य लिया जाय। अभिभावक सहयोग का सबसे बड़ा लाभ यह है कि बालक के विषय में अध्यापक को पूरी-पूरी जानकारी हो सकेगी। दूसरे, विद्यालय समाज के निकट आ सकेगा।

१४—रचनात्मक दृष्टिकोण—विद्यालय प्रशासन के सिद्धान्त केवल कागजी न हों, वरन् पूर्णतया व्यावहारिक हों। सिद्धान्तों का निर्माण इस ढंग से किया जाय कि वे कार्य रूप में परिणत भी सरलता से किये जा सकें।

२

शिक्षा की प्रशासकीय व्यवस्था

STATE EDUCATIONAL ADMINISTRATION

Q Describe the broad outline of educational administrative set up at the centre and at the state level with special reference to U P

प्रश्न—केन्द्र तथा राज्य के शैक्षिणक प्रशासन का विस्तार से उल्लेख (उत्तर प्रदेश के स दभ में) करो।

उत्तर—

भारत मे प्रशासकीय व्यवस्था का इतिहास

भारतीय शिक्षा का सगठन प्राचीन काल तथा मध्य काल म वतमान शिक्षा के सगठन से पूणतया भिन्न था। उस काल म शिक्षा क क्षत्र म प्रशासन और सगठन का प्रश्न ही नहा उठता था। शिक्षा प्रदान करने का काय बिना किसी बाधा के अबाध गति से चलता रहता था। अध्यापक बिना किसी दबाव क स्वत त्र होकर अध्यापन काय करते थे। शिक्षण का स्तर इतना ऊचा और पवित्र था कि राज्य का इस क्षेत्र म हस्तक्षेप करने की आवश्यकता ही नहीं हुई। पर तु यह सत्य है कि उस काल म शिक्षा का क्षेत्र सीमित था, अल्प सख्या म छात्र शिक्षा प्राप्त करते थे, परिणामस्वरूप छात्रा और अध्यापका क मध्य सम्पक स्थापना म किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती थी, ऐसी दशा म अनुशासन और प्रशासन की आवश्यकता का प्रश्न ही नहा उठता।

भारत म अग्रेजा के प्रवेश क साथ साथ देशी शिक्षा का विघटन होने लगा और उसके स्थान पर पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव दिन प्रति दिन बढता गया। १८५३-५४ क मध्य अनेक अग्रेजी स्कूला की स्थापना हुई, जिनम कुछ की दशा यदि ठीक थी ता कुछ की शोचनीय। अग्रेजा का दृष्टिकोण अभी तक पूणतया व्यापारिक बना हुआ था। फलत शिक्षा प्रशासन सुव्यवस्थित नहीं था। १८५४ म वुड क घोषणा-पत्र की सिफारिशा के परिणामस्वरूप प्रत्यक प्रा त म नय ढग शिक्षा विभाग

(Department of Public Instruction) की स्थापना की गई। इस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी 'जन शिक्षा संचालक' (Director of Public Instruction) की नियुक्ति की गई। इसकी सहायता के लिए निरीक्षक तथा सहायक निरीक्षक भी रखे गये। समस्त प्रान्त की शिक्षा का भार तथा उत्तरदायित्व जन शिक्षा-संचालक पर ही रखा गया। यह सत्य है कि वुड के घोषणा-पत्र के प्रकाशन के पश्चात् समस्त देश की शिक्षा नीति का निर्धारण भारत सरकार स्वयं करने लगी, परन्तु अभी तक केन्द्र में शिक्षा प्रशासन के लिए किसी विभाग की स्थापना नहीं की गई थी। पर्याप्त काल तक गृह विभाग की एक शाखा ही शिक्षा प्रशासन का कार्य करती रही। कुछ समय पश्चात् भारत सरकार ने यह अनुभव किया कि सम्पूर्ण देश की शिक्षा की एक प्रशासकीय व्यवस्था के सम्बन्ध में सलाह देने के लिए एक पदाधिकारी का होना परम आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए लार्ड कर्जन ने १९०१ में प्रधान शिक्षा संचालक (Director General of Education) के पद का निर्माण गृह विभाग के अधीन किया।

लगभग ९ वर्ष तक प्रधान शिक्षा संचालक गृह विभाग के अधीन ही काम करता रहा। सन् १९१० में वाइसराय की कार्य कारिणी समिति के सदस्यों में एक सदस्य की संख्या की और वृद्धि कर दी। इस सदस्य पर शिक्षा का समस्त उत्तर-दायित्व डाला गया, परन्तु साथ ही प्रधान शिक्षा संचालक के पद की समाप्ति कर दी गई। १९१५ के लगभग 'एजूकेशन कमिश्नर' नामक नवीन पदाधिकारी की नियुक्ति की गई। इस पर भी प्रधान शिक्षा-संचालक के उत्तरदायित्व डाले गये। १९१५ में ही ब्यूरो आफ एजूकेशन (शिक्षा सूचना कार्यालय) की स्थापना की गई। इस कार्यालय में शिक्षा सम्बन्धी साहित्य का प्रकाशन होता था जिसमें भारत सरकार की शिक्षा नीति आदि पर विचार प्रकट किये जाते थे। १९१९ के नियमानुसार शिक्षा का उत्तरदायित्व भारत सरकार के हाथों से निकल कर प्रान्तीय सरकारों के हाथ में आ गया। इस पर भी केन्द्र सहायता का कार्य करता था परन्तु प्रान्तों का पृथक्करण हो जाने से शिक्षा प्रसार में बाधा आई क्योंकि न तो केन्द्र-सरकार समस्त देश के लिए निश्चित नीति का पालन कर सकती थी और न प्रान्तीय सरकार परस्पर मिलकर लाभ उठा सकती थी।

उपर्युक्त कारणों से यह अनुभव किया जाने लगा कि समस्त देश की शिक्षा प्रणाली को एक सूत्र में बांधने वाले प्रतिष्ठापन की परम आवश्यकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही सन् १९२१ में सेन्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड आफ एजूकेशन' (केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मण्डल) का निर्माण किया गया। परन्तु मितव्ययिता की दृष्टि से दो वर्ष पश्चात् ही इस विभाग को समाप्त कर दिया गया। इसी प्रकार धन के अभाव के कारण सूचना कार्यालय को भंग कर दिया गया और शिक्षा विभाग को अन्य विभागों के साथ सम्बन्धित कर दिया गया। कुछ काल पश्चात् १९२९ में

हटाग समिति की सिफारिशों के परिणामस्वरूप केन्द्रीय सलाहकार मण्डल तथा १९३७ में शिक्षा सूचना कार्यालय की स्थापना पुनः की गई।

स्वतन्त्र भारत में शिक्षा-प्रशासन—१९४५ में भारत सरकार ने पूर्णतया स्वतन्त्र शिक्षा विभाग की स्थापना की तथा १९४७ में यह विभाग मन्त्रालय में विकसित कर दिया गया। लगभग १० वर्ष तक मन्त्रालय शिक्षा प्रशासन सम्बन्धी नीतियों का निर्धारण करता रहा। १९५७ में विज्ञान सम्बन्धी खोजों को प्रोत्साहन देने के लिए इस वैज्ञानिक शोध का कार्य सौंपा गया। इस कारण इस मन्त्रालय का नाम 'शिक्षा तथा वैज्ञानिक खोज मन्त्रालय' पड़ा। १९५९ में प्रशासन की सुविधा के लिए इस मन्त्रालय को दो भागों में विभाजित कर दिया गया—

१—शिक्षा मन्त्रालय

२—वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक मन्त्रालय।

हमारे देश का समस्त शिक्षा प्रशासन प्रमुख रूप से तीन स्वतन्त्र निकायों के अधीन है—

१—केन्द्रीय सरकार (Central Government)

२—राज्य सरकार (State Government)

३—स्वायत्त शासन (Local Bodies)

१ केन्द्रीय सरकार

शिक्षा मन्त्रालय—शिक्षा मन्त्रालय के मुख्यतया दो कार्य हैं—

(क) सम्पूर्ण देश की शिक्षा नीति का निर्धारण करना।

(ख) विभिन्न प्रयासों द्वारा राज्यों की शिक्षा प्रणाली में एकरूपता की स्थापना करना।

केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय से सम्बन्धित शिक्षा परामर्शदाता (Education Adviser) तथा सचिव (Secretary) होते हैं। इनकी सहायता के लिए Additional Secretary, Joint Educational Advisers तथा दो Deputy Secretaries तथा चार Deputy Educational Advisers होते हैं जो कि विभिन्न डिवीजनों के उत्तरदायी होते हैं। उपर्युक्त समस्त पदाधिकारियों का सबसे बड़ा उत्तरदायित्व शिक्षा मन्त्री के प्रति होता है। ये सम्पूर्ण राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा उससे प्रशासन से सम्बन्धित समस्याओं पर सलाह देते हैं। केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय ९ विभागों में विभाजित है, जो इस प्रकार से हैं

(१) प्राथमिक और बेसिक शिक्षा विभाग।

(२) माध्यमिक शिक्षा विभाग।

(३) उच्च शिक्षा और पुनस्था विभाग।

(४) हिन्दी और सांस्कृतिक कार्य विभाग।

(५) व्यायाम, शारीरिक प्रशिक्षण तथा मनोरंजन विभाग।

(६) सामाजिक शिक्षा तथा समाज कल्याण विभाग।
(७) छात्र वृत्तियों का विभाग।
(८) प्रशासन का विभाग।
(९) शोध तथा प्रकाशन विभाग।

शिक्षा-मन्त्रालय को सहायता पहुंचाने के लिए अनेक सलाहकारी परिषदें होती हैं जिनमें से प्रमुख निम्न हैं—

(क) केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मण्डल (Central Advisory Borad of Education)
(ख) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grant Commission)
(ग) अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद (All India Council of Secondary Education)
(घ) अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षा परिषद (All India Council of Primary Education)
(ङ) राष्ट्रीय स्त्री शिक्षा परिषद् (National Council of Women's Education)
(च) ग्रामीण उच्चतर शिक्षा समिति (National Council of Rural Higher Education)
(छ) केन्द्रीय समाज सेवा मण्डल (Central Social Welfare Board)

शिक्षा मन्त्रालय की समस्त गति विधियों का आधार केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार मण्डल (*Central Advisory Board*) है। *इस मण्डल का वर्तमान संविधान* इस प्रकार से है—

१—शिक्षा मन्त्री (The Hon'ble Minister for Education) सभापति (Chairman)
२—भारत सरकार के शिक्षा परामर्शदाता (The Educational Adviser to the Government of India)
३—भारत सरकार द्वारा मनोनीत पन्द्रह सदस्य, जिनमें से पांच सदस्य स्त्रियाँ हों (Fifteen members to be nominated by the Government of India, of whom five shall be women)
४—भारत सरकार द्वारा पांच निर्वाचित सदस्य जिनमें से दो राज्य सभा द्वारा तथा तीन लोक सभा में से (Five members of Parliament, *two from the upper House and three from the lower* House, to be selected by the Parliament)
५—अन्तर्विश्वविद्यालय मण्डल द्वारा निर्वाचित दो सदस्य (Two members of the Inter university Board nominated by the Board from amongst the representatives of universities in India)

६—अखिल भारतीय प्राविधिक शिक्षा-परिषद् द्वारा मनोनीत दो सदस्य (Two members of the All India Council for Technical Education to be nominated by the council)

७—प्रत्येक राज्य से एक प्रतिनिधि जो कि शिक्षा मन्त्री हो। विशेष परिस्थिति में उसके द्वारा मनोनीत व्यक्ति भी भाग ले सकता है।

८—मण्डल का सचिव (Secretary of the Board) जिसकी नियुक्ति भारत सरकार द्वारा की जाती है।

मण्डल (Board) से सलग्न एक पुस्तकालय तथा शिक्षा सूचना कार्यालय होता है। शिक्षा सम्बन्धी रिपोर्ट प्रकाशन करने का काम तथा देश के आन्तरिक और बाह्य शिक्षा सम्बन्धी समाचारों का सकलन करना, शिक्षा-सूचना कार्यालय का ही काम है। गैर सरकारी सदस्यों की अवधि तीन वर्ष की रहती है। मण्डल की बैठक वर्ष में कम से कम एक बार होती है। बैठकों में सम्पूर्ण देश से सम्बन्धित शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं और प्रश्नों पर विचार किया जाता है। मण्डल द्वारा समय समय पर शिक्षा विषयक रिपोर्ट प्रकाशित की जाती है जिनमें शिक्षा प्रसार सम्बन्धी विभिन्न सलाह दी जाती है। राज्य सरकार यदि ठीक समझती है तो मण्डल की सिफारिशें स्वीकार करती है नहीं तो वह सिफारिश मानने के लिए बाध्य नहीं है। शिक्षा एक राज्य का विषय है अत केन्द्रीय सरकार राज्यों को अपनी सिफारिश मनवाने के लिए बाध्य नहीं कर सकती।

यह सत्य है कि केन्द्रीय सरकार राज्यों के शिक्षा विषयक मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती इस पर भी उसकी बड़ी महत्वपूर्ण स्थिति है। वह शिक्षा की विभिन्न समस्याओं का हल करने के लिए समय समय पर समितियों और आयोगों का सगठन करती है। शिक्षा के आय व्यय पर विचार करना तथा सम्पूर्ण देश के लिए एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्धारण करना भी केन्द्र सरकार का ही कार्य है। कुछ विश्वविद्यालय केन्द्र द्वारा ही प्रशासित हैं जैसे—अलीगढ़ विश्वविद्यालय, बनारस विश्वविद्यालय तथा विश्वभारती। केन्द्र सरकार ही इन विश्वविद्यालयों की देख रेख करती है। इसी प्रकार लगभग १८ पब्लिक स्कूल (Public schools) केन्द्र सरकार द्वारा प्रशासित हैं। दिल्ली सेन्ट्रल इन्स्टीट्यूट आफ एजूकेशन देहरादून, सेन्ट्रल ब्रेलप्रेस, दिल्ली नेशनल इन्स्टीट्यूट आफ एजूकेशन जैसी अखिल भारतीय सस्थाएं केन्द्र सरकार द्वारा सचालित हैं। जो योजनाएँ केन्द्र द्वारा मान्य होती हैं उनके सचालन के लिए राज्य सरकार तथा गैर सरकारी सस्थाओं को केन्द्र द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

वैज्ञानिक अनुसधान और सास्कृतिक मन्त्रालय—पहले शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसधान तथा सास्कृतिक मन्त्रालय एक ही विभाग में थे लेकिन १९५८ में दोनों को अलग अलग कर दिया। वैज्ञानिक अनुसधान और सास्कृतिक मन्त्रालय का सबसे बड़ा

पदाधिकारी राजमन्त्री है जिसको सहायता देने के लिए एक उपमन्त्री होता है। इस मन्त्रालय के निम्न प्रमुख कार्य हैं—

१—सांस्कृतिक क्रिया कलाप

२—प्राविधिक शिक्षा की देखभाल

३—वैज्ञानिक खोज तथा भूमि-सर्वेक्षण

देश की प्रमुख संस्थाएँ जैसे—जूलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया, बोटनिकल सर्वे आफ इण्डिया, जिओडटिक सर्वे आफ इण्डिया तथा विभिन्न राष्ट्रीय प्रयोगशालाएँ आदि इस मन्त्रालय के नियन्त्रण में हैं। दिल्ली पोलीटैकनिक, खडगपुर तकनीकी संस्था, धनबाद स्थित इण्डियन स्कूल आफ माइन एण्ड एप्लायड ज्योलोजी आदि शिक्षा-संस्थाओं का संचालन भी इसके द्वारा होता है। विज्ञान सम्बन्धी खोजों और गवेषणाओं को प्रोत्साहन देने के लिए मन्त्रालय विभिन्न विश्वविद्यालयों को आर्थिक सहायता प्रदान करता है।

२ राज्य सरकार

ऊपर हम उल्लेख कर चुके हैं कि शिक्षा राज्य की सूची में है। केन्द्र प्रमुख रूप से दो बातों के लिए उत्तरदायी है—

१—विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के द्वारा विभिन्न उच्च शिक्षा संस्थाओं के मध्य सम्पर्क की स्थापना करना।

२—उच्च शिक्षा, वैज्ञानिक, तकनीकी तथा खोज शिक्षा आदि का स्तर निर्धारण करना।

दोनों विषय सम्पूर्ण देश से सम्बन्धित हैं अतः इनका उत्तरदायित्व केन्द्र पर ही डाला गया है। इसके अतिरिक्त जिन-जिन योजनाओं के लिए राज्य सरकारें केन्द्र सरकार से सहायता लेती है, उनके संचालन में केन्द्र सरकार के निर्देशन का अनुसरण करना पड़ता है। इन बाधाओं के अतिरिक्त राज्य सरकारें शिक्षा के क्षेत्र में पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। राज्य के शिक्षा-मन्त्री के अधीन शिक्षा विभाग होता है। इस शिक्षा विभाग द्वारा ही सम्पूर्ण राज्य की शिक्षा का निर्देशन किया जाता है। शिक्षा मन्त्री की सहायता के लिए शिक्षा सचिव, शिक्षा-संचालक (Director of Education) नामक दो प्रमुख पदाधिकारी होते हैं। सचिव [illegible] शिक्षा मन्त्री के प्रति उत्तरदायी होता है तथा राज्य सरकार की ओर से वह समय-समय पर आदेश निकालता है। सचिव प्रायः अनुभवहीन होते हैं, जबकि डायरेक्टर अनुभवी होते हैं। वास्तव में शिक्षा का यथार्थ संचालन डायरेक्टर [illegible] ही करता है। समय समय पर वह शिक्षा-समस्याओं के विषय में शिक्षा-मन्त्री को [illegible] करता है। डायरेक्टर की सहायता के लिए [illegible] डायरेक्टर होते हैं [illegible] उसके कार्य में हर प्रकार की सहायता करते हैं। [illegible] दिया जाता है और विभाग का [illegible]। [illegible]

रहता ह और प्रत्यक जिला इ सपेक्टर आफ स्कूल के प्रशासन म। कुछ राज्यो म डिप्टी डायरेक्टर के स्थान पर डिस्ट्रिक्ट एजूकेशन अफसर होता है। जिला तहसीलो म विभाजित होता है जो कि एक डिप्टी इ सपेक्टर के अधीन रहता है। य समस्त पदाधिकारी डायरेक्टर आफ एजूकेशन के प्रति उत्तरदायी होत है। कृषि विद्यालय, तकनीकी स्कूल और समाज शिक्षा-क द्र आदि शिक्षा सस्थाएँ अ य म त्रियो के अधीन रहती है।

राज्य के शिक्षा विभाग को अ य व्यवस्थापको के सहयोग से भी काम चलाना पड़ता है। उदाहरण के लिए उच्च शिक्षा विश्वविद्यालयो के सहयोग स, प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय सस्थाओ के सहयोग से तथा माध्यमिक शिक्षा माध्यमिक शिक्षा मण्डलो के सहयोग स।

३ स्वायत्त शासन

स्थानीय निकाय प्रमुख रूप स दो प्रकार के है—नगर के तथा गाव के। जो नगर बड़े होते हैं वहा 'निगम' होते है और छोट नगरो म 'नगरपालिका' होती है। ग्रामीण क्षत्रो म शिक्षा सम्ब धी दखभाल जिला परिषद् या डिस्ट्रिक्ट बोड करता है। वतमान काल म समस्त देश की प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय निकाय ही उठाते है। य निकाय विद्यालयो की स्थापना करत हैं तथा गर सरकारी विद्यालयो को मजूरी देते हैं।

उत्तर-प्रदेश की शिक्षा-व्यवस्था

ऊपर राज्य सरकार की प्रशासन व्यवस्था का हमन उल्लेख किया था। इसी आधार पर उत्तर प्रदश की शिक्षा के प्रशासन का सचालन होता है। शिक्षा का उचित प्रकार स प्रशासन चलाने के लिए सम्पूण उत्तर प्रदश का एक शिक्षा सचालक (Director of Education) होता है। यह सम्पूण उत्तर प्रदश की शिक्षा का उत्तर दायी होता है।[1] शिक्षा सचालक को सहायता देने के लिए एक सयुक्त शिक्षा सचालक (Joint Director) होता है तथा उप सचालक (Assistant Deputy Directors) प्रशासन का काय सुचारु रूप से चलान के लिए रहत हैं। इसके अतिरिक्त प्रशासन

---

1 'The Director is the head of the Department and is assisted in its administration at the headquarters by a Joint Director, several Deputy Directors including one for his Camp office a few Assistant Deputy Directors a Deputy Director (women) and two Personal Assistants one of whom is designated as Personal Assistant (women) There are also several special officers e g Officers on Special Duty (Secondary Education) Officers on Special Duty (Primary Edu), Officers on Special Duty (Re-orientation) Officers on Special Duty (Text Book)
—*The Education Code of Uttar Pradesh*, 1958 Chap II 4

की सुविधा के लिए सम्पूर्ण उत्तर-प्रदेश को आठ क्षेत्रों (Regions) में विभाजित किया गया है। इनमें से प्रत्येक सात क्षेत्र एक शिक्षा-उप-संचालक के अधिकार में रहते हैं। ये क्षेत्र इस प्रकार से हैं—मेरठ, आगरा, बरेली, इलाहाबाद, वाराणसी, लखनऊ गोरखपुर। आठवाँ क्षेत्र नैनीताल है जो कि एक जिला निरीक्षक के अधीन है।

प्रत्येक जिले में एक **जिला निरीक्षक** (District Inspector of Schools) होता है।[1] यह सम्पूर्ण जिले की शिक्षा तथा विद्यालयों सम्बन्धी मामलों का उत्तरदायी होता है। जो जिले बड़े होते हैं उनमें एक सहयोगी जिला विद्यालय निरीक्षक भी होता है। उप जिला **निरीक्षक** (Deputy Inspector) तथा सहायक उप जिला निरीक्षक (Sub Deputy Inspector), जिला विद्यालय निरीक्षकों की सहायता करते हैं। वे सहायक निरीक्षक ही प्राथमिक, बेसिक तथा जूनियर हाई स्कूलों का निरीक्षण करते हैं। उप-जिला निरीक्षक जिला परिषद् के अन्तर्गत भी कार्य करते हैं।

लड़कियों के विद्यालयों का निरीक्षण करने के लिए प्रत्येक क्षेत्र (Region) में एक **निरीक्षिका** (Inspectress of Girls Schools) होती है, जो कि शिक्षा संचालक के सीधे नियन्त्रण में होती है। इनके कार्यालय (Head Quarters) उन सातों क्षेत्रों में है जिनका कि उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। प्रत्येक १५ जिलों में एक उप निरीक्षिका (Deputy Inspectress of Girls Schools) होती है। ये १५ जिले इस प्रकार से हैं —

(१) देहरादून	(२) सहारनपुर	(३) मेरठ
(४) गोरखपुर	(५) मथुरा	(६) आगरा
(७) कानपुर	(८) बरेली	(९) नैनीताल
(१०) अलमोड़ा	(११) गढ़वाल	(१२) टेहरी गढ़वाल
(१३) इलाहाबाद	(१४) बनारस	(१५) लखनऊ

शेष ३७ जिलों में **सहायक निरीक्षिकाएँ** (Assistant Inspectress) होती हैं जो कि **क्षेत्रीय निरीक्षिकाओं** (Regional Inspectress) से सम्बन्धित होती हैं। इनके उत्तरदायित्व और कार्य क्षेत्र के विषय में शिक्षा विधान (Education Code) में उल्लेख किया गया है—'The Deputy and the Assistant Inspectress are members of the inspecting staff under the administrative control of the District Inspector of Schools and are responsible of the

---

[1] 'In each District, there is a District Inspector of Schools who is responsible for the supervision, control and inspection of educational institutions in general and of institutions for boys in particular He is under the administrative control of the regional Deputy Director

—*The Education Code* Chap II 6

supervision, inspection and control of Girls Basic (Primary and Junior High) Schools in the district The office of the District Inspector of Schools is responsible for handling the correspondence and papers relating to the Deputy or Assistant Inspectress of Girls Schools also The superior supervision over the work of the Deputy Assistant Inspectress is exercised by the regional Inspectress of Girls Schools"

उपयुक्त निरीक्षको के अतिरिक्त भी अनेक निरीक्षक होते हैं जैसे— (१) सस्कृत पाठशाला निरीक्षक (२) आग्ल भारतीय स्कूलो के निरीक्षक, (३) मुस्लिम स्कूलो के निरीक्षक तथा (४) अरबिक मदरसा के निरीक्षक। सस्कृत पाठशाला के निरीक्षको का कार्यालय बनारस मे है और अरबी स्कूलो का नैनीताल मे, शेष के कार्यालय इलाहाबाद मे है। सस्कृत पाठशालाओ के पाँच सहायक निरीक्षक होते है। प्रदेश की समस्त सस्कृत पाठशालाओ का निरीक्षण करने के लिए राज्य को पाँच भागो (Zones) मे विभाजित किया गया है।

शिक्षा के विस्तार के लिए अलग से प्रदेश मे एक Education Expansion Officer होता है जो कि शिक्षा सचालक (Director) के प्रशासकीय नियन्त्रण मे रहता है। सैनिक शिक्षा (Military Education) और समाज सेवा प्रशिक्षण (Social Service Training) के लिए एक 'Director of Military Education and Social Service Training' होता है। यह भी शिक्षा सचालक (Director of Education) के नियन्त्रण मे काम करता है।

एक मनोविज्ञान से सम्बन्धित Director Bureau of Psychology' होता है। यह भी शिक्षा सचालक के प्रत्यक्ष प्रशासन मे रहता है। छ जिलो मे मनोविज्ञान केन्द्र (District Psychological Centres) आगरा, कानपुर मेरठ लखनऊ बरेली और बनारस मे हैं। प्रत्येक जिला मनोवैज्ञानिक केन्द्र 'District Psychologist के अधीन रहता है।

एक प्रदेश का केन्द्रीय पुस्तकालय (Central State Library) है जिसका कार्यालय इलाहाबाद मे है। इसका अध्यक्ष[1] (Librarian) शिक्षा सचालक के प्रत्यक्ष नियन्त्रण मे रहता है।

यह बात ध्यान मे रखने की है कि व्यापारिक और तकनीकी (Technical) सस्थाएँ शिक्षा विभाग से सम्बन्धित न होकर उद्योग विभाग (Department of Industries) से सम्बन्धित रहती है।

---

[1] He is responsible for the proper maintenance Books (Act XXV of 1867) and for the issue of the quarterly Catalogue of book registered and published under the Act

—*Education Code* Chapter II 13

३

प्राथमिक, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालयीय शिक्षा का प्रशासन

A GENERAL UNDERSTANDING HOW PRIMARY, SECONDARY & UNIVERSITY EDUCATION IS BEING ADMINISTERED

Q Give a general understanding of how Primary, Secondary and University education is being administered with special reference to U P

प्रश्न—हमारे देश म प्राथमिक, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालयीय शिक्षा किस प्रकार प्रशासित होती है ? उत्तर प्रदेश की व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए इसका वणन करो।

उत्तर—प्राथमिक शिक्षा को दो भागा म बाटा जा सकता है—(क) पूव प्राथमिक शिक्षा, (ख) प्राथमिक शिक्षा।

(क) पूर्व प्राथमिक शिक्षा

पूव प्राथमिक शिक्षा का आयोजन २½ वष से ६ वष तक के बालका के लिए किया जाता है। हमारे देश म निम्न प्रकार क पूव प्राथमिक विद्यालय है—

(१) नसरी स्कूल (Nursery Schools)
(२) किण्डरगाटन स्कूल (Kindergarten Schools)
(३) मॉण्टसरी स्कूल (Montessori Schools)
(४) पूव बसिक स्कूल (Pre-Basic Schools)
(५) गरीबा के लिए स्कूल (Pre Schools for the Poor)
(६) एकाकी शिक्षक स्कूल (Single Teacher Schools)
(७) नूतन बाल शिक्षा सघ स्कूल (Schools N B S S)

नर्सरी स्कूल की सख्या बहुत कम है। किण्डरगार्टन स्कूल मुख्यतया मिशनों द्वारा सचालित है। ये स्कूल धनिकों के बालकों के लिए है। सर्वसाधारण जनता उनका व्यय भार उठाने में असमर्थ है। मॉण्टेसरी स्कूल सरकार तथा समाज सेवियों की सहायता से चलते है। पूर्व बेसिक स्कूलों की सख्या बहुत कम है।

पूर्व प्राथमिक विद्यालयो का सचालन विभिन्न ढग से होता है। इस समय देश में १७ प्रतिशत पूर्व प्राथमिक संस्थाएँ चर्च या मिशन द्वारा ११ प्रतिशत सरकार द्वारा ५ प्रतिशत स्कूल स्थानीय निकायो द्वारा और ५७ प्रतिशत व्यक्तिगत सगठन द्वारा सचालित हो रहे है। इस स्तर की शिक्षा को विभिन्न प्रकार की सहायता पहुँचाने के लिए सरकार ने निम्नलिखित सस्थाओ की स्थापना की है—

(१) Central Institute of Education, Delhi

(२) Indian Council of Child Welfare

(३) Central Social Welfare Board

(ख) प्राथमिक शिक्षा

भारतीय सविधान की ४५ वीं धारा में कहा गया है कि "राज्य इस सविधान के प्रारम्भ किये जाने के समय से दस वर्ष के भीतर सभी बालको के लिए, जब तक वे १४ वर्ष की आयु को पूरा नही कर लेते, अनिवार्य तथा नि शुल्क शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा।" सविधान की इस धारा के आधार पर यह कार्य १९६० ई० तक पूरा हो जाना चाहिए था। लेकिन आर्थिक और प्रशासकीय कठिनाइयो के कारण यह लक्ष्य पूरा न हो सका।

सविधान के अनुसार शिक्षा का उत्तरदायित्व राज्यों पर डाला गया है। माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के विषय में यह बात पूर्णतया ठीक है। लेकिन सविधान की ३६वीं धारा और भाग ३ की १२वीं धारा का अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है कि प्राथमिक शिक्षा का भार राज्य सरकारों के साथ साथ केन्द्रीय सरकार और स्थानीय संस्थाओं पर भी डाला गया है।

केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय के ६ भाग है उनमें से एक भाग प्राथमिक तथा बेसिक शिक्षा से सम्बन्धित है। प्राथमिक शिक्षा के महत्त्व के कारण भारत सरकार ने प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित एक 'विशेष सलाहकार' (Special Adviser) की नियुक्ति की है। प्राथमिक शिक्षा प्रत्यक्ष सम्पूर्ण शिक्षा सचिव द्वारा नियन्त्रित है।

प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित सस्थाएँ

केन्द्रीय मन्त्रालय ने दो सस्थाओं की स्थापना की है जो सरकार को प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न परामर्श देती हैं। ये सस्थाएँ आगे दिए अनुसार है।

(१) केन्द्रीय शिक्षा परामर्शदाता मण्डल (Central Advisory Board of Education)।

(२) अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षा परिषद् (All India Council of Elementary Education)।

अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षा परिषद (All India Council of Elementary Education)

इस परिषद् की स्थापना का उद्देश्य भारतीय संविधान के ४५वें अनुच्छेद को व्यावहारिक रूप देना है। प्राथमिक शिक्षा के विषय में केन्द्रीय तथा राज्य सरकार को सलाह देना तथा उसके विस्तार आदि की योजना तैयार करना, खोज और अनुसंधान करना, प्राथमिक शिक्षा के योग्य साहित्य तैयार करना तथा उसका आदेश सर्वेक्षण करना इसके प्रमुख कार्य हैं। परिषद के २३ सदस्य होते हैं जिनमें चौदह राज्य के, एक केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मण्डल का प्रतिनिधि, एक प्रतिनिधि अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद तथा एक प्रशिक्षण विद्यालय का अध्यक्ष सम्मिलित होते हैं। इसी प्रकार दो दो विशेषज्ञ बेसिक-शिक्षा, स्त्री शिक्षा तथा अनुसूचित जातियों के होते हैं। परिषद का अध्यक्ष केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय का शिक्षा-परामर्शदाता होता है।

प्राथमिक शिक्षा पर व्यय

प्राथमिक शिक्षा का व्यय पांच स्रोतों द्वारा एकत्रित किया जाता है—

(१) सरकारी—केन्द्रीय तथा राजकीय निधि

(२) जिला मण्डल निधि

(३) नगरपालिका निधि

(४) शुल्क

(५) दान

समय समय पर केन्द्रीय सरकार प्रदेश सरकारों को पर्याप्त रकम अनुदान के रूप में देती है। परन्तु अनुदान की धनराशि निश्चित नहीं है। यह समयानुसार घटती बढ़ती रहती है। स्थानीय मण्डलों तथा दान आदि के स्रोत विशेष आकर्षक नहीं है। वर्तमान युग में प्रायः सब जगह प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क है। आजकल प्रादेशिक सरकारें यह अनुभव कर रही हैं कि प्राथमिक शिक्षा को पूर्ण उत्तरदायित्व स्थानीय मण्डलों पर नहीं छोड़ा जा सकता। अतः अनेक राज्य सरकारें प्राथमिक स्कूल खोलने का काम स्वयं कर रही हैं। कहीं कहीं पर स्थानीय मण्डल, स्वयं चलित विद्यालयों को अनुदान देते हैं।

प्राथमिक शिक्षा में सम्बन्धित केन्द्रीय सरकार की नवीन योजनाएँ

प्राथमिक शिक्षा के विस्तार तथा सुधार के लिए केन्द्रीय सरकार ने आगे लिखी योजनाएँ प्रस्तावित की हैं।

(१) अखिल भारतीय शिक्षा पर्यवेक्षण (All India Educational Survey)।

(२) अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए आदर्श विद्यालय (The draft model legislation on compulsory Primary Education)।

(३) शिक्षितों को बेकारी की समस्या से मुक्त करना (Relief of the educated unemployment)।

(४) प्राथमिक विद्यालयो के शिक्षको के हेतु प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार (Expansion of tracing facilities for primary school teachers)।

(५) लडकियो की प्राथमिक शिक्षा का विस्तार।

(६) ग्रामीण क्षेत्रो म सावभौमिक प्राथमिक शिक्षा के हेतु प्रायोगिक अग्रो योजनाएँ (The Experimental Pilot Project for Universal Primary education in rural areas)।

(७) प्राथमिक स्तर के बालको के लिए उपयुक्त साहित्य का निर्माण।

उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा का प्रशासन

अग्रेज सरकार ने प्राथमिक शिक्षा की सबसे अधिक उपेक्षा की। १९३७ म जब उत्तर प्रदेश म काग्रेस मन्त्र मण्डल हुआ तो मन्त्रियो ने शिक्षा प्रसार के लिए नूतन प्रयास करने का निश्चय किया। परन्तु १९३९ म मतभेद होने के कारण काग्रेस मन्त्र मण्डल ने पद त्याग कर दिया। परिणामस्वरूप प्राथमिक शिक्षा का विकास रुका रहा। १९४७ के पश्चात् उत्तर प्रदेश की सरकार ने प्राथमिक स्कूलो म पाठ्यक्रम मे बेसिक शिक्षा का स्थान दिया। बोर्ड की आर्थिक दशा सुधारने के लिए सरकार की ओर से सहायता बढाकर ७५ प्रतिशत कर दी गई।

प्राथमिक बेसिक विद्यालयो की व्यवस्था नगर महापालिका करती है तथा गावो म जिला परिषद। कुछ प्राथमिक बेसिक विद्यालय एस भी है जिनका कि प्रबन्ध सरकार स्वय करती है। परन्तु इस प्रकार के बेसिक स्कूलो की सख्या बहुत थोडा है। प्रत्येक सब डिप्टी के अधीन कुछ निश्चित सख्या म विद्यालय होते हैं। ये सब डिप्टी समय समय पर प्राथमिक विद्यालयो का निरीक्षण करते है। सब डिप्टी अपनी रिपोर्ट डिप्टी इन्सपक्टर को देता है तथा डिप्टी इन्सपक्टर अपनी समस्त रिपोर्ट जिला विद्यालय निरीक्षक को देता है।

म्युनिसिपल बोर्ड म जहाँ प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई वहाँ प्राथमिक विद्यालयो को मान्यता प्रदान जिला निरीक्षक करता है। परन्तु मान्यता प्रदान करने के पूर्व उसे Superintendent of Education of the Board की आज्ञा लेनी पडती है। शेष के लिए विधान म उल्लेख किया गया है कि "The power to grant recognition to Junior, Basic (Primary) Schools both in compulsory and non compulsory areas of a District Board may be exercised by the President of the Board concerned He will be the authority for granting recognition to primary schools on the advice and recommendation of the Deputy Inspector of schools of the district

माध्यमिक विद्यालयों का प्रशासन

(Administration of Secondary Schools)

माध्यमिक विद्यालयो को आगे तिनो श्रेणियो म विभाजित किया जा सकता है

(१) उच्चतर प्रारम्भिक स्कूल (Higher Elementary Schools or Vernacular Middle Schools)—उत्तर प्राथमिक पाठशालाओ को समाप्त करने वाले छात्र इनम प्रवेश करते हैं। इनका अध्ययन-काल केवल तीन वर्ष है।

(२) माध्यमिक स्कूल (Secondary Schools)—माध्यमिक शिक्षा के स्तर को दो भागो म विभाजित किया गया है—प्रथम जूनियर स्तर तथा दूसरा सीनियर स्तर। जूनियर स्तर के स्कूलो को मिडिल स्कूल के नाम से भी पुकारा जाता है। इन स्कूलो का कोर्स कहीं पर तीन वर्ष का होता है और कहीं पर चार वर्ष का।

(३) उच्चतर माध्यमिक स्तर (Higher Secondary Schools)—उच्चतर माध्यमिक स्कूलो की स्थापना हाल ही म की गई है। यह शिक्षा मे नवीनतम प्रयोग है। इन विद्यालयो का सगठन इण्टरमीडिएट की कक्षाओ का प्रथम वर्ष जोड कर किया गया है। दूसरे शब्दो मे कक्षा ९, १० तथा ११ कक्षाओ को मिलाकर उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो की स्थापना की गई है। इस प्रकार के विद्यालयो की अवधि कहीं पर तीन वर्ष की है तो कहीं पर चार वर्ष की।

प्रशासन की दृष्टि से माध्यमिक विद्यालयो को निम्न भागो मे बाटा जा सकता है

(१) राजकीय (Government)
(२) जिला-मण्डल (District Board)
(३) नगरपालिका-मण्डल (Municipal Board)
(४) सहायता प्राप्त (Aided)
(५) व्यक्तिगत स्वाजित (Unaided)

सम्पूर्ण देश म लगभग आधे गैर सरकारी स्कूल है, लगभग एक चतुर्थांश सहायता प्राप्त (Unaided) विद्यालय ह और प्राय एक तृतीयांश जिला-परिषद और नगर पालिका द्वारा सचालित हैं।

सम्पूर्ण देश की माध्यमिक शिक्षा के सचालन का उत्तरदायित्व राज्य सरकारो पर है। प्रत्येक प्रदेश म एक शिक्षा विभाग होता है, जो कि विद्यालयो के लिए नियमो का निर्माण करता है। शिक्षा विभाग पर शिक्षा-मन्त्री का नियन्त्रण रहता है। शिक्षा मन्त्री की सहायता के लिए एक सचिव होता है तथा सम्पूर्ण प्रदेश का एक शिक्षा सचालक (Director) होता है। शिक्षा सचालक (Director of Education) के अधीन अनेक उप शिक्षा सचालक (Deputy Directors) तथा जिला-निरीक्षक (District Inspectors) होते हैं। जिला निरीक्षको की सख्या कम होने के कारण देश म माध्यमिक विद्यालयो का निरीक्षण ढग से नहीं हो पाता।

१९५५ ५६ की तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि माध्यमिक शिक्षा का अधिकांश व्यय राज्य सरकार ही उठाती है।

प्रदेश	व्यय[1]
उत्तर प्रदेश	५० ०%
मध्य प्रदेश	५७ ०%
आ ध्र प्रदेश	२२ ६%
बगाल प्रदेश	५० ०%

ऊपर की तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि मध्य प्रदेश की सरकार माध्यमिक विद्यालय पर सबसे अधिक व्यय करती है।

देश भर म लगभग १५ परीक्षा-सस्थाएँ है जो इण्टरमीडिएट या माध्यमिक स्तर की परीक्षाएँ लेती है। अजमेर के केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा-मण्डल मे देश के किसी भी भाग के छात्र परीक्षा के लिए बठ सकते है। शेष परीक्षा सस्थाएँ अपने राज्य या क्षेत्र की परीक्षाएँ लेती है।

Secondary Education Commission's Report के अनुसार गैर सरकारी (Educational institutions under private management) विद्यालयों को राज्य की सरकार निम्न म से किसी काय के लिए सहायक अनुदान दे सकती है।

(१) अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए वृत्ति (Payment of stipends to teachers under training)

(२) अनाथ बालको के छात्रावास के लिए (Maintenance in boarding houses of orphans)

(३) छात्रो के स्वास्थ्य निरीक्षण के लिए पदाधिकारियो (Payment of medical officers for medical inspection) पर व्यय करने के लिए।

(४) विद्यालय के भवन निर्माण तथा भवन विस्तार के लिए (Construction and extension of school building and hostels)

(५) फर्नीचर प्रयोग के सामान रासायनिक पदार्थ और पुस्तकालय की पुस्तको के लिए (Furniture apparatus chemicals and book for library)

(६) विद्यालय के भवन, गन्द के मदान तथा छात्रावास के लिए जमीन खरीदने के लिए (For requisition of lands for school buildings, hostels or playgrounds)

(७) दस्तकारी तथा औद्योगिक प्रशिक्षण के लिए (For Crafts and Industrial Education)

(८) अनुरक्षण व्यवस्था के लिए अनुदान (Maintenance Grant)

---

1 भारत में शिक्षा सीतानाथ मुखर्जी।

लेकिन समस्त प्रादेशिक सरकार उपयुक्त समस्त मदों पर अनुदान नहीं देती। प्रत्येक प्रदेश की अपनी अपनी व्यवस्था है। केन्द्र सरकार अपने द्वारा निर्धारित शिक्षा-योजनाओं के लिए राज्य तथा विभिन्न संस्थाओं को भी अनुदान देती है। एम० एन० मुकर्जी अपनी पुस्तक में इसका उदाहरण देते हैं "प्रथम योजना काल में केन्द्रीय सरकार की आर्थिक सहायता के कारण माध्यमिक शिक्षा में अनेक सुधार किये गये। ४७० स्कूल बहुद्देशीय स्कूलों में बदल दिये गये। १०७२ स्कूलों को समाज शास्त्र तथा २१४ स्कूलों को विज्ञान-अध्यापन की उन्नति के लिए, १,८७६ स्कूल-पुस्तकालयों तथा १,११६ मिडिल स्कूलों को हस्त कला आरम्भ करने के उद्देश्य से केन्द्रीय अनुदान की व्यवस्था की गई। १० प्रशिक्षण केन्द्रों और १२ प्रशिक्षण महाविद्यालयों को ग्रांट मिली तथा २१ संस्थाओं को माध्यमिक शिक्षा के ३१ विषयों पर शोध करने के लिए आर्थिक सहायता प्राप्त हुई।" इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि केन्द्र सरकार अपने द्वारा मान्य योजनाओं पर विशेष रूप से अनुदान देती है।

अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् (All India Council for Secondary Education)

इस परिषद की स्थापना २२ मार्च १९५५ में की गई थी। इसके जन्म का कारण माध्यमिक शिक्षा संघ की सिफारिश थी। परिषद का प्रमुख उद्देश्य केन्द्र और राज्य सरकारों को माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित सलाह देना है। १९५८ में इसका पुनर्गठन किया गया। इस परिषद के प्रमुख कार्य निम्न हैं—

(क) केन्द्र और राज्य सरकारों को माध्यमिक शिक्षा के विषय में सलाह देना।

(ख) माध्यमिक शिक्षा के विकास की आलोचना तथा उसका मूल्यांकन करना।

(ग) माध्यमिक शिक्षा की प्रगति और उसे व्यावहारिक बनाने के लिए नये प्रस्ताव रखना।

(घ) केन्द्र तथा राज्य सरकार द्वारा रखे गये प्रस्तावों का परीक्षण करना।

(ङ) माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित खोजों और प्रयोगों पर विचार करना।

माध्यमिक शिक्षा और केन्द्र सरकार

केन्द्र सरकार माध्यमिक शिक्षा के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी नहीं है, क्योंकि संविधान ने शिक्षा को एक राजकीय विषय माना है। इस पर भी संघीय क्षेत्रों के माध्यमिक स्कूल तथा १८ बालिका स्कूल केन्द्र द्वारा सीधे संचालित होते हैं। कुछ पब्लिक स्कूलों को १९५३ में स्वायत्त प्राप्त मण्डलों को सौंप दिया गया है। इस पर भी केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय के प्रतिनिधि इसमें अब भी रहते हैं।

संघीय शिक्षा मन्त्रालय राज्य सरकारों को समय समय पर सलाह देता

रहता है। सलाह देने का काय विभिन्न निकायों के माध्यम से किया जाता है। ये निम्न हैं—

1 Central Advisory Board of Education

2 Directorate of Extension Programmes for Secondary Education

3 Central Advisory Board of Physical Education and Recreation

4 National Board for Audio Visual Education

5 All India Council for Secondary Education

समय समय पर केन्द्र सरकार माध्यमिक शिक्षा में सुधार लाने के लिए विभिन्न समितियों और आयोगों की नियुक्त करती रहती है। केन्द्र सरकार ने कुछ नवीन संस्थाओं की भी स्थापना की है जैसे—

(१) लक्ष्मीबाई कॉलेज आफ फिजीकल एजूकेशन (Laxmibai College of Physical Education)।

(२) केन्द्रीय अंग्रेजी संस्थान (The Central Institute of English), हैदराबाद।

माध्यमिक शिक्षा संस्थाओं में अनुशासन तथा राष्ट्रीय भावनाओं के प्रसार के लिए 'राष्ट्रीय अनुशासन योजना' (National Discipline Scheme) का निर्माण किया गया है। यह योजना पूर्णतया केन्द्र द्वारा संचालित है तथा विभिन्न राज्यों में इसे कार्यान्वित किया गया है।

वित्तीय सहायता—केन्द्र सरकार निम्न बातों के लिए राज्य सरकारों को सहायता प्रदान करती है—

(क) १४ से १७ वर्ष तक के बालक और बालिकाओं के लिए नवीन स्कूलों की स्थापना करना।

(ख) हाई स्कूल विद्यालयों को उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में परिवर्तित करने के लिए।

(ग) हाई स्कूलों को बहु उद्देशीय विद्यालय में बदलने के लिए।

(घ) अध्यापकों की आवश्यक पूर्ति के लिए।

(ङ) पुस्तकालयों में सुधार करने के लिए।

(च) विज्ञान शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए।

उत्तर प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा का प्रशासन

ऊपर हम उल्लेख कर चुके हैं कि माध्यमिक शिक्षा का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व प्रदेश की सरकारों पर होता है। शिक्षा विभाग के अधीन तथा शिक्षा संचालक की देख रेख में जिस प्रकार सम्पूर्ण प्रदेश की प्राथमिक शिक्षा का संचालन होता है, उसी प्रकार से माध्यमिक शिक्षा का संचालन होता है। केवल अन्तर इतना है कि प्राथमिक

और जूनियर विद्यालयों का निरीक्षण सहायक निरीक्षक और उप निरीक्षक करते हैं, जबकि माध्यमिक विद्यालयों का जिला निरीक्षक करते हैं। हमारे प्रदेश में प्रमुख रूप में तीन प्रकार की माध्यमिक संस्थाएं हैं—(१) सरकारी, (२) गैर-सरकारी, (३) स्थानीय संस्थाओं द्वारा संचालित। सरकारी विद्यालयों का पूर्ण उत्तरदायित्व प्रदेश सरकार उठाती है। गैर सरकारी माध्यमिक संस्थाएँ दो प्रकार की होती हैं— (क) सहायता प्राप्त (Aided) तथा (ख) बिना सहायता-प्राप्त (Unaided)। बिना सहायता प्राप्त संस्थाएँ सरकारी नियंत्रण से मुक्त होती हैं। सरकारी तथा सहायता-प्राप्त विद्यालयों पर प्रदेशीय सरकार का नियन्त्रण होता है। सरकारी विद्यालय प्रत्यक्ष सरकार के नियंत्रण में होते हैं, जबकि सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों पर सरकार का अप्रत्यक्ष नियंत्रण रहता है। सरकारी माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य गैर सरकारी विद्यालयों के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करना है। गैर सरकारी संस्थाओं पर नियंत्रण निम्न प्रकार से रहता है—

(१) **मान्यता प्रदान करके**—प्रत्येक गैर-सरकारी विद्यालय को सरकारी सहायता अनुदान (Grants in aid) तभी प्रदान किया जाता है, जबकि उसे सरकार द्वारा मान्यता प्रदान कर दी जाती है। जिन विद्यालयों को मान्यता प्रदान नहीं की जाती, उनके छात्र सार्वजनिक परीक्षाओं में नहीं बैठ सकते। मान्यता प्राप्त करने के लिए माध्यमिक स्कूलों को प्रबंध का एक निश्चित स्तर स्थापित करना पड़ता है।

(२) **सहायक-अनुदान** (Grant in aid system) **द्वारा**—उत्तर प्रदेश की अधिकांश गैर सरकारी संस्थाएँ सरकारी सहायता-अनुदान पर ही निर्भर रहती हैं। सरकार मान्यता प्राप्त विद्यालयों को प्रतिवर्ष सहायता अनुदान देती है, साथ ही कुछ शर्त भी रहती है। इस विषय में रामखेलावन चौधरी लिखते हैं, "विभाग जिस रूप में चाहता है, धन के आय-व्यय का तथा अन्य बातों का सारा विवरण रखना पड़ता है और विभाग द्वारा मांगे जाने पर निर्धारित फार्म में भरकर भेजना पड़ता है। अध्यापकों की योग्यताओं, प्रशिक्षण और नियुक्ति, बालकों की स्वास्थ्य रक्षा, मनोरंजन और अनुशासन, भवन की साज सज्जा तथा छात्रावास आदि के सम्बन्ध में विभाग ने नियम बना दिये हैं और विद्यालय को कड़ाई के साथ उनका पालन करना पड़ता है। कोड में स्पष्ट रूप से लिखा है कि उसमें लिखी शर्तों का पालन न करने वाले, अपने क्षेत्र के लिए अनावश्यक अथवा उसकी आवश्यकताओं को पूरा न करने वाले, अपने व्यय के लिए पर्याप्त आमदनी वाले और व्यक्तिगत लाभ की दृष्टि से चलाये जाने वाले विद्यालयों को सहायता-अनुदान नहीं दिया जाता।"

कोई भी विद्यालय तथा उसके अध्यापक संगठित होकर सरकार के विरुद्ध आन्दोलन नहीं चला सकते। ऐसा करने पर सहायक अनुदान समाप्त किया जा सकता है। शिक्षा विधान (Education Code) में उल्लेख किया गया है कि Grants will ordinarily be withdrawn if the manager or any of the teachers employed by him takes part in political agitation directed

against the authority of Government or inculcates opinion tending to excite feelings of political disloyalty or disaffection among the pupils '

(३) निरीक्षण के माध्यम से—सहायता प्राप्त विद्यालयों पर नियन्त्रण रखने का तीसरा साधन निरीक्षण है। हर तीसरे वर्ष जिला निरीक्षक सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों का पूर्ण निरीक्षण करता है। जिला निरीक्षक की रिपोर्ट का विशेष महत्त्व होता है।

(४) सार्वजनिक परीक्षा द्वारा—पीछे हम उल्लेख कर चुके हैं कि उत्तर प्रदेश में 'हाईस्कूल एण्ड इण्टरमीडिएट बोर्ड आफ एजूकेशन' प्रतिवर्ष एक सार्वजनिक परीक्षा लेता है। इस सार्वजनिक परीक्षा का विशेष महत्त्व है। सहायता प्राप्त विद्यालयों को अपना परीक्षा फल एक निश्चित स्तर पर रखना अनिवार्य सा होता है। दूसरे, कोई विद्यालय उत्तर प्रदेश बोर्ड के अतिरिक्त किसी अन्य प्रदेश की परीक्षा के लिए छात्रों को तैयार नहीं करायेंगे।[1] बोर्ड के परीक्षा फल के आधार पर सहायता अनुदान भी दिया जाता है।

(५) रीजनल आरबिट्रेशन बोर्ड (Regional Arbitration Board) द्वारा—सहायता प्राप्त गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में अध्यापकों और विद्यालय की प्रबन्ध समिति के मध्य प्रायः झगड़े हो जाते हैं। ऐसी दशा में प्रबन्ध समिति के सदस्य अध्यापकों को नौकरी से अनायास बिना किसी विशेष अपराध के नहीं निकाल सकते हैं। अध्यापकों की सुरक्षा के लिए शिक्षा विधान (Education Code) में रीजनल आरबिट्रेशन बोर्ड की स्थापना कर दी गई है। बिना इस बोर्ड की अनुमति के कोई मैनेजर किसी भी अध्यापक को नौकरी से अलग नहीं कर सकता। दूसरे साथ ही जिला निरीक्षक का समर्थन भी प्राप्त करना आवश्यक है। इस बोर्ड के सदस्यों में उपशिक्षा संचालक, प्रबन्धकों का एक प्रतिनिधि तथा अध्यापक संघ का एक प्रतिनिधि रहता है। किसी भी अध्यापक को यदि अनुचित रूप से प्रबन्धक हटा देते हैं तो वह इस बोर्ड में प्रबन्धक के विरुद्ध मामला उठा सकता है। बोर्ड के निर्णय सेना पक्षों को स्वीकार करने पड़ते हैं। यदि प्रबन्धक बोर्ड के निर्णय स्वीकार नहीं करते हैं तो जिला निरीक्षक तथा शिक्षा संचालक सहायता अनुदान में से कटौती कर देता है।[2]

---

[1] It shall not send up candidates for an examination held in another state when an examination of the same nature is held by the Department or Intermediate Board or by a university, nor shall it prepare any candidate for any examination conducted by the Department or the Intermediate Board or a university for which the Institution is not recognised '

—*Education Code* page 124

[2] If a teacher head clerk clerk or librarian is appointed dismissed, removed or discharged without the prior approval of

(६) शिक्षा-विधान (Education Code)—सरकारी तथा गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों पर नियन्त्रण रखने के लिए शिक्षा विभाग द्वारा निर्मित 'Education Code' होता है। इसमें उल्लिखित माध्यमिक विद्यालयों से सम्बंधित नियमों का पालन समस्त सरकारी तथा गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों को करना पड़ता है। इसमें पाठ्य पुस्तकें पाठ्यक्रम, शिक्षा का माध्यम, शारीरिक शिक्षा, समय चक्र, छात्रों का प्रवेश तथा पलायन, अनुशासन और दण्ड, अवकाश, विभिन्न शुल्क, परीक्षाएँ तथा कक्षोन्नति आदि से सम्बंधित नियमों का उल्लेख रहता है। अध्यापकों की नियुक्ति तथा प्रबन्धकों के कर्त्तव्यों का भी उल्लेख रहता है। जो सहायता प्राप्त गैर सरकारी संस्थाएँ हैं, यदि वे 'शिक्षा विधान' का पालन नहीं करती तो उनकी सरकारी सहायता स्थिति अनुसार कम या बंद कर दी जाती है।

विश्वविद्यालयीय शिक्षा का प्रशासन

विश्वविद्यालयीय शिक्षा के प्रशासन को भली प्रकार से समझने के लिए उनके स्वरूप को समझना भी परम आवश्यक है। कुल मिलाकर हमारे देश में ६८ विश्वविद्यालय हैं जोकि तीन प्रकार के हैं—

(१) सम्बद्धीय विश्वविद्यालय (Affiliating Universities)
(२) एकात्मक विश्वविद्यालय (Unitary Universities)
(३) संघात्मक विश्वविद्यालय (Federal Universities)

(१) सम्बद्धीय विश्वविद्यालय (Affiliating University)—सम्बद्धीय विश्वविद्यालय का क्षेत्र विस्तृत होता है तथा उसमें सम्बंधित कॉलेज दूर दूर तक फैले रहते हैं। विश्वविद्यालय सम्बद्धीकरण के नियमों का निर्माण करता है तथा उनके आधार पर ही सम्बद्धीय कालेजों का निरीक्षण करता है। प्रत्येक सम्बद्धीय कालेज को विश्वविद्यालयीय नियमों का पालन करना पड़ता है। विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित पाठ्य क्रम को भी उन्हें चलाना पड़ता है। श्रीधरनाथ मुकर्जी के अनुसार 'In short an 'affiliating' university may be locked upon as a 'university of federal colleges', each college being subordinate to and subject to the rules of federation" विश्वविद्यालय सम्बद्धीय कालेजों पर नियन्त्रण १९०४ के भारतीय विश्वविद्यालय कानून (Indian University Act of 1904) के अनुसार करते हैं। कानून की २१वीं, २२वीं तथा २४वीं धाराओं में

---

the Inspector / Inspectress, the grant in aid of the school shall be reduced by the amount equal to the pay of the person concerned and in case wrongful dismissal or discharge amount may be paid directly to the person concerned with the sanction of the Director for such period as the Director may decide."

—*Education Code*

सम्बद्धीकरण की शर्तों का विस्तार में उल्लेख किया गया है। यहाँ हम संक्षेप में एस० एन० मुकर्जी द्वारा उद्धृत सरकारी रिपोर्ट का एक अंश दंगे—

"एक भारतीय विश्वविद्यालय अपने अधीनस्थ कालिजों का निरीक्षण करता है तथा उनसे सम्बन्ध स्थापित करता है पाठ्यक्रम स्थिर करता है, परीक्षायें चलाता है तथा डिग्री प्रदान करता है। वह अपने क्षेत्र में स्थित किसी भी कालिज को मान्यता प्रदान कर सकता है। इन कालेजों को वह स्वतः नहीं चलाता है, पर सम्बद्धीकरण की शर्तों को निर्धारित करता है, जिन्हें कालेजों को पालन करना पड़ता है। निरीक्षण द्वारा विश्वविद्यालय जाँच करता है कि सम्बन्धित कालिज शर्तों का यथोचित पालन कर रहे हैं या नहीं।"[1] हमारे देश में निम्न सम्बद्धीय विश्वविद्यालय हैं—दिल्ली, आगरा, मेरठ, कानपुर, आन्ध्र, बिहार, कलकत्ता, गौहाटी, गोरखपुर, गुजरात, जम्मू और काश्मीर, कर्नाटक, केरल, मद्रास मराठावाड़ा, मैसूर, नागपुर, ओस्मानिया, पंजाब पूना, राजस्थान, सागर आदि आदि।

(२) एकात्मक विश्वविद्यालय (Unitary University)—एकात्मक विश्वविद्यालय का क्षेत्र एक केन्द्र तक सीमित रहता है। इस प्रकार के विश्वविद्यालय स्वतः सम्पूर्ण अध्यापन कार्य का आयोजन करते हैं। दूसरे शब्दों में एकात्मक विश्वविद्यालय अध्यापन, प्रशासन तथा प्रबन्ध का संचालन स्वयं करते हैं। 'A Unitary University has been defined as one usually localised in a single centre, in which whole of the teaching is conducted by teachers appointed by or under the control of the university."[2] हमारे देश में एकात्मक विश्वविद्यालय इस प्रकार से हैं—लखनऊ, पटना अलीगढ़ इलाहाबाद अन्नामलाय बनारस, बड़ौदा, जादवपुर, कुरुक्षेत्र, रुड़की, आनन्द तथा विश्व भारती।

(३) संघात्मक विश्वविद्यालय (Federal University)—एक संघात्मक विश्वविद्यालय का क्षेत्र एक केन्द्र में रहता है तथा उसके अधीन कालिज भी पास करते हैं। सुविधा की दृष्टि से प्रत्येक कॉलेज को विश्वविद्यालय के प्रशासन में भाग लेना पड़ता है, अतः अधीन कालिजों को स्वतन्त्रता और स्वायत्तता का कुछ त्याग करना पड़ता है। समस्त कालेज विश्वविद्यालय के निर्देशन पर परस्पर सहयोग द्वारा कार्य करते हैं। बम्बई और जबलपुर के विश्वविद्यालय इसी प्रकार के हैं।

विश्वविद्यालयीय प्रशासन

विश्वविद्यालय का प्रशासन कोर्ट या सिनेट माध्यम से होता है। सिनेट के सदस्य मनोनीत, पदेन तथा निर्वाचित होते हैं। प्रान्तीय सरकार मनोनीत सदस्यों की तालिका का निर्माण करती है। पदेन सदस्यों के स्थानों की पूर्ति प्रान्तीय शासन,

---

[1] भारत में शिक्षा, पृ० १४४।

[2] Progress of Education in India, 1927, 32 Vol I p 61

कॉलिजो के प्रिंसिपलो और विश्वविद्यालयो के अधिकारियों द्वारा की जाती है। विश्वविद्यालयो के प्राध्यापक भी अपने अपने निर्वाचन क्षेत्र के कुछ सदस्यो का चुनाव करते है। उपर्युक्त समस्त प्रकार के सदस्यो की संख्या निर्धारित रहती है। सिनेट के पश्चात् प्रशासन की दूसरी कड़ी आती है, एकेडेमिक काउन्सिल तथा सिण्डीकेट (Academic Council and Syndicate)। एकेडेमिक काउन्सिल प्रमुख रूप से शैक्षणिक समस्याओ से सम्बन्धित रहती है। सिण्डीकेट एक प्रकार की Executive Council होती है, यह विद्यालय की प्रबन्धकारिणी सभा है। इसके अलावा प्रत्येक विषय के पाठ्यक्रम का निर्माण करने के लिए बोर्ड आफ स्टडीज (Board of Studies) या विभिन्न पाठ्यक्रम की समितियां (Departments of Studies) होती है। परीक्षा, खोज, प्रकाशन, शारीरिक शिक्षा, युवक कल्याण, खेल कूद, छात्रावास तथा पुस्तकालय आदि की समस्याओ और प्रश्नो पर विचार करने के लिए और विभिन्न समितियां होती है।

प्रत्येक विश्वविद्यालय का प्रधान होता है एक कुलपति (Chancellor)। प्राय प्रदेश के राज्यपाल ही कुलपति होते है परन्तु जिन प्रदेशो मे एक से अधिक विश्वविद्यालय है वहां कुलपति के निर्वाचन की व्यवस्था की गई है। कुलपति के पश्चात् दूसरा स्थान उपकुलपति (Vice chancellor) का होता है। उपकुलपति ही वास्तविक प्रशासन का संचालन करता है। उपकुलपति कुछ विश्वविद्यालयो मे राज्यपाल द्वारा नियुक्त किए जाते हैं तो कुछ मे सिण्डीकेट तथा सिनेट के माध्यम से निर्वाचित किये जाते है। उपकुलपति का कार्यकाल ३ से ५ वर्ष तक का है।

अन्य विश्वविद्यालयीय प्रशासकीय नियम

निम्न विश्वविद्यालयो से सम्बन्धित प्रशासकीय निकाय (Bodies) है—

(क) माध्यमिक या इण्टरमीडिएट शिक्षा बोर्ड (*High School or Secondary and Intermediate Boards*)

(ख) अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड (Inter-University Board)

(ग) विश्वविद्यालय अनुदान - आयोग (The *University Grants* Commission)

(क) माध्यमिक या इण्टरमीडिएट शिक्षा बोर्ड (*High School* or Secondary and Intermediate *Boards*)—इन बोर्डो की स्थापना कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग की सिफारिशो के आधार पर की गई। सम्पूर्ण देश मे इन प्रकार के बोर्ड की संख्या लगभग १५ है।

(ख) अन्तर्विश्वविद्यालय-बोर्ड (Inter University Board)—इस बोर्ड की स्थापना की सिफारिश "कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने की थी। १९[illegible] मे इसकी स्थापना हुई। इसका प्रमुख कार्यालय [illegible] मे रखा गया। [illegible] बैठक प्रतिवर्ष होती है। प्रत्येक विश्वविद्यालय का अपना एक [illegible] भेजने का अधिकार है। यह केवल एक परामर्श-दात्री निकाय है। [illegible]

विद्यालयो के प्रतिनिधि वहा आकर विचार विनिमय करते है। बोर्ड के प्रमुख काय आगे लिखे अनुसार है।

(१) अध्यापको के आदान प्रदान के काय को सरल बनाना।

(२) बोर्ड का एक सूचना केन्द्र के रूप म काम करना।

(३) अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन म अपने किसी योग्य प्रतिनिधि को भेजना।

(४) विश्वविद्यालयो के कार्यो मे एकरूपता लाना।

(५) विश्वविद्यालयो की विभिन्न समस्याओ पर विचार करना।

(६) समस्त देश के विश्वविद्यालयो द्वारा प्रदान की जाने वाली उपाधियो म परस्पर मान्यता लाने का प्रयास करना।

(ग) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University - Grant Commission)—सन् १९४५ म सार्जेण्ट योजना के प्रस्तावो के आधार पर विश्वविद्यालय अनुदान-समिति की स्थापना की गई थी। बीच म इसे समाप्त कर दिया गया था। १९५२ म 'विश्वविद्यालय-अनुदान आयोग' की स्थापना राधाकृष्णन आयोग के आधार पर की गई। अनुदान आयोग के प्रमुख रूप से निम्न काय हैं—

(१) विश्वविद्यालयो की आर्थिक दशा की जाच करना और उन्ह आवश्यक अनुदान देना।

(२) केन्द्र तथा राज्य को विश्वविद्यालयो म सम्बन्धित डिग्रियो के विषय म सलाह देना।

(३) एक विशेष संस्था के रूप म उच्च शिक्षा के मानदण्ड को उठाने के लिए केन्द्रीय सरकार को सलाह देना।

(४) केन्द्रीय सरकार की सिफारिशो के आधार पर उच्च शिक्षा सम्बन्धी समस्याओ पर विचार करना।

(५) विकास योजनाओ को व्यावहारिक रूप देना।

(६) नवीन विश्वविद्यालयो की स्थापना के समय उन्ह सलाह देना। पुराने विश्वविद्यालयो की समस्याओ के हल म सहायता देना।

१९५६ म ससद के एक अधिनियम द्वारा इसे एक स्वतन्त्र संस्था मान लिया गया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग म एक अध्यक्ष एक मन्त्री तथा नौ सदस्य होते है। इस आयोग को विभिन्न विद्यालयो को अनुदान देने का पूर्ण अधिकार है।

केन्द्र सरकार और विश्वविद्यालयीय शिक्षा

यद्यपि संविधान के अनुसार शिक्षा का सम्पूर्ण विषय राज्य का विषय है परन्तु उच्च शिक्षा तथा प्राविधिक शिक्षा के राष्ट्रव्यापी विकास प्रगति तथा उनम एक सूत्रता बनाए रखने के लिए कुछ उत्तरदायित्व केन्द्र सरकार अपने ऊपर लेती है। कुछ विश्वविद्यालय केन्द्र द्वारा प्रशासित है। ये इस प्रकार है—अलीगढ़ बनारस दिल्ली तथा विश्वभारती। इन चारो विश्वविद्यालयो का सम्पूर्ण भार केन्द्र सरकार ही उठाता है। महान तथा उच्च उद्देश्यो की पूर्ति म नयी वैज्ञानिक तथा

प्राविधिक संस्थाओं का सम्बन्ध भी केन्द्रीय सरकार से है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार विश्वविद्यालयीय शिक्षा के विस्तार के लिए भी समय-समय पर राज्य सरकारों को अनुदान देती रहती है। ऊपर हम उल्लेख कर चुके हैं कि देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों को आर्थिक सहायता के रूप में 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' अनुदान देता है।

उत्तर प्रदेश में विश्वविद्यालयीय शिक्षा का प्रशासन

उत्तर प्रदेश में कुल मिलाकर नौ विश्वविद्यालय हैं—(१) अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, (२) इलाहाबाद विश्वविद्यालय (३) बनारस विश्वविद्यालय, (४) लखनऊ विश्वविद्यालय, (५) आगरा विश्वविद्यालय (६) गोरखपुर विश्वविद्यालय, (७) वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय, (८) कानपुर विश्वविद्यालय, (९) मेरठ विश्वविद्यालय। अलीगढ़ तथा बनारस विश्वविद्यालयों का जन्म पार्लियामेन्ट के एक अधिनियम द्वारा हुआ जब कि शेष का राज्यीय विधान सभा (Sub Legislature) द्वारा हुआ।

डिग्री कालेज प्रमुखतया व्यक्तिगत प्रबन्ध (Private management) द्वारा सञ्चालित होते हैं। इन कालेजों को सरकार द्वारा भी सहायता मिलती है। पाठ्यक्रम परीक्षा आदि के विषय में ये कालेज विश्वविद्यालयों द्वारा नियन्त्रित रहते हैं जिनसे वे सम्बन्धित हैं। केवल तीन डिग्री कालेज सरकार द्वारा सञ्चालित हैं जो नैनीताल, ज्ञानपुर और रामपुर में स्थित हैं। ये तीनों कालेज आगरा विश्वविद्यालय से सम्बन्धित हैं। जिन डिग्री कालेजों से इण्टरमीडिएट कक्षाएँ सम्बन्धित हैं वे इण्टरमीडिएट एक्ट में आते हैं। विधान में लिखा है कि 'The Intermediate Classes attached to Degree Colleges are however, subject to the provisions of the Intermediate Education Act, 1921 and the regulations made there under which apply to the institutions recognised by the Intermediate Board."[1]

राज्य के विश्वविद्यालयों को अनुदान देने के लिए सरकार द्वारा एक 'University Grant Committee' नियुक्त की जाती है। प्रत्येक विश्वविद्यालय का अपना 'Prospectus' होता है जिसमें, पाठ्यक्रम, परीक्षा नियम, वजीफे आदि का वर्णन रहता है। संक्षेप में विश्वविद्यालय राज्य सरकार पर दो बातों से निर्भर हैं—(क) इनका जन्म राज्यीय विधान सभा द्वारा होता है। (ख) राज्य सरकार द्वारा इन्हें अनुदान मिलता है।

शेष बातों में विश्वविद्यालय स्वतन्त्र हैं।

---

[1] *Education Code* p 40

४

शिक्षा की आधुनिक रूपरेखा तथा स्कूलों के विभिन्न स्तर

PRESENT OUTLINE OF EDUCATION & DIFFERENT GRADES OF SCHOOLS

Q Describe the different grades of schools and their place in National Education

प्रश्न—राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति के विभिन्न शिक्षालय स्तरों तथा उनके स्थान का संक्षेप में वर्णन करो।

उत्तर—भारतीय शिक्षा का संगठन प्राचीन काल तथा मध्य काल में अत्यंत सरल रूप लिए हुए था। बिना किसी बाधा के शिक्षा प्रसार का कार्य सफल रूप से चलता था। शिक्षण का स्तर इतना ऊँचा और पवित्र था कि राज्य को उसमें किसी प्रकार के नियंत्रण की आवश्यकता ज्ञात नहीं हुई। यद्यपि यह सत्य है कि उस काल में पाठशालाओं में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या वर्तमान समय की अपेक्षा बहुत कम थी परिणामस्वरूप किसी भी प्रकार के स्कूलों की स्थापना करने की आवश्यकता अनुभव नहीं हुई। समस्त देश में प्रायः एक सी पाठशालाएँ शिक्षा प्रदान करती थीं। मध्य काल में अवश्य मदरसे और मक्तब स्थापित कर दिये गये थे।

अंग्रेजों के आगमन से भारतीय शिक्षा के अन्दर परिवर्तन का आरम्भ होता है। १८५४ ई० के वुड के शिक्षा घोषणा पत्र द्वारा अंग्रेजी शिक्षा की नींव डाली गई। देश का पुरातन शिक्षा का ढाँचा धीरे धीरे करके गिरने लगा और उसकी जगह अंग्रेजी ढाँचा खड़ा हो गया। वर्तमान काल में भी थोड़े बहुत अन्तर के बाद वही पुरातन अंग्रेजी शिक्षा का संगठन प्राप्त होता है। यद्यपि १९५२ ई० में मुदालियर कमीशन ने परम्परागत चले आ रहे स्कूलों के दोषों को दूर करने का पर्याप्त प्रयत्न किया है।

नीचे हम वर्तमान काल में प्रचलित भारतीय शिक्षा की रूपरेखा पर विचार करेंगे। समस्त देश में मुख्य रूप से शिक्षा संगठन के निम्नलिखित स्तर हैं—

(१) पूर्व प्राथमिक स्तर (Pre Primary Stage)—शिक्षा संगठन में सबसे नीचे की इकाई पूर्व प्राथमिक पाठशालाएँ हैं। देश के कुछ भाग में नर्सरी स्कूलों की

स्थापना की जा चुकी है। परन्तु देश की विशालतम जनसंख्या को देखते हुए इनकी संख्या अत्यन्त अल्प है। विभिन्न प्रान्तों मे इनका संगठन व्यक्तिगत तथा ईसाई मिशनरियो द्वारा किया गया है। ईसाई मिशनरियो द्वारा संचालित स्कूलों की दशा पर्याप्त रूप से अच्छी है। इन स्कूलो मे प्रवेश की आयु सब जगह एक-सी न होकर भिन्न भिन्न है। कुछ स्कूल ७ वर्ष की आयु वाले बालकों का प्रवेश करते है तथा कुछ स्कूलों में ३ वर्ष तक के बालक लिए जाते है। इन स्कूलो मे पढ़ाई लिखाई पर कम, पर बालक के शारीरिक विकास पर अधिक ध्यान दिया जाता है। बालकों को खेल खेल में अनेक बातें बता दी जाती है। वर्तमान काल में अनेक नर्सरी स्कूल खोले जा रहे हैं, जिनको आजकल 'बाल-मन्दिर' के नाम से पुकारा जाता है। परन्तु ये सब प्रयत्न व्यक्तिगत हो रहे है। सरकार की ओर से इस क्षेत्र मे तनिक भी प्रयास नही किया गया है। परिणामस्वरूप देश में नर्सरी स्कूलों का अभाव सा बना हुआ है।

(२) प्राथमिक तथा उत्तर प्राथमिक स्तर (Primary and Post Primary Stage)—इन स्कूलो में शिक्षण-काल कुछ प्रान्तों में ६ वर्ष से लेकर १० वर्ष तक है और कुछ प्रान्तो मे ७ से ११ तक। आजकल देश में दो प्रकार के प्राथमिक स्कूल हैं—प्रथम वे प्राथमिक स्कूल जो परम्परागत चले आ रहे हैं और दूसरे बेसिक स्कूल है। अनेक राज्यो ने बुनियादी शिक्षा के अन्तर्गत परम्परागत चले आ रहे प्राथमिक पाठशालाओ के स्थान पर जूनियर बेसिक स्कूल खोलने आरम्भ कर दिए है। परन्तु यह कार्य अत्यन्त मन्द गति से हो रहा है। यद्यपि केन्द्रीय सरकार ने प्राथमिक बेसिक स्कूलों को खोलने के लिए पर्याप्त मात्रा में सहायता देना स्वीकार किया है। कुछ प्रान्तो ने इस दिशा में पर्याप्त उन्नति भी दिखाई है। इन बेसिक स्कूलों में दस्तकारी के माध्यम द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती है। बेसिक स्कूलो के लिए पाठ्य-पुस्तकें भी लिखी जा रही है।

(३) उच्चतर प्रारम्भिक स्कूल (Higher Elementary Schools or Vernacular Middle Schools)—इन स्कूलों की स्थापना केवल कुछ राज्य मे ही की गई है। समस्त विषय इन स्कूलों में मातृभाषा के माध्यम द्वारा पढाये जाते हैं, अध्ययन-काल तीन वर्ष है। उत्तर प्रारम्भिक पाठशालाओं का कोर्स समाप्त करने वाले छात्र इनमे प्रवेश लेते हैं।

(४) माध्यमिक स्तर (Secondary Schools)—माध्यमिक शिक्षा के स्तर को दो भागो मे विभाजित किया गया है—प्रथम जूनियर स्तर तथा दूसरा सीनियर स्तर। जूनियर स्तर के स्कूलों को मिडिल स्कूल के नाम से भी पुकारा जाता है। इन स्कूलों का कोर्स कहीं पर तीन वर्ष का होता है और कहीं पर चार वर्ष का।

(५) उच्चतर माध्यमिक स्तर (Higher Secondary Schools)—उच्चतर माध्यमिक स्कूलों की स्थापना हाल ही में की गई है। यह शिक्षा में नवीनतम प्रयोग है। इन विद्यालयो का संगठन इण्टरमीडिएट की कक्षाओं का प्रथम वर्ग जोडकर

किया गया है। दूसरे राज्यों में कक्षा ६, १० तथा ११ कक्षाओं को मिलाकर उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना की गई है। इस प्रकार के विद्यालयों की अवधि कहीं पर तीन वर्ष है और कहीं पर चार वर्ष।

(६) उच्चतर शिक्षा (Higher Education)—विश्वविद्यालयीय स्तर पर डिग्री कोर्स मुख्यतया चार वर्ष का है जिनमें दो वर्ष इण्टरमीडिएट कक्षाओं के लिए है और दो वर्ष डिग्री कोर्स के लिए। परन्तु जहाँ पर उच्चतर माध्यमिक स्कूलों की स्थापना हो गई है वहाँ के विश्वविद्यालयों का डिग्री कोर्स तीन वर्ष का हो गया है। दिल्ली विश्वविद्यालय तथा अलीगढ़ विश्वविद्यालय में डिग्री कोर्स केवल तीन वर्ष का है। इण्टरमीडिएट कक्षाओं को पूर्णतया समाप्त कर दिया गया है। मैसूर तथा ट्रावनकोर में भी इस योजना को कार्यान्वित किया गया है। उत्तर प्रदेश में आर्थिक कठिनाइयों के कारण अभी इस योजना को लागू नहीं किया गया है।

(७) व्यावसायिक कालेज (Professional Colleges)—देश के अन्दर विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक कालिजों की स्थापना की जा चुकी है। स्वतन्त्रता के पश्चात् सरकार का इस क्षेत्र में विशेष ध्यान गया है। अनेकों इंजीनियरिंग टक्नीकल (Technical) पशु विज्ञान (Veterinary), कृषि तथा औषध विज्ञान आदि की शिक्षा प्रदान करने के लिए कालेजों की स्थापना की जा चुकी है। इन कालिजों में प्रवेश प्राप्त करने के लिए कम से कम इण्टरमीडिएट तक की शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक है।

(८) बहुमुखी विद्यालय (Multi purpose Schools)—अनेक राज्यों में बहुमुखी बहुधन्धी स्कूलों की स्थापना की जा चुकी है। इनमें छात्र अपनी रुचि के अनुसार विषय लेते हैं तथा छात्र जीवन में ही व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं। मध्य प्रदेश में इस प्रकार के स्कूल पर्याप्त मात्रा में खोले जा चुके हैं। उत्तर प्रदेश में इनकी प्रगति अत्यन्त मन्द है।

(९) अशक्तों के लिए स्कूल (Schools for Handicapped)—देश के स्वतन्त्र होने से पूर्व अशक्तों की शिक्षा के लिए किसी भी प्रकार की व्यवस्था नहीं थी। यद्यपि कलकत्ता, बिहार और बम्बई में अंग्रेजी काल में भी कुछ स्कूल अन्धों के लिए खोले गये थे परन्तु वे बहुत थोड़े थे। हाल में ही भारत सरकार ने देहरादून में अन्धों के लिए एक स्कूल खोला है। दिल्ली में भी एक स्कूल मूक बधिरों के लिए खोला गया है।

(१०) समाज शिक्षा—हमारे देश में प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के लिए अनेक रात्रि पाठशालाएँ तथा अनेक समाज शिक्षा कैम्प खोले जा रहे हैं। दिल्ली के आस पास के गाँव में समाज शिक्षा के प्रसार का कार्य तीव्रता से हो रहा है। देश के अन्य भागों में सामुदायिक योजनाएँ स्थापित की जा रही हैं। दिल्ली में समाज शिक्षा पर खोज कार्य करने के लिए 'National Fundamental Education Centre' की स्थापना की गई है।

५

उत्तर प्रदेश का शिक्षा-सगठन

EDUCATIONAL SYSTEM OF UTTAR PRADESH

Q Discuss critically the main features of the present organization of secondary education in U P What modification would you suggest ? Give reasons (A U 1953)

प्रश्न—उत्तर प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा के वतमान गठन की मुख्य विशेषताओ का आलोचनात्मक वणन कीजिए। आप उसके सुधार के लिए क्या-क्या सुझाव प्रस्तुत करते हैं और क्यो ?

Or

How is the educational system of Uttar Pradesh organised in urban and rural areas ? In what ways it can be improved ?

(A U 1951)

नगर तथा ग्रामीण क्षेत्रो में उत्तर प्रदेश की शिक्षा पद्धति का सगठन किस प्रकार का है ? इसको किस प्रकार सुधारा जा सकता है ?

उत्तर—उत्तर प्रदेश देश के अ य प्रदेशो की अपेक्षा शिक्षा के क्षेत्र म पर्याप्त बढा हुआ है। यहा की सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र म पर्याप्त रूप से प्रगति की है। नीचे हम इस प्रदश के शिक्षा सगठन के विभिन्न स्तरो का उल्लेख करेंगे।

(१) पूर्व-प्राथमिक या शिशु शिक्षा (Nursery Education)—हमारे देश म पूव प्राथमिक शिक्षा का अत्यधिक अभाव है। शिशु शिक्षा के लिए सब प्रथम 'आचाय नरेन्द्रदेव समिति' ने सुझाव दिया था। परन्तु सरकार ने इस याजना को उपेक्षा की दृष्टि से देखा। शिशु शिक्षा के क्षेत्र म उत्तर प्रदेश की सरकार ने अवहेलना की और उसका उत्तरदायित्व गैर सरकारी सस्थाओ पर ही रखा। प्रदेश के कुछ समाज सेवको ने इस दिशा म प्रयत्न किये परिणामस्वरूप नगरो म शिशुओ की परीक्षा के लिए शिशु-मन्दिर, बाल निकेतन, मॉण्टमरी स्कूल, किण्डरगाटन स्कूल स्थापित किय गए। इन विद्यालयों की अध्यापिकाओ को प्रशिक्षित करने के लिए

सरकार ने १९५१ म इलाहाबाद म नगरी प्रशिक्षण महाविद्यालय' स्थापित किया। इस विद्यालय म दो वर्ष का पाठयक्रम रखा गया। उत्तर प्रदेश की सरकार ने निश्चय किया था कि दूसरी पचवर्षीय योजना म शिक्षा पर किये जाने वाले कुल व्यय का ८९ प्रतिशत पूर्व प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किया जायगा। जैसा कि हम अध्याय २ म उल्लेख कर चुके है कि इन विद्यालयो के पाठयक्रम म खेल को प्रमुख स्थान दिया जाता है। बालक को शिक्षा प्रमुख रूप से खेलो तथा क्रियाओ के माध्यम म दी जाती है।

(२) प्राथमिक तथा बेसिक शिक्षा—अंग्रेज सरकार ने प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के प्रति अत्यन्त उदासीनता स काम लिया। परन्तु जब १९३७ म उत्तर प्रदेश म काग्रेस मन्त्रि मण्डल का निर्माण हुआ तो मन्त्रियो ने शिक्षा प्रसार के लिए नूतन प्रयास करने का निश्चय किया। परन्तु १९३९ म मतभेद हो जाने के कारण काग्रेस मन्त्रि मण्डल ने पद-त्याग कर दिया। परिणामस्वरूप प्राथमिक शिक्षा का विकास रुका रहा। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् उत्तर प्रदेश की सरकार ने प्राथमिक स्कूलो के पाठयक्रम म बेसिक शिक्षा को स्थान दिया। बोर्डों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए राज्य सरकार ने सहायता ७५ प्रतिशत कर दी।

दूसरी योजना म उत्तर प्रदेश की सरकार प्राथमिक शिक्षा पर कुल व्यय का २६ ६४% व्यय स्वय कर रही है। सरकार की ओर से अनिवार्य शिक्षा का भी प्रबन्ध किया जा रहा है। १९४६ म केवल २४ नगरपालिकाएँ अनिवार्य शिक्षा दे रही थी। १९५४ तक ८६ नगरपालिकाएँ अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने लगी। ऐसी आशा की जाती थी कि दूसरी योजना के अन्त तक ११० नगरपालिकाओ म अनिवार्य शिक्षा लागू हो जायगी। १९५९ तक २५० नये बेसिक स्कूल खोले जा चुके है।

प्राथमिक विद्यालयो म बेसिक शिक्षा का पाठयक्रम ५ वर्ष का कर दिया गया है। अभी तक पाठयक्रम पुराने ढग का था। उसम केवल पुस्तकीय ज्ञान तथा बौद्धिकता को ही स्थान दिया जाता था। अत पाठयक्रम म ही कुछ परिवर्तन किये गये। वर्तमान पाठयक्रम म क्रियात्मक विषयो पर अधिक बल दिया जाता है। प्राथमिक विद्यालयो के पाठयक्रम म निम्न विषयों को स्थान दिया गया है—(१) हिन्दी, (२) गणित, (३) इतिहास (४) भूगोल (५) नागरिक शास्त्र (६) कला या ड्राइङ्ग (७) विज्ञान और कृषि (८) हस्त कला या सूत कातना (९) स्वास्थ्य रक्षा और व्यायाम। इसके अतिरिक्त बालक तथा बालिकाओ के पाठयक्रम म भी अन्तर किया गया है। बालको को कृषि शिक्षा प्रदान की जाती है तो लडकियो के लिए सीने पिरोने की शिक्षा की विशेष व्यवस्था की गई है।

(३) जूनियर माध्यमिक शिक्षा—स्वतन्त्रता प्राप्त होने तक हमारे प्रदेश म दो प्रकार के मिडिल स्कूल थे—

१—वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल

२—ऐंग्लो वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल

प्रथम प्रकार के स्कूल ग्रामीण क्षेत्रो म स्थित थे। इन स्कूलो म अग्रेजी की शिक्षा नही दी जाती थी। १९४८ मे प्रदेश की सरकार ने माध्यमिक शिक्षा का पुनगठन करके ऐंग्लो वर्नाक्यूलर तथा वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूलो के भेदो को समाप्त कर दिया है। अब समस्त मिडिल स्कूलो को जूनियर हाई स्कूल कहा जाता है। इन स्कूलो म तीन वष का पाठयक्रम रखा गया है और इनमे से ६ से ८ तक कक्षाएँ होती है। १९५४ म उत्तर प्रदेश की सरकार ने जूनियर हाई स्कूल के लिए एक नवीन योजना का निर्माण किया। इस योजना को 'शिक्षा पुनर्व्यवस्था-योजना' के नाम से पुकारा जाता है।

शिक्षा पुनर्व्यवस्था योजना (Reorientation of Education Scheme)—इस योजना का प्रमुख उद्देश्य परम्परागत चले आ रहे शिक्षा के दोषो का दूर करना था। योजना के निर्माताओ ने अनुभव किया कि वतमान शिक्षा प्रणाली पुस्तकीय ज्ञान पर अधिक बल देने के कारण बालको के लिए पूणतया व्यर्थ सिद्ध हो रही है। विद्यालयो म प्रदान की जाने वाली शिक्षा का बालक के व्यावहारिक जीवन म कोई उपयोग नही है। ऐसी दशा मे यदि कृषि-उद्योग या किसी व्यवसाय को शिक्षा म स्थान दिया जाय तो शिक्षा वास्तविक जीवन के निकट आने के साथ उपयोगी भी सिद्ध हो सकेगी। दूसरे प्राथमिक शिक्षा म बेसिक शिक्षा का स्थान दे दिया गया है। परिणामस्वरूप प्राथमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा के मध्य साम्य स्थापित करने की आवश्यकता हो गई है। उपयु क्त दोषो के परिहार के लिए ही प्रदेश की सरकार ने जुलाई १९५४ म शिक्षा-पुनर्व्यवस्था की योजना कार्यान्वित की। उत्तर प्रदेश का प्रमुख व्यवसाय कृषि है। अत योजना म कृषि को बालक की शिक्षा का केन्द्र स्वीकार किया गया। प्रारम्भ मे यह योजना केवल जूनियर हाई स्कूलो म लागू की गई।

योजना के उद्देश्य

(१) कृषि, किसी उद्योग तथा हस्त कार्यो को शिक्षा म स्थान देकर उसे *वास्तविक, व्यावहारिक तथा अपने मे पूण बनाना।*

(२) बालको का सर्वाङ्गीण विकास करना।

(३) बालको को स्वावलम्बी तथा समाज सेवी बनाना।

(४) छात्रो को पुस्तकीय ज्ञान देने के स्थान पर प्रयोगात्मक ज्ञान देना।

(५) विद्यालय को ग्राम विकास म योग प्रदान करने वाली एक महत्त्वपूण इकाई बनाना।

(६) स्कूल फार्मो के माध्यम से ग्रामीण कृषि की उन्नति करना।

(७) युवक दलो के माध्यम से छात्रो को नेतृत्व का प्रशिक्षण देना।

इस योजना को १९५४ म कार्यान्वित किया गया। ३,००० जूनियर तथा हायर सेकण्डरी स्कूलो मे सचालित की जा चुकी है। २५,००० स्कूलो को फाम के लिए ५ से १० एकड तक भूमि प्रदान की जा चुकी है। जिन विद्यालयो को भूमि

प्रदान की गई है वहां स्थानीय हस्तकला में प्रशिक्षण प्रदान किया जा रहा है। १९५५-५६ के मध्य में ६०० विद्यालयों को कृषि के लिए बैल भी प्रदान किये गये हैं। जूनियर हाई स्कूलों में कृषि और हस्त कला को अनिवार्य विषय बना दिया गया है। दूसरी पंचवर्षीय योजना में जूनियर हाई स्कूलों पर कुल व्यय का ११-२० प्रतिशत धन व्यय किया जायगा। इस योजना के संचालन के लिए राज्य शिक्षा परिषद् की स्थापना की जा चुकी है। इस परिषद् के अधीन प्रत्येक जिले में एक जिला नियोजन समिति कार्य करती है। जिलाधीश इसका अध्यक्ष होता है। इसके सदस्य, जिले की विधान सभा के सदस्य, जिला नियोजन अधिकारी, जिला विद्यालय निरीक्षक आदि होते हैं। जिले के समस्त स्कूल 'जिला नियोजन समिति' के नियंत्रण में काम करते हैं।

(४) **माध्यमिक शिक्षा**—माध्यमिक शिक्षा की स्वतन्त्रता से पूर्व अत्यन्त शोचनीय दशा थी। अंग्रेज अधिकारी माध्यमिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य ऐसे कर्मचारी उत्पन्न करना मानते थे कि वे क्लर्की अत्यन्त निपुणता के साथ कर सकें। आज भी माध्यमिक शिक्षा उपयुक्त दोष से पीड़ित है। शिक्षा को केवल नौकरी प्राप्त करने का साधन मात्र समझा जाता है। वास्तव में माध्यमिक शिक्षा पूर्ण रूप से बौद्धिक तथा साहित्यिक है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् उत्तर प्रदेश की सरकार ने माध्यमिक शिक्षा का पुनः संगठित करने का निश्चय किया। अतः जुलाई १९४८ में उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना को कार्यान्वित किया गया।

उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना—इस योजना में 'प्रथम आचार्य नरेन्द्रदेव समिति' के अधिकांश सुझावों को स्वीकार करके प्रदेश के समस्त माध्यमिक विद्यालयों के लिए लागू कर दिया गया। योजना की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं—

(१) माध्यमिक शिक्षा को दो भागों में बांटा गया—

(क) जूनियर—इसमें जूनियर हाई स्कूल होंगे। इनमें कक्षा ६, ७ और ८ होंगी (इसके विषय में पहले विस्तार से बता चुके हैं)।

(ख) हायर या उच्च—इसके अन्तर्गत हायर सेकण्डरी स्कूल आते हैं। इनमें कक्षा ९, १०, ११ और १२ होंगी।

(२) योजना ने पाठ्यक्रम के तत्कालीन दोषों को दूर करने के लिए सुझाव प्रस्तुत किये। छात्रों की विभिन्न रुचियों और योग्यताओं को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम को निम्न वर्गों में विभाजित किया गया—

(क) साहित्यिक—इस वर्ग में केवल साहित्यिक विषय रखे गए।

(ख) वैज्ञानिक—इसमें विज्ञान को अनिवार्य विषय रखा गया।

(ग) व्यावसायिक—इसमें वाणिज्य सम्बन्धी विषय रखे गये।

(घ) रचनात्मक—इस वर्ग में हस्तकला से सम्बन्धित विषय रखे गये जैसे पुस्तक-कला तथा काष्ठ-कला।

(ङ) कलात्मक—चित्रकला, संगीत आदि विषयों को इसमें सम्मिलित किया या है।

(३) वर्तमान परम्परागत हाईस्कूलों तथा इण्टरमीडिएट कॉलेजों को उच्चतर-ाध्यमिक विद्यालयों में बदल दिया जायगा। इस प्रकार के विद्यालयों में कक्षा ३, ४ था ५ नहीं होंगी। जूनियर हाईस्कूल की कक्षाओं को इनमें रखा जा सकेगा।

(४) प्रमुखतया माध्यमिक विद्यालयों का पाठ्यक्रम बहुमुखी (Multi Sateral) खा जायेगा। कुछ विद्यालय एकमुखी तथा द्विमुखी भी होंगे।

(५) संक्रान्ति काल (परिवर्तन काल) में माध्यमिक शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर तीन सार्वजनिक परीक्षाएँ ली जायेंगी—जूनियर हाईस्कूल परीक्षा, हाईस्कूल परीक्षा तथा इण्टरमीडिएट परीक्षा।

(६) जो छात्र साहित्यिक और वैज्ञानिक वर्ग लेंगे उनको अंग्रेजी का अध्ययन अवश्य करना होगा।

उपर्युक्त योजना का समस्त उत्तर प्रदेश में भव्य स्वागत किया गया। समस्त प्रदेश के हाईस्कूलों को हायर सेकण्डरी के नाम से पुकारा जाने लगा। कक्षा ३, ४ और ५ को उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों से हटा दिया गया। विद्यालयों में विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमों के अनुसार शिक्षा प्रदान की जाने लगी। १९४६-४७ में सेकण्डरी स्कूलों की संख्या ४०६ तक थी, जबकि १९५५-५६ में यह संख्या १,४७४ तक पहुँच गई।

परन्तु इस योजना का प्रमुख दोष यह रहा कि अधिकांश छात्रों ने साहित्यिक वर्ग को ही चुना। पाठ्यक्रम में विविधता अवश्य दी गई परन्तु छात्रों को सलाह देने के लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई। दूसरे विषयों को अनिवार्य, सहायक तथा गौण में विभाजित करके इसको अधिक जटिल बना दिया गया था। ऐसी दशा में इस योजना पर विचार-विमर्श करने के लिए एक नवीन समिति नियुक्त करने का निश्चय किया।

द्वितीय आचार्य नरेन्द्रदेव समिति (१९५२-५३) १९५२ में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में एक माध्यमिक शिक्षा पुनर्संगठन समिति (Secondary Education Reorganisation Committee) की नियुक्ति की गई। इसको 'आचार्य नरेन्द्रदेव समिति' के नाम से भी पुकारा जाता है। १९४८ में कार्यान्वित की गई 'उच्चतर-माध्यमिक शिक्षा-योजना' का इसमें निरीक्षण किया गया कि कहाँ तक यह सफल हुई है। समिति ने इस बात की भी जाँच की कि व्यावसायिक एवं औद्योगिक विषय चुनने वाले छात्रों की जीविकोपार्जन की समस्या का हल हुआ या नहीं। इस प्रकार समिति ने १४ मास के कठोर परिश्रम के पश्चात् अपनी रिपोर्ट मई १९५३ में सरकार के समक्ष प्रस्तुत की।

समिति के सुझाव

(१) संस्कृत के अध्ययन को हिन्दी के साथ अनिवार्य कर दिया जाय। हिन्दी

के तीन प्रश्न पत्र हों जिनमें तीसरे प्रश्न पत्र में संस्कृत का पाठ्यक्रम रखा जाय। कक्षा ९ और १० में गणित को भी अनिवार्य बना दिया जाय। परन्तु ११ तथा १२ कक्षा में उसे वैकल्पिक रखा जा सकता है। बालिकाओं के लिए गृह विज्ञान को अनिवार्य विषय बना दिया।

(२) शिक्षा के सभी स्तरों पर पाठ्यक्रम में समन्वय स्थापित करने की आवश्यकता है, अतः प्राथमिक, बेसिक और जूनियर हाईस्कूलों के पाठ्यक्रमों में सुधार किया जाय।

(३) टैकनिकल शिक्षा के साथ साथ सामान्य-शिक्षा का भी आयोजन किया जाय। प्रदेश में अधिक से अधिक टैकनिकल संस्थाओं का निर्माण किया जाय। प्रत्येक जिले में कम से कम एक पॉली टक्निक (Poly technic) विद्यालय अवश्य हो।

(४) छात्रों को पथ प्रदर्शित करने के लिए प्रत्येक जिले में एक मनोवैज्ञानिक केन्द्र की स्थापना की जाय। इलाहाबाद के सरकारी मनोविज्ञान शिक्षा केन्द्र में सुधार किया जाय।

(५) विद्यालय वर्ष में अधिक से अधिक २३५ और कम से कम २०० दिन खुलना चाहिए। ग्रीष्म या शरद् का अवकाश ६ या ७ सप्ताह से अधिक नहीं होना चाहिए। वर्ष में केवल ३१ दिन की छुट्टियां प्रदान की जाय।

(६) नैतिक शिक्षा को विद्यालय में स्थान दिया जाय। विद्यालय का कार्य १० मिनट की प्रार्थना से आरम्भ किया जाय।

(७) विद्यालयों की प्रबन्ध समितियों में विशेष सुधार किया जाय। जो प्रबन्ध-समितियां ठीक काम नहीं करतीं, उन्हें भंग कर दिया जाय। समितियों के सदस्य अधिक से अधिक १२ हों।

(८) अध्यापकों की नियुक्ति के ४ माह पश्चात् (Agreement form) भरवा लिया जाय। अध्यापक तथा प्रबन्ध समितियों के झगड़ों का निर्णय करने के लिए 'पंच फ़ैसला-बोर्ड' (Arbitration Board) की स्थापना की जाय।

(९) पाठ्य पुस्तकों की आलोचना करते हुए समिति ने सुझाव दिया कि कक्षा ९ से १२ तक विशेष पाठ्य पुस्तकें स्वीकार न की जायें। प्रधान अध्यापकों को पुस्तक चुनने का अधिकार दे दिया जाय।

(५) उच्च शिक्षा—वर्तमान काल में उत्तर प्रदेश में ११ विश्वविद्यालय हैं तथा अनेक डिग्री कॉलेज हैं। गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार तथा वनस्थली विद्यापीठ चित्रपुरी को भी विश्वविद्यालय स्तर का दर्जा दिया गया है। इन कालेज तथा विश्वविद्यालयों में आर्ट्स, कानून, वाणिज्य और कृषि की शिक्षा का उचित प्रबन्ध है। रुड़की तथा वाराणसी विश्वविद्यालय पर उत्तर प्रदेश की सरकार का नियन्त्रण है। बनारस तथा अलीगढ़ विश्वविद्यालय को केन्द्र ने अपने नियन्त्रण में ले रखा है। शेष विश्वविद्यालयों को राजकीय सहायता प्राप्त होती है। वर्तमान युग में विश्वविद्यालयों

का वातावरण अत्यन्त दूषित होता जा रहा है। अलीगढ़ विश्वविद्यालय की जांच की गई जिसमें अनेक दोष पकड़े गये। १७ दिसम्बर, १९५१ को इलाहाबाद विश्वविद्यालय की जांच की गई। लखनऊ विश्वविद्यालय के विधान में भी संशोधन किए गए हैं।

व्यावसायिक तथा प्राविधिक शिक्षा की भी उत्तर प्रदेश में अच्छी व्यवस्था की गई है। पशु चिकित्सा की शिक्षा मथुरा में राज्य द्वारा संचालित पशु चिकित्सा-विज्ञान-संस्था में दी जाती है। सामान्य चिकित्सा शिक्षा के लिए लखनऊ, कानपुर तथा आगरा में मेडिकल कालेज हैं। वन विज्ञान की शिक्षा देहरादून में दी जा रही है। टेक्नोलोजी की शिक्षा कानपुर के हारकोर्ट बटलर टेक्नोलोजिकल इन्स्टीट्यूट में प्रदान की जाती है। रुड़की तथा बनारस में इंजीनियरिंग की शिक्षा का प्रबन्ध है।

शिक्षक प्रशिक्षण

प्राथमिक तथा जूनियर हाई स्कूलों के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए प्रत्येक जिले में एक नार्मल स्कूल है। नार्मल स्कूलों में प्रशिक्षण हाई स्कूल तथा इण्टर पास छात्रों को दिया जाता है। माध्यमिक विद्यालय के अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिए राज्य में अनेक ट्रेनिंग कालेज हैं। इन कालेजों में ग्रेजुएट और पोस्ट ग्रेजुएट छात्र प्रवेश लेते हैं। १९४६ तक उत्तर प्रदेश में केवल ४ ट्रेनिंग कालेज थे, १९५१-५२ में ३१ ट्रेनिंग कालेज हो गये। वर्तमान समय में राज्य के प्राय: समस्त विश्वविद्यालयों में भी बी० टी० या बी० एड० की शिक्षा की व्यवस्था है। राज्य में कुछ विशेष शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रशिक्षण विद्यालय स्थापित हो चुके हैं।

(१) रचनात्मक और बेसिक ट्रेनिंग कालेज, लखनऊ
(२) नर्सरी ट्रेनिंग कालेज, इलाहाबाद
(३) शारीरिक प्रशिक्षण कालेज, लखनऊ

(६) स्त्री शिक्षा—स्त्री शिक्षा का विकास हमारे राज्य में तीव्र गति से हो रहा है। दिन प्रति दिन लड़कियों के लिए विद्यालय खुलते जा रहे हैं। वर्तमान समय में लड़कियों के लिए लगभग २०० हाई स्कूल, १०० इण्टर कालेज तथा ८ डिग्री कालेज हैं। अध्यापिकाओं के प्रशिक्षण के लिए अनेक प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना हो चुकी है।

६

प्रधान अध्यापक

THE PRINCIPAL OF SCHOOL

Q Discuss the place and importance of the head of an educational institution in school organization As headmaster or headmistress of school, what steps would you take to ensure proper organization of the school activities ? Give concrete suggestions (A U, B T 1959)

प्रश्न—विद्यालय सगठन में एक प्रधान अध्यापक के स्थान तथा महत्व की विवेचना कीजिए। आप एक प्रधान अध्यापक या प्रधान अध्यापिका के रूप में स्कूल की क्रियाओं के समुचित सगठन के लिए क्या करेंगे ? सृजनात्मक सुझाव दश।

Or

What are the duties and responsibilities of the head of an institution ? How can he get the full co operation from the staff and the students ? (L T 1950)

एक प्रधान अध्यापक के क्या क्या उत्तरदायित्व तथा कर्तव्य होते है ? वह किस प्रकार अपने अध्यापक मण्डल तथा छात्रा से सहयोग प्राप्त कर सकता है ?

Or

In what way should the head of a school secure the co operation of his staff in promotion of the moral tone of his school (A U, B T 1950)

विद्यालय के नतिक स्तर को बनाये रखने के लिए प्रधान अध्यापक को अध्यापक मण्डल तथा छात्रा से किस प्रकार सहयोग प्राप्त करना चाहिए ?

Or

What is the importance of the headmaster in the school organization ? (Allahabad 1952)

विद्यालय सगठन में एक प्रधान अध्यापक का क्या महत्व है ?

Or

What advice will you bestow an inexperienced headmaster preparing to take charge of a difficult high school? (P U 1955)

एक असाधारण हाई स्कूल का उत्तरदायित्व लेने के लिए एक अनुभवहीन प्रधानाध्यापक को तैयारी करने के लिए आप क्या सुझाव देंगे ?

उत्तर—

विद्यालय-प्रशासन में प्रधान अध्यापक का महत्व

(१) विद्यालय की प्रधान शक्ति—प्रधान अध्यापक विद्यालय की प्रधान शक्ति है। अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से वह पाठशाला के स्तर को ऊँचा करता है। वह समस्त अध्यापक मण्डल के लिए प्रेरणा का स्रोत है। वे उससे प्रेरणा ग्रहण करते हैं तथा उसकी आज्ञा को मानते हैं। विद्यालय की समस्त योजनाओं का निर्माण भी उसी के द्वारा किया जाता है। इस विषय में रायबर्न लिखते हैं 'The headmaster holds a key position in a school just as a captain holds a key position on a ship." वे आगे लिखते हैं, 'प्रधान अध्यापक पाठशाला के विभिन्न अंगों को एकीकरण के सूत्र में बाँधकर रखने वाला वह साधन है जो संस्था भर में सन्तुलन बनाये रखता है और साथ ही इस बात की चेष्टा करता है कि उसका शान्तिपूर्वक सर्वांगीण विकास होता रहे। वह पाठशाला की गति का निर्धारक है और वही उन परम्पराओं को जो समय के साथ साथ विकसित होती रहती हैं, एक निश्चित रूप देने वाली मुख्य शक्ति है।"

(२) विद्यालय का केन्द्र बिन्दु—ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री के विषय में कहा जाता है कि 'He is solar orbit round which all the planets move' विद्यालय प्रशासन में प्रधान अध्यापक की भी यही दशा है। वह विद्यालय का केन्द्र-बिन्दु है जिसके चारों ओर विद्यालय की समस्त क्रियाएँ चक्कर लगाती हैं। अध्यापक तथा अन्य कर्मचारीगण उसके आज्ञा पर ही कार्य करते हैं।

(३) विद्यालय की प्रगति का आधार—किसी भी विद्यालय की प्रगति तथा अवनति उसके प्रधान अध्यापक के व्यक्तित्व पर निर्भर है। यदि प्रधान अध्यापक प्रभावशाली तथा उच्च चरित्र का होगा तो उसका प्रभाव विद्यालय के समस्त वातावरण पर पड़ेगा। अध्यापक मण्डल तथा छात्रगण सब उससे प्रेरणा लेकर कार्य करेंगे। इसके विपरीत यदि प्रधान अध्यापक अयोग्य तथा अपने कार्य के प्रति उदासीन होगा तो उसका प्रभाव विद्यालय के लिए घातक होगा। दूसरे शब्दों में प्रधान अध्यापक के व्यक्तित्व के ऊपर ही किसी विद्यालय का स्तर निर्भर करता है, जैसा कि प्रो० रेन कहते हैं—Schools are good or bad, in a healthy or unhealthy, mental, moral and physical condition, flourishing or perishing as the headmaster is capable, energetic and of high

or the reverse Schools rise to fame or sink to obscurity as greater or lesser headmasters have charge of them The character of school reflects and proclaims the professional character of the headmaster He is the seal and his school is the wax and few men have higher duties and responsibilities than the headmaster "[1]

(४) **विद्यालय और समाज के मध्य की कड़ी**—प्रधान अध्यापक का सम्बन्ध केवल विद्यालय और छात्रों से ही नहीं रहता, वरन् वह समाज से भी सम्बन्धित है। दूसरे शब्दों में प्रधान अध्यापक समाज और विद्यालय के बीच की एक कड़ी है। उसका जितना सम्बन्ध विद्यालय से है उतना ही समाज से है। विद्यालय में वह इस प्रकार की क्रियाओं का संगठन करता है कि जिससे समाज के सदस्य भी विद्यालय की गति विधियों से परिचित हो सकें। उसे सदा इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि विद्यालय समाज का लघु रूप है। इस प्रकार उसका कार्य क्षेत्र विद्यालय के दफ्तर तक सीमित न रहकर सम्पूर्ण समाज से रहता है।

वास्तव में प्रधान अध्यापक विद्यालय में अपना विशेष स्थान रखता है। उसके व्यक्तित्व का विद्यालय के वातावरण पर विशेष प्रभाव पड़ता है। वह अध्यापक तथा विद्यालयों को एक गति तथा प्रेरणा देने वाली शक्ति है। प्रो० रेन ने ठीक ही कहा कि 'What the main spring is to the watch, the flywheel to the machine or the engine to the steamship the headmaster is to the school '

प्रधान अध्यापक के गुण

प्रधान अध्यापक का पद इतने महत्त्व का है कि उस पर प्रत्येक सामान्य गुणों वाला व्यक्ति नहीं नियुक्त किया जा सकता। इस पद के लिए विशेष प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति की नियुक्ति अनिवार्य है। वास्तव में प्रधान अध्यापक के पद पर वही व्यक्ति नियुक्त किया जाना चाहिए जिसकी मानसिक प्रतिभा एकांगी न होकर बहुमुखी हो। वह केवल तानाशाह होकर आज्ञा देना ही नहीं जानता हो, वरन् उसके अन्दर सहानुभूति सहनशीलता दूरदर्शिता आदि गुणों का भी समावेश हो साथ ही उसके लिए यह आवश्यक है कि वह उत्तम चरित्र वाला व्यक्ति हो। वह अपने व्यवसाय के अन्दर श्रद्धा रखता हो। विद्यालय के उत्थान के लिए उसके मन के अन्दर उत्साह हो। नीचे हम प्रधान अध्यापक के गुणों का संक्षेप में वर्णन करेंगे—

(१) **नेतृत्व की भावना**—प्रधान अध्यापक के अन्दर नेतृत्व की भावना का होना परम आवश्यक है। वह सम्पूर्ण पाठशाला का नेता होता है, उसके आदेश के अनुसार ही समस्त कार्य होते हैं। अध्यापक मण्डल को हर प्रकार का आदेश देना

---

[1] Wren, P C

पड़ना है तो दूसरी ओर उसे समस्त छात्रगणो को अपने नियन्त्रण मे रखना पड़ता है। साथ ही उसके लिए शिक्षा के मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भी प्रयत्न करना आवश्यक हो जाता है। इस कारण एक प्रधान अध्यापक के लिए आवश्यक है कि उसम नतृत्व की इतनी योग्यता हो कि वह छात्रो तथा अध्यापको को शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति के लिए सलग्न कर सके।[1]

(२) **ज्ञान के प्रति उत्सुकता**—प्रधान अध्यापक को केवल विद्यालय का नतृत्व ही नहीं करना है, वरन् उसे अपने अन्दर की ज्ञान पिपासा को भी जाग्रत रखना है। उसके लिए यह आवश्यक है कि वह ससार म हो रहे शिक्षा के नूतन स नूतन प्रयोगो का ज्ञान रख। उसे शिक्षा सम्बन्धी आन्दोलन को चलाने वाली संस्थाओ म सम्पर्क बनाये रखना चाहिए। शिक्षा-मनोविज्ञान की पूर्ण जानकारी उसके लिए आवश्यक है। उसका अपना निज का अलग से एक पुस्तकालय होना चाहिए, जिसमे विभिन्न विषयो की पुस्तकें तथा पत्र पत्रिकाओ का समावेश हो। ज्ञान की वृद्धि करने वाली पत्रिकाओ को विद्यालय के लिए मँगाना आवश्यक है।

प्रधान अध्यापक को योग्य तथा शिक्षा विज्ञान के वक्ताओ की खोज म रहना चाहिए, जिससे समय समय पर अध्यापक मण्डल और छात्रा के सम्मुख भाषण का आयोजन भी कराया जा सके। उसे अपने अध्यापक-मण्डल के साथ भी कभी-कभी साहित्यिक तथा शिक्षा सम्बन्धी बातचीत म भाग लेना चाहिए।

(३) **सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार**—प्रधान अध्यापक को अपने अध्यापक तथा छात्रो के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार का पालन करना चाहिए। उसे अध्यापको को अपना सहयोगी मानकर चलना चाहिए न कि सेवक। यदि किसी अध्यापक से भूल हो जाती है तो सुधारने के लिए उचित सलाह देकर आत्मीयता का भाव दिखाना

---

[1] S E Bray अपनी पुस्तक *School Organization* में एक प्रधान अध्यापक के गुणो का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि प्रधान अध्यापक के अन्दर निम्न गुणो का होना आवश्यक है

(1) Lofty sense of duty
(2) Broad sympathy
(3) Sound judgment
(4) Power of insight into character
(5) Love of his work
(6) Originality of initiative
(7) Self control
(8) Organizing power
(9) Firmness
(10) Persuasive powers of speech
(11) General purity of character and
(12) Ability to breathe the spirit of it into the school

उचित है। अच्छे काय के लिए उन्हें सदा प्रोत्साहित करते रहना चाहिए। समय समय पर उस अध्यापका को व्यक्तिगत कठिनाइयों को दूर करने के सुझाव देना भी अच्छा रहेगा।[1] छात्रों के साथ कठोर व्यवहार के बजाय पुत्रवत् व्यवहार कहीं लाभदायक सिद्ध होगा।

(४) सहयोग की भावना—प्रधान अध्यापक को अध्यापक मण्डल की सहायता से काय करना पडता है, इस कारण उसे सहयोगपूर्ण भावना को साथ लेकर चलना चाहिए। वास्तव में यदि प्रधान अध्यापक छात्रों और अध्यापकों के सहयोग से काय करता है तो पाठशाला का समस्त प्रबन्ध स्वतः बिना किसी बाधा के चलता रहेगा। प्रत्येक नवीन योजना को पाठशाला में लागू करने से पहले उसके लिए आवश्यक है कि वह अपने सहयोगी अध्यापकों से उचित सलाह ले। परन्तु इस सहयोग के अन्दर वास्तविकता का समावेश करना आवश्यक है। दिखावट की भावना से काम सुचारु रूप से नहीं चल सकता।

(५) प्रजातन्त्रात्मक भाव—असहयोग की भावना से मिलता जुलता प्रमुख गुण जो प्रधान अध्यापक के अन्दर होना परम आवश्यक है, वह है जनतन्त्रीय भावना। विद्यालय संगठन में जहाँ तक हो सके, जनतन्त्रीय भावनाओं को अपनाया जाय। प्रधान अध्यापक तानाशाह के समान केवल आदेश ही नहीं देते हैं वरन् उन्हें स्वशासन के समस्त साधनों का प्रयोग करने का प्रयत्न करना चाहिए। छात्र-परिषद् का आयोजन करना, अनुशासन के विषयों में छात्रों के ऊपर काय भार सौंपना आदि पाठशाला के स्तर को उठाने में सहायक होंगे। छात्र परिषद् के सभापति तथा मन्त्री आदि को भी प्रजातन्त्र की प्रणाली द्वारा ही चुना जाय। प्रधान अध्यापक को इस विषय में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप करना शोभनीय नहीं है। उसका कर्तव्य है कि उसे छात्रों को केवल पुस्तक रटाकर परीक्षाएँ ही पास नहीं करानी हैं वरन् उनके व्यक्तित्व का विकास कर उनमें सामाजिक गुणों का विकास करना है, जिससे वे भविष्य में अपने को जनतन्त्र के योग्य नागरिक सिद्ध कर सकें।

(६) मैत्रीपूर्ण व्यवहार—अन्य उद्देश्य के साथ प्रधान अध्यापक का प्रमुख उद्देश्य छात्रों तथा अध्यापकों के साथ मित्रवत् सम्बन्ध बनाये रखना है। केवल दोष निकालना ही उसका कर्तव्य नहीं है, उसे अध्यापकों के गुणों पर भी प्रकाश डालना चाहिए। सदा भय से ही काम नहीं लेना है वरन् एक मित्रवत् रुख का पालन उसके लिए परम आवश्यक है। परन्तु मित्रवत् रुख का यह मतलब नहीं कि प्रधान अध्यापक अपने अध्यापकों को सिर चढ़ा ले। इस प्रकार की ढील अराजकता को प्रोत्साहन

---

1 He must try to understand their social background, their educational background and their personal history so that he may be able sympathetically to understand their difficulties and their reactions to life and its various situations'

—W M Ryburn

देगी। प्रधान अध्यापक का कर्तव्य है कि वह अपने अध्यापक-वर्ग के कार्यों का एक स्तर निर्धारित करे। जो अध्यापक अपने कार्य में ढील डाल दे तथा अध्यापन-कार्य में लापरवाही प्रदर्शित करे उनको उचित चेतावनी दे। मित्रवत् दृष्टिकोण से यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि वह पाठशाला में अध्यापकों को मनचाहा कार्य करने दे।

अध्यापकों के समान ही प्रधान अध्यापक अपने छात्रों से भी मित्रवत् सम्बन्ध स्थापित करे। छात्रों की सामूहिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए उसे सदा तत्पर रहना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर किसी छात्र की व्यक्तिगत कठिनाई को भी सुने *और जहाँ तक हो सके उसे दूर करने का प्रयत्न करे।*[1]

(७) कुशल संगठनकर्ता—प्रधान अध्यापक को कुशल संगठनकर्ता होना चाहिए। पाठशाला के समस्त कार्यों का वर्गीकरण करके उनको योग्यतानुसार विभाजित करना, *नूतन योजनाएँ निर्मित करना तथा उन्हें कार्य रूप में परिणत करना* प्रधान अध्यापक के प्रमुख कार्य हैं। साथ ही स्कूल के कार्य क्रम का विभाजन उसका *एकीकरण, पाठशाला की उन्नति व अवनति का पता लगाना भी उसके प्रमुख* कर्तव्य हैं।

(८) सामाजिक भावना—प्रधान अध्यापक को यह कभी भी नहीं भूलना चाहिए कि स्कूल एक सामाजिक संस्था है। उसे समाज की तत्कालीन आवश्यकताओं तथा इच्छाओं की सदा पूर्ति करने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। साथ ही उसके लिए छात्रों के माँ बाप व समाज के अन्य सदस्यों के साथ सम्पर्क रखना आवश्यक है। उसे यह ध्यान में रखना होगा कि उसका कार्य क्षेत्र स्कूल के अन्दर तक ही सीमित नहीं है वरन् उसका कार्य क्षेत्र स्कूल के बाहर भी है। स्कूल योजनाओं में छात्रों के अभिभावकों की सलाह लेना तथा समय समय पर उनसे सम्पर्क स्थापित करना पाठशाला तथा समाज दोनों के लिए हितकर सिद्ध होगा।

(९) *भाषण कला में निपुण—प्रधान अध्यापक को भाषण कला का ज्ञान* रखना चाहिए। अनेक ऐसे अवसर आते हैं, जबकि प्रधान अध्यापक को जन समुदाय में अपने विचार प्रकट करने पड़ते हैं। आजकल के अनुशासनहीन वातावरण में उसे *छात्रों की उग्र भीड़ का भी सामना करना पड़ सकता है, ऐसे समय में वह भाषण* द्वारा छात्रों को सरलता से शान्त कर सकता है। इसी प्रकार अपनी पाठशाला के विषय में भी भाषण कला के द्वारा जन समुदाय को समझा सकता है कि उसकी कहाँ तक उन्नति हुई है और *उसे किस सीमा तक जनता की आर्थिक सहायता की* आवश्यकता है।

---

1 'The attitude of the headmaster to his pupils and his dealing with them should be such that they will neither fear nor hesitate to come to him for advice and they will feel encouraged to bring his personal problem to him" —W M Ryburn

(१०) दृढ़ आत्म विश्वास—प्रधान अध्यापक को अपने अन्दर दृढ़ आत्म विश्वास उत्पन्न करना चाहिए। आत्म विश्वास की भावना ही पाठशाला के प्रबन्ध को ऊपर उठा सकती है। वह जो भी आदेश दे पूर्ण आत्म विश्वास के साथ। आत्म विश्वास के अभाव में पाठशाला का प्रबन्ध अधूरा ही रह जायगा। विश्वास की भावना उस अपने अन्दर ही नहीं, वरन् अध्यापकों के अन्दर भी उत्पन्न करनी है।[1]

(११) चरित्र की दृढ़ता—प्रधान अध्यापक का पद ऐसा है, जिस पर समस्त समाज की आँखें लगी रहती हैं। यदि प्रधान अध्यापक के अन्दर किसी भी प्रकार की चारित्रिक दुर्बलता होगी तो वह समाज के सामने नग्न रूप में आ जायगी। छात्रों पर प्रधान अध्यापक के चरित्र का पूर्णतया प्रभाव पड़ता है। वे उससे हर प्रकार की प्रेरणा लेकर अपने जीवन को ढालने का प्रयत्न करते हैं। इस कारण प्रधान अध्यापक को निर्मल चरित्र वाला व्यक्ति होना चाहिए। उसके सामने अनेक प्रलोभन आ सकते हैं, उसे हर प्रकार का लालच दिया जा सकता है, ऐसे अवसरों पर उसे सदा चारित्रिक दृढ़ता से काम लेना चाहिए। चरित्रवान व्यक्ति सदा समाज के अन्दर आदर की दृष्टि से देखा जाता है। उसकी वाणी के अन्दर बल होता है, वह असम्भव कार्य को भी सम्भव कर सकता है।

(१२) न्यायप्रियता—प्रधान अध्यापक को न्यायप्रिय होना चाहिए। उसका कर्त्तव्य है कि वह अध्यापकों के प्रति, छात्रों के प्रति हर दशा में न्यायपूर्वक व्यवहार करे।

(१३) समय की नियमितता—प्रत्येक प्रधान अध्यापक को समय की पाबन्दी का विशेष ध्यान रखना चाहिए। यदि वह स्वयं समय पर विद्यालय आयेगा तो इसका प्रभाव अध्यापक तथा छात्र दोनों पर पड़ेगा। इसके विपरीत आचरण करने पर छात्र और अध्यापकों से समय की नियमितता की आशा करना व्यर्थ है।

(१४) प्रभावशाली व्यक्तित्व—प्रधान अध्यापक को एक प्रभावशाली व्यक्तित्व का होना चाहिए। व्यक्तित्व से हमारा तात्पर्य विभिन्न गुणों के समावेश से है। प्रधान अध्यापक के पद पर वही व्यक्ति सफलता प्राप्त कर सकता है जिसमें आत्म संयम, सहनशीलता, प्रेम दया, कुशलता, दूरदर्शिता तथा मौलिकता आदि गुणों का सुन्दर समावेश हो। इस विषय में प्रो० आर० ए० लैम्ब लिखते हैं, 'For the making of the head of the school, whether master or mistress, there are required many qualities knowledge, the art of imparting knowledge

---

1 'Confidence in the headmaster is most necessary element in any school which wishes to have any claim to be successful Again and again one finds a school handicapped simply because the headmaster has not been able to inspire confidence in himself and mutual good feelings among his staff''

—W M Ryburn

experience, tact, the art of managing children and so on But the union of all these qualities though it may produce a good master or mistress, does not suffice to make one of the very first class To make the perfect head of the school, there is needed, in addition to all these, a quality which is undefinable and which resides in the personalities of individual "

प्रधान अध्यापक के कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व

Q The duties of a principal of a secondary school are much wider than the mere running of the routine of the school programme

(B T 1965)

प्रश्न—एक माध्यमिक विद्यालय के प्रधानाचार्य के कर्त्तव्य, विद्यालय के प्रति दिन के कार्यों की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत हैं।

Or

What are the responsibilites and the duties of the principal or the headmaster ?

एक प्रधानाध्यापक के क्या क्या दायित्व तथा अधिकार हैं ?

उत्तर—किसी भी स्कूल में प्रधान अध्यापक पद का जो महत्त्व है उसके ऊपर हमने पर्याप्त प्रकाश डाला है। उपर्युक्त आधार पर हम देखते हैं कि स्कूल के कार्य का कोई विभाग उससे बचा नहीं है। उसे समस्त विभाग से अपना सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है और सबके सम्बन्ध में अपनी जिम्मेदारी निभानी पड़ती है। प्रधान अध्यापक के उत्तरदायित्व के विषय में श्री एस० एन० मुकर्जी लिखते हैं, 'उसके बहुत से कर्त्तव्य तथा दायित्व हैं जो कि राज्य के शिक्षा विभाग, हाईस्कूल के शिक्षा-बोर्ड, विद्यालय के सचिव, स्थानीय लोक समाज, शिक्षक वर्ग तथा विद्यालय में आने वाले छात्रों से सम्बन्धित हैं।" [He has duties that are related to the state, department of education, the high school education board, the school secretary the local community (including parents), the school staff and finally the children attending the school Thus he has to deal with both the external and internal agencies controlling the connecting link between the two] एक प्रधान अध्यापक के कार्यों तथा जिम्मेदारियों को हम निम्नलिखित आधार पर बाट सकते है—

(१) अध्यापन कार्य।
(२) पाठ्यक्रम सम्बन्धी कार्य।
(३) पाठ्य सहगामी क्रियाएँ।

(४) अनुशासन।
(५) शिक्षकों के साथ सम्बन्ध।
(६) प्रधान अध्यापक और अभिभावक (Headmaster and parents)।
(७) प्रधान अध्यापक और समाज।
(८) स्कूल का कार्य।
(९) पाठ्य पुस्तकों (Text Books) का चयन।
(१०) प्रधान अध्यापक और विद्यालय का भौतिक वातावरण।
(११) निरीक्षण (Supervision)।

(१) अध्यापन कार्य—यह सत्य है कि प्रधान अध्यापक के पास कार्य की अधिकता होने के कारण अधिक शिक्षण करना सम्भव नहीं। परन्तु मास में उसे २३ या २४ घण्टे अवश्य पढ़ाने चाहिए। उसे एक या दो विषयों का शिक्षण होना चाहिए। सुविधानुसार अपने प्रिय विषयों को पढ़ाते रहना उसके लिए उत्तम रहेगा। यह कार्य पाठशाला के अन्य अध्यापकों को प्रोत्साहित करेगा। परन्तु यह बात ध्यान में रखने की है कि कहीं वह केवल उच्च कक्षाओं के पढ़ाने में ही अपने समय को न लगा दे। थोड़ा बहुत समय उसे निम्न कक्षाओं में भी देना चाहिए। उसे प्रत्येक बालक को समझना है उसके विषय में हर प्रकार की जानकारी प्राप्त करनी है। अतः यह आवश्यक है कि वह प्रत्येक के साथ अपना सम्पर्क स्थापित करे। स्कूल में सबसे छोटी कक्षा भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस कारण उसे केवल बोर्ड की कक्षाओं को ही नहीं पढ़ाना है वरन् स्कूल की सबसे छोटी कक्षा को भी समय प्रदान करना है, क्योंकि छोटी कक्षा पाठशाला की नींव होती है, जिसको दृढ़ करना परम आवश्यक है।

अधिकांशतः छात्र प्रधानाध्यापक से भयभीत रहते हैं—वे पास तक जाने से घबराते हैं। परन्तु समय समय पर उसके द्वारा प्रतिपादित शिक्षण कार्य उनके भय को दूर करेगा। वे प्रधान अध्यापक को अपने [illegible] सकेंगे।

(२) पाठ्यक्रम सम्बन्धी कार्य—कक्षाओं में पढ़ाये जाने वाले पाठ्यक्रम को उपयोगी बनाना भी प्रधान अध्यापक का कार्य है। यद्यपि पाठ्यक्रम शिक्षा विभाग द्वारा निर्धारित किया जाता है, परन्तु उसको उचित रूप से कार्य रूप में प्रयोग करना प्रधान अध्यापक का ही कर्तव्य है।

(३) पाठ्य सहगामी क्रियाएँ और उनका संगठन—वर्तमान स्कूलों में पढ़ाई लिखाई के साथ साथ खेल कूद सम्बन्धी अन्य क्रियाओं को भी अत्यधिक महत्व दिया जाने लगा है। प्रधान अध्यापक को हर प्रकार से पाठशाला के अन्दर पाठ्य सहगामी क्रियाओं को जहाँ तक बन सके क्रियाशील बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। छात्रों की आयु और रुचियों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रकार की खेल कूद सम्बन्धी क्रियाओं का संगठन किया जाना आवश्यक है। समय समय पर प्रधान अध्यापक

नका निरीक्षण करता रहे तो अच्छा है। वह देखे कि अध्यापक जिनको जो काय सौंपा गया है, वे उचित रूप से काय करते हैं या नहीं।

(४) अनुशासन—पाठशाला के अन्दर अनुशासन की व्यवस्था करना प्रधान अध्यापक का प्रमुख काय है। उसे देखना है कि पाठशाला के अन्दर अनुशासन की स्थापना के विरोध में कौन कौन-से तत्त्व काम करते हैं। अनुशासन का महत्त्व केवल पाठशाला के लिए ही नहीं है वरन् छात्रो के सम्पूर्ण जीवन के लिए भी आवश्यक है। अनुशासन के अभाव मे पाठशाला-सगठन का काय पूर्ण रूप मे सफल नहीं हो सकता। इस कारण प्रधान अध्यापक की अनुशासन सम्बन्धी प्रमुख जिम्मेदारी है।

(५) शिक्षकों के साथ सम्बन्ध—अध्यापक पाठशाला प्रबन्ध के प्रमुख तत्त्व है। इस कारण प्रधान अध्यापक का प्रमुख कर्त्तव्य है कि वह उनके साथ उदारता तथा भ्रातृत्व का व्यवहार करे। आवश्यकतानुसार हर प्रकार की सलाह देते रहने से प्रधान अध्यापक तथा अध्यापकों म सद्भावना बनी रहती है जो कि विद्यालय के स्तर को उठाने म सहायक सिद्ध होती है।

(६) छात्रों के अभिभावकों के साथ सम्बन्ध—प्रधान अध्यापक का प्रमुख कर्त्तव्य है कि वह बालकों के अभिभावकों से निकट के सम्बन्ध रखे। शिक्षा के वास्तविक लक्ष्य की सिद्धि तभी प्राप्त हो सकती है, जब कि अध्यापकों तथा छात्रों के अभिभावकों म पारस्परिक सहयोग तथा सद्भावना हो। पाठशाला में आने वाले प्रत्येक अभिभावक से उसे अत्यन्त उत्साह तथा धैर्य के साथ मिलना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर उनकी प्रत्येक कठिनाई को सुनने तथा हल करने का प्रयत्न करना चाहिए। वर्ष मे एक या दो बार पाठशाला के अन्दर अभिभावकों को निमन्त्रित करके स्कूल की प्रगति का अवलोकन करा देना उचित है। वार्षिकोत्सव पर तो उन्हें अवश्य ही निमन्त्रित करना चाहिए। आगे हम सुविधानुसार इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डालेंगे।

(७) प्रधान अध्यापक और समाज—प्रधान अध्यापक को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि स्कूल और समाज का सम्बन्ध अटूट है। प्रधान अध्यापक की केवल स्कूल के प्रति ही जिम्मेदारी नहीं है वरन् उसकी जिम्मेदारी समाज के प्रति भी है। उसे समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति भी करनी है तथा समाज म फैली हुई बुराइयों को दूर करना है। समय समय पर छात्रों द्वारा समाज सेवा, श्रम-दान आदि की व्यवस्था द्वारा वह स्कूल को समाज के निकट ला सकता है। साथ ही उसका कर्त्तव्य है कि वह अपनी तथा अध्यापकों की प्रेरणा शक्ति द्वारा विद्यालय के छात्रों को समाज के लिए योग्य से योग्य नागरिक बनाये।

(८) दफ्तर का कार्य—प्रधान अध्यापक को अपने दफ्तर-सम्बन्धी काय को भी तुरन्त निबटाने का प्रयत्न करना चाहिए। उसका समाज के विभिन्न व्यक्तियों से सम्बन्ध होता है तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों के पत्र उसके पास आते हैं। इस कारण उसका कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उनका उत्तर शीघ्र से शीघ्र दे। शिक्षा विभाग से

आई हुई डाक का उत्तर तुरन्त न देने से विद्यालय की प्रगति में बाधा पड़ती है। क्लर्कों के काय की भी देख रेख करते रहना चाहिए।

(६) पाठ्य पुस्तकें (Text Books) तथा उनका चयन—पाठ्य पुस्तकों का चुनाव करना प्रधान अध्यापक का ही काय है। उसे सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कक्षाओं में व्यक्तिगत स्वार्थ को लेकर अध्यापक दोषपूर्ण पुस्तकें न पढ़ावें। जहाँ तक हो सके उत्तम-से-उत्तम पुस्तकों का चयन किया जाय। इस काय के लिए योग्य अध्यापकों की सलाह लेने में सुविधा रहती है। सुविधानुसार पाठ्य पुस्तकों पर विचार करने के लिए वर्ष के प्रारम्भ में एक बैठक का आयोजन भी किया जा सकता है जिसमें पुस्तकों के चयन के विषय में विचार के साथ विवेचना की जाय।

—प्रधान अध्यापक को यह बात ध्यान में रखने की है कि पाठ्य पुस्तकों को प्रतिवर्ष न बदल दिया जाय। जल्दी जल्दी पाठ्य पुस्तकों के बदल देने से छात्रों के माँ बापों को परेशानी उठानी पड़ती है, क्योंकि एक बड़े परिवार के बच्चे अपने भाइयों की पढ़ी पुस्तकों से काम नहीं चला सकते हैं। इस कारण प्रधान अध्यापक को अपना निर्णय देने में धैर्य से काय करना चाहिए न कि जल्दबाजी से।

पाठ्य पुस्तकों के चयन में निम्न बातों का ध्यान में रखना चाहिए—

१—पुस्तकों में जो विषय प्रतिपादित किया गया है क्या वह उचित ढंग से प्रतिपादित किया गया है?

२—पुस्तक की विषय सामग्री छात्रों में प्रेरणा उत्पन्न करने वाली है या नहीं?

३—भाषा सरल तथा बोधगम्य है अथवा नहीं। शैली की स्पष्टता पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

४—क्या पुस्तकों की रचना में मनोवैज्ञानिक प्रणाली अपनायी गयी है?

५—क्या पुस्तक की रचना में समन्वय (Correlation) के सिद्धान्त को अपनाया गया है?

६—पाठ्य पुस्तक पाठ्यक्रम को पूरा करती है या नहीं?

७—प्रधान अध्यापक को इस बात को अवश्य ध्यान में रखना है कि पुस्तक जिस कक्षा के लिए लिखी गई है वह उस कक्षा के मानसिक स्तर की हो।

८—आवश्यकतानुसार उसमें चित्रों का उपयोग किया गया है या नहीं?

९—पाठ्य-पुस्तक की छपाई सुन्दर, स्पष्ट तथा छात्रों की आयु के अनुकूल हो (छोटे बच्चों के लिए मोटे अक्षर तथा बड़ों के लिए महीन)।

१०—वह पर्याप्त सस्ती है या नहीं?

उपर्युक्त समस्त बातों को ध्यान में रखकर ही किसी पाठ्य-पुस्तक को कक्षा के लिए निर्धारित करना चाहिए।

(१०) प्रधान अध्यापक और विद्यालय का भौतिक वातावरण—अन्य कार्यों के अतिरिक्त प्रधान अध्यापक को विद्यालय के भौतिक वातावरण की भी देख-भाल करनी चाहिए। उसका कर्तव्य है कि विद्यालय की स्थिति तथा उसके आस-पास के पड़ौस को भली प्रकार ध्यान में रखे। वह देखे कि विद्यालय के आस पास गन्दगी तथा दूषित वातावरण तो नहीं उत्पन्न हो रहा है। दूसरे, कक्षा में पर्याप्त प्रकाश पर्याप्त फर्नीचर तथा पर्याप्त स्थान है या नहीं, यह भी देखना परम आवश्यक है। प्रधान अध्यापक को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि विद्यालय के वातावरण का छात्रों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

(११) निरीक्षण (Supervision)—प्रधान अध्यापक के उपर्युक्त कार्यों में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य निरीक्षण का कार्य है। प्रधान अध्यापक को अपना अधिकांश समय निरीक्षण-कार्य में ही देना चाहिए। किन किन बातों का उसे निरीक्षण करना है, इसका उल्लेख नीचे हम विस्तार के साथ करेंगे।

Q What is the importance of supervision in school organization ? Discuss it critically

प्रश्न—विद्यालय प्रशासन में निरीक्षण का क्या महत्त्व है ? आलोचनात्मक विवरण दीजिए।

उत्तर—अन्य गुणों के साथ-साथ प्रधान अध्यापक के अन्दर एक सफल निरीक्षक के गुण भी होने चाहिए। विद्यालय के प्रत्येक कार्य की सफलता-असफलता का ज्ञान उस उचित निरीक्षण के द्वारा ही हो सकता है। इस कारण पाठशाला के प्रबन्ध को सुचारु रूप से चलाने के लिए निरीक्षण का कार्य अत्यन्त सावधानी के साथ करना चाहिए। पाठशाला में होने वाले प्रत्येक कार्य तथा विभाग उसके निरीक्षण के अन्दर आता है। निरीक्षण का सम्बन्ध केवल पढ़ने लिखने से ही नहीं है, वरन् छात्रों के शारीरिक तथा नैतिक विकास से भी है। इस विषय में रायबर्न का कथन उल्लेखनीय है—"निरीक्षण विस्तृत होना चाहिए। विद्यालय की समस्त क्रियाएँ उसके अधिकार-क्षेत्र में आ जाती हैं।" वे आगे और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—"विद्यालय जीवन का कोई भी अंग ऐसा नहीं जिसे प्रधान अध्यापक के निरीक्षण से बचाना चाहिए, क्योंकि समस्त छात्रों को बनाने और बिगाड़ने में सभी का कुछ-न कुछ योग होता है। इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो जाती है कि केवल अध्यापन कार्य की ओर ध्यान देना पर्याप्त नहीं वरन् विद्यालय के बाहर छात्र क्या करते हैं, खेल कूद, छात्रावास का जीवन, छात्रों का सोना और भोजन, गृह कार्य के रूप में दिया हुआ विद्यालय का कार्य आदि सभी का निरीक्षण आवश्यक है।"[1]

---

[1] 'There is no branch of the life of the school that should escape the headmaster's survey, for all contribute something to the making or unmaking of the pupil' —W M Ryburn

यह निरीक्षण निम्न प्रकार का होगा—

१—रजिस्टर तथा हिसाब किताब का निरीक्षण।

२—शिक्षण का निरीक्षण।

३—छात्रावास का निरीक्षण।

४—विद्यालय म नैतिकता का निरीक्षण।

५—पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का निरीक्षण।

(१) रजिस्टर तथा हिसाब किताब (Account) का निरीक्षण—प्रधान अध्यापक को चाहिए कि वह प्रतिमास कक्षा-रजिस्टरों का निरीक्षण करे। इस प्रकार का निरीक्षण उसको अध्यापकों के प्रतिमास के कार्य से परिचित करा देगा। अध्यापकों से भूल होने पर उन्हें सलाह देना भी उसके लिए उचित होगा। साल म एक बार प्रवेश रजिस्टर (Admission Register) तथा छात्रों के विद्यालय छोड़ने वाले रजिस्टर भी उसे अवश्य देखने चाहिए।

सम्पत्ति रजिस्टर (Propetry Register) का निरीक्षण तीन महीने के अन्दर हो जाना चाहिए। हिसाब किताब के अन्दर कैश बुक (Cash Book) का हिसाब किताब प्रतिदिन देखा जाना चाहिए। जिस समय उपस्थिति रजिस्टरों का निरीक्षण किया जाय उसी समय फीस (Fees) सम्बन्धी सम्पूर्ण हिसाब की जाँच हो जाय। प्रधान अध्यापक को सदा इस बात का ध्यान रखना है कि जरा सा चूकने पर क्लर्क रुपये पैसे के हिसाब किताब को पलभर म इधर का उधर कर देंगे।

इसी प्रकार कन्टिन्जेन्सियों के रजिस्टर (Contingencies Register) की भी जाँच प्रधान अध्यापक को मास मे एक बार अवश्य कर लेनी चाहिए। प्राविडेंट फण्ड (Provident Fund) का निरीक्षण भी वर्ष म एक बार करना आवश्यक है। साथ ही उसे यह भी ध्यान म रखना है कि बैंक से जो सूद मिलना चाहिए वह मिल रहा है अथवा नहीं।

पाठशाला के अन्दर छात्रों के भी अनेक फण्ड होते हैं। जिसम प्रमुखतया खेल कूद (Sports Fund) सम्बन्धी तथा पुस्तकालय (Library Fund) सम्बन्धी हैं। प्रधान अध्यापक को इन खातों को भी अपनी दृष्टि के अन्दर रखना चाहिए। उसे देखना है कि धन का उचित रूप से प्रयोग किया जा रहा है अथवा नहीं। अधिकांश विद्यालयों म खेल-कूद के पैसे का मन चाहा अपव्यय दूसरे कार्यों के ऊपर कर दिया जाता है। यह पूर्णतया अनुचित है। खेल कूद के धन को खेल कूद के सामान तथा खेल के मैदान आदि पर व्यय किया जाना चाहिए।

विद्यालय के रजिस्टरों की देखभाल के अतिरिक्त प्रधान अध्यापक को छात्रावास के रजिस्टरों की भी देखभाल करनी होती है। उसका कर्तव्य है कि वह छात्रावास के उपस्थिति रजिस्टर की जाँच प्रतिमास करे। इसी प्रकार छात्रावास के सम्पत्ति रजिस्टर (Property Register) की भी जाँच प्रति तीन मास बाद होनी चाहिए।

(२) अध्यापक के कार्य का निरीक्षण—(क) प्रधान अध्यापक जहाँ तक

बन सके वहाँ तक कक्षाओं में होने वाले कार्य-क्रम का निरीक्षण करता रहे। परन्तु अपने निरीक्षण के विषय में सब को सूचित करना आवश्यक नहीं। सूचित करने में अध्यापकगण पहले से ही सचेत हो जायेंगे। परिणामस्वरूप प्रधान अध्यापक को उनके कार्यों का मूल्यांकन करने में एक विशेष असुविधा होगी। जब वह निरीक्षण करने के लिए जावे तो अपने साथ निर्देश-पुस्तिका (Suggestion Book) भी लेता जावे। इसके अन्दर अध्यापकों को शिक्षण सम्बन्धी भूलों को सुधारने के लिए आवश्यक निर्देश दिये जाय। जो निर्देश दिये जावें वे अत्यन्त शिष्ट और संयत भाषा में हों। उसे निरीक्षण करते समय अपना व्यवहार उदार तथा सहानुभूतिपूर्ण रखना चाहिए। कक्षाओं में उसका प्रवेश भय उत्पन्न करने वाला न हो। उसे सदा इस बात का ध्यान रखना है कि उसका कार्य केवल आलोचना करना नहीं, वरन् उसका *प्रमुख कार्य सृजनात्मक सुझाव देना है। इस प्रकार के दृष्टिकोण को अपनाने से* अध्यापकगण उसके निरीक्षण-कार्य का स्वागत करेंगे।

(ख) निरीक्षण करते समय इस बात का भी ध्यान रखा जाय कि अध्यापक की भूलें उसके छात्रों के सामने न बताई जाय। साथ ही उसे निष्पक्ष होकर अध्यापक के स्वभाव, प्रकृति और काम करने की सीमा को भी ध्यान में रखना चाहिए। अपने विचारों को भी जबरदस्ती किसी पर न लादे। परन्तु यह भी ध्यान में रखने की बात है कि अध्यापक की भूलों को सदा क्षमा भी न किया जाय। यदि वह अध्यापकों *की प्रत्येक भूल को क्षमा कर देगा तो उससे पाठशाला का स्तर नीचे गिरता जायगा।*

(ग) निरीक्षण में प्रति सप्ताह डायरी को भी देख लेना उचित है। जो बातें डायरी के अन्दर भरी हैं क्या वह व्यवहार में आ रही हैं ? अधिकांश अध्यापक माह के अन्तिम दिनों में डायरी आँख मींचकर भर देते हैं। प्रधान अध्यापक का कर्त्तव्य है कि इस प्रकार के अनुचित कार्यों को रोके।

(घ) लिखित कार्य का निरीक्षण करना भी प्रधान अध्यापक का प्रमुख कार्य है। उस लेखन कार्य के निरीक्षण को सुविधाजनक बनाने के लिए एक रजिस्टर *रखना चाहिए जिसके अन्दर प्रत्येक अध्यापक का लेखन-कार्य दर्ज किया जाय।* प्रत्येक अध्यापक को पढाये जाने वाले विषयों की अभ्यास पुस्तिकाएँ प्रतिमास प्रधान अध्यापक के *निरीक्षण हेतु रखना चाहिए। प्रधान अध्यापक उनमें से कुछ को देख-*कर (दो या तीन) हस्ताक्षर कर दे तथा अध्यापक को जो कुछ संकेत देना हो उसे रजिस्टर में उसके नाम के आगे लिख दे। अभ्यास-पुस्तिकाओं के निरीक्षण में सबसे मुख्य बात देखने की यह है कि अध्यापक छात्रों के लिखित-कार्य को ठीक प्रकार से देखकर संशोधन करते हैं या नहीं और छात्र उस संशोधन से लाभ उठाते हैं या नहीं।

अधिकांश अध्यापक बिना देखे ही अभ्यास पुस्तिकाओं पर ठीक का निशान लगाकर हस्ताक्षर कर देते हैं। गणित के सवालों में यह कार्य मुख्यतया होता है। परन्तु वास्तव में यह अत्यन्त दोषपूर्ण कार्य है। *गलत कार्य को ठीक बताना छात्रों* को सर्वनाश की ओर ले जाना है। *प्रधान अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह* कभी कभी

स्वयं सरसरी निगाह से छात्रों के लिखित कार्य देखे तथा जो अध्यापक भली प्रकार से सवालों को देखे बिना गलत पर ठीक निशान लगा देते हैं उन्हें कड़ी चेतावनी दें। यह भी देखने की बात है कि अध्यापक छात्रों में भाषा की अशुद्धि ठीक करवाता है या नहीं तथा छात्रगण अपनी अशुद्धियों को ठीक प्रकार से समझ रहे हैं या नहीं। प्रतिमास नियमित रूप से टस्ट भी लिए जाते है या नहीं। यह भी ध्यान में रखने की बात है।

(ट) वर्ष के अन्दर दो या तीन परीक्षाओं का होना परम आवश्यक है। परीक्षा के प्रश्न पत्र उसे एक बार अवश्य देख लेने चाहिए। वे अधिक कठिन या अत्यधिक सरल तो नहीं बना दिये गये है। प्रश्न पत्र बनाने की योग्यतानुसार दिये जायें। नम्बर देने में अध्यापक पक्षपात या जल्दबाजी तो नहीं कर रहे यह भी देखने की बात है। बहुत से अध्यापक अपनी कक्षा के परीक्षाफल को ऊपर उठाने के लिए नम्बर आगे खींचकर देते हैं यह अनुचित कार्य है। प्रधान अध्यापक का इस पर नियन्त्रण रखना चाहिए।

(च) अध्यापकों द्वारा किये जाने वाले प्राइवेट ट्यूशनों पर भी दृष्टि रखना प्रधान अध्यापक का कर्तव्य है। अधिकांश अध्यापक अपना समय प्राइवेट ट्यूशनों में लगा देते हैं। परिणामस्वरूप वे थक जाने के कारण कक्षा में ढंग से नहीं पढ़ा पाते। वे कक्षा में आकर केवल खानापूरी ही करते हैं। प्रधान अध्यापक को इस सम्बन्ध में आज्ञा निकलवा देनी चाहिए कि कोई भी अध्यापक बिना प्रधान अध्यापक की आज्ञा के ट्यूशन नहीं करेगा। दो ट्यूशनों से अधिक करने की किसी अध्यापक को आज्ञा न दी जाय।

(३) छात्रावास का निरीक्षण—छात्रावास का निरीक्षण करना भी प्रधान अध्यापक के अन्य कर्तव्यों में से एक है। अधिकांशतया अध्यापकों में से ही किसी एक को छात्रावास का वार्डन बना दिया जाता है। परन्तु वार्डन के चुनाव में प्रधान अध्यापक को अत्यन्त सावधानी से काम लेना चाहिए, क्योंकि छात्रावास के विद्यार्थियों के चरित्र आदि का समस्त उत्तरदायित्व उसी के ऊपर होता है। वार्डन के चुनाव में सबसे बड़ी बात यह देखने की है कि वह अपने में पवित्रता रखता है या नहीं। उसका जीवन अनुकरणीय है अथवा नहीं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि प्रधान अध्यापक वार्डन का चुनाव करके स्वयं निश्चिन्त हो जाय। प्रधान अध्यापक को वार्डन के होते हुए भी छात्रावास के प्रबन्ध का पूर्ण निरीक्षण करते रहना चाहिए।

छात्रावास में भोजन की क्या व्यवस्था है? भोजन छात्रों को पौष्टिक मिलता है अथवा नहीं—रसोई घर में सफाई का उचित प्रबन्ध है या नहीं, आदि आदि बातें उस छात्रावास का निरीक्षण करते समय ध्यान में रखनी चाहिए। यह ध्यान में रखने की बात है कि छात्रावास का निरीक्षण वह बार बार एक निश्चित समय में न करे। उसे इस कार्य के लिए समय बदल बदल कर जाना चाहिए। मुख्यतया जिस समय छात्र पाठशाला में पढ़ रहे हों उस समय छात्रावास में जाकर

उसे यह देखना है कि छात्र अपने कमरो मे कोई अनुचित काय तो नही कर रहे हैं। रात्रि के समय भी कभी-कभी एक चक्कर लगाना उसके लिए आवश्यक है।

छात्रावास के कमरो म स्वच्छ हवा आदि की व्यवस्था पर भी उसे दृष्टिपात करना चाहिए। छात्रावास की आय व्यय के समस्त व्यौरे उसकी निगाह के नीचे रहेंगे। समय समय पर वह उपस्थिति-रजिस्टर को भी देखे। (छात्रावास की व्यवस्था के ऊपर आगे विस्तार से उल्लेख करेंगे)।

(४) विद्यालय मे नतिक्ता का निरीक्षण—प्रधान अध्यापक का यह भी देखना है कि पाठशाला के अन्दर नतिकता का वातावरण समुचित रूप से पनप रहा है अथवा नही। क्या अध्यापक और छात्र जीवन के वास्तविक ध्येय को सामने रख-कर अपना काय करते हैं? बाहरी गन्दे विषैले तत्त्व तो विद्यालय के अन्दर प्रवेश नही कर रहे हैं? नतिकता के विषय मे उसे अध्यापक-मण्डल की ओर से भी सचेत रहना चाहिए। विद्यालय मे धूम्रपान तथा भद्दे मजाक करने वाले अध्यापकों के विरुद्ध कायवाई करना उसके लिए परम आवश्यक है, क्योंकि अध्यापक के चरित्र का छात्रों पर व्यापक प्रभाव पडता है। चरित्र हीन अध्यापक विद्यालय के लिए ही नही वरन् समाज के लिए भी घातक होता है।

(५) पाठय सहगामी क्रियाओं का निरीक्षण—पढ़ने लिखने के अतिरिक्त प्रधान अध्यापक को छात्रों के शारीरिक विकास की ओर भी ध्यान देना चाहिए। खेल कूद के मैदान म जाकर उसे देखना चाहिए कि छात्र विद्यालय मे होने वाले खेलो म सक्रिय भाग लेते हैं या नही। कभी कभी स्वय छात्रों के साथ खेल म भाग लेना चाहिए।

जो छात्र खेलों म अपनी दक्षता प्रकट करे उन्हे हर प्रकार की सुविधा तथा प्रोत्साहन प्रदान करना आवश्यक है। खेलो का भार जिस अध्यापक को सौंपा जाय वह उसके नियमो से पूर्ण परिचित होना चाहिए। खेलो म भाग लेने का अवसर विद्यालय के छोटे बडे सब छात्रों को मिलना चाहिए। समय समय पर खेल प्रति-योगिताओं का आयोजन भी किया जाय। छोटे बालकों के खेल म बडों के समान उत्साह प्रदर्शित किया जाय। छोटे बालकों की आयु को ध्यान म रखकर ही खेलों का सगठन किया जाय।

खेल कूद के अतिरिक्त विद्यालय की पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का भी प्रधान अध्यापक को निरीक्षण करते रहना चाहिए। रेडक्रास, फस्ट एड तथा साहित्यिक सभाओं मे भी उसे निरीक्षण हेतु जाते रहना चाहिए। उसका कत्तव्य है कि वह देखे कि विद्यालय की समस्त क्रियाएँ उचित रूप से चल रही है अथवा नहीं। समय समय पर अपने सुझाव देते रहना भी अच्छा है। परन्तु उसे सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पाठय सहगामी क्रियाएँ केवल दिखावा या आडम्बर मात्र न बनकर रह जायें। जो कुछ भी उनमे किया जाय वह वास्तविक और छात्रों के लिए लाभदायक हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रधान अध्यापक का प्रमुख कार्य निरीक्षण करना है। जितनी सावधानी और गम्भीरता के साथ प्रधान अध्यापक निरीक्षण-कार्य को करता उतनी ही सुन्दरता और सफलता के साथ विद्यालय का प्रसार विकास उन्नति करता। इस कारण प्रत्येक प्रधान अध्यापक को एक उत्तम निरीक्षक बनने का प्रयत्न करना चाहिए। कुशल और सफल निरीक्षण पर विद्यालय की प्रगति निर्भर करती है, क्योंकि निरीक्षण द्वारा ही विद्यालय की सम्पूर्ण गति विधि से परिचित हुआ जा सकता है। विद्यालय-संगठन में कहाँ पर दुर्बलता है इसका ठीक ठीक पता उचित निरीक्षण के द्वारा ही लग सकता है। अतः प्रधान अध्यापक को इस कार्य में तनिक भी उदासीनता नहीं करनी चाहिए।

अन्त में प्रत्येक प्रधान अध्यापक को निरीक्षण के विषय में रायबर्न के शब्द अवश्य ध्यान में रखने चाहिए—"प्रधान अध्यापक के मस्तिष्क में निरीक्षण का मुख्य उद्देश्य यह देखना है कि यथासम्भव पाठशाला उन आदर्शों की प्राप्ति कर रही है जिनको उसने (प्रधान अध्यापक) तथा उसके अध्यापक मण्डल ने अपने सामने रखा है। उसे उन असंख्य छोटी छोटी बातों में पड़कर, जिनसे वह घिरा रहता है और जिनको ओर उसे ध्यान देना ही है, अपने आदर्श को नहीं भूल जाना चाहिए। इस प्रश्न की अपेक्षा कि अमुक कार्य हुआ या नहीं, यह प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण है कि विद्यार्थीगण अपने लिए विचार करना, अपने लिए समझना और अपने लिए काम करना सीख रहे हैं अथवा नहीं। क्या उन्हें अपनी प्रवृत्तियों का सर्वांगीण विकास करने का अवसर दिया जा रहा है? क्या उनके जीवन से भय को दूर भगाया जा रहा है? क्या उनकी शिक्षा उनके जीवन तथा वातावरण से सम्बन्धित है? उसका निरीक्षण इस प्रकार के आदर्शों द्वारा निर्देशित होना चाहिए और उसे हर समय उन सभी शक्तियों एवं विधियों को प्रोत्साहन देने के लिए जो उसके आदर्श पूर्ति में सहायक हों तैयार रहना चाहिए।"[1]

प्रधान अध्यापक और अध्यापक मण्डल

विद्यालय प्रबन्ध का उचित रूप से चलाने के लिए प्रधान अध्यापक तथा अध्यापक मण्डल के सम्बन्ध पारस्परिक अत्यन्त मधुर होने चाहिए। प्रधान अध्यापक को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि विद्यालय की उन्नति अवनति, सब कुछ अध्यापक मण्डल पर ही निर्भर है। यदि विद्यालय के अध्यापक योग्य, चतुर तथा चरित्रवान होंगे तो निश्चय ही विद्यालय का स्तर ऊँचा उठेगा। समस्त विद्यालय की कार्य कुशलता वहाँ के अध्यापक मण्डल पर निर्भर है। प्रधान अध्यापक का कार्य केवल नियंत्रण तथा निरीक्षण करना है वास्तविक कार्य तो अध्यापक-मण्डल द्वारा ही किया जाता है। इस कारण प्रधान अध्यापक को अध्यापक मण्डल

---

1 अनुवादिका रामेश्वरी श्रीवास्तव।

का सहयोग प्राप्त करने के लिए अपने दृष्टिकोण को अत्य त उदार और सहानुभूति-पूर्ण बनाना चाहिए।

प्रधान अध्यापक को यह नहीं भूलना चाहिए कि वर्तमान प्रजातन्त्र के युग में केवल तानाशाही से ही काय नहीं चलता। उसे चाहिए कि वह अपना दृष्टिकोण जनतन्त्रात्मक बनाये। वह प्रत्येक अध्यापक की बातों को सुने तथा उचित, बुद्धिमत्ता-पूर्ण सलाहों को अपनाये।

किसी कठिन समय में यदि प्रधान अध्यापक अपने सहयोगी अध्यापकों की सहायता कर देता है तो वह समस्त अध्यापक मण्डल के स्नेह का पात्र बन जाता है। इस कारण प्रधान अध्यापक को अपने अध्यापकों की आवश्यकतानुसार सहायता करते रहना चाहिए। यदि कोई अध्यापक अपनी शिक्षा-स बन्धी योग्यता का विकास करना चाहता है तो प्रधान अध्यापक को उसे हर प्रकार की सुविधाएँ देने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रधान अध्यापक के लिए सबसे मुख्य बात ध्यान में रखने की यह है कि वह समस्त अध्यापकों के साथ एक सा व्यवहार करे। पक्षपात की भावना अध्यापक-मण्डल में असन्तोष उत्पन्न कर देती है। उसे सबके साथ सद्भावना तथा मित्रता का दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। पर तु साथ ही जो अध्यापक हृदय से विद्यालय की उन्नति में लगे हुए हैं उन्हें प्रोत्साहित करने में भी नहीं चूकना चाहिए।

जहां तक हो सके अपने विचारों को उसे अध्यापक मण्डल पर नहीं थोपना चाहिए। ऐसा करने से अध्यापकों के अन्दर एक असन्तोष की भावना उत्पन्न हो जाती है।

वास्तव में प्रधान अध्यापक को अध्यापक मण्डल का सहयोग प्राप्त करने के लिए अध्यापक मण्डल के साथ व्यवहार, जहां तक सम्भव हो सहानुभूतिपूर्ण बनाना चाहिए। इस विषय में के० जी० सैयदैन लिखते हैं, **"मेरी समझ में अच्छा हैड-मास्टर वही है जो अपने साथ काम करने वालों को दबाए बिना उनमें प्रेरणा और उत्साह पैदा कर सके। मैं हैडमास्टरों को सलाह दूंगा कि वे अपने और अध्यापकों के परस्पर सम्ब धों में क्रान्ति पैदा करें और इस सम्ब ध को मानवता के आधार पर** स्थापित करें।" वे आगे उदाहरण देते हुए लिखते हैं—'मैंने ऐसे स्कूल भी देखे हैं जहां हैडमास्टर अपने अध्यापकों के साथ मित्रों और साथियों जैसा व्यवहार करते हैं। जहाँ वे सारी अच्छाइयों का श्रेय अध्यापकों को देते हैं और स्वयं किसी चीज का श्रेय नहीं लेते हैं जहां वे अपनी ओर से उनकी निजी तकलीफों, चिन्ताओं तथा समस्याओं में शरीक होते हैं और जब तक उनकी सहायता करने के लिए यथाशक्ति कोशिश नहीं कर लेते, तब तक चैन नहीं लेते।' उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि प्रधान अध्यापक को अपने सम्ब ध अध्यापक मण्डल से सहानुभूतिपूर्ण तथा मित्रवत् बनाने चाहिए।

७

शिक्षक

TEACHER

Q "*The pivot upon which an educational system works is the personality of the teacher*" *Consider briefly the above statement bringing out clearly the essential characteristics of a good teacher*
(P U, B T 1957)

प्रश्न—"शिक्षक एक धुरी है जिस पर एक शैक्षिक पद्धति कार्य करती है।" इस कथन की विवेचना करते हुए शिक्षक के गुणों पर प्रकाश डालिये।

Or

What duties have the school teachers towards —
(a) *the pupils,* (b) *the parents,* (c) *the community ?*
(P U, B T 1949)

अध्यापकों के निम्न के प्रति क्या क्या कर्त्तव्य हैं —
(क) छात्र, (ख) अभिभावक (ग) समाज।

Or

Write short note on the qualities of an Ideal Teacher
(A U B T 1954)

आदर्श अध्यापक के गुणों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।

उत्तर—

अध्यापक का महत्त्व

(१) शिक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान—अध्यापक का शिक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान है, जैसा कि माध्यमिक शिक्षा-आयोग ने लिखा है, We are, however, convinced that the most important factor in the contemplate educational reconstruction is the teacher–his personal qualities his educational qualifications, his professional training and place that he occupies in the school as well as in the community The reputation of a school and its influence on the life of the community invariably

Joad — Teaching is not everybody's cup of Tea.

depend on the kind of the teacher working in it " किसी भी विद्यालय का भवन, छात्र, सहायक सामग्री आदि कितनी भी प्रभावशाली क्यों न हो, जब तक कि वहा के अध्यापक चरित्रवान तथा योग्य नही होगे, उस विद्यालय का शिक्षण स्तर नही उठ सकता। श्री ब्राउन (J F Brown) लिखते है—"समस्त बातो को ध्यान मे रखकर मैं इस परिणाम पर पहुँचता हूँ कि 'अध्यापक' शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग होता है। पाठ्यक्रम, विद्यालय-सगठन और पाठन सामग्री यद्यपि अध्यापन के महत्त्वपूर्ण अग हैं, पर तु वे सभी तब तक निष्प्राण रहते है जब तक कि अध्यापक के सजीव व्यक्तित्व द्वारा उनमे प्राण प्रतिष्ठा नहीं कर दी जाती।"

(२) संस्कृति का प्रतिनिधि—अध्यापक देश की संस्कृति का प्रतिनिधि होता है। जैसा कि विद्वान सैयदैन लिखते है—"यदि आप किसी देश की जनता के सांस्कृतिक स्तर को अपनाना चाहते है कि किसी समाज विशेष में किन मूल्यो को मान्यता दी जाती है तो उसका अच्छा तरीका यह है कि आप मालूम करें कि उस समाज में अध्यापको का सामाजिक पद क्या है और उन्हे कितनी प्रतिष्ठा प्राप्त है।" अध्यापक किसी देश की सस्कृति के निर्माता है और देश के सांस्कृतिक गौरव को अमर बनाये रखने म उनका बहुत कुछ हाथ होता है। अतीत कालीन संस्कृति का परिचय भावी नागरिकों को अध्यापक ही कराता है। दूसरे शब्दो म 'विद्यालय' जहा कि अध्यापक छात्रो को पढाते है, राष्ट्रीय सस्कृति की एक मात्र धरोहर है।[1]

(३) गौरवशाली पद का स्वामी—अध्यापक गौरवशाली पद का स्वामी होता है। अतीत काल म उसे ईश्वर के समान माना जाता था। समाज म राजा के पद को अध्यापक के पद से नीचा माना जाता था। इस विषय मे एस० बालकृष्ण जोशी का कथन उल्लेखनीय है। उनके शब्दो म, "एक सच्चा शिक्षक धन के अभाव म धनी होता है उसकी सम्पत्ति का विचार बैंक म जमा धन से नहीं किया जाना चाहिए अपितु उस प्रेम और भक्ति से जो उसने अपने छात्रो म उत्पन्न की है। वह सम्राट है जिसका साम्राज्य उसके शिष्यों के कृतज्ञ मस्तिष्को म सीमा चिह्नो से अकित है, जिसको ससार की कोई भी शक्ति नही हिला सकती है और न जिसको अणु बम नष्ट कर सकता है। अध्यापक दैवनियोजित कार्य है। व्यापार-सघ और शिल्प निकाय के रूप म इसकी चर्चा करना इसको पतित करना है। उन विधियो को अपनाना जिसस व्यक्ति अध्यापको के प्रति द्रवित हो जायें, उनके कार्यों को कलकित करना है। वह मनुष्य सौभाग्यशाली है, जो शिक्षक है। उससे दुगुना

---

1 'In every country the school system, whether in public or in private is an important agency in determination of the attitudes of the next generation The schools are the organized transmitters of group tradition and of group wisdom and on the plastic mind of the youth, group characters may written almost indelibility " —Charles Edward

सौभाग्यशाली वह है, जिसने हमारे इस महान देश म शिक्षक का जन्म लिया है, जहाँ गुरु के प्रति प्रेम और सम्मान व्यक्त किया है एव उसे देवताओ की श्रेणी मे रखा गया है, जहा राजा और रक ने उसके प्रति श्रद्धा व्यक्त करने म परस्पर स्पर्द्धा की है।" इसी प्रकार सैयदैन लिखते है—"हम यह नहीं भूलना चाहिए कि शिक्षण एक उदात्त व्यवसाय है और मानव इतिहास की महानतम तथा श्रेष्ठतम विभूतियो ने इस व्यवसाय को अपनाया था, क्योकि सभी युगो के समस्त महान धार्मिक नेता तथा सुधारक—बुद्ध, कनफ्यूशियस, सुकरात, मुहम्मद, गाधी—इस शब्द के सच्चे अर्थ म मानव-जाति के शिक्षक थे।"

अध्यापको की नियुक्ति व चुनाव

अधिकाशत अध्यापको की नियुक्ति और चुनाव का अतिम निर्णय प्रबन्धकारिणी समिति तथा प्रबन्धक का होता ह। परन्तु किसी भी दशा मे प्रधान अध्यापक की उपस्थिति अध्यापक के चुनाव के समय पूर्णतया आवश्यक है, क्योकि प्रधान अध्यापक ही विद्यालय की सम्पूर्ण अवस्था स परिचित होता है। उसे इस बात का ज्ञान रहता है कि विद्यालय को क्या आवश्यकता है तथा उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए किस प्रकार का अध्यापक उचित रहेगा। राजकीय स्कूलो के अध्यापको की नियुक्ति सार्वजनिक सेवा आयोग द्वारा ली गई परीक्षाओ और साक्षात्कारो के आधार पर होती है।

अध्यापक की नियुक्ति करने के बाद उसे वर्ष भर के लिए प्रोवेशनरी (Probationary) बनाकर रखा जाय। वर्ष भर के काल मे प्रधान अध्यापक उसकी समस्त दुर्बलताओ को समझ लेगा तथा अध्यापक को भी अपनी कार्य निपुणता दिखाने का पर्याप्त अवसर मिल जायगा। वर्ष-भर का समय किसी अध्यापक के कार्य का मूल्याकन करने के लिए पर्याप्त होता है। यदि अध्यापक वर्ष भर कार्य उचित ढग स नही करता तो प्रधान अध्यापक को इस बात का अधिकार है कि वह उसे वर्ष के अन्त म विद्यालय से अलग कर दे।

अध्यापक की योग्यता—ऊपर जैसा हम उल्लेख कर चुके हैं, अध्यापक का चुनाव करने म प्रधान अध्यापक तथा प्रबन्ध समिति को अत्यन्त सावधानी स कार्य करना चाहिए। यह बात ध्यान मे रखने की है कि चुनाव करते समय केवल एक गुण की ओर ही ध्यान नही दिया जाय वरन् चुनाव करते समय अध्यापक के अन्य गुणो को भी परखना आवश्यक हो जाता है। अध्यापक के गुणो का एकाङ्गी होना हानिप्रद होता है।[1]

---

[1] 'In making a selection the head master and the manager will take various things into account—first and foremost character, then ability to understand and get on with children, teaching ability, willingness and energy co operativeness"

—W M Ryburn

नीचे हम एक अध्यापक के गुणों का वर्णन करेंगे।

(१) प्रभावशाली व्यक्तित्व—प्रत्येक अध्यापक का चुनाव करते समय इस बात पर अवश्य ध्यान दिया जाय कि उसका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक और प्रभावशाली हो। उसका कद औसतन ठीक हो, दूसरे अर्थ में वह न अधिक लम्बा हो और न अधिक छोटा। उसके उठने बैठने चलने फिरने आदि में एक सजीवता तथा सुचारुता हो। एक प्रभावशाली व्यक्तित्व का अध्यापक अपने छात्रों पर अपनी छाप डालने में सफल होता है। छात्र उसकी बात मानते हैं तथा विद्यालय का अनुशासन भी अच्छा रहता है।

(२) उत्साह—एक योग्य अध्यापक अपना कार्य अत्यन्त उत्साह के साथ करता है। इसके विपरीत निरुत्साही अध्यापक का प्रत्येक कार्य अपूर्ण तथा आगे के लिए पड़ा रहता है। इस कारण अध्यापक के अन्दर उत्साह का होना परम आवश्यक है। वास्तव में एक सफल अध्यापक वही हो सकता है जो अपने प्रत्येक कार्य को अत्यन्त उत्साह से साथ करता है। प्रो० हिमायूँ कबीर के अनुसार, "आप किसी पात्र से वही वस्तु निकाल सकते हैं जिसे आपने उसमें डाला है। यदि कोई अध्यापक छिछला या अज्ञानी है, यदि उसके अन्दर बालक का निर्माण करने की शक्ति नहीं है तो वह बालकों के मन को स्फूर्ति व उमंग से नहीं भर सकेगा और उनकी सुन्दर भावनाओं को क्रिया में परिवर्तित करने में असफल रहेगा। और यदि अध्यापक स्वयं उत्साह व उमंग और शक्ति के प्रकाश से ओत प्रोत नहीं है, यदि वह स्वयं ज्वाला नहीं है तो भला वह बालकों के अन्दर शक्ति व उमंग का प्रकाश कैसे जगा सकता है।" रायबर्न भी उत्साह को अध्यापक के लिए एक आवश्यक गुण मानते हैं। उनके अनुसार "अच्छा अध्यापक अपने कार्य के प्रति उत्साही होता है। वह अपने विषय के सम्बन्ध में तथा शिक्षण प्रणालियों के सम्बन्ध में अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए निरन्तर सचेष्ट रहता है। वह अपने उत्साह को ताजा और समय के अनुकूल बनाये रखने के लिए सजग रहता है।"

(३) अध्यापन कार्य में रुचि—अधिकांशतः यह देखा गया है कि जब नवयुवकों को कहीं भी नौकरी नहीं मिलती, तब वे अध्यापन के व्यवसाय को अपनाते हैं। इस प्रकार के नवयुवक अध्यापन कार्य को अत्यन्त अरुचि के साथ करते हैं। इससे शिक्षा का स्तर दिन प्रति दिन गिरता जाता है। प्रत्येक अध्यापक को अध्यापन कार्य में रुचि लेनी चाहिए। जब वह कक्षा में जाय तो अपने अन्दर हीनता और उदासीनता की भावना न आने दे। यदि वह अध्यापन कार्य में रुचि प्रदर्शित करेगा तो शिक्षण का स्तर ऊँचा तो उठेगा ही पर साथ ही छात्र उसका सम्मान भी करने लगेंगे। अध्यापक को अध्यापन कार्य केवल अर्थ की दृष्टि से नहीं अपनाना है वरन् उसे तो यह सोचना चाहिए कि वह जिस कार्य को करता है, वह अत्यन्त पवित्र कार्य है।

(४) चरित्र की दृढ़ता—एक आदर्श अध्यापक के अन्दर सबसे प्रमुख गुण चरित्र की दृढ़ता है। चारित्रिक दृढ़ता के अभाव में अध्यापन-कार्य कभी भी सफल नहीं हो सकता। सच्चरित्र अध्यापक का प्रभाव विद्यालय के समस्त छात्रों पर स्थायी पड़ता है। वास्तव में अध्यापक अनुकरणीय होता है। जैसा अध्यापक का चरित्र होगा वैसा ही छात्रों का चरित्र होगा। एक अध्यापक जो स्वयं सिगरेट पीता है तथा सिनेमा देखता है वह किस मुख से अपने छात्रों को सिगरेट पीने तथा सिनेमा देखने से मना कर सकता है। यह बात हमेशा ध्यान में रखने की है कि प्रत्येक छात्र की निगाह अध्यापक के ऊपर लगी रहती है। यदि अध्यापक विद्यालय के बाहर भी कोई अनुचित कार्य करता है तो वह भी छात्रों द्वारा दृष्टिपात कर लिया जाता है।

प्रधान अध्यापक को अध्यापकों की चरित्र सम्बन्धी सब बातों के विषय में सम्पूर्ण जानकारी रखनी चाहिए क्योंकि कभी कभी चरित्रहीन अध्यापक की नियुक्ति विद्यालय के अनुशासन को पूर्णतया अस्त-व्यस्त कर देती है। छात्रों को बुरे मार्ग पर चलने का बहाना एक चरित्रहीन अध्यापक के कारण सरलता से मिल जाता है।

(५) बाल मनोविज्ञान का ज्ञाता—समुचित शिक्षण की व्यवस्था के लिए अध्यापक का बाल मनोविज्ञान का ज्ञाता होना परम आवश्यक है। वर्तमान काल में शिक्षा बाल केन्द्रित है। डण्डे के बल से छात्रों को पढ़ाना आजकल पूर्णतया अनुचित समझा जाता है। अध्यापक को छात्रों की मानसिक अवस्था का पता लगाना और उसी के अनुकूल शिक्षा देना परम आवश्यक हो गया है। उसे देखना है कि किस बालक को किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है। सब बालकों को एक ही डण्डे से हाँकना कठिन है। अध्यापक को व्यक्तिगत भेदों का भी ध्यान रखना होगा।

आजकल बालक को केवल पुस्तकीय ज्ञान ही नहीं प्रदान करना, वरन् उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना है। इस विकास के लिए अध्यापक को बालक की मूल प्रवृत्तियों रुचियों अरुचियों जिज्ञासाओं आदि का सम्पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। बिना इस प्रकार के ज्ञान के कोई भी अध्यापक शिक्षण कार्य को सरलतापूर्वक नहीं निभा सकता। वास्तव में प्रत्येक अध्यापक को बाल मनोविज्ञान का अध्ययन अवश्य करना चाहिए। ट्रेनिंग कालेजों में बाल मनोविज्ञान को एक अनिवार्य विषय के रूप में स्थान दिया गया है।

(६) प्रेम तथा सहयोग की भावना—अन्य गुणों के साथ साथ अध्यापक के अन्दर प्रेम तथा सहयोगमय भावना का होना परम आवश्यक है। बालकों के साथ सदा डाँट डपट का व्यवहार बुरा होता है। विद्यालय के अन्दर सभी प्रकार के बालक अध्ययन करने हेतु आते हैं। अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह विद्यालय के समस्त बालकों के साथ प्रेम तथा सहानुभूति का व्यवहार करे। यदि अध्यापक अपने छात्रों के साथ प्रेम करता है तो विद्यालय के समस्त छात्र भी उसे आदर तथा स्नेह देंगे। स्नेही होने के साथ साथ उसे सहयोगी भी होना चाहिए। उसे अपने प्रधान

अध्यापक के प्रत्येक काय के अन्दर सहयोग देना चाहिए। विद्यालय की उन्नति सहयोग के ऊपर ही निर्भर है। कभी कभी अध्यापक विद्यालय के प्रत्येक काय को करने म आनाकानी तथा असहयोग की भावना का प्रदर्शन करते है। वास्तव में इस प्रकार की प्रवृत्ति विद्यालय की उन्नति मे परम बाधक सिद्ध होती है।

(७) सहनशीलता और धैर्य—एक अध्यापक के अन्दर सहनशीलता और धैय का होना परम आवश्यक है। विद्यालय म अनुशासन स्थापित करते समय ऐसे अवसर आ सकते हैं जबकि अध्यापक को क्रोध आ जाय। परन्तु चतुर अध्यापक ऐसे अवसरो पर अत्यन्त धैय से काम लेता है। वह बालक को अनुचित काय करने के लिए मना करता है और उसके परिणामो से उसे अवगत कराता है।

कभी कभी अध्यापक क्रोध म आकर अनय कर डालते हैं। वे धैर्यहीन होकर निरपराध बालको को क्रोध के आवेश मे आकर पीटने लगते ह। इस प्रकार के अध्यापको से छात्र सदा असन्तुष्ट रहते है तथा विषय को ठीक प्रकार से न समझने पर भी वे भय के कारण अध्यापक से प्रश्न पूछने में उदासीनता दिखाते है। इस कारण प्रत्येक अध्यापक को अपने छात्रों पर बेमतलब क्रोध नही करना चाहिए, वरन् उसे धैय एव सहनशीलता से काम लेना चाहिए।

(८) ज्ञान पिपासा—आदश अध्यापक को अपने अन्दर सदा ज्ञान की प्यास जाग्रत रखनी चाहिए। उसे यह नही समझना चाहिए कि ज्ञान की सीमा डिग्री प्राप्त करने तक है। वास्तव मे ज्ञान का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत एव विशाल है। उसे अपने ज्ञान के भण्डार को बढाने के लिए सदा कुछ न कुछ प्रयत्न अवश्य करते रहना चाहिए।

(९) वेश भूषा—अन्य बातो के साथ साथ अध्यापक को अपनी वेश-भूषा का भी ध्यान रखना चाहिए। कक्षा मे ढीले-ढाले गन्दे कपडे पहनकर आना पूणतया अशोभनीय है। छात्रो के ऊपर अध्यापक की वेश भूषा का अत्यधिक प्रभाव पडता है। अध्यापक को सदा कक्षा के अन्दर साफ सुथरे कपडे पहन कर आना चाहिए। वेश-भूषा के लिए यह आवश्यक नही कि अध्यापक कोट-पैण्ट पहनकर विद्यालय म आवे, वरन् वेश भूषा का तात्पय साफ सुथरे कपडे ढग से पहनने स है। अत्यधिक फैशन के साथ आना भी उचित नही। वास्तव मे अध्यापक की वेश भूषा साफ सुथरी तथा सादगीपूण हो। अत्यधिक आडम्बरपूण वेश भूषा का भी गलत प्रभाव पडता है।

(१०) कण्ठ स्वर—अध्यापन काय करते समय अध्यापक को अपने कण्ठ से अत्यधिक काम लेना पडता है। अच्छा कण्ठ स्वर अध्यापक के व्यक्तित्व म वृद्धि कर देता है। यदि उसके स्वर मे स्पष्टता तथा माधुय है तो छात्रो की समझ म विषय सरलता के साथ आ जायेगा। अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि वह इतने

उच्च स्वर से बोले कि उसकी आवाज कक्षा के समस्त छात्र सरलता के साथ सुन सकें।

परन्तु साथ ही यह बात भी ध्यान में रखने की है कि अधिक जोर से चिल्ला चिल्लाकर पढ़ाने से भी छात्र उकता जाते हैं, कक्षा में अशान्ति का वातावरण उत्पन्न हो जाता है। इस कारण अध्यापक का स्वर मृदु तथा कोमल होना परम आवश्यक है। योग्य अध्यापक न तो अधिक जोर से बोलते हैं और न अधिक मन्द स्वर में। आवश्यकतानुसार स्वर को चढ़ाना-उतारना भी एक कला है। उच्च स्वर के साथ साथ अध्यापक को अपनी भाषा का भी अवश्य ध्यान रखना चाहिए। भाषा का अत्यधिक जटिल होना विषय को अस्पष्ट बना देता है। अध्यापक को क्लिष्ट तथा जटिल भाषा का प्रयोग करके अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। अध्यापक को सदा सरल तथा रोचक भाषा का प्रयोग करना चाहिए।

(११) **समय की पाबन्दी**—यदि अध्यापकगण विद्यालय में समय पर नहीं आवेंगे तो छात्रों से समय पर आने की आशा करना पूर्णतया व्यर्थ है। प्रत्येक अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह विद्यालय के अन्दर समय पर आये। विद्यालय के अतिरिक्त उसे कक्षा में भी घण्टा बजते ही उपस्थित हो जाना चाहिए। समय की पाबन्दी का छात्रों पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। अध्यापक को इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए।

(१२) **सामाजिकता की भावना**—आधुनिक युग में प्रत्येक विद्यालय समाज से सम्बन्धित है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि स्कूल सामाजिक संस्था है। अतः अध्यापक के अन्दर भी सामाजिक गुणों का होना परम आवश्यक है। एक अध्यापक यदि समाज से दूर भागने का प्रयत्न करता है तो वह वास्तव में एक सफल अध्यापक नहीं हो सकता। आज के युग में उसे समाज के प्रत्येक सदस्य से सम्पर्क करना होगा। समाज से दूर रहकर कोई भी अध्यापक सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

(१३) **साम्प्रदायिकता से रहित**—अध्यापकों की नियुक्ति करते समय पूर्वोक्त बातों को तो ध्यान में रखना ही है परन्तु नियुक्ति के समय एक बात की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए वह है साम्प्रदायिकता और जाति भेद की भावना। गैर सरकारी विद्यालयों के अन्दर प्रायः एक विशेष जाति का प्रबन्ध होता है। इस कारण अध्यापकों की नियुक्ति में साम्प्रदायिक भावना से काम लिया जाता है। एक विशेष जाति को (जिसके कि मैनेजिंग कमेटी के सदस्य होते हैं) प्रमुख रियायत प्रदान की जाती है। अधिकांशतः दूसरी जाति के योग्य अध्यापक को भी छोड़ दिया जाता है। यह भावना विद्यालय के स्तर को तो नीचा गिराती ही है और साथ ही एक द्वेष के वातावरण का जन्म हो जाता है, साथ ही एक धर्म निरपेक्ष राज्य में साम्प्रदायिक भावना से अध्यापकों की नियुक्ति करना पूर्णतया अनुचित है।

(१४) **अध्यापन कार्य में रुचि रखता हो**—जहाँ तक हो सके अध्यापक उस व्यक्ति को ही चुना जाय जो अध्यापन कार्य में रुचि रखता हो तथा जितने यह इच्छा

के साथ निश्चय कर लिया हो कि वह आजन्म अध्यापन के पवित्र कार्य को करता रहूँगा।[1] अधिकांशतः यह देखा गया है कि जब तक नवयुवकों को कहीं नौकरी नहीं मिलती है तो वे अध्यापन-कार्य को चुन लेते हैं तथा अच्छी नौकरी मिलने पर तुरन्त अध्यापन कार्य को त्याग देते हैं।[2]

(१५) कक्षा-नियन्त्रण की शक्ति—अध्यापक के अन्दर कक्षा नियन्त्रण की शक्ति का भी होना आवश्यक है। जिस अध्यापक में नियन्त्रण की शक्ति जितनी अच्छी होगी उतना ही अच्छा वह अध्यापन कर सकता है। कक्षा पर नियन्त्रण हो जाने से बालकों का अवधान पाठ की ओर केन्द्रित हो जाता है। अतः अध्यापक को अपने अन्दर नियन्त्रण शक्ति को अधिक से अधिक विकसित करने का प्रयास करना चाहिए।

(१६) कक्षा व्यवहार—अध्यापक के आचार विचार का बालक के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक अध्यापक को सामान्य शिष्टाचार के नियमों से परिचित होना चाहिए। कक्षा-अध्यापन के समय उसके लिए अपने आचरण का ध्यान रखना परम आवश्यक है। एस० के० अग्रवाल के शब्दों में, 'शिक्षक की आदतें फूहड़ नहीं होनी चाहिए। दांत से नाखून काटना, हाथ में चाक स्टिक घुमाना, पतलून की जेब में हाथ डालकर पढ़ाना, हाथ, मुँह अथवा आंख मटका कर पढ़ाना, हाथ फटकारना, आंखें निकालना, पैर हिलाना, नाक-कान कुरेदना आदि बुरी आदतें हैं।" अध्यापक को शिष्टाचार से काम लेना चाहिए। उसे कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए, जिसे देखकर लड़के हँसें।

(१७) पक्षपातहीन—अध्यापक को पूर्ण रूप से पक्षपात-रहित होना चाहिए। उसे कक्षा के समस्त छात्रों से समानता का व्यवहार करना चाहिए तथा किसी एक के प्रति झुकाव रखना उसके लिए ठीक नहीं है। कक्षा में समाज के विभिन्न स्तरों के छात्र आते हैं, जिनमें कुछ अमीर घरानों के होते हैं तो कुछ सामान्य घराने के। अध्यापक का कर्तव्य है कि धनी तथा निर्धन का भेद किये बिना सबके प्रति प्रेम तथा सद्भावना रखे। उसे प्रत्येक वर्ग के छात्र को आत्म प्रकाशन का अवसर देना चाहिए। इस विषय में श्री रायबर्न लिखते हैं, 'बालकों में अध्यापन का प्रभाव

---

1 "A teacher should have zeal for work and loyalty to the teaching profession With a will to improve, he can get over many of his initial draw backs An individual, who has no love for teaching should never join the teaching profession

—Dr S N Mukerji

2 "The first condition of a good teacher is that he shall be a teacher and nothing else, that he shall be trained as a teacher and not brought up to serve other profession '

—Mark Pattison

अन्यायी होने के कारण जितना नष्ट होता है, उतना दूसरी किसी बात से अध्यापक के बहुत से पाप बालक क्षमा कर देंगे परन्तु अन्याय तो उसके प्रति विश्वास ही नष्ट कर देगा। इसका कारण यह है कि यदि अध्यापक न्यायी न तो बालकों को यह पता नहीं चलता कि उनका व्यवहार कब कैसा होगा।"

(१८) अन्य गुण—विद्वानों ने अध्यापक के विभिन्न गुणों का अपने-अनुसार उल्लेख किया है। प्रो० आर्थर बी० मोहमेन (Arthur B Moehlm के अनुसार एक अध्यापक में निम्न पाँच गुणों का होना परम आवश्यक है—

(i) स्फूर्ति (Vitality)
(ii) संवेगात्मक संतुलन (Emotional Stability)
(iii) बुद्धि (Intelligence)
(iv) सामाजिक गुण (Social Qualities)
(v) प्रशिक्षण (Training)

संयुक्त राष्ट्र अमरिका में डा० एफ० एल० कैल्प (F L Calpp) के मनुसार शिक्षण व्यक्तित्व (Teaching presonality) के लिए निम्न गुणों का होना प आवश्यक है—

(i) सम्बोधन (Address)
(ii) वयक्तिक आकृति (Personal appearance)
(iii) आशावादिता (Optism)
(iv) गम्भीरता (Reserve)
(v) उत्साह (Enthusiasm)
(vi) चिंतन की स्पष्टता (Fairness of mind)
(vii) वफादारी (Sincerity)
(viii) सहानुभूति (Sympathy)
(ix) जीवन शक्ति (Vitality)
(x) विद्वत्ता (Scholarship)

उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त प्रत्येक अध्यापक का कर्तव्य है कि वह अपने को क्षुद्रता तथा निम्न बातों से ऊपर उठाये। उसे चाहिए कि वह यथासम्भव अपने को हीन बातों से दूर रखे। उसके द्वारा किया गया कोई हीन या क्षुद्र काम अध्यापक के व्यवसाय पर एक कलंक लगा सकता है।

अध्यापकों में कार्य-वितरण

Q What principles should guide the headmaster in the matter of alloting duties to the members of staff ?

(B H U, 1950)

प्रश्न—प्रधान अध्यापक को अपने अध्यापक मण्डल में कार्य विभाजन करते समय किन सिद्धान्तों को ध्यान में रखना चाहिए ?

उत्तर—पुरातन विचारधारा—पुरातन विचारधारा के अनुसार सबसे छोटी कक्षा को पढाने के लिए सबसे कम योग्यता के व्यक्ति रखे जाते थे, उच्च कक्षाओं को केवल योग्य व्यक्ति ही पढाते थे। परन्तु वर्तमान युग में यह विचारधारा प्रबल होती जा रही है कि छोटी कक्षा के छात्रों को पढाने के लिए अधिक कुशलता की आवश्यकता है। छोटी कक्षा के छात्रों की समझ में विषय कठिनता से आता है, इस कारण उन्हें पढाने के लिए अधिक मनोवैज्ञानिक ढंग की आवश्यकता है। उपर्युक्त बात के अतिरिक्त प्रधान अध्यापक को कार्य विभाजन करते समय निम्न बातों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए—

(१) अध्यापकों की रुचि।
(२) विशेष योग्यता।
(३) अध्यापक की सुविधा।
(४) विषय में कम-से कम परिवर्तन।
(५) सहानुभूति।
(६) श्रद्धा तथा विश्वास।
(७) सहयोग की भावना।

(१) अध्यापक की रुचि—किसी भी कार्य को सम्भव बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उस कार्य को करने वाले में उसके प्रति रुचि हो। अत प्रधान अध्यापक को चाहिए कि वह अध्यापकों की रुचियों के बारे में पूरा ध्यान रखे। एक अध्यापक जो साहित्य तथा कविता आदि में अधिक दिलचस्पी रखता है, उसे विद्यालय की पत्रिका का सम्पादक बनाना चाहिए। इसी प्रकार जो अध्यापक खेल-कूद में अधिक निपुण है उसे खेल कूद का कार्य सौंपना चाहिए।

(२) विशेष योग्यता—अध्यापक की विशेष योग्यताओं को भी प्रधान अध्यापक को ध्यान में रखना चाहिए। जो अध्यापक जिस विषय में योग्यता रखता हो उसे वही विषय पढाने के लिए दिया जाय। यह आवश्यक नहीं कि कोई अध्यापक बी० ए० पास है तो वह हाईस्कूल पास अध्यापक से अधिक योग्यता रखता होगा। कभी कभी हाईस्कूल पास अध्यापक गणित में बी० ए० पास अध्यापक से अधिक ज्ञान रखते हैं। अत प्रधान अध्यापक को प्रत्येक अध्यापक की योग्यता का पूरा पूरा पता लगा लेना चाहिए।

(३) अध्यापक की सुविधा—कार्य का वितरण करते समय अध्यापकों की सुविधाओं का भी ध्यान रखा जाय। यदि कोई अध्यापक किसी कार्य को ठीक प्रकार से करने में असुविधा का अनुभव करता है तो प्रधान अध्यापक को चाहिए कि वह ऐसे अवसर पर उसे उचित सलाह दे। आर० पी० शर्मा के शब्दों में, "व्यक्तिगत योग्यता व रुचि के अलावा शिक्षक के विचार, उसकी कमजोरियाँ, उसकी सनक, उसका मिजाज ये सब बातें भी महत्त्वपूर्ण हैं और प्रधान अध्यापक को इन सब को देखकर ही किसी कक्षा के लिए शिक्षक नियुक्त करना चाहिए।" यदि अध्यापक

किसी काय को करने म अपनी असमर्थता दिखाता है तो प्रधान अध्यापक को चाहिए कि वह उसे उस काय से मुक्त कर दे।

(४) विषयों में कम-से कम परिवतन—जहाँ तक सम्भव हो अध्यापकों को उन विषयों को पढ़ाने को दिया जाय जिन्हें कि वे पहले से पढ़ाते चले आ रहे हैं। बहुत से प्रधान अध्यापक प्रति वष अध्यापकों का विषय बदल देते हैं, परिणामस्वरूप अध्यापकों के शिक्षण म कुशलता का अभाव बना रहता है। अतः अध्यापकों को विषय प्रदान करने म शीघ्रता न की जाय।

(५) सहानुभूति—प्रधान अध्यापक को काय वितरण म सहानुभूति की भावना से काम लेना चाहिए। यदि अध्यापक किसी काय के करने म हिचकता है तो उसकी कठिनाई को सुनकर सहानुभूतिपूण शब्दों म उसे समझाना चाहिए। प्रत्येक काय को सौंपते समय उसे सहानुभूतिपूण शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

(६) श्रद्धा तथा विश्वास—जिस अध्यापक को काय दिया जाय, उस पर प्रधान अध्यापक को विश्वास भी करना चाहिए।

(७) सहयोग की भावना—काय का वितरण करते समय अध्यापकों के सहयोग का भी ध्यान रखा जाय। जहा तक सम्भव हो प्रत्यक काय अध्यापकों के सहयोग से करवाया जाय।

कक्षा-अध्यापक तथा विषय-अध्यापक

Q Discuss the comparative value of a specialist teacher and a class teacher

प्रश्न—विषय अध्यापक तथा कक्षा अध्यापक के महत्त्व का तुलनात्मक वणन करो।

Or

Discuss the relative merits of having class teachers and subject teachers in secondary school　　　　(B T 1948)

एक माध्यमिक विद्यालय में विषय अध्यापक तथा कक्षा अध्यापक के आपेक्षिक गुणों का वर्णन करो।

उत्तर—अध्यापकों के मध्य शिक्षण काय का वितरण करने के सम्बन्ध म प्राय दो प्रकार की विचारधाराएँ प्रचलित हैं—एक तो विशेषज्ञ अध्यापक और दूसरे कक्षा-अध्यापक। विशेषज्ञ अध्यापक से हमारा तात्पय उस प्रकार के अध्यापकों से है जो कि एक दो विषयों म उच्च डिग्री प्राप्त किये होते हैं। दूसरे शब्दों म यह कहते हैं कि एक विशेषज्ञ अध्यापक वह है जो एक ही विषय को स्कूल की बहुत सी कक्षाओं म पढ़ाता है। अधिकांशत भूगोल, इतिहास, विज्ञान गणित आदि के लिए विशेषज्ञ अध्यापक ही रख जाते हैं जो छोटी कक्षाओं से लेकर बड़ी कक्षाओं तक अपने विषयों को पढ़ाते हैं। इसके विपरीत कक्षा अध्यापक एक ही कक्षा को सभी विषय पढ़ाते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि कक्षा अध्यापक और विशेषज्ञ अध्यापक दोनों म से कौन सा विद्यालय के लिए लाभदायक होता है। वास्तव म देखा जाय तो दोनों प्रकार के अध्यापकों को अपनाने मे लाभ है। छोटी कक्षाओं के अन्दर कक्षा अध्यापक विशेष लाभदायक सिद्ध होते ह और बडी कक्षाओं मे विशेषज्ञ। नीचे हम यह देखेंगे कि दोनों प्रकार की प्रणालियों से क्या लाभ और क्या हानियां होती है।

कक्षा अध्यापक के लाभ

(१) **छात्रों से सम्पर्क**—कक्षा-अध्यापक छात्रा के सम्पर्क म विशेषज्ञ अध्यापक की अपेक्षा कहीं अधिक आता है। वह वर्ष भर एक ही कक्षा को समस्त विषय पढाता है। इसका यह असर होता है कि उस कक्षा के समस्त छात्र उसको अपने निकट पाते ह। वह प्रत्येक छात्र के विषय म ठीक राय दे सकता है कि उसे किस विषय म मेहनत करनी चाहिए।[1]

(२) **विषयों में समन्वय**—कक्षा अध्यापक को एक ही कक्षा को अनेक विषय पढ़ाने पडते हैं, इस कारण विभिन्न विषयों के पारस्परिक सम्बन्धो का भी ध्यान रखता है। इस प्रकार कक्षा अध्यापक द्वारा शिक्षा के समन्वय के सिद्धान्त की पूर्ति सरलता से हो जाती है।

(३) **दृष्टिकोण का विकास**—इस प्रणाली के अन्दर अध्यापक किसी एक विषय तक ही सीमित नहीं रहता, उसे सब विषयों पर ध्यान देना होता है। इस प्रकार उसका दृष्टिकोण विस्तृत होता है।

(४) **छात्रों पर अध्यापक का प्रभाव**—एक ही अध्यापक एक ही कक्षा को वर्ष भर पढाता है, इस कारण वह छात्रों के सम्पर्क म अधिक से अधिक आता है। वह अपने ज्ञान और चरित्र का स्थायी प्रभाव अपने छात्रों के ऊपर सरलता के साथ डाल सकता है। छात्र विद्यालय म उसे अपने निकट समझकर उसकी प्रत्येक बात मानने के लिए प्रस्तुत रहते हैं।

(५) **समय-तालिका निर्माण म सुविधा**—समय तालिका के निर्माण म भी इस प्रणाली के कारण सरलता रहती है। कक्षा-अध्यापक स्वयं अपने आप अपनी कक्षा की समय तालिका बना लेता ह तथा आवश्यकतानुसार किसी विषय को अधिक अथवा कम समय द सकता है। इस प्रकार समय-तालिका बनाने का काय अत्यन्त सरल हो जाता ह।

(६) **छात्रों की रुचियों का ज्ञान**—कक्षा अध्यापक छात्रों का सर्वाङ्गीण विकास सरलता से कर सकता है, क्योंकि वह प्रत्येक बालक की रुचियां जान जाता

---

[1] 'It is true that a teacher has better chance of balancing the work of class and of judging their progress, knowing their weakness and where to just stress, if he has the class for all subjects ? *Will he not get to know his pupils better*

—W M R,

है। वह बालकों को उचित सलाह देकर उनके व्यक्तित्व का विकास सरलता के साथ कर सकता है।

(७) गृह कार्य प्रदान करने में सुविधा—कक्षा अध्यापक को गृह कार्य देते समय सुविधा रहती है। वह छात्रों को सोच-समझकर ही गृह कार्य देता है। चूँकि वह स्वयं सब विषय पढ़ाता है, इस कारण उसे ज्ञान रहता है कि किस विषय में उसे कितना गृह कार्य देना है। विषय अध्यापक छात्रों पर गृह कार्य का बोझा दूसरे अध्यापकों की परवाह बिना किये लाद देते हैं।

(८) कार्य विभाजन में सुविधा—विद्यालय के अध्यापक मण्डल में सभी प्रकार के अध्यापक होते हैं। कम योग्यता के अध्यापकों को छोटी कक्षा का अध्यापक बनाया जा सकता है और अधिक योग्यता के अध्यापक को बड़ी कक्षा का अध्यापक बनाया जा सकता है। इस प्रकार की व्यवस्था द्वारा शिक्षण स्तर ऊपर उठाया जा सकता है।

इस प्रणाली के दोष

ऊपर हमने कक्षा-अध्यापक होने से क्या लाभ होता है इसका उल्लेख किया। यद्यपि कक्षा-अध्यापक प्रणाली से अनेक लाभ हैं परन्तु लाभ के अतिरिक्त कक्षा अध्यापक-प्रणाली से अनेक नुकसान भी हैं जिनका उल्लेख हम नीचे करेंगे

(१) शिक्षण में असुविधा—कक्षा अध्यापक प्रणाली में सबसे बड़ा नुकसान यह है कि अध्यापक किसी भी विषय में पर्याप्त एवं उचित ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। चूँकि एक ही अध्यापक को अनेक विषय पढ़ाने पड़ते हैं, इस कारण प्रत्येक विषय में अध्ययन करने के लिए उसके पास समय का अभाव रहता है कभी कभी तो अध्यापक किसी विषय को गलत पढ़ा जाते हैं।

(२) छात्रों के लिए नीरस—एक ही अध्यापक से सब विषय पढ़ने में छात्रों को आनन्द नहीं आता। सब घण्टों में एक ही अध्यापक की उपस्थिति कक्षा के वातावरण को नीरस बना देती है। अध्यापक भी दिन भर एक ही प्रकार के छात्रों को पढ़ाते पढ़ाते उकता जाता है।

(३) अध्यापक के लिए अरुचिकर—कक्षा अध्यापक के लिए यह सम्भव नहीं कि वह कक्षा के पढ़ाये जाने वाले प्रत्येक विषय में रुचि रखे। जिस एक विषय में उसे अधिक रुचि होगी उसी विषय को वह ठीक प्रकार से अधिक समय तक पढ़ायेगा। शेष विषयों के पढ़ाने में वह खानापूरी करेगा।

(४) छात्रों से सम्पर्क केवल वर्ष-भर का—यद्यपि यह सत्य है कि कक्षा अध्यापक वर्ष भर अपने छात्रों के सम्पर्क में रहता है, परन्तु वर्ष के समाप्त होने पर वह उनसे अलग हो जाता है और उसे नये छात्रों में नये सिरे से सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। उसे उनके पूर्व ज्ञान का भी पता नहीं रहता।

(५) समस्त कक्षा की क्षति का भय—यदि किसी कक्षा में अयोग्य अध्यापक

की नियुक्ति कर दी जाती है तो उस कक्षा के छात्रों के समस्त विषय कमजोर हो जाते है।

(६) क्रमिक अध्ययन का अभाव—कक्षा अध्यापक केवल एक कक्षा को पढाता है अत उसे उच्च कक्षाओ तथा निम्न कक्षाओ के विषय के बारे म ज्ञान नही रहता। अत वह ज्ञान को क्रमबद्ध करके नही पढा सकता।

(७) ज्ञान विस्तार में बाधा—इस प्रणाली म छात्र एक ही अध्यापक से पढने के कारण केवल एक ही दृष्टिकोण से परिचित हो पाते हैं। इस प्रकार उनके ज्ञान प्रसार म बाधा आती है।

विषय विशेषज्ञ अध्यापक से लाभ

(१) विषय का पूर्ण ज्ञान—विशेषज्ञ अध्यापक का एक ही विषय अनेक कक्षाओ म पढाना पडता है इस कारण उसे विषय का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। साथ ही उसे उस विषय की अध्यापन विधियो का भी पर्याप्त ज्ञान हो जाता है। आत्म विश्वास के साथ पढाने के कारण पाठ रुचिकर हो जाता है तथा छात्र भी पढने में आनन्द लेते है।

(२) अध्यापन विधियों का प्रयोग—कक्षा-अध्यापक प्रत्येक विषय म अध्यापन विधियो का प्रयोग अत्यन्त कुशलता के साथ नही कर सकता। प्रशिक्षण-काल म भी छात्र अध्यापको को केवल दो विषयो म ही प्रैक्टीकल परीक्षा देनी होती है। इस कारण विशेषज्ञ अपने विषय म नवीन से नवीन अध्यापन प्रणालियो का प्रयोग कर सकता है—क्योकि उस अपने विषय की अध्यापन विधियो का पूर्ण ज्ञान होता है।

(३) छात्रों से दीर्घकालीन सम्पर्क—विशेषज्ञ या विषय अध्यापक अपने छात्रो से सम्पर्क म कक्षा-अध्यापक की अपेक्षा अधिक आता है—तथा वह उनको भली-भांति समझ सकता है। प्रत्येक विषय-अध्यापक एक छात्र को वर्षो तक अपना विषय पढाता रहता है। उदाहरण के लिए एक विषय-अध्यापक ७वी कक्षा को गणित पढाता है तो अगले वर्ष उसी कक्षा के छात्रो को ८वी कक्षा म वही अध्यापक गणित पढायेगा। इस प्रकार हाइ स्कूल तक एक ही कक्षा के छात्र उसके सम्पर्क म प्रतिवर्ष आते रहेंगे।

(४) पूर्व ज्ञान का पता—विशेषज्ञ अध्यापक को प्रतिवर्ष छात्रो का नये सिर से परिचय प्राप्त करने की आवश्यकता नही होती, क्योकि वह उन्हे पहले से ही जानता है तथा उसे उनके पूर्व ज्ञान का भी पता रहता है। इस कारण वह उनके पूर्व ज्ञान के आधार पर अपने विषय का प्रस्तुतीकरण उचित ढंग से करेगा।

(५) छात्रों के लिए रोचक—विशेषज्ञ प्रणाली के अपनाने से यह भी लाभ है कि विद्यालय के अन्दर पढाये जाने वाले विभिन्न विषय विभिन्न अध्यापको से पढने को मिलते है। इस प्रकार छात्र विद्यालय के अधिक से अधिक अध्यापको के सम्पर्क म आते हैं। अपने अध्यापको से पढने के कारण छात्र भी कक्षा म पढने म उत्साह

दिखाते हैं। प्रत्येक अध्यापक की पढ़ाने की शैली अलग होती है, जिससे कक्षा में सजीवता बनी रहती है।

(६) उच्च कक्षाओं के लिए उपयोगी—उच्च कक्षाओं में विशेषज्ञ अध्यापक ही उचित शिक्षा प्रदान कर सकते हैं, क्योंकि एक अध्यापक के लिए यह सम्भव नहीं कि वह उच्च स्तर पर अनेक विषय दक्षता के साथ पढ़ा सके। ऊँची कक्षाओं में पढ़ाने के लिए तो विशेषज्ञ अध्यापक ही उचित रहते हैं।

(७) ज्ञान को पूर्ण करने में सहायक—पिछली कक्षा में यदि काम पूरा नहीं हो पाया है तो उस विषय का अध्यापक उसे अगली कक्षा में पूरा कर देता है। इस प्रकार छात्रों का ज्ञान अपूर्ण नहीं रह पाता।

(८) सहायक सामग्री का उचित प्रयोग—अधिकांश विद्यालयों में विशेषज्ञ अध्यापकों के लिए उनके विषय का एक अलग कमरा होता है। उदाहरण के लिए इतिहास-कक्ष, भूगोल कक्ष, विज्ञान कक्ष आदि। विशेषज्ञ अध्यापक इन कक्षों की सामग्री का प्रयोग छात्रों के लिए सरलता के साथ कर सकता है। चूँकि वह अपने विषय को अपने कक्ष में ही पढ़ाता है, इस कारण वहाँ की समस्त सामग्री का प्रयोग वह अच्छी प्रकार से करके छात्रों में अपने विषय के प्रति रुचि उत्पन्न कर सकता है।

विशेषज्ञ अध्यापकों से हानियाँ

(१) अपने विषय का ही ज्ञान—इसमें अध्यापक अपने विषय तक ही सीमित रहता है। उसे अपने विषय के अतिरिक्त दूसरे विषय का अत्यन्त अल्प ज्ञान होता है। अपने विषय से बाहर प्रश्न पूछे जाने पर विशेषज्ञ अध्यापक अनिश्चित सा उत्तर देते पाये गये हैं।

(२) समवाय का अभाव—विशेषज्ञ प्रणाली के अपनाने से विषयों में पारस्परिक समवाय (Correlation in study) स्थापित नहीं किया जा सकता और यदि किया भी जाय तो उसमें अत्यन्त कठिनाइयाँ आ जाती हैं। अपने विषय के अतिरिक्त दूसरे विषयों का ज्ञान न होने के कारण विशेषज्ञ अध्यापक समवाय के सिद्धान्त सफलता से नहीं अपना सकता।

(३) छात्रों की रुचि की उपेक्षा—विशेषज्ञ अध्यापक कभी कभी अपने विषय में इतनी रुचि लेने लगते हैं कि वे बालकों में रुचि पैदा करना छोड़कर विषय पर ही अधिक ध्यान देने लगते हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि विशेषज्ञ अध्यापक अपने ज्ञान की गरिमा में आकर छात्रों की मानसिक अवस्था का ध्यान में न रखकर विषय का अत्यधिक विस्तार में बताने लगते हैं। परिणामस्वरूप छात्रों के पल्ले कुछ नहीं पड़ता।

(४) गृह कार्य की अधिकता—विशेषज्ञ अध्यापक गृह-कार्य देने में दूसरे विषयों के अध्यापकों का तनिक भी ध्यान नहीं करते। प्रत्येक विशेषज्ञ अपने अपने विषय का गृह कार्य छात्रों को देता है। परिणामस्वरूप छात्रों के ऊपर गृह कार्य का बोझा आ पड़ता है।

(५) **छात्रों पर प्रभाव का अभाव**—विशेषज्ञ अध्यापक अपने चरित्र का प्रभाव छात्रों पर नहीं डाल पाता, मुख्यतया छोटी कक्षाओं में उसका व्यक्तिगत प्रभाव शून्य होता है, क्योंकि दिन भर में केवल एक घण्टा ही किसी कक्षा को पढ़ा पाते हैं।

(६) **दूसरे विषयों को हीन दृष्टि से देखना**—विशेषज्ञ अध्यापक कभी कभी अपनी योग्यता का गर्व भी करने लगते हैं। वे दूसरे विषय के अध्यापकों को हेय दृष्टि से देखते हैं। अधिकांशतः यह देखा गया है कि विज्ञान और अंग्रेजी के अध्यापक अपने को और विषयों के अध्यापकों से श्रेष्ठ समझते हैं।

मिश्रित प्रणाली का उपयोग—ऊपर हमने दोनों प्रणालियों के लाभ और हानि का अवलोकन किया तथा हमने देखा कि दोनों के अपने अपने लाभ हैं। इस कारण दोनों में से किसी एक को भी ठुकराना भूल होगी। प्राथमिक कक्षा से आठवीं कक्षा तक विषयों का क्षेत्र अधिक व्यापक नहीं होता और इन कक्षाओं में व्यक्तिगत प्रभाव की भी आवश्यकता होती है। इस कारण यहाँ पर कक्षा-अध्यापक की नियुक्ति अधिक उपयुक्त रहेगी। छोटी कक्षाओं में विषयों का समन्वय अत्यधिक महत्त्व रखता है। इस कारण कक्षा-अध्यापक प्रणाली छोटी कक्षाओं के लिए और भी उपयुक्त रहती है। दूसरे कक्षा अध्यापक छोटे छोटे बच्चों की देखभाल भी दिन भर कर सकेगा तथा उनके प्रत्येक कार्य का उत्तरदायित्व उठा सकेगा।

ऊँची कक्षाओं में जहाँ छात्रों को अपनी इच्छानुसार विषय चुनने की स्वतन्त्रता होती है वहाँ विषय विशेषज्ञ की नियुक्ति करना अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। जिन विद्यालयों में डाल्टन प्रणाली का प्रयोग किया जाता है, वहाँ विषय अध्यापकों का रखना एक प्रकार से आवश्यक है। परन्तु प्रोजेक्ट प्रणाली अपनाने पर कक्षा-अध्यापकों की नियुक्ति अधिक लाभदायक सिद्ध होगी।

संगीत, विज्ञान और कला के अध्यापकों का ही प्रयोग किया जाय। इसी प्रकार स्वास्थ्य शिक्षा तथा व्यायाम की शिक्षा के लिए भी विशेषज्ञ-अध्यापकों की नियुक्ति करना आवश्यक हो जाता है।

८

विद्यालय की आन्तरिक क्रियाओं का संगठन

ORGANIZATION OF THE INTERNAL FUNCTIONS AND PROGRAMME OF THE SCHOOL

Q As headmaster or headmistress of a school, what steps would you take to ensure proper organization of the school activities? Give concrete suggestions.

प्रश्न—प्रधान अध्यापक या प्रधान अध्यापिका होने के नाते आप विद्यालय की आन्तरिक क्रियाओं का किस प्रकार संगठन करेंगे ? ठोस सुझाव दीजिये ।

Or

What should be the principles of organization of the internal function and programme of the school ? How far do you find them followed in our schools ?

विद्यालय की आन्तरिक क्रियाओं के संगठन के क्या-क्या सिद्धान्त होने चाहिए ? उनका विद्यालय में आप किस प्रकार प्रतिपादन करेंगे ?

उत्तर—

विभिन्न क्रियाओं के संगठन की आवश्यकता

विद्यालय के कार्य को सुचारु रूप और कुशलता से चलाने के लिए विभिन्न क्रियाओं के संगठन की आवश्यकता होती है । समाज में विद्यालय का प्रमुख स्थान है । उसे एक विशाल उत्तरदायित्व का निर्वाह करना पड़ता है । विद्यालय का प्रमुख केन्द्र बालक है । बालक के मानसिक और शारीरिक विकास के लिए आवश्यक है कि विद्यालय में योग्य अध्यापक हों, उपयुक्त भवन, उपयुक्त खेल कूद की व्यवस्था, उचित पाठ्यक्रम, वैज्ञानिक समय-तालिका तथा उचित ढंग से छात्रों का वर्गीकरण किया गया हो । यदि इन बातों को उचित रीति से पूरा नहीं किया गया तो बालक का सर्वाङ्गीण विकास का होना सम्भव नहीं । इस प्रकार इन क्रियाओं का संगठन बौद्धिक और मानवी उत्थान के लिए परम आवश्यक है । मानवी उत्थान में हमारा

तात्पर्य बालक, समाज, अध्यापक आदि से है। एक आदर्श विद्यालय-प्रशासन में भौतिक और मानवी दोनों व्यवस्थाओं का उचित मेल होता है।

बिना उचित ढंग से विभिन्न क्रियाओं का संगठन किये समस्त साधनों के होते हुए भी पाठशाला एक प्रकार से निर्जीव शरीर के समान चेतनाहीन रहती है। किसी विद्यालय के अन्दर पर्याप्त मात्रा में छात्र हों, योग्य अध्यापक हों तथा पढ़ने लिखने के अन्य साधन हों, परन्तु क्रियाओं के उचित संगठन के बिना किसी भी प्रकार कार्य नहीं चलता। कक्षाओं का उचित रूप से लगना, अध्यापकों में विषयों का विभाजन, परीक्षाओं का उचित संगठन आदि महत्त्वपूर्ण विषय हैं, जिनके लिए उत्तम प्रबन्ध की आवश्यकता है। किसी विद्यालय के शिक्षण का स्तर, विद्यालय की परीक्षा का परिणाम, वहाँ का सुन्दर वातावरण, खेलकूद प्रतियोगिता में छात्रों की विजय, सुन्दर अनुशासन आदि उस विद्यालय की विभिन्न क्रियाओं के उचित प्रबन्ध के परिचायक हैं।[1] वास्तव में विद्यालयों का उद्देश्य छात्रों का केवल परीक्षा पास कराना मात्र नहीं है वरन् उनका सर्वाङ्गीण विकास करना है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही विद्यालय तथा उसकी विभिन्न क्रियाओं का संगठन किया जाता है जैसा कि प्रो० रेन (Wren) लिखते हैं—'Organise the school to benefit the scholar to *train his faculties to widen his outlook to cultivate his mind, to* form and strengthen his character, to develop and cultivate his aesthetic faculty, to build up his body, and give health and strength, to teach his duty himself the community and the state organise the school for this, and not to prepare him for the Matriculation *Examination*" स्पष्ट है कि विद्यालय की क्रियाओं को इस प्रकार से संगठित किया जाय कि विद्यालय के छात्र अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास कर सकें।

विद्यालय की विभिन्न क्रियाओं के संगठन के उद्देश्य

विद्यालय में विभिन्न क्रियाओं के संगठन के निम्न उद्देश्य होने चाहिए—

(१) हमारे संविधान ने प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली को अपनाया है। विद्यालयों के माध्यम से ही नागरिकों को प्रजातन्त्र के योग्य बनाया जा सकता है। वर्तमान

[1] "Education must function through a definite organization or structure of plans, procedures personnel, material, plant and finance The level of operation is at all times dependent upon the quality technical, and idealism of personnel who, through their attitude and daily effort, *breath life into the mechanics of* structures Since this personnel may be handicapped or stimulated by organization, objectives are best attained by determining the plan that most adequately satisfies democratic needs in the operation of Education process"

—Arthur B Moehlman

समाज विद्यालयों से आशा करता है कि वे जनतन्त्रीय संस्कृति की रक्षा कर उसके विकास में अपना बहुमूल्य योग दें। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जनतन्त्रात्मक विद्यालयों में विभिन्न क्रियाओं का प्रबन्ध इस प्रकार का होना चाहिए कि बालक प्रजातन्त्र में विश्वास करें और जनतन्त्रात्मक सिद्धान्तों से परिचित हो सकें।

(२) विद्यालय में इन क्रियाओं के सगठन का दूसरा उद्देश्य प्रजातन्त्र की सफलता के लिए योग्य नागरिक उत्पन्न करना है।

(३) प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली का प्रमुख आधार समानता है। हमारा संविधान देश के प्रत्येक नागरिक को सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक भेद भाव के बिना अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर देता है। अतः विद्यालय में भी विभिन्न क्रियाओं के सगठन का प्रमुख उद्देश्य छात्रों में समानता की भावना उत्पन्न करना है। क्रियाओं का सगठन इस ढंग से नहीं किया जाय कि छात्रों में प्रान्तीयता, धर्मान्धता और जातीयता की भावनाओं को प्रोत्साहन मिले।

(४) बालकों के जीवन में यथासम्भव पूर्णता उत्पन्न करना।

(५) छात्रों में व्यावसायिक तथा सामाजिक कुशलता उत्पन्न करना।

(६) छात्रों में कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व की भावना का विकास करना।

(७) छात्रों को स्वशासन की शिक्षा देना।

(८) विद्यालय के विभिन्न कार्य क्रम तथा प्रशासन को सुचारु रूप से चलाना।

विद्यालय की विभिन्न क्रियाओं के सगठन के सिद्धान्त

विद्यालय के भौतिक तथा मानवीय तत्त्वों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने के लिए हम विभिन्न क्रियाओं का सगठन कुछ सिद्धान्तों के आधार पर ही करना होगा। विद्यालय के समस्त कार्य को सुचारु तथा व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए हमें कुछ निश्चित सिद्धान्त तथा दर्शन का आधार बनाना पड़ेगा। प्रधान अध्यापक का कर्तव्य है कि वह विद्यालय की विभिन्न क्रियाओं का सगठन करते समय निम्न सिद्धान्तों का अवश्य ध्यान में रखे—

(१) **कार्य का उचित विभाजन**—विद्यालय की विभिन्न क्रियाओं तथा कार्यक्रमों का उचित विभाजन होना चाहिए। प्रधान अध्यापक को चाहिए कि वह विद्यालय के समस्त कार्यक्रम और क्रियाओं को अध्यापकों तथा छात्रों की योग्यता के आधार पर विभाजित करे।

(२) **भौतिक तत्त्वों का उचित उपयोग**—विद्यालय की विभिन्न क्रियाओं का सगठन इस ढंग से किया जाना चाहिए कि भौतिक तत्त्वों (Material elements) का प्रभावशाली ढंग से उपयोग किया जा सके। भौतिक तत्त्वों से हमारा तात्पर्य विद्यालय का भवन, विद्यालय की आय, खेल का मैदान, पुस्तकालय तथा फर्नीचर आदि आदि से है। विभिन्न क्रियाओं का सगठन करते समय सदा इस बात का ध्यान रखा जाय कि छात्र विद्यालय के भौतिक तत्त्वों का अधिक से अधिक उपयोग करें

रक। यदि छात्र खेल का मैदान तथा पुस्तकालय का उचित ढग से लाभ नहीं उठा पाते तो क्रियाओं के सगठन के उद्देश्य नष्ट हो जाते है।

(३) छात्रो को प्रोत्साहन—क्रियाओं का सचालन तथा सगठन करते समय यह बात अवश्य ध्यान म रखी जाय कि छात्र उनमे भाग लेने के लिए अधिक-से-अधिक प्रोत्साहित हो।

(४) सहयोग तथा सहकारिता—विद्यालय के प्रशासन म सबस प्रमुख बात ध्यान देने की यह है कि उसका मुख्य आधार सहयोग और सहकारिकता होना चाहिए। प्रधान अध्यापक और अध्यापक, छात्र तथा उनके अभिभावक आदि सबके सहयोग स विभिन्न क्रियाओ का सचालन किया जाय। सगठन का अर्थ सहयोगपूर्ण जीवन से लगाया जाय। प्रधान अध्यापक को सदा इस बात का ध्यान रखना है कि विद्यालय किसी एक व्यक्ति की व्यक्तिगत धरोहर या सम्पत्ति न होकर एक सामाजिक संस्था है जिसका प्रमुख आधार सहयोग और सद्भावना है। यदि विभिन्न क्रियाओ का सचालन सहयोग के आधार पर किया जायेगा तो उसका प्रभाव बालको पर पडेगा और वे परस्पर मिलकर कार्य करना सीखेंगे।

(५) प्रजातन्त्रात्मक भावनाओ के अनुकूल हो—भावी समाज की नीव विद्यालयो म ही डाली जाती है इस कारण समाज मे उचित जनतन्त्र की नीव डालने के लिए विद्यालयो म भी जनतन्त्रात्मक प्रणाली को अपनाना आवश्यक है। वर्तमान युग म विद्यालय की समस्त क्रियाओ का प्रबन्ध एक व्यक्ति के हाथ मे रहे यह पूर्णतया अनुचित है। इस प्रकार का सगठन जनतन्त्र के मूलभूत सिद्धान्तो के पूर्णतया विपरीत है। आज के युग मे विद्यालय के कार्यक्रमो तथा प्रबन्ध म प्रधान अध्यापक, अध्यापक, छात्र तथा उनके मा बाप आदि सभी भाग लेते हैं। विभिन्न क्रियाओ के सचालन मे प्रधान अध्यापक आज्ञा न देकर सलाह और सुझाव के आधार पर काम लेता है।

(६) सामूहिक उत्तरदायित्व—अन्य बात ध्यान म रखने की यह है कि क्रियाओ का सगठन इस प्रकार से किया जाय कि विद्यालय समाज और जीवन के निकट आ सके। विद्यालय मे प्रजातान्त्रिक भावना लाने का तात्पर्य, विभिन्न क्रियाओ के सगठन म सामूहिक उत्तरदायित्व (*Collective Responsibility*) की भावना हो। अध्यापक, अभिभावक तथा राज्य तीनो मिलकर प्रबन्ध मे अपना योग दे और उसका उत्तरदायित्व उठावें।

(७) मानवीय आधार—सबसे बडी बात ध्यान म रखने की यह है कि पाठशाला को एक निर्जीव यन्त्र न माना जाय। उसे यदि यन्त्र के रूप मे लिया जायेगा तो समस्त वातावरण म जडता का वातावरण आ जायगा। कोई मशीन बिना चलाये नहीं चलती, उसी प्रकार यन्त्रवत् प्रबन्ध भी बिना आदेश नही चलता। अत क्रियाओ के सगठन म मानवीय आधारो को भी स्थान दिया जाय। हम यह ध्यान रखना है कि अध्यापक और छात्र दोनो चेतनायुक्त, क्रियाशील प्राणी हैं।

उनके साथ मानवीय व्यवहार किया जाय न कि वैसा व्यवहार जैसा कि जड़ पदार्थों के साथ किया जाता है। अध्यापक का कार्य देते समय उनकी शारीरिक और मानसिक शक्ति को भी ध्यान में रखा जाय। केवल दमनात्मक अनुशासन को ही आधार न माना जाय, छात्रों और अध्यापकों दोनों को पर्याप्त मात्रा में स्वतन्त्रता प्रदान की जाय।

(८) **विद्यालय के उद्देश्यों और उसकी नीति तथा क्रियाओं के संगठन में एकरूपता**—विभिन्न क्रियाओं का प्रबन्ध इस प्रकार से किया जाय कि विद्यालय के उद्देश्यों तथा उसकी क्रियाओं और कार्य क्रम में एकरूपता रहे। यथासम्भव यह प्रयास किया जाय कि शिक्षक आदर्श तथा व्यावहारिकता में किसी भी प्रकार का गतिरोध न उत्पन्न हो। जो विद्यालय के आदर्श हो उनको प्राप्त करने के लिए ही विद्यालय की क्रियाओं का संगठन किया जाय।

(९) **क्रियाओं के संगठन में रचनात्मक और आशावादी दृष्टिकोण**—क्रियाओं के संगठन में प्रधान अध्यापक को रचनात्मक और आशावादी दृष्टिकोण से काम लेना चाहिए। किसी भी नीति के निर्धारण में उदासीनता और निराशा से काम नहीं लेना चाहिए। आशावादी तथा रचनात्मक दृष्टिकोण प्रबन्ध को सफलता की ओर ले जाने वाला है।

(१०) **विचार विनिमय का आधार**—विद्यालय क्रियाओं का संगठन विचार विनिमय के द्वारा किया जाय। ऐसे अवसर प्रदान करना आवश्यक है जब छात्र अध्यापक तथा प्रधान अध्यापक परस्पर मिलकर विचार विनिमय द्वारा प्रबन्ध की कमी को समझने का प्रयास करें तथा उसके दोषों को सहयोगपूर्ण ढंग से दूर करें।

(११) **स्पष्टता तथा सुव्यवस्था**—क्रियाओं के संगठन में स्पष्टता तथा सुनिश्चितता का होना परम आवश्यक है। किसी प्रकार का असमंजस तथा अनिश्चितता संगठन का सबसे बड़ा दोष है। विद्यालयीय क्रियाओं के समस्त विषय जैसे—पाठ्यक्रम, परीक्षा तथा अनुशासन आदि सबका परस्पर ठीक प्रकार से सम्बन्ध रहे। इसके लिए सामंजस्य का सिद्धान्त (Principle of Co ordination) अपनाना चाहिए।

(१२) **लचीलापन अनुकूलता तथा स्थिरता का ध्यान**—क्रियाओं के संगठन को अधिक जटिल नहीं बनाया जाय। जहाँ तक हो सके उसमें गतिशीलता का लाना परम आवश्यक है। समाज की परिवर्तनशील परिस्थितियों के साथ साथ उनमें भी परिवर्तन लाये जायें। संगठन करते समय समाज की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा जाय। उसमें पर्याप्त मात्रा में लचीलापन हो जिससे समाज की आवश्यकताओं को लेते हुए उसमें सुविधानुसार परिवर्तन भी किया जा सके। क्रियाओं के संगठन में पर्याप्त मात्रा में नूतन प्रयोगों को स्थान देना चाहिए। केवल परम्परागत रूढ़ियों पर चलना प्रबन्ध को जटिल और जड़ बनाना है।

(१३) **स्वशासन का अवसर**—विभिन्न क्रियाओं के उचित संगठन के लिए

यह आवश्यक है कि छात्रों को स्वशासन का अवसर प्रदान किया जाय। स्वशासन द्वारा छात्रों में नेतृत्व की शक्ति का विकास होता है। वे परस्पर सहयोग से काम करना सीखते हैं।

(१४) **क्रियाओं के प्रबन्ध को केवल साधन माना जाय**—विभिन्न क्रियाओं के प्रबन्ध का केवल उत्तम साधन के रूप में लिया जाय। प्रबन्ध को शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन मात्र ही माना जाय, न कि साध्य। यदि हम क्रियाओं के प्रबन्ध का साध्य मान लेते हैं तो यह बड़ी भारी भूल होगी।

(१५) **पाठ्य सहगामी क्रियाओं का स्थान**—विद्यालयों में क्रियाओं का प्रबन्ध करते समय पाठ्य सहगामी क्रियाओं को अवश्य ध्यान में रखा जाय। पहले इन क्रियाओं को महत्त्व नहीं दिया जाता था, परन्तु अब मनोवैज्ञानिकों के अनुसार किशोर बालकों के विकास के लिए इनका आयोजन आवश्यक है। इन विद्यालयों के महत्त्व पर हम किसी आगामी अध्याय में विचार करेंगे।

विद्यालय की विभिन्न क्रियाओं के प्रबन्ध का क्षेत्र

ऊपर हमने विद्यालय की क्रियाओं के प्रबन्ध के सिद्धान्तों का उल्लेख किया था जिससे कि हम ज्ञात हो गया कि विद्यालय की क्रियाओं का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। इस क्षेत्र के अन्दर बालकों के शारीरिक, मानसिक तथा सांस्कृतिक विकास से सम्बन्ध रखने वाली समस्त क्रियाएँ आ जाती हैं। ये क्रियाएँ इस प्रकार से हैं—

१—पाठ्यक्रम का निर्धारण।
२—योग्यतानुसार छात्रों का वर्गीकरण।
३—समय-तालिका।
४—परीक्षाएँ और उनका प्रबन्ध।
५—पाठ्यक्रम तथा पाठ्य सहगामी क्रियाएँ।
६—समाज सेवा, रेड क्रास आदि सेवाओं सम्बन्धी क्रियाएँ।
७—अनुशासन की स्थापना।
८—छात्रों के स्वास्थ्य तथा खेल-कूद सम्बन्धी क्रियाएँ।
९—गृह और स्कूल के मध्य मधुर सम्बन्ध बनाना।
१०—विद्यालयों की साज-सज्जा, उचित फर्नीचर, कक्षा का भवन, प्रकाश आदि की व्यवस्था।
११—छात्रावास की व्यवस्था और उसका निरीक्षण।
१२—विद्यालय और समाज को परस्पर निकट लाने वाली क्रियाएँ।
१३—विद्यालय का सुस्पष्ट जीवन।

ये समस्त क्रियाएँ विद्यालय प्रशासन से सम्बन्धित हैं। इनमें से जो क्रियाएँ प्रमुख हैं उनका हम सविस्तार वर्णन अगले अध्यायों में करेंगे।

८

पाठ्यक्रम और उसका निर्धारण

CURRICULUM AND ITS DETERMINATION

Q How far is it true to say that the high school curriculum in our country is unduly dominated by the requirement of the universities ? What reforms do you suggest ? (U P 1952)

प्रश्न—यह कथन किस सीमा तक ठीक है कि हमारे देश में हाईस्कूल कक्षाओं का पाठ्यक्रम विश्वविद्यालयीय शिक्षा से पूर्णतया दबा हुआ है ? इसके सुधार के लिए आप क्या सुझाव देंगे ?

Or

What is the importance of curriculum ? What are the principles which should determine the construction of school curriculum ?

पाठ्यक्रम का क्या महत्त्व है ? विद्यालयीय पाठ्यक्रम का निर्धारण करते समय किन किन बातों को ध्यान में रखोगे ?

उत्तर—

पाठ्यक्रम का अर्थ

प्रायः पाठ्यक्रम का अर्थ पुस्तकीय ज्ञान से लगाया जाता है। दूसरे शब्दों में पाठ्यक्रम का अर्थ प्रमुख रूप से उन विषयों से लगाया जाता है जिनका कि शिक्षण विद्यालय में होता है। अधिकांश विद्यालयों के प्रधान अध्यापक छात्रों को विभिन्न विषयों का ज्ञान प्रदान करना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं। उनके अनुसार निर्धारित विषयों को पढ़ाना ही 'पाठ्यक्रम' की समाप्ति है। परन्तु 'पाठ्यक्रम' के प्रति यह संकीर्ण विचारधारा है।

अंग्रेजी का 'करीकुलम' (Curriculum) शब्द, जिसको हिन्दी में 'पाठ्यक्रम' कहते हैं, लैटिन भाषा का है। 'करीकुलम' शब्द का अर्थ है—दौड़ का मैदान। पाठ्यक्रम को दौड़ का मैदान माना गया है और शिक्षा को दौड़ लगाना अर्थात

ाठ्यक्रम वह रास्ता या मैदान है, जिसके ऊपर छात्र चलकर शिक्षा के लक्ष्य तक हुंचता है। बेन्ट तथा क्रोनेबर्ग (Bent and Krouneberg) अपनी पुस्तक में ाठ्यक्रम की परिभाषा करते हुए लिखते हैं, "संक्षेप में पाठ्यक्रम पाठ्यवस्तु (Content of studies) का ही सुव्यवस्थित रूप है जिसका निर्माण बालकों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए होता है।"

वास्तव में पाठ्यक्रम में बालक के जीवन के समस्त अनुभव आ जाते हैं। आधुनिक काल में पाठ्यक्रम के प्रति लोगों का अत्यन्त व्यापक दृष्टिकोण है। अब पाठ्यक्रम को केवल पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित नहीं रखा जाता है, वरन् उसके द्वारा बालक के सर्वांगीण विकास की आशा की जाती है, इस विषय में प्रो० सी० वाल्टर लिखते हैं—"इसके अन्तर्गत वे समस्त अनुभव आते हैं जो कि छात्र विद्यालय के पथ प्रदर्शन में प्राप्त करते हैं। इसके अन्तर्गत कक्षा एवं उसके बाहर की समस्त क्रियाएँ, खेल-कूद तथा कार्य आते हैं। इन सम्पूर्ण क्रियाओं को व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति एवं कल्याण में सहायता पहुँचाने वाली होना चाहिए।"[1] विद्वान् मुनरो का भी ऐसा विचार है। उनके अनुसार, "Curriculum embodies all the experiences which are utilised by the school to attain the education." पाठ्यक्रम की विस्तृत परिभाषा प्रो० हार्न ने इस प्रकार दी है—"The curriculum is that which pupil is taught. It involves more than the acts to learning and quiet study. It involves occupation, production, achievement, exercise and activities. It thus is representative of the motor as well as sensory elements in the nervous system on the pupil on the side of society, it is representative of what the race has done in its contact with its world."

पाठ्यक्रम का महत्त्व

सम्पूर्ण शैक्षिक क्षेत्र में पाठ्यक्रम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा की प्रक्रिया में 'शिक्षक, छात्र तथा पाठ्यक्रम' तीन प्रमुख तत्त्व होते हैं। अध्यापक तथा छात्र दोनों ही शिक्षा के महानतम उद्देश्यों की प्राप्ति पाठ्यक्रम के अभाव में नहीं कर सकते। पाठ्यक्रम द्वारा ही अध्यापक को ज्ञात रहता है कि उसे छात्र को क्या पढ़ाना है और छात्रों को यह ज्ञात रहता है कि उन्हें क्या पढ़ना है। विद्वान् कनिंघम ने इस उद्देश्य से ही पाठ्यक्रम की परिभाषा यह दी है—"कलाकार (अध्यापक) के हाथ में वह साधन है जिससे अपने पदार्थ (शिष्य) को अपने आदर्श (उद्देश्य) के अनुसार

1 Curriculum may be defined as all the experiences that pupils have while under the direction of the school. It includes both class-room and extra class room activities, work as well play. All such activities should promote the needs and welfare of the individual and society."

अपनी चित्रशाला (स्कूल) में चित्रित कर सके।" [The curriculum is the tool in the hands of the artist (the teacher) to mould his material (the pupil) according to his ideal (objective) in his studies (the school)] उपयुक्त परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है कि पाठ्यक्रम का शिक्षण प्रक्रिया में क्या महत्त्व है।

पाठ्यक्रम निर्धारण करने के सिद्धान्त

पाठ्यक्रम का निर्धारण करना विद्यालय प्रशासन की प्रमुख क्रियाओं में से एक है। प्रधान अध्यापक को अध्यापक के सहयोग से पाठ्यक्रम का निर्धारण अत्यन्त सोच समझकर करना चाहिए माध्यमिक शिक्षा आयोग' ने भी पाठ्यक्रम निर्धारण के लिए कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख किया है। अन्य सिद्धान्तों के साथ हम उनका भी उल्लेख करेंगे—

(१) अग्रदर्शी सिद्धान्त (Forward Looking Principle)—इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि जिसे पूर्ण करते हुए छात्र अपने अन्दर अग्रदर्शी भावनाओं का विकास करता चले। दूसरे शब्दों में पाठ्यक्रम में उन विषयों को सम्मिलित किया जाय जिनको पढ़कर छात्र किसी भी प्रकार की रीतियों तथा परम्पराओं का दास न बने तथा अपने को तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल ढाल सके।

(२) पाठ्यक्रम अधिक से अधिक विस्तृत हो (The curriculum should be very wide in scope)—पाठ्यक्रम का निर्माण संकीर्ण दृष्टिकोण से न किया जाय। उसका प्रमुख आधार अनुभव हो। पाठ्यक्रम को केवल पढ़ने वाले विषयों से ही सम्बन्धित न किया जाय। बालक कक्षा के भीतर तथा बाहर पुस्तकालय तथा खेल के मैदान में—जहां कहीं भी अनुभव प्राप्त करता है उस सब को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाय। केवल पढ़ने लिखने के विषयों को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना—पाठ्यक्रम को संकीर्ण बनाना है। सेकण्डरी एजूकेशन कमीशन के अनुसार, "*In the first place it must be clearly understood that according to the modern educational thought curriculum in this context does not mean only the academic subjects traditionally thought in the school but it includes the totality of experiences that pupil receives through the manifold activities that go on in school in the class rooms, library workshop play grounds in the numerous informal contacts between teachers and pupils*" अतः पाठ्यक्रम के अन्दर उन क्रियाओं को अवश्य महत्त्व दिया जाय जिनसे कि बालकों को कुछ अनुभव प्राप्त होता है।

(३) परम्परा-संरक्षण को महत्त्व दिया जाय—पाठ्यक्रम का संगठन इस प्रकार किया जाय कि बालक उसका अध्ययन करते हुए अपनी संस्कृति तथा परम्परा

को सुरक्षित करने का प्रयास करें। पाठ्यक्रम में हमारी संस्कृति के उन अंशों को सम्मिलित किया जाय जिनसे कि मानव-जाति ने लाभ उठाया है तथा जिनसे भावी पीढ़ी को लाभ पहुँचने की सम्भावना है। "वास्तव में यह तथ्य अधिकाधिक स्वीकार किया जा रहा है कि पाठ्यक्रम के विभिन्न विषय निपुणताओं के कुछ विशेष रूपों तथा ज्ञान की कुछ ऐसी विशेष शाखाओं के प्रतीक होते हैं जो पूर्ण जाति के अनुभव में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो चुकी हैं और जिनकी शिक्षा प्रत्येक आने वाली पीढ़ी को देना आवश्यक होता है। इस *दृष्टिकोण के अनुसार, पाठशाला का कर्तव्य है कि व्यवहार* की उन परम्पराओं, *ज्ञान तथा प्रमाणों* को जिन पर हमारी सभ्यता आधारित है, रक्षा करे तथा उन्हें और आगे बढ़ाये।"[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ्यक्रम में भाषा, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, नागरिकशास्त्र आदि विषयों को प्रमुखता प्रदान की जाय।

(४) **पाठ्यक्रम में रचनात्मकता को स्थान दिया जाय**—मानव एक क्रियाशील प्राणी है। सप्रयोजन क्रिया करना उसका प्रमुख गुण है। मानव सभ्यता का विकास *प्रयोजनात्मक क्रियाओं के आधार पर ही हुआ है। अतः यह आवश्यक है कि पाठ्यक्रम में रचनात्मक क्रियाओं को विशेष महत्त्व दिया जाय। ये क्रियाएँ ऐसी हों जिनसे* कि बालक का विकास हो सके। इस विषय में रायबर्न लिखते हैं, "The curriculum must inculde those activities which will held the child to develop as he likes in them The curriculum will include those *subjects which will enable the child to exercise creative and* contstructive powers which will create for his active interests, which will give him opportunities to sublimate the instinctive powers with which he has been endowed' जिस पाठ्यक्रम में रचना-*त्मकता को स्थान नहीं दिया जाता, वह पाठ्यक्रम व्यर्थ है।*

(५) **पाठ्यक्रम अधिक जटिल न हो**—*पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय* व्यक्तिगत भेदों को न भूला जाय। प्रत्येक बालक की रुचि दूसरे बालक से भिन्न होती है, इस कारण पाठ्यक्रम का विस्तृत तथा लचीला होना परम आवश्यक है। प्रत्येक छात्र को एक ही 'कोर्स' पढ़ने के लिए मजबूर करना, उसके मानसिक विकास में बाधा डालना है। उच्च कक्षाओं में विभिन्न विषयों को रखा जाय, जो हर प्रकार की रुचियों की पूर्ति करते हों, *जिससे छात्र अपनी इच्छा तथा रुचि के अनुसार पाठ्य*-वस्तु चुन सकें।

(६) **पाठ्यक्रम समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करे**—प्रजातन्त्र के युग में यह आवश्यक है कि पाठ्यक्रम समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करे। पाठ्यक्रम में उन विषयों को अवश्य रखा जाय, जिनसे छात्रों में सामाजिक कुशलता आये

---

1 हैण्ड बुक आफ सजेशन्स फार टीचर्स (अनुवादक—वजीर हसन आब्दी)

तथा समाज की प्रत्येक क्रिया में सक्रिय भाग ले सकें। विद्यालय को समाज के निकट लाने के लिए पाठ्यक्रम को समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु बनाना होगा। दूसरे शब्दों में पाठ्यक्रम सामाजिक जीवन (Community life) से सम्बद्ध होना चाहिए। पाठ्यक्रम में इस प्रकार के विषय रखे जायें जिनको पढ़कर छात्र सामाजिक उत्तरदायित्व को समझें तथा उसको निभाना अपना गौरव मानें।

(७) **दूसरे पाठ्य विषयों से सम्बन्ध हो**—पाठ्यक्रम के निर्धारण में विषयों की सम्बद्धता का अवश्य ध्यान रखा जाय। पाठ्यक्रम में रखे गये विषय एक दूसरे से सम्बन्धित हों। ज्ञान को सदा सम्बन्धित रूप में छात्रों के समक्ष प्रस्तुत किया जाय। विषयों को एक दूसरे से सम्बन्धित करके पढ़ाने से छात्र को जो ज्ञान प्राप्त होता है वह वास्तविक तथा ठोस होता है। यदि पाठ्यक्रम अलग अलग सम्बन्धहीन टुकड़ों में विभाजित करके पढ़ाया जाय तो शिक्षा की दृष्टि से उसका महत्व और भी कम हो जायेगा।

(८) **अवकाश का सदुपयोग करना सीखें**—पाठ्यक्रम में उन विषयों और क्रियाओं को अवश्य स्थान दिया जाय जिनके माध्यम से छात्र अवकाश का सदुपयोग करना सीखें। अतः संगीत कला, बागवानी आदि ललित विषयों को पाठ्यक्रम में अवश्य स्थान दिया जाय। यदि छात्रों को अवकाश का सदुपयोग करने की शिक्षा नहीं दी गई, तो वे अपना समय व्यर्थ की बातों में नष्ट करेंगे।

(९) **जीविकोपार्जन में सहायक हो**—पाठ्यक्रम का संगठन इस ढंग का होना चाहिए कि माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने के बाद छात्र किसी व्यवसाय में लगकर जीविका कमा सकें। विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र न तो सब योग्य होते हैं और न सब के पास धन होता है जिससे कि वे व्ययपूर्ण उच्च शिक्षा का भार उठा सकें। अतः पाठ्यक्रम में कुछ व्यावसायिक तथा औद्योगिक कार्य क्षमता उत्पन्न करने वाले विषयों को अवश्य स्थान दिया जाय। बहुमुखी विद्यालयों के पाठ्यक्रम की रचना इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर की गई है।

(१०) **स्वास्थ्य शिक्षा को महत्व दिया जाय**—प्राचीन दृष्टिकोण से विद्यालय में शिक्षक का कार्य छात्रों का केवल बौद्धिक विकास करना है। साधारणतया छात्रों को पुस्तकीय ज्ञान प्रदान करना अध्यापकों का कर्तव्य माना जाता है परन्तु यह अत्यन्त पुरातन विचारधारा है। आज शिक्षा का उद्देश्य छात्रों का मानसिक विकास ही करना नहीं है वरन् उनका सर्वांगीण विकास कर समाज का योग्य नागरिक बनाना है। रोगी तथा दुर्बल नागरिक राष्ट्र की सेवा नहीं कर सकते। दूसरे शब्दों में जब तक शरीर स्वस्थ नहीं रहेगा तब तक मस्तिष्क भी स्वस्थ नहीं रह सकता। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क रहता है। अतः पाठ्यक्रम में शरीर शिक्षा और और स्वास्थ्य शिक्षा को भी उचित स्थान दिया जाय।

(११) **स्थानीय आवश्यकताओं के साथ अन्तर हो**—नगर तथा ग्राम की आवश्यकताओं में अन्तर होता है तथा दोनों के वातावरण में भी भिन्नता होती है।

त यह आवश्यक है कि पाठ्यक्रम म स्थानीय वातावरण तथा आवश्यकताओ के अनुसार विषयो को रखा जाय। गाँव और नगर के पाठ्यक्रम म अन्तर होना चाहिए। ग्रामीण पाठ्यक्रम मे कृषि शिक्षा को विशेष महत्त्व दिया जाय। इस प्रकार 'पशु चिकित्सा' को भी पाठ्यक्रम मे स्थान दिया जाय।

(१२) **लडकियो का पाठ्यक्रम लडकों से भिन्न हो**—बालको का पाठ्यक्रम बालिकाओ के पाठ्यक्रम से भिन्न होना चाहिए। प्राथमिक स्तर पर चाहे बालक और बालिकाओ के पाठ्यक्रम एक से हो, पर माध्यमिक स्तर पर दोनो म भिन्नता का होना परम आवश्यक है। माध्यमिक स्तर पर लडकियो के पाठ्यक्रम म गृह-विज्ञान, भोजन शास्त्र, धुलाई, सिलाई-कटाई, शिशु-सरक्षण, जसे विषयो को सम्मिलित किया जाय।

(१३) **धार्मिक शिक्षा को महत्त्व दिया जाय**—हमारे देश म धम का शिक्षण स अत्य त प्राचीन सम्बन्ध है। प्राचीन शिक्षा का आधार धम ही था। वतमान भौतिकवादी युग मे मानव को धम तथा अध्यात्मवाद की विशेष आवश्यकता है। केवल सासारिक सुखो द्वारा ही मानव शक्ति नही पा सकता, क्योकि सासारिक सुखो का कोई अन्त नहीं है। इस विषय म रॉस अपने विचार प्रकट करते ह, "यदि सभ्यता का नष्ट होने से बचाना है अथवा उसे बबरता मे परिवर्तित होने से बचाना है तो शिक्षा की योजना धम के आधार पर करनी होगी।" अत पाठ्यक्रम म धार्मिक शिक्षा को भी स्थान दिया जाय।

अन्त म हम के० जी० सैयदैन के शब्दो पर भी ध्यान देना चाहिए—
" पाठ्यक्रम का निर्धारण और पाठ्य विषयो के सगठन की समस्या सकुचित और पारिभाषिक अर्थो म शैक्षिक समस्या नहीं, बल्कि इसका सम्बन्ध क्रियाओ के रूप और समाज की सभ्यता, सस्कृति और जीवन दशन मे है। इसमे हम विभिन्न सास्कृतिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओ को सामने रखना आवश्यक है। एक ओर तो सस्कृति की अत्य त महत्त्वपूण आवश्यकताओ का अनुभव करके देखना चाहिए कि किन विषयो और क्रियाओं का अध्ययन नई पीढी के बालको और नवयुवको के लिए सबसे अधिक लाभदायक है। इस दृष्टिकोण से प्रचलित पाठ्यक्रम मे सशोधन एव परिवतन करते रहना चाहिए। दूसरी ओर बालको के स्वभाव का अध्ययन आवश्यक है कि जिससे हमे मालूम हो जाय कि हम उन विषयो को किस क्रम और ढग से विद्यार्थियो के सामने प्रस्तुत करे कि व उनके प्रतिदिन के अनुभवो का अग बनकर उनके बौद्धिक प्रशिक्षण म सहायक हो। किन्तु इस तथ्य को हमेशा याद रखना चाहिए कि पाठ्यक्रम की समस्या का कोई स्थायी हल नही हो सकता, वरन् इसे प्रत्येक पीढी और प्रत्येक काल म पुन हल करने की आवश्यकता पडती है और शिक्षा के सम्बन्ध म सैद्धान्तिक अध्ययन करने वाला और शिक्षको, दोनो का कत्तव्य है कि समय समय पर विद्यालय के पाठ्यक्रम पर आलोचनात्मक दृष्टि डालकर उसम आवश्यकतानुसार परिवतन करते रहे।"

Q Enumerate the subjects that you as a headmaster would include in the curriculum of a junior high school in the order of their importance Discuss the relative merits (B T 1951)

प्रश्न—आप प्रधान अध्यापक की हैसियत से जूनियर हाईस्कूल के पाठ्यक्रम में महत्त्व के क्रम से किन विषयों को रखगे ? आपेक्षिक गुणों का वर्णन करो।

Or

Suggest a suitable curriculum for middle and high school keeping in view the recommendations made by the Secondary Education Commission Give your reason for the choice of the subjects (B T 1955)

माध्यमिक शिक्षा आयोग की सिफारिशो को ध्यान में रखते हुए मिडिल स्कूल तथा हाईस्कूल के लिए उचित पाठ्यक्रम बनाइये। विषयो के चुनाव के लिए कारण बताओ।

Or

Discuss the relative importance of the various subjects, include in the High School Curriculum of Uttar Pradesh (B T 1953)

उत्तर प्रदेश के हाईस्कूल के पाठ्यक्रम में सम्मिलित विभिन्न विषयों के आपेक्षिक गुणो का वर्णन करो।

उत्तर—

विभिन्न स्तरो के लिए पाठ्यक्रम

हमारे देश में शिक्षा संगठन निम्न स्तरों में विभाजित है—

(१) पूर्व प्राथमिक स्तर (Nursery Stage)—इस प्रकार के विद्यालयों की संख्या देश में अत्यन्त अल्प है। इस स्तर पर पाठ्यक्रम में केवल क्रियाओं और खेलों को ही महत्त्व दिया जाता है।

(२) प्राथमिक और उत्तर प्राथमिक स्तर (Primary and Post Primary Stage)—इन स्कूलों का शिक्षण काल कुछ प्रान्तों में ४ वर्ष है तो कुछ में ५ वर्ष। आजकल देश में दो प्रकार के प्राथमिक स्कूल हैं—प्रथम तो वे जो परम्परागत चले आ रहे हैं तथा दूसरे हैं प्राथमिक बेसिक स्कूल। बेसिक स्कूलों में हस्तकला, कृषि, दस्तकारी तथा बागवानी की शिक्षा विशेष रूप से प्रदान की जाती है।

(३) निम्न माध्यमिक स्तर—इन विद्यालयों को मिडिल स्कूल तथा जूनियर हाईस्कूल कहकर भी पुकारा जाता है। इन स्कूलों का काल कहीं पर ३ वर्ष तो कहीं पर ४ वर्ष का होता है।

(४) उच्चतर माध्यमिक स्तर—उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों का संगठन इण्टरमीडिएट की कक्षाओं का प्रथम वर्ष जोड़कर किया गया है। दूसरे शब्दों में,

तीन कक्षाओं ९, १० तथा ११ को मिलाकर उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना की गई है।

यहाँ पर हम निम्न माध्यमिक स्तर तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम के लिए उपयुक्त विषयों का उल्लेख करेंगे—

मुदालियर कमीशन (Secondary Education Commission) के जूनियर हाईस्कूल या मिडिल स्कूलों के पाठ्यक्रम में निम्न विषय रखने की सिफारिश की है—(१) भाषा, (२) गणित, (३) समाज विज्ञान, (४) सामान्य विज्ञान, (५) कला और संगीत, (६) क्राफ्ट, (७) शारीरिक शिक्षा।

(१) भाषा—इस स्तर पर मातृभाषा का अत्यधिक महत्त्व है। मातृभाषा के माध्यम से ही बालक अपने भौतिक तथा सामाजिक जीवन से सम्बन्ध स्थापित करता है। मातृभाषा की शिक्षा प्राथमिक स्तर में ही आरम्भ कर दी जाती है और इस स्तर पर बालक से यह आशा की जाती है कि वह मातृभाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर ले। मातृभाषा की शिक्षा प्रदान करना केवल भाषा शिक्षक का ही कर्त्तव्य नहीं है, वरन् प्रत्येक अध्यापक को बालक की भाषा पर ध्यान देना होगा। रायबर्न के शब्दों में, 'यह सदा ध्यान में रखना चाहिए कि यद्यपि मातृभाषा पाठ्यक्रम में एक अलग विषय के रूप में आयेगी, परन्तु वह प्रत्येक विषय का एक अंग और आधारशिला होगी। प्रत्येक अध्यापक जिस विषय की भी शिक्षा प्रदान करता है, अपने प्रत्येक विषय, अपने प्रत्येक पाठ में मातृभाषा का शिक्षक होता है।"

(२) गणित—इस स्तर पर गणित को भी उचित स्थान दिया जाना चाहिए। एक लेखक के अनुसार "हमारी आधुनिक सभ्यता का आधार भी गणित ही है। आधुनिक युग विज्ञान का युग है। बिना गणित के विज्ञान की खोजों में सफलता मिलना असम्भव है। प्रत्येक प्रयोगात्मक कार्य में नापने, तौलने आदि का बोध गणित के विज्ञान के द्वारा ही सम्भव है। हम दैनिक जीवन में मकान बनवाते हैं, कपड़े बनवाते हैं, जूता पहनते हैं—इन सभी कार्यों में गणित का ज्ञान आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति जीवन में किसी न किसी रूप में गणित का प्रयोग अवश्य करता है।" अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह इस स्तर पर बालकों के अनुभवों तथा जानकारियों को ध्यान में रखकर पाठ्य वस्तु का निर्माण करे।

(३) सामाजिक विषय—सामाजिक विषयों के अन्तर्गत निम्न विषय आते हैं—भूगोल, इतिहास, नागरिकशास्त्र आदि। माध्यमिक शिक्षा-आयोग ने सामाजिक विषयों के महत्त्व पर प्रकाश डाला है—'सामाजिक अध्ययन छात्रों को मानवीय सम्बन्धों का बौद्धिक ज्ञान ही नहीं देता, वरन् वह उनको अपने सामाजिक वातावरण में व्यवस्थित होने की शक्ति भी प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त उनमें उचित आदतों, अभिरुचियों, दृष्टिकोणों, मूल्यों तथा क्षमताओं को विकसित करता है जो सफल सामुदायिक (Group) तथा नागरिक जीवन के लिए अनिवार्य है।" अतः जूनियर स्कूलों के पाठ्यक्रम में सामाजिक अध्ययन को विशेष महत्त्व प्रदान [illegible]

जाय। इन विषयों के अध्ययन से छात्रों में सहयोग, सद्भावना तथा उत्तरदायित्व निभाने की भावनाओं का विकास होता है।

(४) सामान्य विज्ञान—वर्तमान भौतिकवादी युग में विज्ञान का विशेष महत्त्व है। विज्ञान के द्वारा बालक अपने चारों ओर फैले हुए प्राकृतिक विश्व का परिचय प्राप्त कर सकता है। 'सामान्य विज्ञान' के अन्दर भौतिक तथा जीव सम्बन्धी विज्ञान आते हैं। इस विषय के माध्यम से बालक में खोज करने की तथा तर्क करने की आदत डाली जाती है। बालक भौतिक जगत को समझने के साथ साथ वैज्ञानिक ढंग से सोचना भी सीखते हैं। विज्ञान के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए एक लेखक का कथन है—"विज्ञान से विद्यार्थियों के मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य का विकास किया जा सकता है। विज्ञान से हम अपने अवकाश का उपयोग करने में सहायता मिल सकती है—विज्ञान की शिक्षा से व्यक्ति अपनी समस्याओं का हल ढूँढ सकता है।"

(५) कला और संगीत—भावों को व्यक्त करना मानव का जन्मजात स्वभाव है। अपने चारों ओर के जगत में वह जो कुछ भी देखता है वह उसका निर्माण करना चाहता है। छोटे छोटे बालक रचना तथा निर्माण में विशेष आनन्द का अनुभव करते हैं। अतः इस स्तर पर बालकों को विभिन्न कलाओं का ज्ञान कराया जाय। चित्र खींचना, रंग भरना, कागज तथा पढ़ने की वस्तुओं का निर्माण करना आदि पाठ्यक्रम में अवश्य रखा जाय। संगीत का भी विशेष महत्त्व है। प्लेटो का विचार था कि संगीत मस्तिष्क के विकारों को दूर करता है। छोटे छोटे बालक संगीत में विशेष रुचि लेते हैं। अतः यह आवश्यक है कि संगीत को भी पाठ्यक्रम में विशेष स्थान दिया जाय।

(६) शारीरिक शिक्षा—खेलना कूदना बालकों की स्वाभाविक क्रिया है। वे खेल-कूद में विशेष आनन्द का अनुभव करते हैं। खेल कूद द्वारा छात्रों के स्वास्थ्य में वृद्धि होती है। उनका प्रत्येक अंग सुडौल होता है। शारीरिक स्वास्थ्य का मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है। एक सुन्दर नीरोग शरीर में ही एक सुन्दर नीरोग मस्तिष्क रहता है। जो छात्र खेल कूद में पर्याप्त भाग लेते हैं, उनका मस्तिष्क तीव्र गति से काम करता है व पाठ्य-वस्तु को भी सरलता से समझ जाते हैं। उपर्युक्त बातों के गुणों के आधार पर यह आवश्यक हो जाता है कि खेल कूद को पाठ्यक्रम में उचित स्थान दिया जाय। परन्तु इस स्तर पर कठोर व्यायाम न रखा जाय।

उच्चतर माध्यमिक स्तर—मुदालियर कमीशन ने उच्चतर माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम की विविधता पर जोर दिया है। छात्रों की योग्यता तथा रुचियों में विकास हो सके इसके लिए बहुमुखी पाठ्यक्रम (Diversification of course) की योजना प्रस्तुत की। पाठ्यक्रम में विविधता लाने से शिक्षा एक मार्गीय (Unilateral) न रहकर बहुमुखी (Multilateral) हो जायगी। इस प्रकार के पाठ्यक्रम को अपनाने से छात्रों को सुविधा होगी कि वे अपनी रुचि और योग्यता

के अनुसार विषय चुन सकेंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पाठ्यक्रम को निम्न ७ समूहों में विभाजित किया गया है—

(१) सामाजिक विज्ञान या मानव विज्ञान (Humanities)
(२) विज्ञान (Science)
(३) टेक्नीकल या औद्योगिक विषय
(४) वाणिज्य
(५) कृषि
(६) ललित कलाएँ (Fine Arts)
(७) गृह विज्ञान (केवल कन्याओं के लिए)

उपर्युक्त समूहों में से किसी भी समूह के विषयों को छात्र ले सकते हैं। किन्तु समस्त समूहों के छात्रों को (१) भाषा, (२) सामान्य विज्ञान, (३) समाज-ज्ञान, (४) शिल्प (Craft) का अध्ययन अनिवार्य रूप से करना पड़ेगा। उपर्युक्त पाठ्यक्रम का संगठन छात्रों के व्यक्तित्व का विकास करने में पूर्ण सहायक होगा। छात्र अपनी योग्यता तथा रुचि के अनुसार विषय चुन सकेंगे। दूसरे इस प्रकार के पाठ्यक्रम को अपना कर छात्र माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् ही जीविका का समाधान खोज सकेंगे। कुछ विषय ऐसे होते हैं जिनका ज्ञान प्राप्त करना प्रत्येक नागरिक के लिए आवश्यक होता है। इस पाठ्यक्रम के अन्दर उन विषयों को ही केन्द्र विषय (Core subjects) माना गया है जो कि जनतन्त्र के लिए परम आवश्यक है, जैसे—भाषा, सामान्य विज्ञान, समाज विज्ञान तथा शिल्प। पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा को स्थान देकर वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास किया गया है। माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षण प्राप्त करने वाले छात्रों की किशोर अवस्था होती है। इस अवस्था में छात्रों की विभिन्न रुचियों को रचनात्मक कार्यों की ओर लगाना विद्यालय का परम कर्तव्य है। यदि छात्रों की विभिन्न रुचियों को ठीक मार्ग पर नहीं लगाया गया तो उनमें अनुशासनहीनता दिन प्रति दिन बढ़ती जायगी, परन्तु इस पाठ्यक्रम के अन्दर छात्रों की रुचियों तथा रचनात्मक शक्तियों को प्रकट करने का पर्याप्त अवसर दिया गया है।

वर्तमान पाठ्यक्रम के दोष

Q How far is it true to say that the high school curriculum in our country is unduly dominated by the requirements of the universities? What reforms do you suggest? (P U 1952)

प्रश्न—यह कहना कहाँ तक सत्य है कि हमारे देश में विश्वविद्यालयों की आवश्यकताओं का हाईस्कूल के पाठ्यक्रम पर अनुचित रूप से अधिकार है? सुधारात्मक सुझाव दीजिए।

उत्तर—'सैकण्डरी एजूकेशन कमीशन' के मतानुसार वर्तमान पाठ्यक्रम के आगे लिखे दोष हैं—

(१) पाठ्यक्रम अत्यन्त संकुचित है—वर्तमान पाठ्यक्रम का सबसे बड़ा दोष संकीर्ण होना है। पाठ्यक्रम का उद्देश्य छात्रों को विश्वविद्यालय में प्रवेश करने के लिए तैयार करना है। इस प्रकार पाठ्यक्रम विश्वविद्यालयीय शिक्षा के अधीन हो जाता है। माध्यमिक विद्यालयों के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम में पूर्णता का अभाव है। उसका कोई निश्चित लक्ष्य नहीं है। छात्र अन्धकार में पड़े हुए बिना लक्ष्य के शिक्षा प्राप्त करते रहते है। माध्यमिक शिक्षा आयोग में भी आलोचना की गई है—'The present curriculum has no goal in view It is true that it is narrowly conceived mainly in terms of admission requirements of the colleges' आगे और स्पष्ट करते हुए उसमें उल्लेख किया गया है—The demands of the collegiate education still hold sway over the entire field of school education in India"

(२) केवल पुस्तकीय तथा अव्यावहारिक (Bookish and Theoretical)—माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम पुस्तकीय ज्ञान से आक्रान्त है। इसका प्रमुख कारण विश्वविद्यालयीय शिक्षा का पुस्तकीय होना है। जैसा कि माध्यमिक शिक्षा-आयोग ने लिखा है—'Owing to the great influence that the college curriculum exercises over the secondary school curriculum the latter has become unduly bookish and theoretical' छात्रों को केवल उन विषयों को पढ़ना पड़ता है, जिनकी कि विश्वविद्यालयीय शिक्षा प्राप्त करने के लिए आवश्यकता होती है। बालक के सर्वाङ्गीण विकास की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता।

(३) विषयों की अधिकता (It is over crowded)—अन्य दोषों के समान वर्तमान पाठ्यक्रम में विषयों की अधिकता भी एक प्रमुख दोष है। छात्रों को अनेक विषय पढ़ने पड़ते है जिनका कि उनके जीवन में कोई विशेष महत्त्व नहीं होता है। अधिक विषय पढ़ने के कारण उनमें रटने की आदत पड़ जाती है। वे विषय को बिना समझे ही रट डालते है। इस प्रकार की शिक्षा में चिन्तन और तर्क को कोई स्थान नहीं मिलता। विशेषज्ञ, पाठ्यक्रम में अपने विषयों को अधिक महत्त्व देने के लिए अनेक बेकार बातें रख देते है। मुख्यतया इतिहास में छोटी कक्षाओं के पाठ्यक्रम तक में भी अनेक व्यर्थ की घटनाएँ भर दी जाती हैं जिनका कुछ भी सांस्कृतिक मूल्य नहीं है।

(४) पाठ्यक्रम का समन्वय-रहित होना—पाठ्यक्रम में विषयों को एक दूसरे से अलग रखा गया है। विभिन्न विषयों में जो सम्बन्ध होता है, उसका तनिक भी ध्यान नहीं रखा गया है। प्रत्येक विषय को एक दूसरे से अलग करके पढ़ाया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा के समन्वय के सिद्धान्त को नहीं अपनाया जाता।

(५) व्यावहारिकता का अभाव—पाठ्यक्रम के अन्दर व्यावहारिक तथा अन्य क्रियाओं को पर्याप्त स्थान प्रदान नहीं किया गया है। अन्य क्रियाओं को पाठ्य

क्रम में स्थान मिलना चाहिए, क्योंकि बिना इनके बालक के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास सम्भव नहीं है। यह दुख की बात है कि वर्तमान पाठ्यक्रम में इस बात की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता।

(६) किशोर छात्रों की विभिन्न आवश्यकताओं तथा रुचियों की उपेक्षा—किशोर अवस्था में छात्रों में विभिन्न रुचियाँ तथा किसी विशेष विषय के प्रति झुकाव उत्पन्न होता है। परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि वर्तमान पाठ्यक्रम में छात्रों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं को तनिक भी स्थान नहीं दिया जाता। सब बालकों को विद्यालय में एक ही प्रकार का पाठ्यक्रम अपनाना पड़ता है। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने इस दोष की ओर संकेत किया है "In India a few states have made an attempt to introduce different types of secondary courses for pupils of different abilities But on the whole, the present curriculum does not make adequate provision for this diversity of tastes and talents'

(७) परीक्षाओं की प्रधानता (Domination of Examination)—इस बात में सन्देह नहीं है कि वर्तमान पाठ्यक्रम परीक्षाओं से बुरी तरह प्रभावित है। विद्यालय में जो कुछ पढ़ाया जाता है वह सब परीक्षा पास करने के उद्देश्य से पढ़ाया जाता है। अध्यापक, छात्र तथा अभिभावक सभी ने परीक्षा पास करना शिक्षा का उद्देश्य मान लिया है।

(८) औद्योगिक तथा व्यावसायिक शिक्षा का अभाव (Lack of Technical and Vocational Education)—वर्तमान पाठ्यक्रम की सबसे बड़ी दुर्बलता, व्यावसायिक तथा औद्योगिक शिक्षा को स्थान न देना है। अनेक बार अनेक शिक्षा-कमीशनों ने व्यावसायिक शिक्षा पर बल दिया पर यथार्थ रूप में व्यावसायिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में स्थान नहीं मिल सका। अभी तक हमारी शिक्षा पूर्णरूप से साहित्यिक बनी हुई है। माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् किसी भी प्रकार के व्यवसाय को अपनाने में छात्र अपने को असमर्थ पाते हैं।

१०

छात्रों का वर्गीकरण

CLASSIFICATION OF STUDENTS

Q What principles do you consider satisfactory for classification of students in school ? And why ? What arrangement would you suggest for education of exceptional childern ?

(P U 1950)

प्रश्न—छात्रों के वर्गीकरण के सम्बन्ध मे आप किन सिद्धान्तों को सन्तोषप्रद समझेंगे ? और क्यों ? असाधारण बालकों की शिक्षा के लिए आप कैसी व्यवस्था का उचित समझेंगे ?

Or

What fundamentals would you bear in mind in the matter of classification of pupils ? What arrangement would you make for exceptional children ?

(U P 1950)

छात्रों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में आप किन आधारभूत बातों को ध्यान में रखोगे ? असाधारण बालकों की शिक्षा के लिए क्या व्यवस्था करोगे ?

उत्तर—

वर्गीकरण का अर्थ और उसकी आवश्यकता

विद्यालय के अन्दर सभी प्रकार के बालक प्रवेश लेते है जिनमे कुछ उच्च स्तरीय योग्यता वाले होते है तथा कुछ मन्द बुद्धि वाले। ऐसी दशा मे उनकी शिक्षा-व्यवस्था करना एक कठिन कार्य है। व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक छात्र को शिक्षा प्रदान करना आज के युग मे प्राय सम्भव नही है। इस कारण ही पाठशाला के वर्षारम्भ मे ही छात्रो के वर्गीकरण की आवश्यकता होती है। संगठन की सरलता के लिए कक्षा को इकाई माना गया है। विद्यालय के अन्दर अनेक कक्षाएँ होती हैं जिनमे अध्यापन का प्रबन्ध किया जाता है। इस प्रकार की व्यवस्था के अन्दर विद्यालय मे आए छात्रो का मानसिक और बौद्धिक आधार पर वर्गीकरण किया जाता है।

वर्गीकरण से हमारा आशय उस प्रकार की व्यवस्था से है जिसमे एक सी ग्यता तथा मानसिक आयु वाले छात्रो को एक कक्षा म पढाया जा सके। प्रश्न ता है कि इस प्रकार की व्यवस्था मे लाभ क्या ? इस विषय म गेद और शर्मा कथन उल्लेखनीय है "आधुनिक काल म पाठयक्रम के विस्तृत रूप होने, विभिन्न नोवैज्ञानिक खोजो के होने तथा परम्परागत प्रणालियो के खण्डित होने के कारण ह आवश्यक हो गया है कि शिक्षण के लिए विद्यार्थियो को उनकी योग्यता, आयु, चि एव अभिरुचि के आधार पर उचित वर्गो मे बाँटा जाए जिससे वे अधिक से धिक ज्ञान प्राप्त कर सकें।"

देखने म यह काय अत्यन्त सरल ज्ञात होता है, परन्तु व्यावहारिक रूप म ह अत्यन्त कठिन काय है। किसी विद्यालय के प्रधान अध्यापक तथा अध्यापको ी योग्यता का अनुमान उनके द्वारा किये गये वर्गीकरण द्वारा लगा सकते है। विद्यालय की प्रगति बहुत कुछ अच्छे वर्गीकरण पर निभर करती है। एक अच्छे वर्गीकरण स हमारा तात्पय एसी कक्षाओ का निर्माण करना है जिनमे एक सी मानसिक आयु तथा योग्यता वाले बालक पढ़ते हो। पर तु एसा करने के लिए हमे बालको के विषय म पूण जाच पडताल करनी होगी और इस बात का पूरा पूरा पता लगाना होगा कि कौन-सा बालक किस कक्षा के योग्य है। वर्गीकरण करते समय उसे पूणतया निष्पक्ष होना चाहिए। यदि किसी बालक को उसकी योग्यता के अनुसार कक्षा म स्थान न दकर नीच की कक्षा म प्रवेश कर दिया गया तो यह बालक के प्रति घोर अ याय होगा। उसका एक वष तो नष्ट होगा ही, साथ ही उसको एक मानसिक आघात भी लगेगा। निराशा तथा उदासीनता उसे बुरी तरह से घेर लेगी। पर तु साथ ही इसके विपरीत छात्र को बिना सोचे समझे किसी ऊँची कक्षा मे चढा दिया जाय तो इसका प्रभाव विद्यालय के स्तर पर पडेगा। वर्गीकरण की निम्न कारणो से आवश्यकता पडती है

(१) अध्यापन की सुविधा—अध्यापन काय को अच्छा बनाने के लिए भी यह आवश्यक है कि एक कक्षा के अ दर समान मानसिक आयु तथा योग्यता वाले छात्र पढे। इस प्रकार की व्यवस्था से अध्यापक को पढाने म अत्यन्त सरलता रहगी, क्योकि कक्षा म एक सी योग्यता तथा रुचि के बालक होगे। इस कारण उसे किसी एक बालक को अलग से नही पढाना पडेगा।

(२) समय की बचत—वतमान काल म एक एक कक्षा मे पचास पचास छात्र तक पढते है, इस कारण प्रत्येक छात्र की व्यक्तिगत रूप म देखभाल करना अत्य त कठिन कार्य है। यदि कोई अध्यापक एसा करता भी है तो उसे अत्यधिक समय दना पडेगा। इस बुराई स बचने क लिए उसे समान योग्यता तथा मानसिक आयु वाले छात्रो को एक साथ रखना उचित है। प्रत्येक बालक के लिए अलग अध्यापक की नियुक्ति करना अत्य त कठिन काम है।

(३) अनुशासन स्थापन में सहायक—जब कक्षा मे एक-सी योग्यता वा

छात्र होते है तो अनुशासन की स्थापना म सरलता रहती है। एक सी योग्यता वाले छात्र एक साथ प्रगति करते हैं। परिणामस्वरूप उनमें हीनता की भावना नहीं आती। दूसरे जब बालकों की समझ म विषय आ जाता है तो वे अनुशासन में रहते है।

(४) सामाजिकता की भावना का विकास—वर्गीकरण से सामाजिकता की भावना का विकास होता है, बालक एक दूसरे के निकट आते है तथा मिलकर रहना सीखते है। व्यक्तिगत शिक्षण छात्रों की सामाजिक निपुणता म वृद्धि करता है।

वर्गीकरण की समस्याएँ

(१) छात्रो के ज्ञान के स्तर म विभिन्नता।
(२) विद्यालयो म छात्रो की सख्या म वृद्धि।
(३) छात्रो की रुचियो म विभिन्नता।
(४) पाठ्यक्रम का विस्तृत होना।
(५) छात्रो के सामाजिक तथा आर्थिक वातावरण म भेद।
(६) आवश्यकतानुसार अध्यापको का अभाव।
(७) छात्रो की शारीरिक क्षमताओ म अन्तर।
(८) आवश्यकतानुसार कक्षा भवन सामजस्य आदि का अभाव।

वर्गीकरण का आधार

छात्रो का वर्गीकरण निम्न आधारो पर किया जाता है—

(१) आयु के आधार पर—आयु के आधार पर वर्गीकरण सरलता से किया जा सकता है। इसके अनुसार समान आयु के बालको को एक ही कक्षा म रखा जाय। परन्तु इस प्रकार के वर्गीकरण से सबसे बडा नुकसान यह है कि समान आयु के बालको का मानसिक स्तर एक सा नही होता, इस कारण इस प्रकार का वर्गीकरण प्राय सफल नही रहता। दूसरे समान आयु के बालक स्वभाव, रुचि, योग्यता आदि मे भी प्राय असमान रहते है।

(२) मानसिक आयु के आधार पर—इस प्रकार के वर्गीकरण म छात्रो की मानसिक आयु (Mental age) का पता लगाकर एक सी मानसिक आयु के छात्रो को एक कक्षा म रखा जाता है। पर तु इस प्रकार की व्यवस्था म भी एक दोष रह जाता है। एक सी मानसिक शक्ति वाले छात्रो की रुचि एक सी नही हो सकती। प्रत्येक बालक की रुचि दूसरे बालक से भिन्न होती है। मानसिक आयु का पता लगाने के बाद भी यदि कुछ छात्रो म समानता पाई जाती है तो विशिष्ट बुद्धि (Specific Intelligence) म हमको अवश्य अन्तर मिल जायगा।

मानसिक आयु का पता लगाने के लिए बुद्धि-परीक्षाओ (Intelligence Tests) को प्रयोग म लाया जाता है।

(३) योग्यता का आधार—योग्यता के आधार पर वर्गीकरण करने का तलब छात्रों को किसी विषय की योग्यता के आधार पर विभिन्न वर्गों में बाँटा जाता है। इस प्रकार के वर्गीकरण से बालकों को योग्यतानुसार शिक्षा प्राप्त करने का वातावरण मिल जाता है तथा एक वर्ग के छात्रों की योग्यता में अन्तर भी थोड़ा होता है। परिणामस्वरूप अध्यापक को विषय समझाने में भी सरलता रहती है और छात्रों को भी विषय समझने में सरलता रहती है। परन्तु यह बात ध्यान में रखने की है कि एक वर्ग के छात्र केवल एक ही विषय में समान योग्यता न रखकर और विषयों में समानता रखते हैं। यदि गणित में वर्गीकरण समान योग्यता के आधार पर किया जाय परन्तु विज्ञान में उसी वर्ग के छात्र असमानता प्रदर्शित करते हों तो इस प्रकार के वर्गीकरण को हम सफल वर्गीकरण नहीं कह सकते।

योग्यतानुसार वर्गीकरण में बालक की पिछली सफलता का लेखा जोखा उसकी वर्तमान प्रगति तथा रुचि आदि का पता अध्यापक को अवश्य लगा लेना चाहिए। बालक की योग्यता का पूरा पूरा पता लगाने के लिए वर्तमान प्रचलित नई प्रणाली की परीक्षा (New Type Tests) तथा बुद्धि परीक्षा (Intelligence Tests) आदि प्रचलित हैं, जिनके द्वारा भली प्रकार से योग्यता का पता लगाया जा सकता है। इस प्रकार की परीक्षा द्वारा योग्यता का पता लगाने के बाद ही वर्गीकरण भी सरलता के साथ किया जा सकता है। कुछ विद्वानों के अनुसार योग्यतानुसार वर्गीकरण करना जनतन्त्र की भावना पर आघात करना है। इन विद्वानों के मतानुसार प्रत्येक बालक को कक्षा में हर प्रकार से समान अवसर मिलना चाहिए तथा समान रूप से ध्यान दिया जाय, परन्तु योग्यतानुसार वर्गीकरण के अन्दर सबसे बड़ा दोष यह है कि अधिक योग्यता वाले छात्रों पर अधिक ध्यान दिया जाता है तथा कम योग्यता के छात्रों पर कम।

(४) रुचि के आधार पर—विद्यालय के अन्दर विभिन्न रुचियों वाले छात्र प्रवेश लेते हैं। प्रत्येक छात्र की अपनी रुचि होती है। समान रुचि वाले छात्रों को एक वर्ग में सरलता के साथ रखा जा सकता है। एक ही रुचि के बालकों को पढ़ाने में भी अध्यापक को सुविधा रहती है तथा छात्र भी अपने अनुकूल वातावरण पाकर पढ़ने में खूब ध्यान लगा सकते हैं। सन् १९४८ में आचार्य नरेन्द्रदेव कमेटी ने भी रुचि के सिद्धान्त पर वर्ग बनाये थे जिनमें साहित्यिक, वैज्ञानिक आदि थे। प्रत्येक छात्र अपनी रुचि के अनुसार वर्ग चुन लेता था। रुचि के अनुसार वर्गीकरण करने में छात्र अपनी रुचि के विषय को अत्यन्त ध्यानपूर्वक पढ़ते हैं। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि रुचि तथा अवधान साथ साथ चलते हैं, जिस विषय में छात्रों की रुचि होगी उसी विषय में ध्यान भी अधिक देंगे। परन्तु समस्त बालकों की रुचि के अनुकूल पाठ्यक्रम का निर्माण करना अत्यन्त कठिन है। यही इस प्रकार के वर्गीकरण का सबसे बड़ा दोष है।

अन्त में वर्गीकरण करते समय इस बात को भी नहीं भूलना है कि कुछ विद्यालय के अन्दर शारीरिक तथा मानसिक दुर्बलता साथ लेकर आते हैं। सामान्य छात्रों के साथ बैठाकर पढ़ाना अनुचित है। प्रधान अध्यापक का कर्तव्य है कि इस प्रकार के छात्रों के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय। नेत्र रोग वाले छात्रों को पढ़ने लिखने की विशेष सुविधाएँ प्रदान की जाय। इस प्रकार कम सुनने वाले छात्रों के लिए भी एक विशेष वर्ग बनाया जाय।

(५) ट्रिपिल ट्रैक प्लान—उपर्युक्त सिद्धान्तों के अतिरिक्त कुछ और भी सिद्धान्त हैं जिनके आधार पर वर्गीकरण किए गए हैं। अमरिका के अन्दर ... वर्ष से वर्गीकरण की एक योजना चल रही है जिसके अनुसार विद्यालयों में पाठ्यक्रम को विभिन्न कालों (Periods) द्वारा पूरा किया जाता है। एक सामान्य बुद्धि का छात्र प्राथमिक कोर्स को छः वर्षों में पूरा करता है और तीव्र बुद्धि ... उसी कोर्स को पाँच साल में कर लेता है और इसी प्रकार यदि अति तीव्र बुद्धि का बालक उसी कोर्स को चार साल में पूरा कर लेता है तो उसे रोका नहीं जाता। इस प्रकार हम देखते हैं कि सब बालक एक कोर्स को ही पूरा करते हैं परन्तु तीव्र बुद्धि वाले बालक अपना कोर्स और छात्रों की अपेक्षा शीघ्र पूरा करते हैं। यह योजना का सर्वप्रथम कैम्ब्रिज के अन्दर लागू किया गया था। इसे अंग्रेजी में ट्रिपिल ट्रैक प्लान (Triple Track Plan) कहते हैं।

(६) विभिन्न धाराओं के अनुसार—इस योजना के निर्माता इंगलैण्ड के प्रसिद्ध विद्वान् हैडो (Hadow) थे। अपनी इस नवीन योजना में उन्होंने जूनियर स्कूलों के पाठ्यक्रम की दो धाराओं का निर्माण किया। प्रथम धारा में वे छात्र रखे गये जो कुशाग्र और साधारण बुद्धि के हैं और दूसरे में मन्द बुद्धि (Below normal) के छात्रों को रखा गया। उच्च स्तर पर वर्गीकरण A, B, C क्रम के आधार पर रखा गया। A वर्ग में तीव्र बुद्धि के छात्र रखे गये, B वर्ग में साधारण प्रतिभा वाले तथा C वर्ग में मन्द बुद्धि के छात्रों को स्थान दिया गया। यह सत्य है कि यह योजना किसी सीमा तक उपयोगी सिद्ध हो सकती है, परन्तु इसको प्रयोग में लाने पर छात्रों में पृथक्करण की भावना जन्म लेती है। मन्द बुद्धि बालक अपने अन्दर हीनता की भावना का अनुभव करने हैं।

(७) सामाजिक परिपक्वता (Social Maturity) का आधार—कुछ विद्वानों के अनुसार छात्रों का वर्गीकरण सामाजिक परिपक्वता के आधार पर किया जाना चाहिए। इस प्रणाली में छात्रों को सामाजिक आधार पर विभाजित किया जाता है और उसी आधार पर वर्ग बना लिए जाते हैं।

वर्गीकरण के सामान्य सिद्धान्त

(१) छात्रों के अभिभावकों से सम्पर्क स्थापित किया जाय—छात्रों के व्यक्तित्व को भली प्रकार समझने के लिए यह आवश्यक है कि बालकों के अभिभावकों

अभिभावकों के परस्पर मिलते रहने से छात्र अपने अध्यापकों की आज्ञा का पालन प्रारम्भ करने लगते हैं और इस प्रकार विद्यालय में अनुशासन स्थापित करने में परम सहायता प्राप्त होती है।

(२) अनुशासन के नकारात्मक साधन दण्ड
(Negative Means Punishment)

Q What are the various types of punishment used in school? Discuss their relative merits and demerits (B T 1951)

प्रश्न—विद्यालय में प्रयुक्त होने वाले दण्ड के कौन कौन से भेद हैं? उनके सापेक्षिक गुण तथा दोषों पर प्रकाश डालो।

उत्तर—पाठशाला में छात्रों को दण्ड देने पर शिक्षा-शास्त्रियों के विभिन्न मत हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार छात्रों को दण्ड देना परम आवश्यक है तथा कुछ विद्वानों के मतानुसार छात्रों के मस्तिष्क में ग्रंथियाँ उत्पन्न कर देता है और उनका व्यक्तित्व कुण्ठित हो जाता है। इस मत के पक्ष में मुख्यतया आधुनिक विचारधारा के मनोवैज्ञानिक हैं। इसके विपरीत एक युग में शिक्षालयों में दण्ड को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था। हमारे देश में ही नहीं परन्तु विदेशों में भी दण्ड को प्रमुख स्थान दिया जाता था। स्कूलों में प्रत्येक अध्यापक एक बेंत रखता था, यदि कोई छात्र किसी प्रकार का पढ़ने में या उत्तर देने में भूल करता था, तो अध्यापक बिना किसी संकोच के बेंत का प्रयोग छात्र के ऊपर करता था। पढ़ने लिखने में भूल करने के अतिरिक्त पाठशाला में अनुशासन भंग करने वाले छात्रों को भी कठोर दण्ड दिये जाते थे। धीरे धीरे दण्ड की प्रधानता विद्यालयों में अत्यधिक हो गई तथा तनिक सी भूल पर अध्यापक छात्रों को कठोर दण्ड देना अपना कर्त्तव्य समझने लगे। विद्यालयों में दण्ड का आतंक सा छाया रहता था। परिणामस्वरूप छात्र पढ़ने लिखने तथा विद्यालय जाने में घबराते थे।

मनोविज्ञान का शिक्षा पर प्रभाव पड़ने के साथ साथ शिक्षा में दण्ड को अत्यधिक महत्त्व देने के विरोध में भी आवाज उठने लगी। कुछ मनोविज्ञान शास्त्री छात्र को दण्ड देने की अपेक्षा स्वतन्त्रता प्रदान करने के पक्ष में हैं। उनके मतानुसार दण्ड के आधार पर स्थापित किया गया अनुशासन अस्थायी अनुशासन होता है। दूसरे शब्दों में, जब तक छात्र के ऊपर भय रहता है तब तक वह अनुशासन का पालन करता है। परन्तु भय के हटते ही वह स्वच्छन्द आचरण करने लगता है। इस प्रकार दण्ड पर आधारित अनुशासन क्षणिक होता है तथा छात्र को विद्रोही बनाता है।

कुछ शिक्षा शास्त्री दण्ड का इस कारण भी हानिकारक मानते हैं, क्योंकि दण्ड के भय से छात्र मन की बात अध्यापक के सामने खोलकर नहीं कह पाता। परिणामस्वरूप उसका व्यक्तित्व कुण्ठित हो जाता है तथा उसके मस्तिष्क में अनेक ग्रंथियाँ

पड़ जाती है। छात्र अध्यापक को श्रद्धा की दृष्टि से देखने के बजाय मन ही मन में घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं परिणामस्वरूप गुरु शिष्य सम्बन्ध मधुर होने के अपेक्षा कटु हो जाते हैं। छात्रों के लिए पढ़ना भार हो जाता है, विद्यालय में जाना उनके लिए एक मुसीबत का सामना करना हो जाता है।

प्रजातन्त्र के युग में दण्ड को और भी अधिक हेय दृष्टि से देखा जाने लगा है। राजनैतिक क्षेत्र में जिस प्रकार स्वतन्त्रता को अधिक महत्त्व दिया गया है, उसी प्रकार से पाठशालाओं में भी बालक की स्वतन्त्रता में विश्वास प्रगट करने की प्रवृत्ति आ गई है। अब विद्यालयों में भय के स्थान पर स्नेह और प्रेम से अनुशासन स्थापित करने पर बल दिया जाता है। वर्तमान काल में अध्यापक शिक्षा का केन्द्र न होकर बालक शिक्षा का केन्द्र है। उसे मार पीटकर अनुशासन में रखना आजकल पूर्णतया अनुचित माना जाता है।

दण्ड की आवश्यकता

यह सत्य है कि दण्ड का अत्यधिक प्रयोग छात्रों में विद्रोह की भावना उत्पन्न करता है, और उनके व्यक्तित्व के विकास में बाधा का कार्य करता है। परन्तु साथ ही हम व्यावहारिकता को भी नहीं भुलाना है। विद्यालयों में हर प्रकार के छात्र आते हैं, उन सबके साथ प्रेम और स्नेह से काम निकालना अत्यन्त कठिन है। जिस प्रकार समाज के नियमों का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को राज्य अथवा सरकार द्वारा दण्ड दिया जाना आवश्यक है उसी प्रकार पाठशाला के नियमों का उल्लंघन करने वाले छात्रों को भी दण्ड देना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार अनुशासन स्थापित करने का दण्ड एक साधन है। ड्रेवर ने दण्ड को एक ऐसी आवश्यक बुराई बताया है, जो कि भविष्य में आने वाली अन्य बुराइयों को रोकती है।

विद्यालय में असंख्य छात्र, विभिन्न परिस्थितियों तथा विभिन्न वातावरण में पल आते हैं। यह सम्भव नहीं कि समस्त छात्रों के माँ बाप सद् आचरण वाले होंगे, तथा बालक उनसे सदा अच्छी बातें ग्रहण करने की प्रेरणा लेते होंगे। उनमें से कुछ अवश्य ही लापरवाह आवारा तथा स्वभाव से ही अपराध की ओर मुड़ने वाले होंगे। इस प्रकार के छात्र स्वेच्छा से कभी भी अनुशासन का पालन नहीं कर सकते। उनको मार्ग पर लाने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उनको अनुशासनहीनता प्रदर्शित करने पर दण्डित किया जाय।

माध्यमिक पाठशालाओं में छात्रों की किशोरावस्था होती है। वे अपना भला बुरा नहीं सोचते। पाठशाला के चरित्रहीन तथा अनुशासनहीन छात्र विद्यालय के समस्त वातावरण को गन्दा कर देते हैं। यदि उनको दण्ड या भय के द्वारा नहीं रोका जाय तो विद्यालय का समस्त वायुमण्डल दूषित हो जाता है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि प्रत्येक प्रकार की आदत प्रोत्साहित करने पर दृढ़ हो जाती है तथा दमन करने पर धीरे धीरे छूट जाती है। इस कारण छात्रों का बुरी आदतों से छुटकारा दिलाने के लिए कभी-कभी दण्ड का प्रयोग कर भी लिया जाय तो कोई दोष नहीं।

स्कूल समाज का लघु रूप है। जिस प्रकार समाज अपने प्रत्येक सदस्य के अधिकारो की रक्षा के लिए तत्पर रहता है तथा समाज विरोधियो को दण्ड देता है उसी प्रकार स्कूल का भी कर्त्तव्य है कि वह अपने सदस्यो के अधिकारो की रक्षा करे तथा उन छात्रो को, जो दूसरो के हितो म वाधा डालते हैं, दण्ड दे।

दण्ड को हम पूणतया व्यथ इस कारण से भी नहीं कह सकते हैं क्योकि ससार के प्रत्येक राज्य न दण्ड को किसी न किसी रूप म अपना रखा है। राज्य के क्षेत्र म दण्ड ने चमत्कारी प्रभाव दिखाये ह। इस कारण दण्ड को पाठशाला मे किसी सीमा तक प्रयोग करना अनुचित नहीं है। दूसरे प्रकृति भी भूलो के लिए किसी व्यक्ति को क्षमा नही करती वह किसी न किसी रूप म अपने नियमो का उल्लघन करने वाले को दण्ड द ही देती है। विद्यालय मे अनेक एस अवसर आते हैं जब दण्ड देना आवश्यक हो जाता है तथा दण्ड न देने पर वुरा प्रभाव पडने की सम्भावना रहती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि दण्ड प्रणाली दोष युक्त होते हुए भी व्यवहार की दृष्टि से आवश्यक है, उसे हम पूणतया नही त्याग सकते।

दण्ड के प्रयोजन (Purposes of Punishment)

दण्ड की आवश्यकताओ पर विचार कर लेन के वाद अव हम यह देखना है कि दण्ड प्रदान करने के क्या प्रयोजन हैं।

(१) प्रतिरोधक (Preventive)—दण्ड प्रदान इस कारण से किये जायें कि छात्र भविष्य म पुन अपराध न करे। दूसरे शब्दो म दण्ड द्वारा बालक पुन अपराध करने का साहस न करे। इस प्रकार दण्ड का उद्देश्य अपराधो को रोकना है।

(२) प्रतिवादक (Retributive)—दण्ड जो भी प्रदान किये जाते हैं वे अपराधो के अनुकूल होने चाहिए। यदि छात्र किसी अपने साथी के घूँसा मारता है तब अध्यापक का भी कत्तव्य है कि वह भी छात्र के घूँसा मारकर उसके अनुचित काय का दण्ड द। इस प्रकार छात्र को दण्ड द्वारा यह वताना है कि उसका अपराध किस सीमा तक गम्भीर है।

(३) अवरोधात्मक (Offensive)—दण्ड का तीसरा प्रयोजन छात्रो को यह वताना है कि नियमो का उल्लघन नहीं किया जा सकता। नियमो का उल्लघन करने वाले छात्र को दण्डित कर देन से दूसरे छात्र नियम भग करने का साहस नही करते।

(४) उदाहरणात्मक (Examplary)—दण्ड प्रदान करने का चौथा प्रयोजन छात्रो के सामने उदाहरण रखना है। यदि एक छात्र शरारत करता है, और उसे उस शरारत के लिए दण्डित किया जाता है, तो दूसरे छात्रो के लिए उस छात्र को दण्डित किया जाना एक उदाहरण हो जाता ह। छात्रो पर इसका गहरा प्रभाव पडता है, व इस उदाहरण को ध्यान म रखते हैं और पुन अपराध नही करते हैं।

इस प्रकार दण्ड का प्रयोजन बदला न लेकर छात्रों के सामने उदाहरण प्रस्तुत करना है।[1]

(५) सुधारात्मक प्रयोजन (Reformatory)—दण्ड का मुख्य प्रयोजन छात्र को सुधारना है। दण्ड द्वारा हम छात्र के अन्दर की बुराइयों का दमन करते हैं। दण्ड का अन्तिम प्रयोजन छात्र को उचित मार्ग पर लाना है जिससे जिसको दण्डित किया गया है, वह दण्ड की पीड़ा से पुनः अपराध न करे तथा दूसरे छात्र दिये गये दण्ड से शिक्षा लें।

दण्ड के विभिन्न रूप (Forms of Punishment)

दण्ड प्रदान करने के विभिन्न रूप होते हैं। अपराध की गम्भीरता के अनुसार दण्डों के विभिन्न रूपों में से किसी एक को परिस्थिति के अनुसार अपनाया जा सकता है। नीचे हम दण्ड के विभिन्न रूपों का उल्लेख करेंगे—

(१) फटकार या झिड़की (Reproof)—किसी छात्र द्वारा कक्षा में अनुशासन भंग करने पर सबके सामने डाँटने फटकारने से व्यापक प्रभाव पड़ता है। डाँट डपट कर उसके आत्म सम्मान को चोट पहुँचाई जाती है। परिणामस्वरूप वह पुनः अनुशासन भंग करने का साहस नहीं करता।

(२) स्कूल के बाद रोकना (Detention)—इस प्रकार का दण्ड उन छात्रों को दिया जाता है जो देर से आते हैं, कक्षा कार्य तथा गृह कार्य करके नहीं लाते। इस प्रकार के अपराध करने वाले छात्रों को स्कूल के बन्द होने के बाद रोका जा सकता है और उन्हें घर तब जाने दिया जाय, जब वे दिया हुआ कार्य समाप्त कर लें। स्कूल के बाद अधिक समय तक रोकना पूर्णतया अनुचित है इससे छात्र के मन में विद्यालय के प्रति घृणा जाग्रत होती है।

(३) जुर्माना (Fines)—अधिकांश विद्यालयों में छात्र के देर से आने पर जुर्माना किया जाता है। जुर्माना करना एक प्रकार का आर्थिक दण्ड है जो अभिभावकों पर पड़ता है। इस दण्ड को देने का एकमात्र उद्देश्य तो यह बताना है कि उनकी लापरवाही के कारण ही छात्र स्कूल में देर से आता है। परन्तु कभी कभी जुर्माने का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। छात्र अपने माँ बापों से बहाना बनाकर दाम ले आते हैं और जुर्माना पूरा देते हैं। इस कारण से जुर्माने के साथ साथ छात्रों के माँ बापों को सूचना देना भी परम आवश्यक है।

(४) अधिकारों तथा सुविधाओं से वंचित करना (Deprivation of Privileges)—यह दण्ड का प्रभावशाली ढंग है। छात्र द्वारा अनुशासन भंग करने पर, उससे उन समस्त सुविधाओं को छीना जा सकता है जो अन्य छात्रों को प्राप्त

---

1 School punishment is not vengeance Its object is training, first of all the training to worng doer, next training to other boys by his example
—Thring.

है। सध्या समय जब समस्त बालक विद्यालय मे खेल का आनन्द ले रहे हो तब अनुशासन भग करने वाले छात्रो को खेलने से रोका जा सकता है। इस प्रकार के दण्ड का छात्र के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पडता है, वह खोई हुई सुविधाओ को प्राप्त करने के लिए अनुशासित रहने का प्रयत्न करता है।

(५) नैतिक दण्ड (Moral Punishment)—नैतिक दण्ड से हमारा तात्पर्य छात्र को सबके सामने अपनी भूल स्वीकार करान से है। किसी पद से उतार देना भी इसी प्रकार का दण्ड है। यदि कोई छात्र किसी लडके की पुस्तक चुरा लेता है, ऐसी अवस्था मे यदि समस्त कक्षा के सामने खडा करके उससे क्षमा याचना करवाई जाय तो सम्भवत वह पुन किसी की पुस्तक चुराने का साहस न करेगा। इसी प्रकार अनुशासन भग करने वाले छात्र का कक्षा मे सबसे पीछे खडे रहने का भी दण्ड दिया जा सकता है। परन्तु नैतिक दण्ड देते समय अत्यन्त सावधानी रखनी चाहिए। कोमल हृदय के छात्रो पर इसका बुरा प्रभाव पडता है, ये दण्ड उनके मन मे घोर निराशा व बदले की भावना उत्पन्न करते है।

(६) अतिरिक्त काय देना (Extra work given as punishment)—यदि छात्र गृह-काय करके नही लाता या गृह काय करने म लापरवाही प्रदर्शित करता है, एसी दशा म गृह काय पुन करने को दिया जाय तथा गृह काय के अतिरिक्त भी लिखने का अतिरिक्त काय दण्ड के रूप म प्रदान किया जाय। यह दण्ड का प्रभावशाली रूप है। इससे छात्र के अन्दर काम करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है। परन्तु एक ही विषय का अतिरिक्त काम देने से छात्र के मन म उस विषय के प्रति स्थायी घृणा उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार विभिन्न विषयों को ध्यान म रखते हुए अतिरिक्त काय देना उचित है।

(७) शारीरिक दण्ड (Corporal Punishment)

Q Explain the case against corporal punishment in school.
(P U, B T 19[illegible])

प्रश्न—विद्यालय में शारीरिक दण्ड के विरुद्ध में तर्क युक्त विचार [illegible]

उत्तर—शारीरिक दण्ड देना [illegible] है। प्राचीन [illegible] अध्यापक शारीरिक दण्ड दने म किसी [illegible] नहीं [illegible] भूल पर छात्र को कठोर यातनाएँ [illegible] की प्रथा न और भी अधिक [illegible] सी भूल पर बेत द्वारा मारना, [illegible] म शारीरिक दण्ड देने की [illegible] इसे उपेक्षा की दृष्टि स [illegible] शारीरिक दण्ड का [illegible]

शारीरिक दण्ड [illegible]
शारीरिक कष्ट [illegible]

करे तथा छात्र भी उसे पीड़ित देखकर वैसा अपराध करने का साहस न कर सकें। शारीरिक दण्ड के अन्तर्गत, चांटे मारना, बेंत लगाना तथा विभिन्न कष्टदायक आसनों द्वारा शारीरिक पीड़ा देना आते हैं।

शारीरिक दण्ड देने के विरोध में तर्क

वर्तमान काल में शारीरिक दण्ड देने के विरोध में अधिकांश शिक्षा शास्त्री हैं। प्रत्येक देश में इसके विरुद्ध नियम बना दिए गए हैं। वास्तव में शारीरिक दण्ड छात्र को सुधारने की अपेक्षा विद्रोही बना देता है। रायबर्न के अनुसार, "शारीरिक दण्ड देने का अर्थ अपनी असफलता को स्वीकार करना है।"[1] शारीरिक दण्ड द्वारा छात्र पर हम ऊपरी नियन्त्रण स्थापित कर सकते हैं, परन्तु उसकी आन्तरिक भावना नियन्त्रित नहीं हो पाती। शारीरिक दण्ड उसके व्यक्तित्व को कुण्ठित करके उसे विकसित होने से रोकता है। छात्र भय के कारण अपने मन की बात अध्यापक से न कह सकने के कारण पढ़ने लिखने के प्रति उदासीन हो जाता है। अधिकांश छात्रों के मन में पढ़ने के प्रति घृणा जाग्रत हो जाती है, इसका प्रमुख कारण शारीरिक दण्ड है। शारीरिक दण्ड के विरोध में निम्न तर्क द्रष्टव्य है—

(१) यह प्रणाली अप्रभावशाली तथा अमनोवैज्ञानिक है। इसका अधिक प्रयोग करने से छात्र के मन में ग्रन्थियाँ (Complexes) पड़ जाती हैं।

(२) इसके प्रयोग से अंग-भंग होने का भय रहता है तथा शरीर पर प्रभाव पड़ता है।

(३) इसका अधिक प्रयोग छात्रों को उद्दण्ड, असामाजिक (Anti social) तथा झगड़ालू बनाता है। कुछ छात्र पिटने के इतने आदी हो जाते हैं कि उन पर शारीरिक दण्ड का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(४) इसमें छात्र बाह्य रूप से आज्ञापालक (External obedient) रहते हैं परन्तु अन्तर से विद्रोही (Internal rebellion) हो जाते हैं।

(५) इसका प्रभाव शरीर तक ही सीमित है, मन पर इसका प्रभाव नहीं पड़ता।

(६) अध्यापक द्वारा प्रयोग करने से, छात्र अध्यापक सम्बन्ध में कटुता आ जाती है। शारीरिक दण्ड छात्र के मन में प्रतिहिंसा की भावना उत्पन्न करता है।

(७) भूल से निरपराध छात्र को शारीरिक दण्ड दे देने में इसका प्रभाव उल्टा पड़ता है। छात्र स्कूल को घृणा से देखने लगता है।

---

1 "Corporal punishment is a kind of punishment which should be indulged in as sparingly as possible If we can do without it so much the better It is usually a confession of failure on our part" —W M Ryburn *The Organization of School*

(८) ब्रे ने शारीरिक दण्ड को पशुवत् बताया है। इसको अपराध के समान अनुपातों में देना कठिन है।

(९) शारीरिक दण्ड लड़कियों के लिए पूर्णतया हानिकारक है।

शारीरिक दण्ड की आवश्यकता

शारीरिक दण्ड के विरोध में बहुत कुछ कहा जा सकता है, परन्तु विद्यालय में अनुशासन स्थापित करने के लिए हम व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना पड़ेगा। विद्यालय में कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ सामने आ जाती है, जब बिना शारीरिक दण्ड दिये काम नहीं चलता। कुछ छात्र स्वभाव से ही उद्दण्ड होते है, उनके लिए शारीरिक दण्ड आवश्यक हो जाता है। चरित्रहीन छात्रों को यदि शारीरिक दण्ड न देकर स्वतन्त्रता दे दी जाय तो विद्यालय का वातावरण दूषित हो जाने की सम्भावना रहती है। अपराध करने के तुरन्त बाद ही शारीरिक दण्ड देने से अपराध और दण्ड का सम्बन्ध ज्ञात होता है।

उपयुक्त कारणों से शारीरिक दण्ड का हम पूर्णतया त्याग नहीं कर सकते। शिक्षा विभाग द्वारा भी विद्यालयों के प्रधान अध्यापकों को कुछ परिस्थितियों में छात्रों को शारीरिक दण्ड देने का अधिकार प्रदान किया गया है। परन्तु फिर भी प्रधान अध्यापक का कर्तव्य है कि वह शारीरिक दण्ड का प्रयोग जहाँ तक हो सके कम-से कम करे। शारीरिक दण्ड प्रदान करते समय निम्न बातें ध्यान में रखी जायें—

अ—शारीरिक दण्ड गम्भीर अपराधों पर ही दिया जाय।

ब—अल्प आयु के बालकों को शारीरिक दण्ड देना पूर्णतया अनुचित है।

स—शारीरिक दण्ड छात्रों के कोमल अंगों को ध्यान में रखकर दिया जाय।

द—शारीरिक दण्ड प्रदान करते समय छात्रों की व्यक्तिगत मनोवृत्ति तथा स्वास्थ्य का भी ध्यान में रखा जाय।

क—किसी भी छात्र को बिना सोचे समझे सन्देह पर दण्ड देना पूर्णतया अनुचित है। शारीरिक दण्ड से पहले सत्यता का पता लगा लेना अच्छा है।

ख—अपराध करने के बाद तुरन्त ही शारीरिक दण्ड देना उचित है वरना बाद में दण्ड का प्रभाव समाप्त हो जाता है।

ग—शारीरिक दण्ड प्रदान करते समय छात्र को यह बताना भी आवश्यक है कि उसने क्या अपराध किया है,[1] ताकि वह दण्ड पाने के लिए प्रस्तुत हो जाय।

(८) विद्यालय से निष्कासन (Expulsion)—जब किसी छात्र की उद्दण्डता असीमित हो जाती है, तब सबसे अंतिम सजा विद्यालय से निकाल देना है। इस प्रकार का दण्ड उन छात्रों के लिए है जिनके किसी प्रकार से भी सुधरने की आशा नहीं होती। प्रधान अध्यापक का कर्तव्य है कि इस प्रकार के छात्रों को विद्यालय से

---

1 'Corporal punishment can be inflicted only with the consent of the culprit, unless he consents, it is a flight' —Adam

तुरन्त निकाल दे, अन्यथा विद्यालय के वातावरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। परन्तु इस दण्ड के प्रयोग करने में अत्यन्त सावधानी रखनी चाहिए। इस दण्ड को प्रदान करने का तात्पर्य विद्यालय की असफलता तथा छात्र की जीत है। विद्यालय से निकाले हुए छात्र के सुधार की आशा नहीं की जा सकती। विद्यालय से निष्कासन छात्र को असामाजिक बनाना है।[1]

दण्ड के सिद्धान्त (Theory of Punishment)

दण्ड के स्वरूप तथा दण्ड के उद्देश्यों का अध्ययन कर लेने के पश्चात् अब हम यह देखना है कि दण्ड देने समय किन किन सिद्धान्तों को अपनाया जाय। दण्ड प्रदान करने के सिद्धान्तों को हम नीचे संक्षेप में वर्णन करेंगे—

(१) दण्ड अपराधी तथा अपराध के अनुकूल हो। दण्ड प्रदान करते समय छात्र के मानसिक स्तर तथा स्वास्थ्य को सदा ध्यान में रखा जाय।

(२) दण्ड क्षति-पूर्ति करने वाला हो। यदि बालक ने डेस्क तोड़ दिया हो तो उससे या तो डेस्क बनवाया जाय या उस पर इतना जुर्माना किया जाय कि डेस्क की कीमत निकल आय।

(३) दण्ड सबके लिए अनिवार्य हो। पक्षपातपूर्ण भावना में प्रदान किये गये दण्ड विद्यालय के अनुशासन को धक्का लगाते है।[2] जिन अपराधों के लिए जो दण्ड निश्चित है, उन अपराधों के किये जाने पर दण्ड अवश्य प्रदान किये जायें।

(४) दण्ड कम से कम प्रदान किये जायें।

(५) दण्ड छात्रों में सुधार उत्पन्न करने वाले हों।

(६) प्रधान अध्यापक को अपने पास 'दण्ड रजिस्टर' रखना चाहिए। छात्र पर दण्ड देने का क्या प्रभाव पड़ा, यह दर्ज कर देना चाहिए।

कक्षा-अनुशासन
(Class Discipline)

Q What are common types of indiscipline in the class room? How would you, as a teacher, deal with each of them?

(A U, B T 1957)

प्रश्न—कक्षा में अनुशासनहीनता के कौन कौन से सामान्य रूप पाये जाते हैं? एक अध्यापक के रूप में आप उनके निवारण हेतु क्या करेंगे?

---

1 ' the habitual resort to expulsion is a public confession of weakness of a proclamation of the victory of the bad boy and acknowledgment of the failure of the school to train"
—Wren P C

2 ' Caprice and carelessness in the administration of justice will ruin the discipline in any school, and make for discontent among pupils and teachers It should be clearly understood that where punishments are fixed, when they are deserved they always come
—Ryburn.

परम आवश्यक है। इसके द्वारा छात्रों को सरलता से व्यस्त रखा जा सकता है और छात्रों को बराबर किसी-न किसी काम में व्यस्त रखना अनुशासन की कुंजी है।

(१०) छात्रों की समस्याओं को जानना—अध्यापक को छात्रों की समस्याओं को समझने का प्रयास करना चाहिए।

उपर्युक्त उपायों के अतिरिक्त, अध्यापक को परिस्थिति के अनुसार प्रत्येक छात्र की व्यक्तिगत समस्या को भी हल करने का प्रयत्न करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर छात्रों को दण्डित भी किया जा सकता है।

छात्रों में अनुशासनहीनता

Q *What in your opinion, are the causes of growing indiscipline in our schools ? Give instances of individual cases of indiscipline and say how you would deal with each ?*

(Agra, B T 1956)

प्रश्न—आप की राय में हमारे विद्यालयों में बढ़ती हुई अनुशासहीनता के क्या कारण हैं ? वैयक्तिक अनुशासनहीनता के कुछ रूप उदाहरणस्वरूप बताइये तथा सुझाव दीजिये।

उत्तर—छात्रों में अनुशासनहीनता देश का एक जटिल प्रश्न है। प्रत्येक वर्ष देश के किसी न किसी भाग में छात्रों के अनुशासनहीनता भरे कार्य प्रशासन के सम्मुख एक समस्या उत्पन्न कर देते हैं। आये दिन तोड़ फोड़ हड़ताल तथा अध्यापकों को पीटना आदि के समाचार अखबारों में पढ़ने को प्राप्त होते हैं। प्रजातान्त्रिक देश में इस प्रकार की बढ़ती हुई अनुशासनहीनता घातक सिद्ध हो सकती है। विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता क्यों घर करती जा रही है, इस पर विभिन्न मत हैं। नीचे हम अनुशासनहीनता के प्रमुख कारणों पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

(१) दोषपूर्ण वर्तमान शिक्षा प्रणाली—हमारे देश की शिक्षा प्रणाली जीवन की वास्तविकताओं से दूर है। वह छात्रों को केवल साहित्यिक ज्ञान प्रदान करती है। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् छात्र जीविका समस्या हल करने में अपने को पूर्णतया असफल पाते हैं। इस कारण वर्तमान शिक्षा प्रणाली की सबसे आलोचना होती है—छात्र भी बेमन से अध्ययन करते हैं। अपने जीवन के प्रति उनमें एक निराशा भरी रहती है, परिणामस्वरूप स्कूल जीवन को व्यर्थ समझकर अवसर पाते ही वे विद्रोह कर बैठते हैं।

अधिकांश विद्यालयों में नैतिक शिक्षा का अभाव है। चरित्र शिक्षा की किसी विद्यालय में व्यवस्था नहीं है। इसी कारण छात्रों में चरित्रहीनता की मात्रा दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली का सबसे बड़ा दोष, जो कि अनुशासनहीनता का प्रमुख कारण है, वह है, वार्षिक परीक्षाओं का शिक्षा पर प्रभुत्व। छात्र केवल

वार्षिक परीक्षाएँ पास करना ही अपना प्रमुख उद्देश्य समझते है। परीक्षा पास करने के लिए वे उचित व अनुचित सभी प्रकार के साधनों का प्रयोग करना अपना अधिकार समझते हैं। परीक्षाओं को अधिक महत्त्व देने के कारण, वे अपने अध्यापकों की भी समय पड़ने पर अवहेलना करने से नही चूकते।

(२) शिक्षकों का पतन—प्राचीन काल में शिक्षकों को जो सम्मान प्राप्त था, वह अब धीरे धीरे समाप्त हो चला है। आज समाज में उन्हें उतने आदर के साथ नही देखा जाता जितना पहले किसी समय देखा जाता था। छात्र भी उन्हें अवहेलना की दृष्टि से देखते है। परिणामस्वरूप अध्यापकों के मन में अपने कर्त्तव्यों के प्रति उत्साह नही है। प्राइवेट स्कूलों में उनकी दशा और भी शोचनीय है। कम वेतन मिलने के कारण, अधिकांश समय उनका ट्यूशन करने में चला जाता है, परिणामस्वरूप वे विद्यालय के कार्य को भार रूप मानकर करते हैं। छात्रों की समस्याओं पर अधिक ध्यान नही देते।

(३) आर्थिक समस्याएँ—अंग्रेजो ने हमारे देश का पर्याप्त शोषण किया। दोनों महायुद्ध हमारे धन पर ही लड़े गये। परिणामस्वरूप देश की आर्थिक व्यवस्था को गहरा धक्का लगा। छात्रों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है परन्तु उनको शिक्षा ठीक प्रकार से प्रदान की जा सके इसके लिए अभिभावकों के पास पर्याप्त धन नही है। इस प्रकार का असंतोष छात्रों को विद्रोही बना देता है। धनवान व्यक्तियों के छात्र मौज उड़ाते है इसके विपरीत गरीब छात्रों के पास पुस्तकों तथा फीस के लिए पैसे नही हैं। ये परिस्थितियां समाज में विषमता उत्पन्न करती हैं।

(४) राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव—स्वतन्त्रता से पूर्व छात्रों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था। सन् १९४२ ई० के भारत छोड़ो आन्दोलन में छात्रों ने अनेक तोड़ फोड़ के कार्य किए थे। आज भी वे आपसी माँगों को मनवाने के लिए उन्हीं तोड़ फोड़ के साधनों का प्रयोग किए बिना नही चूकते। किशोर अवस्था के छात्र कॉलेज के छात्रों का अनुकरण करते है।

(५) राजनैतिक पार्टियों का प्रभाव—हमारे देश की राजनैतिक पार्टियां चुनावों में अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए विद्यार्थियों का दुरुपयोग करने से नही चूकती। प्रत्येक दल छात्रों को अपने प्रभाव में रखकर उनका दुरुपयोग करना चाहता है। चुनाव के दिनों में छात्रों द्वारा नारे लगवाये जाते हैं तथा प्रचार का कार्य करवाया जाता है, कभी-कभी आपसी झगड़ों में भी उनका प्रयोग किया गया है। इन सब बातों का छात्रों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। विद्यालयों में भी पार्टीबन्दी बनने लगती है।

(६) सामाजिक स्तर का पतन—आज हमारे देश का सम्पूर्ण सामाजिक स्तर गिरता जा रहा है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी उन्नति में लगा हुआ है। स्वार्थसिद्धि के

लिए बुरे-से-बुरे काय किए जा रहे हैं। रिश्वत का बाजार गरम है। आदर्शों को हेय दृष्टि से देखा जाता है। जीवन म भौतिकता को अधिक मूल्य दिया जाता है। छात्र भी समाज म रहते हैं, वे उसके प्रभाव मे कैसे बच सकते हैं, व भी जीवन के आदर्शो का मजाक उडाते ह, बुरे-से बुरा काम बिना किसी सकोच स कर डालते है।

(७) अध्यापक और छात्रो के सम्बन्ध में कटुता—विद्यालय म छात्रो की सख्या दिन प्रति दिन बढ जाने से, छात्र-अध्यापक के सम्बन्ध मे कटुता आ गई है। अध्यापक छात्रो के विशाल जनसमूह से निकट का सम्बन्ध स्थापित नही कर सकते परिणामस्वरूप एक दूसरे की समस्याओ को समझने म असुविधा रहती है। अध्यापक छात्रो की परवाह नही करते तथा छात्र अध्यापको की परवाह नही करते हैं।

(८) उचित निर्देशन का अभाव (Lack of Proper Guidance)—छात्रो को गलत माग पर जाने से रोकने के लिए उचित निर्देशन का भी अभाव है। विद्यालय म भी छात्रो को किसी प्रकार की उचित सलाह नही प्रदान की जाती। यदि छात्र कोई गलत काय करता है तो उसे मना करने का कोई कष्ट नही करता। बेकार नवयुवको को भी अपनी जीविका कमाने के विषय म किसी भी प्रकार का निर्देशन नही मिलता।

(९) आदर्श का अभाव—इस भौतिकवादी युग म सवसाधारण जनता के आदर्शो का पतन हो गया है। इस पतन का प्रभाव छात्रो पर भी पडा है। जन साधारण म आध्यात्मिकता का अभाव दिन प्रति दिन बढता जा रहा है।

(१०) युवा भावनाओ की अवहेलना—कालेज म छात्रो की यह परम इच्छा रहती है कि व छात्राओ के साथ रह तथा छात्राएँ छात्रो का सम्पक चाहती है परन्तु वतमान समाज म यह सम्भव नही है। परिणामस्वरूप छात्रो म असन्तोष पैदा होता है।

समस्या का हल

वास्तव म अनुशासनहीनता देश के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। छात्रो पर ही देश का भविष्य निभर है। अनुशासनहीनता को रोकने के लिए हम ठोस पग उठाने पडे ग। सबसे पहले हम उन कारणो को दूर करना होगा, जिनके कारण देश म अनुशासनहीनता फैली हुई है।

(१) अध्यापको के स्तर को उठाया जाय—अध्यापको को समाज म ऊँचा स्तर प्रदान करना परम आवश्यक है। उनके वेतन म वृद्धि की जाय जिससे व मन लगाकर छात्रो की समस्याओ का हल करने का प्रयत्न कर।

(२) प्रवेश सीमित हों—विद्यार्थियो को एक विद्यालय म निश्चित प्रवेश की अनुमति प्रदान की जाय जिससे विद्यालयो म छात्रो की भीड न बढ़।

(३) छात्र और अध्यापक सम्पर्क मधुर बनाये जायें—अध्यापक को अनुशासन स्थापित करने के लिए अधिकार प्रदान किए जायें। अध्यापक विद्यार्थी सम्पर्क

ढ़ बनाया जाय। दोनों एक दूसरे की समस्याओं को समझें तथा परस्पर सहयोग
ाय करें।[1]

(४) आलोचना कम हो—वर्तमान शिक्षण प्रणाली में यद्यपि दोष हैं, परन्तु
ी हर समय आलोचना उचित नहीं। अत्यधिक आलोचना निराशा को जन्म
है, छात्र मन लगाकर पढ़ने के बजाय अपने भविष्य के विषय में सोचने लगते
शिक्षा को जहाँ तक हो सके व्यावहारिक बनाने का प्रयत्न किया जाय। विश्व
ालयों में प्रवेश केवल योग्यतम छात्रों को मिले। माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने
पश्चात् छात्रों को व्यावसायिक विद्यालयों में प्रवेश लेने के लिए प्रोत्साहित किया
य। योग्य छात्रों को पठन लिखन की प्रत्येक सुविधाएँ प्रदान करना भी
वश्यक है।

(५) किशोरावस्था का ध्यान—किशोर अवस्था के छात्रों को समय समय
र समाज सेवा के लिए प्रोत्साहित किया जाय। उनकी अतिरिक्त शक्ति को निर्माण
था सृजन में लगाये रखना परम आवश्यक है। उन्हें गाँवों में ले जाकर श्रमदान
सी सामाजिक क्रियाओं द्वारा अवकाश का सदुपयोग सिखाया जा सकता है।
ध्यापकों का कर्त्तव्य है कि वे छात्रों की कलात्मक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करें।

(६) व्यावसायिक शिक्षा—पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा को विशेष महत्त्व
दया जाय। व्यावसायिक शिक्षा द्वारा अनुशासन की समस्या का हल सरलता से
किया जा सकता है।

(७) प्रभावशाली नैतिक शिक्षा का प्रबन्ध—छात्रों के चरित्र को सुधारने के
लिए आवश्यक है कि विद्यालय में प्रभावशाली नैतिक शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय।

(८) आधुनिक शिक्षा के दोषों को दूर किया जाय—वर्तमान शिक्षा के अनेक
दोष हैं जिन्हें दूर करना आवश्यक है। पाठ्यक्रम परिवर्तन चाहता है। पाठ्यक्रम को
उपयोगी तथा व्यावहारिक बनाया जाय।

(९) छात्रों को राजनीति से दूर रखा जाय—छात्रों को दलगत राजनीति से
यथासम्भव दूर रखा जाय। वे राजनीति को समझें परन्तु उसमें भाग न लें।

---

1 'Personal contact between the teacher and the pupil is essential, and it is from this point of view that there should be some limit in the number of pupils admitted into different sections of a class and to the whole school."

—*Report of the Secondary Education Commission*

"They are as integral a part of activities of a school as its curricular work and their proper organization needs just as much care and fore thought. If they are properly conducted, they can help in the development of very valuable attitudes of qualities."

—*Report of the Secondary Education Commission* p 126

मौलाना आजाद इस विषय म लिखते हैं, "A student must have knowle of political movement but he should acquire that knowledge student This is not the stage for plunging into politics and t can be no greater dis service to the country than to allow st to be swept away by political passions"

(१०) छात्र तथा छात्राओं को परस्पर मिलने जुलने की स्वतन्त्रता प्रदान की जाय—छात्र तथा छात्राओं का परस्पर सम्पर्क, छात्रों के मस्तिष्क को परि करता है तथा उनम अप्राकृतिक तनाव नहीं उत्पन्न होता। इस विषय म जी० सोधी लिखते हैं—'Let there be free inter course between the of both sexes under judicious guidance, let there be no arti barriers arousing unhealthy curiosity and coolfish behaviour, there will be less trouble"

१६६६ के सितम्बर तथा अक्टूबर के मास म उत्तर प्रदेश तथा बि छात्रों न सगठित होकर प्रदेश व्यापी आन्दोलन किये थे। उत्तर प्रदेश के प्राय ५० तथा ३० रेलवे स्टेशनों पर आक्रमण कर नुकसान पहुचाया गया। १३५ रोडवे बसे तथा ४८ राजकीय कार्यालय छात्रों द्वारा क्षति ग्रस्त किये गये। देश छात्र आन्दोलन ने शिक्षा विशेषज्ञों तथा विद्वानों को इस समस्या पर विचार के लिए प्रेरित किया है।

१३

पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाएँ

CURRICULAR ACTIVITIES

Q What is the importance of curricular activities in the teaching ? Give their educational value

प्रश्न—शिक्षण में पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं का क्या महत्व है ? उनके शैक्षिक महत्त्व पर प्रकाश डालो।

उत्तर—

पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं का अर्थ

जो क्रियाएँ पाठ्यक्रम की व्याख्या तथा उसे स्पष्ट करने में सहायक होती हैं उन्हें अंग्रेजी में 'curricular activities' कहते हैं। दूसरे शब्दों में शिक्षण को आकर्षक और प्रभावशाली बनाने के लिए पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं का आयोजन किया जाता है। इन क्रियाओं की सहायता से प्रत्येक विषय सुबोध, सरल तथा रोचक हो जाता है।

पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं के भेद

जो क्रियाएँ पाठ्यक्रम को स्पष्ट करने और उसे आकर्षक बनाने में विशेष सहायक होती हैं उन्हें निम्न शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—

१—पाठ्य पुस्तकें।

२—श्यामपट।

३—(अ) प्रदर्शनात्मक उदाहरण तथा (ब) श्रव्यात्मक तथा दृश्यात्मक सामग्री।

४—विचित्रालय।

५—विज्ञान-वाटिका।

६—प्रयोगशाला तथा उसका कारखाना (Workshop)।

७—पुस्तकालय।

उपर्युक्त क्रियाओं में प्रथम तीन का वर्णन हम विस्तार से इस अध्याय में ही करेंगे, शेष चार का उल्लेख अगले अध्यायों में यथास्थान किया जायगा। प्रत्येक

प्रधान अध्यापक का कर्तव्य है कि वह विद्यालय में शिक्षण को प्रभावशाली आकर्षक बनाने के लिए इन क्रियाओं के संगठन पर विशेष रूप से ध्यान दे। विद्यालयों में पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं के संगठन का विशेष महत्त्व दिया जाता वहाँ का शिक्षण स्तर अन्य विद्यालयों की अपेक्षा ऊँचा होता है।

१—पाठ्य-पुस्तकें (Text Books)

पाठ्य पुस्तकों का महत्त्व सदा रहता है। प्राचीनकाल में पाठ्य पुस्तकों प्रयोग विशेष रूप से किया जाता था। पुस्तक में जो कुछ भी लिखा होता था छात्र जैसा का तैसा रट लेते थे, चाहे वे उसका अर्थ भली प्रकार से समझते हों नहीं। अध्यापक-वर्ग पाठ्य वस्तु के रटने पर बल देते थे तथा जो छात्र पाठ्य विषय को रट लेते थे, उन्हें उतना ही योग्य छात्र माना जाता था। इस पाठ्य पुस्तकों का छात्रों पर आतंक छाया रहता था। पाठ्य पुस्तकों के अनुचित प्रयोग द्वारा बालकों की स्मरण शक्ति पर अत्याचार किये जाते थे।

पाठ्य पुस्तकों का महत्त्व—यद्यपि पाठ्य पुस्तकों का प्रायः अनुचित प्रयोग किया जाता है परन्तु उन्हें एक दम त्यागा नहीं जा सकता। शिक्षण के कार्य में पाठ्य पुस्तक सदा से सहायक रही हैं तथा अध्यापक के कार्य को सदा से सरल बनाती रही है इस विषय में एक विद्वान का कथन उल्लेखनीय है। 'पाठ्य पुस्तकें ज्ञान मितव्ययी ढंग से प्रदान करने के लिए आवश्यक हैं। यह मनुष्यों तथा अध्यापकों समय बचाती हैं एक ही समय में लाखों मनुष्यों के हृदय को प्रभावित करती हैं इनके द्वारा स्वाध्यायन तथा आत्मविश्वास की वृद्धि की जा सकती है।'

पाठ्य पुस्तकों की उपयोगिता—

१—इनके उपयोग से छात्र तथा अध्यापक दोनों का समय बचता है।

२—कम मूल्य पर छात्र महत्त्वपूर्ण तथ्य तथा सूचनाएँ प्राप्त कर लेते हैं।

३—पाठ्य पुस्तकें छात्रों को स्वाध्याय की प्रेरणा देती हैं।

४—पाठ्य पुस्तकों की सहायता से अध्यापक पाठ को तैयार कर सकता है

५—गृह कार्य के लिए पाठ्य पुस्तकें विशेष रूप से सहायक होती हैं।

६—मौन अध्ययन का अभ्यास पाठ्य-पुस्तकों द्वारा ही कराया जा सकता है।

७—डाल्टन प्रणाली तथा योजना प्रणाली में पाठ्य पुस्तकों की परम आवश्यकता होती है।

पाठ्य पुस्तकों से हानि—

१—पाठ्य पुस्तक अध्यापक को आलसी बनाती है।

२—इनसे विषय समझने की प्रेरणा नहीं मिलती, वरन् रटने की प्रेरणा मिलती है।

३—पाठ्य पुस्तकें छात्रों का दृष्टिकोण सीमित करती हैं। वे विषय को लेखक के दृष्टिकोण के आधार पर ही समझते हैं।

४—पाठ्य पुस्तका के अधिक प्रयोग से कक्षा म छात्रो को क्रिया करने का अवसर नही मिलता।

५—पाठ्य पुस्तको द्वारा छात्र निष्कर्ष निकालने म असमर्थ रहते हैं।

६—पाठ्य पुस्तके पाठ्यक्रम को व्यावहारिक बनाने के बजाय सैद्धान्तिक बना देती है।

पाठय पुस्तको का चुनाव—पाठ्य पुस्तको के चुनाव मे प्रधान अध्यापक को विशेष सावधानी रखनी चाहिए। विभिन्न विषयो के अध्यापको की सहायता से प्रधान अध्यापक को देखना चाहिए कि पाठ्य-पुस्तक की भाषा शैली छात्रो की मानसिक आयु के अनुकूल है या नही। दूसरे, पाठ्य वस्तु का जीवन से सम्बन्धित होना भी आवश्यक है। जो कुछ भी पाठय-सामग्री हो वह मानव-जीवन की विभिन्न क्रियाओ से सम्बन्धित हो। तीसरे, पाठ्य वस्तु का प्रेरणाप्रद होना भी आवश्यक है। उसमे विषयो का प्रतिपादन इस ढग से किया गया हो कि जिसे पढकर छात्रो का नैतिक तथा चारित्रिक विकास भी हो सके। विशेष विवरण के लिए पढिए प्रधान अध्यापक वाले अध्याय मे 'पाठ्य पुस्तक का चुनाव' वाला अश।

पाठय पुस्तकों का प्रयोग—अध्यापको को यह बात ध्यान म रखनी चाहिए कि पाठ्य-पुस्तको का प्रयोग करना भी एक कला है। उनका प्रयोग करते समय निम्न बातो को विशेष रूप से ध्यान म रखा जाय—

१—पाठ्य पुस्तक का प्रयोग करते समय अध्यापक का यह बात ध्यान म रखनी है कि वे कही अध्यापक का स्थान तो नही ले रही है। पाठय पुस्तक अध्यापक की सेविका बनकर रहे, स्वामिनी नही।

२—छात्र, अध्यापक के प्रश्नो का उत्तर पुस्तक की भाषा मे न देकर अपनी स्वय की भाषा म द।

३—प्राथमिक कक्षा म पाठ्य-पुस्तको का प्रयोग यथासम्भव कम हो। इस स्तर पर मौखिक शिक्षण को विशेष महत्त्व दिया जाय।

४—पाठ्य पुस्तका म दिये गए विषयो को अन्य विषयो से समन्वित करके पढ़ाया जाय।

५—पाठ्य-पुस्तक का प्रयोग प्रत्येक विषय मे एक-सा नहीं किया जाय। इतिहास तथा भूगोल के शिक्षण म पाठ्य-पुस्तको का प्रयोग केवल गृह-कार्य के लिए किया जाय। भाषा शिक्षण मे पाठ्य पुस्तको की विशेष आवश्यकता होती है। रेखागणित, अकगणित तथा विज्ञान आदि विषयो म भी पाठ्य पुस्तको का प्रयोग कम-से कम करना उचित है।

६—पुस्तका का प्रयोग करते समय प्रश्नोत्तर प्रणाली का प्रयोग अवश्य किया जाय।

७—पाठ्य-पुस्तका म दिये गये तथ्यो तथा सूचनाओ को ही ज्ञान का विराम न माना जाय। यथासम्भव दूसरी पुस्तको का भी सहारा माना जाय।

२—श्यामपट (Black Board)

श्यामपट को अध्यापक का मित्र कहकर पुकारा जाता है। प्रत्येक कक्षा में श्यामपट का होना परम आवश्यक माना जाता है। प० सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार "जिस प्रकार चित्रकार के लिए तूलिका और फलक परम वाञ्छनीय हैं, ठीक उसी प्रकार अथवा उससे भी अधिक अध्यापक के लिए श्यामपट तथा खड़िया के टुकड़े का महत्त्व है। ये दोनो वस्तुएँ अध्यापक की सतत सगिनी हैं।" शिक्षण के प्रयोग म आने वाली विभिन्न सामग्री के अभाव मे शिक्षण को इतनी हानि नही होगी जितनी कि श्यामपट के अभाव म। पाठ साराश, शब्दार्थ, रूपरेखा, रेखाचित्र, आकृतियाँ, मानचित्र आदि के अकन के लिए श्यामपट की आवश्यकता होती है। शिक्षण को रोचक तथा आकर्षक बनाने म श्यामपट विशेष रूप से सहायक होता है।

श्यामपट के लाभ—

१—सहायक सामग्री के स्थान पर श्यामपट का प्रयोग सरलतापूर्वक प्रभावशाली ढग से किया जा सकता है।

२—अध्यापक श्यामपट पर पाठ की मुख्य बातें ही लिखता है अत छात्रो को ज्ञान हो जाता है कि पाठ के मुख्य तत्त्व क्या हैं।

३—श्यामपट द्वारा छात्रो का ध्यान पाठ्य विषय की ओर केन्द्रित किया जा सकता है।

४—श्यामपट के प्रयोग से श्रवण तथा चक्षु दोनो इन्द्रियो का प्रयोग होता है।

५—श्यामपट पर अध्यापक स्वय स्वच्छ लिखकर छात्रो के सामने एक आदर्श उपस्थित कर सकता है।

६—भाषा शिक्षण म उच्चारण का अभ्यास श्यामपट पर लिखकर ही किया जा सकता है।

७—इतिहास, भूगोल तथा नागरिकशास्त्र आदि विषयो म साराश का विशेष महत्त्व है, जो कि श्यामपट पर ही सम्भव है।

८—इसके प्रयोग का सबसे बडा लाभ यह है पाठ्य-वस्तु म से उदाहरण तथा गृह-कार्य समस्त कक्षा के सामने एक समय म ही प्रस्तुत किया जा सकता है।

९—श्यामपट पर कोई वाक्य या प्रकरण लिखकर वाद विवाद या विनिमय बडे सुन्दर ढग से किया जा सकता है।

श्यामपट के प्रयोग की विधि—

१—श्यामपट पर यथासम्भव शीघ्रता से लिखा जाय। धीरे धीरे लिखने से समय का अपव्यय होता है तथा कक्षा म अनुशासनहीनता आने की सम्भावना रहती है।

२—लिखे जाने वाले अक्षर सीधे होने चाहिए। टेढ़ी लिखाई अस्पष्ट होती है।

३—अध्यापक को श्यामपट पर लिखने का अधिक से अधिक अभ्यास करना चाहिए।

४—श्यामपट पर, छोटी कक्षा मे, बडा स्पष्ट लिखा जाय जिससे पीछे बैठे लडके तक सरलता से पढ सके।

५—अध्यापक को श्यामपट पर लिखते समय कभी-कभी पीछे मुड कर भी देखते रहना चाहिए। ऐसा करने से छात्र परस्पर बातचीत नहीं कर पायेंगे।

६—श्यामपट की लिखावट एक सी हो। कहीं छोटे अक्षर तथा कहीं बडे अक्षर न लिखे जायें।

७—जहा तक सम्भव हो श्वेत चाक का प्रयोग किया जाय। केवल मान-चित्रों मे ही रंगीन चाक का प्रयोग किया जाय।

८—पाठ के विकास के साथ साथ श्यामपट पर मुख्य बातों का लिखा जाना आवश्यक है।

९—श्यामपट पर अशुद्ध न लिखा जाय। लिखने के पश्चात् मन मन मे दुहरा लेना आवश्यक है।

१०—श्यामपट के सामने खडे होकर न लिखा जाय। जहा तक सम्भव हो श्यामपट की बगल मे खडे होकर लिखा जाय।

३—(अ) प्रदर्शनात्मक उदाहरण

प्रदर्शनात्मक उदाहरण अमौखिक होते है तथा इनमे विषय-वस्तु का स्थूलात्मक रूप प्रतिपादित किया जाता है। अध्यापन मे प्रदर्शन सामग्री का विशेष महत्त्व है। मौखिक उदाहरण नीरसता तथा शुष्कता उत्पन्न कर देते है तथा छोटे बालक मौखिक उदाहरणो को सरलता से समझ भी नही पाते। इन दोषो को दूर करने के लिए ही प्रदर्शनात्मक उदाहरणो का प्रयोग किया जाता है। प्रधान अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह विद्यालय मे, शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रदर्शनात्मक उदाहरणो की व्यवस्था अवश्य करे।

प्रदर्शनात्मक उदाहरणो के भेद—

१—मूल वस्तु या वास्तविक पदार्थ (Real objects)
२—नमूने या प्रतिकृति (Models)
३—चित्र
४—रेखाचित्र
५—मानचित्र
६—ग्राफ
७—चार्ट या सारणी

प्रदर्शनात्मक उदाहरणो की उपयोगिता—

१—प्रदर्शनात्मक सामग्री को देखकर छात्र अत्यधिक आनन्दित होते है।

२—मौखिक उदाहरणा से विषय इतना स्पष्ट नही होता जितना कि मूर्त या स्थूल पदार्थों को देखकर।

३—इनके प्रयोग से छात्रो म विषय के प्रति उत्सुकता तथा रोचकता आ जाती है, जिससे छात्रा का अवधान पाठ्य विषय पर केन्द्रित रहता है।

४—इनके प्रयोग से ज्ञानेन्द्रियो को प्रेरणा मिलती है।

५—बालक जिस वस्तु के बारे म सुनता है, उसे प्रत्यक्ष दख भी लता है। परिणामस्वरूप उनके मस्तिष्क म जो चित्र बनता है वह स्पष्ट होता है।

६—प्रदशनात्मक उदाहरणा से छात्रो मे निरीक्षण, परीक्षण तथा तुलना करने की शक्तियो का विकास होता है।

७—वस्तुओ के प्रदशन से वणन तथा व्याख्या की आवश्यकता नही पडती, अत पयाप्त समय बच जाता है।

८—प्रदशनात्मक उदाहरण कक्षा म सजीवता तथा क्रियाशीलता का वातावरण उत्पन्न करते है।

९—प्रदशनात्मक उदाहरणा से छात्रो को कठिन विषय भी खेल के समान ज्ञात होता है।

(१) मूल वस्तु या वास्तविक पदाथ—मूल वस्तु को प्रत्यक्ष दखकर छात्र सही ज्ञान प्राप्त करते है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जिस अनुभव या ज्ञान को बालक स्वय प्राप्त करते है वह दूसरो से प्राप्त हुए अनुभव या ज्ञान स कही उत्तम होता है। अत अध्यापक को चाहिए कि वह छात्रा को जहाँ तक सम्भव हो, वास्तविक वस्तुएँ दिखाय या उन वस्तुओ तक बालका को ले जाया जाय। नदी पवत, वन आदि के निकट ले जाकर भूगोल का ज्ञान कराया जा सकता है। कारखाना या किसी मिल को दिखाकर उसका साधारण ज्ञान विकसित किया जा सकता है। एतिहासिक भवनो को दिखाकर इतिहास के शिक्षण को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

(२) नमूने या प्रतिकृति—वास्तविक पदार्था के अभाव म नमून या प्रतिकृति का प्रयोग किया जाता है। हर समय छात्रो को यथाथ या वास्तविक वस्तुओ का दिखाना सम्भव नही है। यथाथ वस्तु के निश्चित अनुपात म बनी हुई प्रतिकृति या मूर्ति छात्रा को दिखा दी जाती है।

(३) चित्र—पाठ को रोचक बनाने के लिए अध्यापक को चाहिए कि वह यथासम्भव चित्रा का प्रयोग करे। छोटी कक्षा के छात्रा को चित्र अत्यन्त प्रिय लगते हैं। इतिहास तथा भूगोल के शिक्षण को चित्रा का प्रयोग और अधिक आकषक बना देता है। चित्र दखन म पर्याप्त बडे हो तथा उनका सम्बन्ध पाठ्य विषय स हो। चित्र अपन म पूण तथा शुद्ध होन चाहिए।

(४) रेखाचित्र—चित्रा क निर्माण म भी कुछ न कुछ व्यय की आवश्यकता रहती है। दूसर, चित्र तथा नमूने हर समय उपलब्ध नही हो सकत हैं। रेखाचित्र

इन कमियों को पूरा करते है। रेखाचित्र अध्यापक द्वारा श्यामपट पर बनाये जाते हैं इनके लिए वाह्य साधनों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता।

(५) ग्राफ—ग्राफ का प्रयोग प्रमुख रूप से गणित, विज्ञान, अर्थशास्त्र तथा भूगोल में किया जाता है।

(६) मानचित्र—इतिहास तथा भूगोल का शिक्षण बिना मानचित्र के सफल नहीं हो सकता। कक्षा में वाद-विवाद को सफल बनाने के लिए भी मानचित्रों का प्रयोग किया जा सकता है। अध्यापक को मानचित्रों के प्रयोग में सावधानी से काम लेना चाहिए। मानचित्रों का आकार इतना बड़ा होना चाहिए कि उसे सम्पूर्ण कक्षा के छात्र सरलता से देख सकें।

(७) चार्ट—चार्टों का प्रयोग प्रत्येक विषय में किया जा सकता है। इतिहास में इनका प्रयोग मुख्यतया किसी घटना या आन्दोलन का विकास प्रदर्शित करने या वंशावली को समझाने के लिए किया जाता है। भूगोल में वेश-भूषा के विषय में जानकारी कराने के लिए इनका प्रयोग अत्यन्त आकर्षक सिद्ध होता है। स्वास्थ्य-विज्ञान के शिक्षण में चार्टों का प्रयोग विशेष रूप से किया जाना चाहिए। चार्टों को पूर्णतया शुद्ध होना चाहिए।

प्रदर्शनात्मक सामग्री के उपयोग की विधि—

१—सामग्री का प्रदर्शन पर्याप्त काल तक छात्रों के सामने किया जाय जिससे छात्र उसे भली प्रकार से देख सकें।

२—प्रदर्शन सामग्री का प्रयोग आवश्यकतानुसार ही किया जाय अधिक नहीं।

३—प्रदर्शन से पूर्व सामग्री छात्रों को नहीं दिखाई जाय।

४—प्रयोग के पश्चात् सामग्री को तुरन्त हटा लिया जाय।

५—सामग्री के प्रदर्शन के पश्चात् छात्रों से उस पर प्रश्न अवश्य किए जायें।

६—सामग्री में वर्जित दृश्यों की व्याख्या छात्रों की सहायता से ही करायी जाय।

७—छोटी कक्षाओं में प्रदर्शन सामग्री अधिक हो तथा उच्च कक्षाओं में कम।

(ब) श्रव्यात्मक तथा दृश्यात्मक सामग्री (Audo Visual Aids)

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि विभिन्न इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किया गया ज्ञान मस्तिष्क में देर तक स्थायी रहता है। अतः बालकों को एक इन्द्रिय के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने के बजाय विभिन्न इन्द्रियों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने के अवसर दिये जायें। श्रव्यात्मक तथा दृश्यात्मक सामग्री का उपयोग इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध होता है। एक विद्वान् के अनुसार, 'शिक्षक इन उपकरणों के उपयोग द्वारा बालक की एक से अधिक इन्द्रियों को प्रयोग में लाकर पाठ्य वस्तु को सरल, रुचिकर, स्पष्ट, प्रभावशाली तथा स्थायी बनाता है।" श्रव्यात्मक तथा दृश्यात्मक सामग्री आगे लिखे प्रकार की होती है—

(१) ग्रामोफोन—ग्रामोफोन का प्रयोग भाषा के शिक्षण में विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होता है। सुन्दर गीतों, कविताओं तथा गद्यांशों को सुनाकर उनका ध्यान साहित्य की ओर आकृष्ट किया जा सकता है। अंग्रेजी शिक्षण के लिए विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध हुए हैं।

(२) रेडियो—रेडियो द्वारा वर्तमान युग में शिक्षा प्रदान करने का विशेष प्रचलन है। आकाशवाणी के भिन्न भिन्न केन्द्रों से छात्रों तथा बालकों के लिए विभिन्न शिक्षा प्रद प्रोग्रामों का प्रसारण होता है। रेडियो द्वारा स्त्री शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा के कार्य-क्रम का प्रसारण अत्यन्त प्रभावशाली होता है। विद्यालय की समय-तालिका का निर्माण इस ढंग से किया जाय कि छात्र सुविधानुसार रेडियो द्वारा प्रसारित कार्य-क्रम को सरलता से सुन सकें।

(३) सिनेमा—सिनेमा या चलचित्र शिक्षण का एक प्रभावशाली साधन है। इतिहास, भूगोल तथा विज्ञान सम्बन्धी अनेक घटनाओं को चलचित्र के माध्यम से छात्रों को सरलता से दिखाया जा सकता है। उदाहरण के लिए भूकम्प का आना, ऐटम विस्फोट, बैक्टीरिया, सूर्य मण्डल, चन्द्रलोक की यात्रा आदि के लिए किये गये प्रयास का प्रदर्शन सिनेमा के माध्यम से सफलतापूर्वक दिखाया जा सकता है। कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें हम आँखों से क्रियाशील दशा में नहीं देख सकते वे सिनेमा द्वारा सरलता तथा सफलता से दिखाई जा सकती है। उदाहरण के लिए पेट में भोजन का पचना, बीजों का उगना रक्त परिभ्रमण आदि आदि।

फिल्मों का प्रयोग विशेष सावधानी से किया जाय। छात्रों के बौद्धिक-स्तर को देखकर ही फिल्म का चुनाव किया जाय। जिस विषय की फिल्म हो उससे सम्बन्धित सूचनाएँ छात्रों को दे दी जायें। फिल्म दिखाने के पश्चात् छात्रों से कुछ प्रश्न किये जायें।

(४) मैजिक लैन्टर्न तथा चित्र विस्तारक—मैजिक लैन्टर्न में स्लाइड्स का प्रयोग किया जाता है। कारखाने खान, मशीन, पेड़ पौधे आदि के आवश्यकतानुसार स्लाइड्स तैयार कर लिए जाते हैं और उन्हें सुविधानुसार कक्षा में दिखाया जाता है। स्लाइड्स को कक्षा में दिखाते समय उसकी व्याख्या भी की जा सकती है। चित्र विस्तारक यन्त्र के माध्यम से किसी चित्र को बड़े आकार में दिखाया जा सकता है। छोटे चित्रों में स्पष्टता कम होती है अतः बालकों के समझने में असुविधा रहती है। छोटे चित्र को बड़े आकार में देखकर छात्र बड़े प्रसन्न होते हैं। अतः इस यन्त्र का प्रयोग भी सुविधानुसार किया जाए।

पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं के संगठन के सिद्धान्त

विद्यालय में शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रधान अध्यापक को पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं का अवश्य आयोजन करना चाहिए। उसे प्रमुख रूप से आगे लिखी बातों की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए—

१—प्रत्येक क्रिया का अपना महत्त्व है अत जहाँ तक सम्भव हो समस्त क्रियाओ को विद्यालय के सम्पूर्ण कार्य क्रम मे स्थान देना चाहिए।

२—पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओ का सगठन विद्यालय की आर्थिक स्थिति को देखकर ही किया जाय। सर्वप्रथम कम व्ययपूर्ण क्रियाओ का सगठन किया जाय। सिनेमा, मजिक लैन्टन आदि का आयोजन पर्याप्त धन होने पर ही करना उचित है।

३—पाठयक्रम सम्बन्धी उपकरणो के प्रयोग की जानकारी प्रत्येक अध्यापक को आनी चाहिए।

४—समय तालिका का निर्माण करते समय इन क्रियाओ का भी ध्यान रखा जाय।

५—पाठयक्रम सम्बन्धी क्रियाओ के उदाहरण प्रत्येक विषय की आवश्यकतानुसार ही मँगाय जायँ।

१४

विचित्रालय

SCHOOL MUSEUM

Q What is the importance of a school museum in the education system of higher secondary school ? How should the head of a school ensure the children of all ages are taking full advantage from it ?

प्रश्न—उच्चतर माध्यमिक शिक्षा स्तर पर विचित्रालय का क्या महत्त्व है ? एक प्रधान अध्यापक होने के नाते प्रत्येक स्तर के छात्रों के लिए उसको आप कैसे उपयोग करेंगे ?

Or

Write a short note on school museum, their equipment and use ' (A U, B T 1950, 54, 61)

'विद्यालयों के विचित्रालयों, उनकी सामग्री एव प्रयोग' पर एक सक्षिप्त नोट लिखो ।

उत्तर—

विचित्रालय का अर्थ

हिन्दी का शब्द विचित्रालय अग्रेजी के Museum शब्द का अनुवाद है। *अग्रेजी का शब्द 'म्यूजियम' यूनानी शब्द म्यूजेज' से बना है। म्यूजेज एक यूनानी* देवता का नाम है जिसको कि ललित कलाओं का प्रतिनिधि माना जाता था। अत म्यूजियम वह स्थल या भवन है जहा कला, विज्ञान तथा इतिहास सम्बन्धी विचित्र वस्तुओं का सग्रह किया जाता है। हमारे देश म भी अनेक विचित्रालयों की स्थापना की गई है जिनमे सारनाथ का म्यूजियम हडप्पा का म्यूजियम, प्रयाग का म्यूजियम तथा मथुरा का म्यूजियम आदि आदि प्रसिद्ध है। म्यूजियम द्वारा बालकों का मानसिक विकास सरलता से हो सकता है। अध्यापक का कर्तव्य है कि वह देश के विभिन्न म्यूजियमों का छात्रों को दिखाये। इसके लिए वर्ष म एक या दो भ्रमण योजना बना दी जानी चाहिए।

विद्यालय-म्यूजियम की स्थापना

यह सत्य है कि वास्तविक लाभ छात्रों को विभिन्न म्यूजियमों के देखने से ही हो सकता है, परन्तु सुविधा तथा शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए विद्यालय में एक छोटे से म्यूजियम की स्थापना की जा सकती है। इस म्यूजियम के अन्दर विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का संग्रह किया जाय। जहाँ तक सम्भव हो वस्तुएँ ज्ञान वर्द्धक होनी चाहिए। यदि नगर के कुछ विद्यालय मिलकर एक म्यूजियम की स्थापना कर सकें तो उत्तम रहेगा। ऐसा करने में धन, श्रम की बचत होगी तथा साथ ही नगर के सभी विद्यालय उससे लाभ उठा सकेंगे।

विद्यालय म्यूजियम से लाभ

माध्यमिक शिक्षा आयोग में विचित्रालय के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा गया है—"Museums play a great part in the education of school children as they bring home to them much more vividly than prosaic lectures, the discoveries of the part and various developments that have taken place in many fields of science and technology We have seen the great value that museums play in other countries and the great importance that is attached to visits by school children at periodical intervals to these museums They can also supply a background of information in regard to history, art and other fields of learning"

(१) अध्यापन में सहायक—विद्यालय का म्यूजियम अध्यापन को अत्यन्त प्रभावशाली बना सकता है। म्यूजियम में रखी वस्तुओं का प्रयोग अध्यापक सुविधानुसार कर सकता है। आवश्यकता पड़ने पर छात्रों को म्यूजियम में ले जाया जा सकता है और वहाँ पर अध्यापक सुविधा से प्रत्येक वस्तु का प्रयोग कर सकता है। म्यूजियम के अभाव में आवश्यक सामग्री को एक कमरे से दूसरे कमरे में ले जाना पड़ता है और बार बार सामग्री को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने तथा वापस लाने में टूटने की सम्भावना रहती है।

(२) समय की बचत—म्यूजियम में एक स्थान पर ही विभिन्न सामग्री रखी रहती है। अतः अध्यापक सरलता से उसका उपयोग कर सकता है, जिसमें उनका समय भी नष्ट नहीं होता। म्यूजियम के अभाव में अध्यापक को घण्टा प्रारम्भ होने के पूर्व आवश्यक सामग्री को ढूँढ कर पृथक् रख लेने का अवकाश नहीं मिलता, ऐसी दशा में पाठ पूरे समय तक बिना उपयुक्त सामग्री के चलता रहता है।

(३) शिक्षण के लिए वातावरण—म्यूजियम शिक्षण के लिए अनुकूल वातावरण पैदा करता है और छात्रों की कल्पना शक्ति को प्रखर बनाता है। पाठ से सम्बन्धित वस्तुओं को म्यूजियम में देखकर छात्रों की जिज्ञासा जाग्रत होती है, वे पाठ को भली प्रकार समझने का प्रयत्न करते हैं।

(४) जिज्ञासा का विकास—म्यूजियम में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को देखकर छात्र उनके विषय में जानने का प्रयत्न करते हैं। वे उन वस्तुओं को समझने के लिए अपने अध्यापकों से तरह-तरह के प्रश्न करते हैं। वास्तव में जिज्ञासा भावना छात्रों में ज्ञान का विकास करती है। जितने वे प्रश्न करेंगे उतना ही उनका लाभ होगा।

(५) वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति—यह सत्य है कि मौखिक उदाहरणों से विषय इतना स्पष्ट नहीं होता जितना कि मूर्त या स्थूल पदार्थों को देखकर। म्यूजियम में वास्तविक पदार्थ तथा नमूने या प्रतिकृति (Models) अधिक मात्रा में रखे जाते हैं। वास्तविक पदार्थों (Real objects) का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इन्हें देखने से छात्रों को प्रत्यक्ष अनुभव मिलता है। वे अपनी आँखों से प्रत्येक वस्तु को देखकर स्थायी ज्ञान प्राप्त करते हैं। जिस अनुभव या ज्ञान को बालक स्वयं प्राप्त करते हैं, वह दूसरों से प्राप्त किए हुए अनुभव या ज्ञान से कहीं उत्तम होता है। वास्तविक पदार्थों को देखने से छात्रों की अवलोकन शक्ति का विकास होता है तथा ज्ञान के प्रति उनमें जिज्ञासा उत्पन्न होती है। उन्हें जो भी ज्ञान प्राप्त होता है, स्पष्ट तथा टिकाऊ ज्ञान होता है।

(६) संग्रह वृत्ति (Acquisition) का शोधन—बालकों में वस्तुओं को संग्रह करने की मूल प्रवृत्ति पाई जाती है। वे बिना मतलब ही अनेक वस्तुओं को एकत्रित किया करते हैं। यदि उनको ज्ञान वर्द्धक वस्तुएँ म्यूजियम के लिए एकत्रित करने के लिए कहा जाय तो संग्रह वृत्ति का उचित शोधन होगा। एक विद्वान् के अनुसार, 'The behaviour of children is instinctive to a great extent. The urge of acquisition is one of the most important instincts at this stage. This urge can be sublimated most effectively through arrangement of a museum.' अतः छात्रों को विभिन्न वस्तुओं को संग्रहीत करने के लिए कहा जाय।

(७) देश की संस्कृति का ज्ञान—म्यूजियम के द्वारा छात्र को देश की गौरवमयी संस्कृति का ज्ञान सरलता से कराया जा सकता है। देश की विभिन्न इमारतों के नमूने, चित्रकला, मूर्तियाँ आदि एक स्थान पर ही देखने हैं। इन ऐतिहासिक कृतियों को देखकर छात्रों के मन में देश की संस्कृति के प्रति स्नेह तथा श्रद्धा उत्पन्न होती है। उन्हें ज्ञात होता कि हमारे देश ने प्राचीन काल में कला तथा साहित्य के क्षेत्र में कितनी प्रगति की थी।

(८) दृष्टिकोण का तार्किक होना—म्यूजियम में देखी गई वस्तुएँ छात्रों में तरह तरह की शंकाएँ उत्पन्न करती हैं, वे इन शंकाओं को शान्त करने के लिए आपस में वाद विवाद करते हैं जिससे उनका दृष्टिकोण तार्किक बनता है। अध्यापक, छात्रों को निबन्ध आदि लिखने को देकर तार्किक शक्ति के विकास के साथ साथ आत्म प्रकाशन का भी अवसर देता है।

(६) क्रियाशीलता तथा रचना का अवसर—म्यूजियम के लिए आवश्यकता पडने पर नमूने तथा प्रतिरूप छात्रो से बनवाए जाते हैं जिससे उन्हे क्रिया तथा रचना का अवसर मिलता है। छात्र विभिन्न वस्तुओं को बनाकर अपनी भावनाओं का प्रदर्शन करते हैं। जितना सुन्दर वे किसी वस्तु को बनाते है उतना ही उनके अन्दर कलात्मक विकास होता है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि रचना करने की प्रवृत्ति छात्रो म पाई जाती है अत इसका शोधन प्रतिरूपो या नमूनो को बनवाकर किया जा सकता है। एक विद्वान लेखक के अनुसार, "Small children have creative urge also This urge too may be exploted They should be encouraged to prepare geographical and historical models and maps pictures and paintings and beautiful toys The selected articles should be kept in the museum" स्वय निर्मित नमूनो को देखकर छात्र प्रसन्न होते हैं।

म्यूजियम की सजावट

प्रधान अध्यापक को चाहिए कि वह म्यूजियम की सजावट या साज सज्जा की ओर विशेष रूप से ध्यान दे। इस विषय म उसे निम्न बातें ध्यान म रखनी चाहिए—

(१) म्यूजियम का कमरा—म्यूजियम का कमरा आवश्यक रूप से बडा होना चाहिए जिससे विभिन्न प्रकार की सामग्री रखी जा सके। इस कक्ष के फर्श का क्षेत्र फल ही बडा न हो वरन् दीवारो की ऊँचाई भी पर्याप्त होनी चाहिए। म्यूजियम का विभिन्न विषयो के छात्र उचित प्रयोग कर सकें इसके लिए उसके अनेक विभाग किये जा सकते है जैसे साहित्य कक्ष, इतिहास कक्ष तथा भूगोल कक्ष आदि-आदि।

(२) बैठने लिए स्थान—म्यूजियम को शिक्षा का साधन बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसम छात्रो के बैठने के लिए स्थान भी रखा जाय। इस प्रकार की व्यवस्था हो जाने पर अध्यापक म्यूजियम म रखे गए प्रतिरूपो का प्रयोग सरलता से कर सकता है।

(३) अल्मारियाँ—जहाँ तक सम्भव हो अल्मारियाँ दीवार के अन्दर हो। जिससे कि स्थान की बचत हो सके। इनकी लम्बाई, चौडाई पर्याप्त होनी चाहिए जिससे इनम ऐतिहासिक प्रमाण पत्र आदि सरलता से रखे जा सकें।

(४) शो केस (Show case)—म्यूजियम के अन्दर उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करने के लिए शो-केसो की व्यवस्था अवश्य की जाय। दीवारो के किनारे शीशे के शो-केस लगे होने चाहिए। इन शो-केसो म प्रतिरूप, वास्तविक पदार्थ, सिक्के, मूर्तियाँ तथा ऐतिहासिक अवशेष रखे जा सकते हैं।

(५) चार्ट तथा चित्र—म्यूजियम मे आवश्यकतानुसार चित्र तथा चार्टों को भी स्थान दिया जाना चाहिए। दीवारो पर ऐतिहासिक घटनाओ के चित्र, ऐतिहासिक महापुरुषो के चित्र तथा प्राचीन युग के हथियारो के चित्र लटकाए जा सकते हैं।

भूगोल के कक्ष में विभिन्न देश के निवासियों के चित्र, मकानों तथा वस्त्रों के चित्रों को देखकर टांगा जा सकता है। विज्ञान के कक्ष में पशुओं, पौधों तथा मानव शरीर से सम्बंधित विभिन्न चित्रों को स्थान दिया जा सकता है।

(६) वास्तविकता का ध्यान रहे—म्यूजियम में वस्तुओं को सजाते तथा स्थान देते समय यह ध्यान रहे कि उसमें उन वस्तुओं को ही स्थान दिया जाय जिनका कि शिक्षा की दृष्टि से महत्त्व हो तथा वे अपने रूप में भी वास्तविक हों। म्यूजियम में जहां तक सम्भव हो वास्तविक पदार्थ ही रखे जायें। इतिहास के कक्ष में प्राचीन मूर्तियां, प्राचीन सिक्के, शिला लेख रखे जा सकते हैं। विज्ञान कक्ष में मरे हुए बड़े सर्पों को, बिच्छुओं को तथा अन्य पशुओं को स्प्रिट में डुबो कर रखा जा सकता है। वास्तविक पदार्थ न मिलने पर प्रतिरूपों या नमूनों को रखा जाय परन्तु प्रतिरूपों या नमूनों के निर्माण में निम्न बातें अवश्य ध्यान में रखी जायें।

१—अच्छे नमूने का प्रथम गुण उसके वास्तविक पदार्थ से अधिक मेल खाना है। अतः जहां तक सम्भव हो, नमूने वास्तविक पदार्थ की पूर्ण नकल हों।

२—नमूने या प्रतिरूप पूर्णतया स्पष्ट हों, अर्थात् छात्र उसे देखते ही समझ जायें।

३—प्रतिरूप जहां तक सम्भव हो ठोसपन लिए हों।

१५
प्रयोगशाला
LABORATORY

Q Draw up a plan for the construction and equipment of laboratory for a high school

प्रश्न—माध्यमिक स्तर की प्रयोगशाला के निर्माण तथा सामग्री के लिए एक योजना प्रस्तुत कीजिए।

Or

What is the value of a school science laboratory in the teaching of science ?

विद्यालय में विज्ञान प्रयोगशाला का विज्ञान शिक्षण में क्या महत्त्व है ?

उत्तर—किसी भी विषय के शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमे कुछ उपकरणो का प्रयोग किया जाय। अन्य विषयो मे उपकरणो की इतनी आवश्यकता नही होती, जितनी कि विज्ञान मे। अत यह आवश्यक है कि विज्ञान शिक्षण के उपकरणो को सुरक्षित एक स्थान पर रखा जाय, जिससे आवश्यकता पडने पर उनका प्रयोग सरलता से किया जा सके। इस उद्देश्य के लिए ही विद्यालयो मे प्रयोगशालाओ का निर्माण किया जाता है। प्रयोगशाला मे प्रयोग मे आने वाले विभिन्न उपकरण व्यवस्थित ढग से रखे रहते है। छात्र विभिन्न प्रयोग प्रयोगशाला मे करते हैं।

प्रयोगशाला का महत्त्व

प्रयोगशाला के अभाव मे विज्ञान शिक्षण को प्रभावशाली नही बनाया जा सकता। अध्यापक यदि कक्षा मे प्रयोग करता है तो उसे बार बार प्रयोग सम्बन्धी उपकरणो को लेने के लिए कक्षा से बाहर जाना पडेगा। ऐसा करने से समय नष्ट होगा और प्रयोग दिखाने का कार्य बीच मे ही रुका रहेगा। दूसरे, प्रयोग की सामग्री को बार बार इधर-उधर ले जाने से टूटने-फूटने का डर रहता है। हमारे विज्ञान-शिक्षण के अनुसार वातावरण बनाने के लिए प्रयोगशाला का वातावरण छात्रो मे

उत्साह भरता है। विभिन्न उपकरणो को देखकर उनके अन्दर जिज्ञासा उत्पन्न होती है और व उनका प्रयोग करने तथा देखने म विशेष आनन्द का अनुभव करते हैं। प्रयोगशाला म चार्ट तथा ग्राफो को देखकर बहुत सी बात छात्र अनायास ही सीख जाते है। छात्रो के दृष्टिकोण को वैज्ञानिक बनान म प्रयोगशाला विशेष रूप से सहायक होती है। श्री नाथूराम जी के शब्दो म "वैज्ञानिक तथ्यो, नियमो और सामान्य सिद्धान्तों के सत्यापन के लिए प्रयोगशाला का होना अनिवार्य सा प्रतीत होता है। कार्य कारण सम्बन्ध स्थापित करने, रचनात्मक शक्ति का विकास करने और समस्याओ का हल करने के लिए यदि प्रयोग कार्य करना है तो प्रत्येक विद्यालय में आदर्श प्रयोगशाला का निर्माण करना होगा।"

विज्ञान का शिक्षण केवल पुस्तको के आधार पर ही नही किया जा सकता वैज्ञानिक सिद्धान्तो को कसौटी पर कसने के लिए हम प्रयोग का ही सहारा लेना पड़ता है। छात्र किसी भी बात को जितनी शीघ्रता स प्रयोगो के माध्यम स समझ जाते है उतने और किसी माध्यम स नही। इस प्रकार हम देखते हैं कि विज्ञान शिक्षा म प्रयोगशाला का अपना विशेष महत्व है।

माध्यमिक विद्यालयो के लिए प्रयोगशाला

माध्यमिक विद्यालयो म प्राय भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान के अलग पृथक होते है। दोनो की एक ही प्रयोगशाला होती है। प्रयोगशाला के एक भाग म जीव विज्ञान और वनस्पति विज्ञान के प्रयोगो का इन्तजाम भी किया जा सकता है। हमारे देश म विद्यालय के पास इतना धन नही है कि व विज्ञान की प्रत्येक शाखा के लिए अलग स प्रयोगशाला स्थापित कर सके। कुछ विद्यालय तो ऐसे भी है जहा विज्ञान का शिक्षण तो होता है परन्तु प्रयोगशाला का कोई प्रबन्ध नही है।

प्रयोगशाला की साज सज्जा

किसी भी प्रयोगशाला म ३० छात्रो स अधिक प्रयोग सुविधापूर्वक नही कर सकते। अत ३० छात्र एक साथ प्रयोग कर सके ऐसी प्रयोगशाला के लिए लगभग १००० वर्ग फीट के क्षेत्रफल की भूमि होनी चाहिए। दूसरे शब्दो म लम्बाई ४५ फीट तथा चौड़ाई २५ फीट होनी चाहिए। प्रयोगशाला से ही सम्बद्ध स्टोर हो जिसमे आवश्यक सामान रखने म सुविधा रहती है। स्टोर रूम कम स कम २५×१६ का होना चाहिए। इसम उचित प्रकार की व्यवस्था का होना परम आवश्यक है। सामान को सुरक्षित रखने के लिए इसम पर्याप्त मात्रा म गहरी अल्मारियाँ होनी चाहिए। अल्मारियो म शीशो का लगा होना परम आवश्यक है जिससे कि सरलता म देखा जा सके। तरल पदार्थ की बोतलें सावधानी स रखी जायें। जो तरल पदार्थ विषैले हो उन पर लेबिल लगा देना चाहिए। इसी प्रकार विस्फोटक पदार्थों को भी एक अल्मारी म बन्द करके रखा जाय। काँच की परखनली बीकर तथा टेस्ट ट्यूब आदि को एक अलग अलमारी म सुसज्जित ढग म रखना चाहिए। कमरे म पर्याप्त

मात्रा मे खूँटियाँ होनी चाहिए जिससे कि आवश्यक उपकरण उन पर लटकाये जा सकें। स्टोर रूम में दो-तीन बाल्टी रेत की भरी अवश्य रखी रहें, जिससे कि कभी आग आदि की दुर्घटना पर उसे नियंत्रित किया जा सके।

अँधेरा कमरा—विज्ञान-शिक्षण मे फोटोग्राफी सम्बंधी प्रयोग करने के लिए अँधेरे कमरे की भी आवश्यकता होती है। यह कमरा प्रयोगशाला के निकट ही होना चाहिए जिससे सुविधानुसार उसका प्रयोग किया जा सके। यह आकार में छोटा होना चाहिए। दरवाजे तथा खिड़कियों पर काले परदे लगाये जायँ जिससे कि प्रकाश अन्दर न आ सके। कमरे में विद्युत प्रकाश का भी प्रबन्ध होना चाहिए।

प्रयोगशाला की मेज—प्रयोगशाला में अधिक से अधिक ७ मेजें हों जिन पर प्रत्येक पर ४ छात्र काम कर सकें। प्रत्येक मेज लम्बाई में ६ फीट तथा चौड़ाई में ४ फीट की होनी चाहिए। मेज के मध्य में पानी का सिंक (Sink) हो जिसे छात्र सुविधानुसार प्रयोग में ला सकें। प्रत्येक सिंक के किनारे पर पानी के नल का प्रबन्ध होना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो प्रत्येक मेज पर गैस-पाइप हो। यदि गैस-पाइप की व्यवस्था नहीं की जा सके तो स्प्रिट की कुप्पी से भी काम चलाया जा सकता है। मेज इस ढंग से रखी जायँ कि आवश्यकता पड़ने पर उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाया जा सके। प्रयोगशाला में एक मेज अध्यापक की भी होनी चाहिए जहाँ कि वह स्वयं प्रयोग करके छात्रों को दिखा सके।

मेज पर छात्र ढंग से कार्य कर सकें इसके लिए बैठने के ऊँचे स्टूल होने चाहिए। स्टूल ऐसे हों जिन पर कि छात्र सरलता से बैठकर कार्य कर सकें। यदि स्टूलों के पायों में रबर लगी हो तो और भी उत्तम है, क्योंकि खिसकने से किसी प्रकार की आवाज नहीं होगी।

प्रकाश की व्यवस्था—प्रयोगशाला में उचित प्रकाश की व्यवस्था होनी चाहिए। आमने सामने रोशनदान हों जिससे कि प्रकाश की किरणें सरलता से अन्दर प्रवेश कर सकें तथा प्रयोगशाला की दूषित वायु शीघ्रता से बाहर निकल सके। खिड़कियाँ फर्श से कम से कम ४ फुट ऊँची हों। खिड़कियाँ जहाँ तक सम्भव हो बाहर की ओर खुलने वाली होनी चाहिए। खिड़कियों में काँच लगा हो तो और भी उत्तम है।

जल की व्यवस्था—विभिन्न प्रयोगों के लिए जल की आवश्यकता रहती है। परन्तु इसके लिए नगर जल व्यवस्था पर निर्भर नहीं रहा जा सकता, क्योंकि नगर के नल चाहे जब चले जाते हैं। अतः प्रयोगशाला के ऊपर जल-संग्रह के लिए टंकी का होना भी आवश्यक है।

भौतिक तुला तथा अलमारियाँ—प्रयोगशाला की दीवार के पास या कोने में भौतिक तुलाओं को व्यवस्थित किया जाय। बचे स्थानों पर काँच-युक्त अलमारियाँ रखी जायँ। इन अलमारियों में विभिन्न प्रयोग में आने वाले यन्त्र तथा रासायनिक

पदार्थ रखे जाने चाहिए। विस्फोटक तथा विषैले पदार्थों को इन अलमारियों में नहीं रखा जाय। अलमारी छात्रों की नोट बुक तथा पुस्तकों के रखने के लिए होनी चाहिए। प्रयोग करने से पूर्व छात्र इसमें अपना सामान तथा पुस्तकें आदि रख सकें।

श्यामपट—अध्यापक की मेज के पीछे एक श्यामपट होना चाहिए। श्यामपट बड़े आकार का होना चाहिए जिस पर लिखने के साथ साथ चित्र भी बनाये जा सकें। प्रायः प्रयोगशालाओं में ऊपर-नीचे खिसकने वाले श्यामपट प्रयोग में लाये जाते हैं।

प्रयोगशाला में फिल्म प्रदर्शन का भी प्रबन्ध होना चाहिए। इसके लिए पर्दे (Screen) की व्यवस्था की जाय। पर्दा ऐसे स्थान पर हो कि प्रत्येक छात्र उसे देख सके।

प्रयोगशाला का फर्श—प्रयोगशाला का फर्श मजबूत होना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो फर्श चिकना और ढलावदार हो। ईंट का फर्श बेकार होता है, क्योंकि उसकी सरलता से सफाई नहीं हो सकती। कंकरीट के फर्श पर सीमेंट का प्लास्टर उपयोगी रहता है।

फ्यूमहुड (Fumehood)—दुर्गन्ध युक्त जहरीली गैसों को बाहर निकालने की भी व्यवस्था की जाय। इसके लिए प्रयोगशाला में फ्यूमहुड होना चाहिए।

विद्युत का फिटिंग—प्रयोगशाला में विद्युत का उचित फिटिंग होना चाहिए।

वैज्ञानिकों के चित्र—प्रयोगशाला में उचित वातावरण उत्पन्न करने के लिए प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के चित्र ऊपर दीवारों पर टँगे होने चाहिए। चित्रों के नीचे उनके द्वारा किये गए आविष्कारों का भी उल्लेख होना चाहिए।

प्रयोगशाला की सामग्री—सर्वप्रथम अध्यापक को यह पता लगाना चाहिए कि प्रयोगशाला के लिए कौन कौन से यन्त्र तथा पदार्थों की आवश्यकता है। ऊपर हम उल्लेख कर चुके हैं कि आर्थिक कठिनाइयों के कारण विद्यालयों में रासायनिक भौतिक तथा जीव विज्ञान आदि की एक ही प्रयोगशाला होती है। अतः तीनों विषयों के अध्यापकों को परस्पर मिलकर सामग्री की सूची बना लेनी चाहिए। इसके लिए विज्ञान कक्षाओं के पाठ्यक्रम का भली प्रकार विश्लेषण करना चाहिए। पाठ्यक्रम का विश्लेषण करने से यह ज्ञात हो जायगा कि पाठों को पढ़ाते समय कौन कौन-से यन्त्र तथा पदार्थों की आवश्यकता पड़ेगी। इस कार्य में निर्धारित पाठ्य-पुस्तकों से भी सहायता ली जा सकती है। प्रयोगशाला के लिए निर्धारित बजट का प्रयोग अत्यन्त सोच समझ कर करना चाहिए। विज्ञान शिक्षण के लिए सहायक सामग्री बनाने वाली फर्मों से कीमत की सूची मँगा लेनी चाहिए, तत्पश्चात् किसी अच्छी फर्म में जाकर खरीदे जाने वाले सामान का ठीक प्रकार निरीक्षण करना चाहिए। प्रत्येक यन्त्र को भली प्रकार देखभाल कर ही खरीदा जाय।

सामग्री की सुरक्षा—प्रयोगशाला में अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ रखी जाती हैं। यदि उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध ढंग से नहीं किया जायगा तो उनके नष्ट होने की सं

चोरी होने की सम्भावना रहती है। अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह प्रयोग में आने वाली सामग्री की ठीक प्रकार से सुरक्षा का प्रबन्ध करे। प्रयोग आरम्भ करने से पूर्व छात्रों को जो सामान प्रदान किया जाय, उसकी सूची बना ली जाय। प्रयोग के समाप्त हो जाने के पश्चात् सामान का निरीक्षण कर लिया जाय। यदि कोई सामान छात्र द्वारा गुम हो गया है तो उसे आर्थिक दण्ड दिया जाय। इस कार्य में मानीटर से सहायता ली जा सकती है। प्रति मास विज्ञान के अध्यापक को समय निकाल कर प्रयोगशाला के सामान का भली प्रकार निरीक्षण करना चाहिए। एक रजिस्टर में प्रयोगशाला का समस्त सामान लिखा रहना चाहिए। इसमें वस्तुओं की खरीद आदि भी दर्ज रहनी चाहिए।

प्रयोगशाला का कारखाना—प्रयोगशाला के निकट एक ऐसा कमरा होना चाहिए जिसमें छात्र प्रयोग में आने वाले साधारण यन्त्रों का निर्माण कर सकें। इस प्रकार यन्त्र निर्माण करने से छात्र व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करते हैं। दूसरे उनमें विज्ञान के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। प्रयोग करते करते कभी कभी यन्त्र बिगड़ जाया करते हैं, उन्हें भी इस कारखाने में ठीक किया जा सकता है। इस प्रकार यदि कारखाने का सचालन ढंग से किया जाय तो पर्याप्त धन की बचत की जा सकती है।

१६

गृह-कार्य
HOME WORK

Q Why is home work considered necessary for school children ? How will you supervise home work in social studies and mathematics ?

(L T 1951)

प्रश्न—शिक्षालय के बालको के लिए गृह कार्य क्यो आवश्यक है ? सामाजिक अध्ययन तथा गणित के गृह काय का निरीक्षण किस प्रकार करेंगे ?

Or

What are the principles of giving home work in the school ? Give its importance

(Allahabad 1951 , A U 1953)

गृह-काय का महत्त्व बताइये । गृह काय प्रदान करते समय किन किन बातों का ध्यान रखगे ?

उत्तर—छात्र की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए गृह और विद्यालय का सहयोग परम आवश्यक है। छात्र का अधिकाश समय विद्यालय की अपेक्षा घर म बीतता है। विद्यालय म इतना समय नही होता कि बताये हुए समस्त काय को छात्र वहीं पर समाप्त कर द। इस कारण यह आवश्यक हो जाता है कि छात्र विद्यालय म बताये हुए काय का कुछ अश घर से करके लाये। इस प्रकार गृह काय विद्यालय के उद्देश्यो की पूर्ति हेतु अच्छा साधन है।

गृह काय के विषय में मतभेद

यद्यपि गृह काय छात्रो के लिए लाभदायक है परन्तु फिर भी गृह काय प्रदान करने पर विद्वानो म मतभेद है। एक मत के समर्थको के अनुसार गृह काय प्रदान करके हम छात्र के घर के वातावरण को विद्यालय की भाँति बन्दीघर बना देते हैं। उनके मतानुसार छात्रो को विद्यालय म लिखने पढने के अतिरिक्त घर के लिए काम देना उन पर अत्याचार करना है। जहाँ तक हो सके, स्कूल का काम स्कूल के समय

म समाप्त हो जाना चाहिए। गृह-कार्य द्वारा हम छात्र को केवल परीक्षा मे पास करा सकते है, इसके अतिरिक्त कुछ नही प्राप्त करा सकते। इस मत के प्रमुख समर्थक ब्रे (Bray) हैं। उनके मतानुसार गृह काय लाभ पहुचाने की अपेक्षा हानि अधिक पहुचाता है जैसा कि वे लिखते है—"Under normal conditions a reasonable days work for a child has been done at the close of after noon session and home work as it is generally organized does more harm than good as rule in this country " गृह काय को कुछ स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक मानते हैं, क्योकि अधिक गृह-काय करने से छात्र को खेलने-कूदने का अवसर प्राप्त नही होता उसका सारा समय गृह काय को पूरा करने म लग जाता है। गृह काय को पूरा करने की चिन्ता भी उसके स्वास्थ्य पर प्रभाव डालती है।

उपर्युक्त मत के विरोध म बोलने वालो की भी कमी नही है। वास्तव म व्यावहारिकता को देखते हुए गृह काय प्रदान करना अत्य त आवश्यक हो जाता है। यदि छात्र गृह काय नही करे तो अध्यापक के लिए निधारित समय मे पाठ्यक्रम को समाप्त करना कठिन हो जाय। गृह काय द्वारा छात्र स्वय करके काय करना सीखता है। हमारे दृष्टिकोण मे गृह काय का प्रदान करना आवश्यक है, क्योकि इसम छात्र को स्वतन्त्रता तथा स्वावलम्बन का पाठ सरलता के साथ सिखाया जा सकता है। पर तु साथ ही गृह काय प्रदान करते समय इस बात का भी ध्यान रखना है कि गृह काय छात्र के गृह जीवन को नीरस तथा सारहीन न बना दे। इस कारण गृह काय प्रदान करते समय हम कुछ सिद्धान्तो का अवश्य पालन करना होगा।

गृह काय के उद्देश्य

गृह काय प्रदान करने के सिद्धान्तो का अध्ययन करने से पहले हम यह देखना है कि गृह-काय द्वारा किन उद्देश्यो की पूर्ति करनी है।

(१) गृह काय प्रदान करने का प्रथम उद्देश्य छात्रो को स्वाध्याय के लिए प्रोत्साहित करना है।

(२) कक्षा म पढ़े हुए पाठ को छात्र उचित प्रकार से आत्मसात कर सके तथा पढ़े हुए विषय को अपने मस्तिष्क मे स्थायी रख सके।

(३) कक्षाध्यापन के दोषो को दूर करना तथा छात्रो को उचित आवश्यकतानुसार निर्देशन प्रदान करना।

(४) छात्रो म अपना काम स्वय समाप्त करने की भावना भरना जिससे उनका आत्मविश्वास दृढ़ हो।

गृह काय से लाभ

(१) इसके द्वारा छात्र स्वतन्त्रतापूवक अपना काय करना सीखते है, स्वय अपनी सहायता करने की प्रवृत्ति का उदय होता है।

(२) गृह काय छात्रो म नित्य काय समाप्त करने की आदत डालता है।

(३) अध्यापक द्वारा प्रदान किये गए प्रश्नों का हल करने के लिए छात्र प्रयत्न करते हैं, इस प्रकार स्वाध्याय को प्रोत्साहन मिलता है।

(४) गृह-कार्य को देखकर अध्यापक छात्र की समझने की शक्ति का पता लगा लेता है। कक्षा में जो विषय पढ़ाया गया है वह छात्र की समझ में भली प्रकार से आ गया अथवा नहीं, इसका पता गृह कार्य देखकर सरलता से लगाया जा सकता है।

(५) गृह कार्य द्वारा छात्रों को आत्माभिव्यक्ति का अवसर मिलता है। वे घर के शान्त वातावरण में बैठकर भली प्रकार से भाव प्रकाशन कर सकते हैं।

(६) गृह-कार्य द्वारा छात्रों को पुस्तकों का अधिक से अधिक प्रयोग करना सिखाया जा सकता है।

(७) इसके द्वारा अध्यापकों तथा अभिभावकों के सम्बन्ध में मधुरता आती है। अभिभावक तथा अध्यापक दोनों मिलकर छात्रों का कल्याण करने का प्रयत्न करते हैं।

(८) गृह-कार्य का नैतिक मूल्य भी है। इसके द्वारा छात्रों में आत्मविश्वास, कार्य करने की लगन आदि गुणों का विकास होता है। छात्रों का अधिकांश समय घिरा रहता है। परिणामस्वरूप, उन्हें किसी प्रकार की शरारत नहीं सूझती। रुचिपूर्ण गृह-कार्य देकर छात्रों की मूल प्रवृत्तियों का शोधन किया जा सकता है।

गृह कार्य से हानियाँ

(१) गृह-कार्य, छात्रों को अपनी विभिन्न रुचियों को सन्तुष्ट करने के लिए बहुत कम समय प्रदान करता है। विद्यालय के पश्चात् छात्र मनोरंजक क्रियाएँ चाहने पर नहीं कर सकते, क्योंकि उन्हें गृह कार्य का सदा भय बना रहता है।

(२) गृह कार्य के कारण छात्र गृह जीवन का आनन्द नहीं उठा पाते। उन्हें कार्य की अधिकता के कारण अपने माँ-बाप के पास तक बैठने की फुरसत नहीं मिलती।

(३) अधिकांश छोटे बच्चों के खेल कूद का समय गृह-कार्य में चला जाता है क्योंकि वे रात को अधिक देर तक जाग नहीं सकते, इस प्रकार उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। बड़े लड़के रात को देर तक जाग कर गृह कार्य पूरा करने का प्रयत्न करते हैं यह और भी अधिक हानिकारक होता है।

(४) हमारा देश अत्यधिक निर्धन है। लोगों के पास रहने के लिए ठीक प्रकार के मकान भी नहीं हैं। गलियों के छोटे छोटे वातावरण में छात्रों को गृह कार्य प्रदान करना, लाभ पहुँचाने के बजाय हानिकारक है। रात को प्रकाश के अभाव के कारण छात्र गृह कार्य को पूरा करने में असमर्थ होते हैं। अधिक कार्य करने की उनमें शक्ति भी नहीं होती, क्योंकि उन्हें ठीक प्रकार से भोजन भी नहीं मिलता।

(५) गृह कार्य की अधिकता के कारण छात्र अपने माँ-बाप का हाथ बटाने में सहयोग प्रदान नहीं कर सकते।

गृह काय के सिद्धान्त

(१) **कार्य की मात्रा**—गृह-काय प्रदान करते समय अध्यापक को काय की मात्रा पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। दिया हुआ काय इतना न हो कि छात्र उसे भार समझ कर उसके प्रति घृणा का भाव रखे। गृह काय उतना ही हो जितना कि छात्र सरलता के साथ कर सके।

(२) **छात्रा की मानसिक आयु को ध्यान में रखना**—गृह काय छात्रा की मानसिक आयु तथा स्वास्थ्य को देखकर प्रदान किया जाय। प्रारम्भिक कक्षा के छात्रा को गृह-काय नाम मात्र को या बिलकुल नहीं दिया जाय तो अनुचित नहीं। सातवी आठवा कक्षा से गृह-काय की मात्रा बढाई जा सकती है। उच्च कक्षा के छात्रो को गृह काय उनकी मानसिक आयु को देखते हुए अधिक से अधिक दो घण्टे का होना चाहिए। अस्वस्थ छात्रो को गृह-काय न प्रदान करना उचित है।

(३) **व्यक्तिगत कठिनाइयों को ध्यान में रखना**—गृह काय छात्रा की व्यक्तिगत कठिनाइया को देखते हुए प्रदान किया जाय। अनेक छात्रो को घर पर अपने माँ बाप के साथ जीविका कमाने का काय करना पडता है, उनके पास घर पर इतना समय नहीं होता कि वे गृह काय के करने मे घण्टा या दो घण्टा प्रदान कर सके। इस प्रकार के छात्रो के साथ विशेष रियायत की जाय, जहा तक हो सके उन्हे कम काम प्रदान किया जाय।

(४) **रचनात्मक शक्ति के विकास का अवसर**—गृह काय छात्रा की रचनात्मक शक्ति का विकास करने वाला होना चाहिए, जिससे उनकी विचार शक्ति तथा तर्क शक्ति का विकास हो।

(५) **स्वाध्याय को प्रोत्साहन मिले**—अधिकाश अध्यापक गृह-काय परीक्षा मे पास होने के उद्देश्य से प्रदान करते है, जो पूर्णतया अनुचित है। गृह काय प्रदान करने का उद्देश्य छात्रो मे स्वाध्याय तथा स्वावलम्बन की प्रवृत्तिया का उदय करने के लिए होना चाहिए।

(६) **व्यक्तिगत योग्यताओं तथा विभिन्नताओ का महत्त्व**—गृह काय वैयक्तिक भिन्नताओ तथा योग्यताओ को ध्यान मे रखकर प्रदान किया जाय। कक्षा के अन्दर समस्त छात्र समान योग्यता वाले नही होते तथा उनमे समान रूप से काय करने की शक्ति भी नहीं होती। इस कारण यह आवश्यक हो जाता है कि गृह काय प्रदान करने समय यह देखा जाय कि अमुक छात्र मे उसके करने की योग्यता है अथवा नहीं। छात्रों की योग्यता तथा शक्ति से परे गृह काय प्रदान करना हानिप्रद है। पढने मे तेज छात्र को गृह-कार्य अधिक दिया जा सकता है।

(७) **पाठ को दुहराने के लिए**—गृह काय का उद्देश्य कक्षा मे पढाए हुए पाठ को दुहराना होता है, इस कारण अध्यापक को प्रश्न इस ढग के देने चाहिए जिससे छात्र कक्षा मे पढ़ाए हुए पाठ को दुहरा कर उसे मस्तिष्क मे स्थायी बना सकें।

(८) उचित परामर्श—गृह कार्य प्रदान करते समय अध्यापक को, छात्र को हर प्रकार की उचित सलाह प्रदान करनी चाहिए। कक्षा में पढ़ाये गए पाठ के अतिरिक्त भी छात्र कुछ पढ़े, इसके लिए अध्यापक को कुछ चुनी पुस्तकों के पृष्ठ, जो कि प्रश्नों से सम्बन्धित हैं, गृह-कार्य प्रदान करते समय अवश्य बता देने चाहिए।

(९) विषयों को समन्वित करके—कुछ विषयों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः गृह कार्य प्रदान करते समय इस प्रकार के प्रश्न दिये जायें जिनसे कि दोनों विषयों के बारे में छात्र का कितना ज्ञान है, ज्ञात हो सके। उदाहरण के लिए इतिहास, भूगोल का पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि अध्यापक इस प्रकार के प्रश्न प्रदान करे कि इतिहास के साथ साथ भूगोल की भी परीक्षा हो जाय तो यह एक आदर्श गृह कार्य होगा।

(१०) नियमित जाँच हो—गृह कार्य प्रदान करना ही अध्यापक का कर्तव्य नहीं है, वरन् गृह कार्य को सफल बनाने के लिए यह भी आवश्यक है कि उसकी नियमित रूप से जाँच भी होती रहे। यदि गृह-कार्य की नियमित रूप से जाँच नहीं होती है तो गृह कार्य प्रदान करना व्यर्थ है। गृह कार्य की जाँच न होने से छात्रों की कमजोरी का पता नहीं चलता तथा छात्रों में लापरवाही से काम करने की प्रवृत्ति का विकास होता है।

(११) अध्यापक अभिभावक सहयोग—गृह कार्य को सफल बनाने के लिए अध्यापक तथा अभिभावक सहयोग आवश्यक हो जाता है। अभिभावकों का कर्तव्य है कि वे अपने बच्चों को देखें कि वे प्रदान किये गए गृह कार्य को ठीक प्रकार से करते हैं या नहीं। अभिभावकों को छात्रों को हर प्रकार की सुविधा प्रदान करनी चाहिए जिससे कि वे गृह कार्य सरलता के साथ कर सकें।

(१२) दूसरे अध्यापकों का ध्यान—अध्यापकों को गृह कार्य दूसरे अध्यापकों का ध्यान रखकर देना चाहिए। यदि सभी अध्यापक बिना एक दूसरे का ध्यान किये छात्र पर गृह कार्य का बोझा लाद दें तो यह छात्र को एक प्रकार का अनुचित दण्ड देना है। अतः अध्यापकों को इस विषय में आपस में समझौता कर लेना चाहिए।

विभिन्न विषयों में

अब हम यह देखना है कि प्रमुख विषयों में गृह कार्य किस सीमा तक तथा किस प्रकार का प्रदान किया जाय।

(क) सामाजिक विषय (इतिहास, भूगोल तथा नागरिकशास्त्र आदि)—सामाजिक विषयों में गृह कार्य प्रदान करते समय जहाँ तक हो सके छात्रों को अपनी नाव प्रदान शक्ति का प्रदर्शन करने का अवसर प्रदान किया जाय। पाठ्य विषयों से सम्बन्धित प्रश्नों के अतिरिक्त छात्रों से विभिन्न राजवंशों की वंशावली, स्थानीय ऐतिहासिक स्थलों का वर्णन आदि लिखने का प्रदान किए जा सकते हैं। भूगोल में मानचित्र, रेखाचित्र आदि बनाने को प्रदान किए जायें।

(ख) गणित—गृह काय का सबसे अधिक प्रयोग गणित मे किया जाता है, पर तु गणित म गृह काय प्रदान करते समय इस बात का अवश्य ध्यान रखा जाय कि छात्रो को समस्यामूलक प्रश्न प्रदान किये जायें अर्थात् प्रश्न ऐसे हो जि ह करने म छात्र वुद्धि का प्रयोग करे। साथ ही साथ छात्रा से पूरी उदाहरणमाला भी न कराई जाय। जहाँ तक हो सके कठिन सवालो को कक्षा म ही श्यामपट पर हल किया जाय।

(ग) भाषा—भाषा के लिए गृह काय प्रदान करते समय रुचि का विशेष ध्यान रखा जाय तो अच्छा है। इस प्रकार के गद्याश दिये जायँ, जिनसे छात्रो की भाव प्रकाशन शैली का विकास हो तथा वे नये नये शब्द सीखे। कुछ कठिन शब्द वाक्यो म प्रयोग करने के लिए भी प्रदान किये जा सकते है।

१७

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ

CO CURRICULAR ACTIVITIES

Q What parts do the co curricular activities play in moulding the future career of students in a well established school ?

(B T 1963)

प्रश्न—एक सुव्यवस्थित विद्यालय में पाठ्य सहगामी क्रियाएं बालक के भविष्य निर्माण मे किस प्रकार अपना योग देती हैं ?

Or

One of the aims of modern education is the socialization of the individual How can extra curricular activities utilized to realize this goal ?

(B T 1963)

आधुनिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है, 'व्यक्ति का सामाजीकरण' इस उद्देश्य को प्राप्त करने मे पाठ्य-सहगामी क्रियाएँ किस प्रकार अपना योग दे सकती हैं ?

Or

' The extra curricular activities in school are the very salt of school life " Discuss and explain the effect on any one of them on the social and moral education of childern

(A U, B T 1951)

' विद्यालय की अतिरिक्त पाठ्यक्रम क्रियाएँ उनकी जीवन शक्ति होती हैं ।" इस कथन को विवेचना कीजिए और किसी एक पाठ्यक्रम सहगामी क्रिया का बालकों की सामाजिक एव नैतिक शिक्षा पर प्रभाव बताइए ।

Or

What are co curricular activities and how do they influence the development of character and discipline in pupils ?

(L T 1955)

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का क्या अभिप्राय है और वे छात्रों में अनुशासन तथा चरित्र का विकास किस प्रकार कर सकती हैं ?

Or

What are co curricular activities ? What principles should be borne in mind in the organization of these activities Give their *educational value*

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का क्या अर्थ है ? इनके सगठन में किन सिद्धान्तों को ध्यान म रखना चाहिए ? उनके शैक्षिक महत्त्व पर प्रकाश डालिए ।

उत्तर—एक समय था जब विद्यालयो को ज्ञान प्रदान करने का केन्द्र माना जाता था। छात्र विद्यालयो म प्रवेश केवल पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने के लिए करते थे। विद्यालयो म केवल अध्ययन पर बल दिया जाता था, अध्ययन के अतिरिक्त खेल-कूद आदि की क्रियाओ को किसी प्रकार का प्रोत्साहन नही दिया जाता था। केवल पाठ्य पुस्तको को ही शिक्षा का आधार माना जाता था। प्रधानाध्यापक विद्यालय म किसी भी प्रकार के आमोद प्रमोद को स्थान देना उचित नहीं समझते थे क्योकि उनके अनुसार इन कामों म छात्रो का व्यर्थ में समय नष्ट होता है, परन्तु धीरे धीरे शिक्षा शास्त्रियो ने पाठ्यक्रम के अतिरिक्त विषयो को भी महत्त्व देना आरम्भ किया। शिक्षा विशेषज्ञो ने अनुभव किया कि जिन विषयो को तथा क्रियाओ को अब तक अतिरिक्त (Extra) समझा गया है वे पाठ्यक्रम सहगामी हो सकती हैं। इसी कारण वर्तमान काल म वाद विवाद, साहित्यिक कार्य-क्रम, खेल-कूद आदि को 'अतिरिक्त' क्रियाएँ न मानकर सहायक माना जाता है। पाठ्यक्रम म भी उन्हे किसी न किसी रूप म सम्मिलित कर लिया गया है। ये क्रियाएँ छात्रो का सर्वांगीण विकास करने म सहायक होती है तथा उन्हे भावी जीवन म सफल होने के लिए व्यावहारिकता की शिक्षा देती हैं। देश मे प्रत्येक विद्यालय, इन क्रियाओ के सगठन को महत्त्व प्रदान करता है। सरकार की ओर से भी इन क्रियाओ के विकास के लिए समय समय पर प्रयत्न होते रहते है। वास्तव म प्रजातन्त्रात्मक देश म शिक्षा का उद्देश्य केवल विषयों को कण्ठस्थ करना ही नही है, बल्कि छात्र के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना है। हमे इस बात का ध्यान रखना है कि छात्र की कोई मानसिक या शारीरिक क्षमता अवरुद्ध न रह जाय। इस कारण छात्रों की आत्म अभिव्यक्ति तथा सामाजिकता की भावना का प्रदर्शन करने का पूर्ण अवसर प्रदान करना आवश्यक है।

पाठ्य सहगामी क्रियाओ की आवश्यकता तथा महत्त्व

वर्तमान विद्यालयों ने पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं को उचित स्थान देना आरम्भ कर दिया है। नीचे हम इनके महत्त्व पर प्रकाश डालेंगे।

(१) **सामाजिक ध्येय की पूर्ति**—इन क्रियाओ का सगठन करने के लिए छात्र एक दूसरे के सम्पर्क म आते हैं, इस प्रकार उनम सहयोग तथा मिलकर कार्य करने की भावना का विकास होता है। विद्यालय मे विशाल समारोहो का आयोजन करके वे समाज के निकट आते है और विनम्रता का पाठ स्वत सीख जाते है। विद्यालय की सामूहिक सफलता के लिए अपने व्यक्तिगत लाभो को त्यागने के लिए सदा तत्पर

रहते हैं। इस प्रकार इन क्रियाओं द्वारा छात्रों में सामाजिक भावना तथा त्याग सहयोग आदि गुणों को सरलता के साथ विकसित किया जा सकता है।[1]

(२) किशोर अवस्था (Adolescent age) के लिए—उपयुक्त पाठ्य सहगामी क्रियाएं किशोर अवस्था के लिए अत्यधिक लाभदायक हैं। हम देखते हैं कि किशोर काल जीवन का सबसे नाजुक काल होता है। छात्र की मानसिक दशा अत्यधिक भावुक हो उठती है। अनेक प्रकार के मानसिक विकार उसे घेर लेते हैं। यदि इस अवस्था में छात्र को उचित प्रकार से मानसिक भावना को प्रकट करने का अवसर नहीं दिया गया तो भविष्य में उसके बिगड़ने की सम्भावना होती है। पाठ्य सहगामी क्रियाओं द्वारा हम किशोर छात्र के भावुक मन को उचित मार्ग पर ला सकते हैं। कल्पना जगत में विचरण करने की आदत कहानी प्रतियोगिता तथा निबन्ध प्रतियोगिता आदि का आयोजन करके सहज में ही छुड़ाई जा सकती है। आत्म प्रदर्शन की प्रवृत्ति का उपयोग वाद विवाद तथा अतिरिक्त शक्ति का प्रयोग सामूहिक खेलों को संगठित करके किया जा सकता है।

(३) पाठ्य विषयों में सहायक—अतिरिक्त क्रियाओं द्वारा पाठ्य विषयों को पढ़ाने में विषय अत्यन्त रुचिपूर्ण तथा आकर्षक हो जाता है। बालक खेल खेल में विषय को समझ जाते हैं। निबन्ध तथा वाद विवाद प्रतियोगिता द्वारा नीरस विषयों को भी सरस बनाया जा सकता है।

(४) चरित्र का विकास—पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं द्वारा सामाजिक कुशलता के साथ साथ छात्रों के चरित्र का भी विकास होता है। छात्र अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को त्याग कर समूह के लिए त्याग करना सीखते हैं। सामूहिक खेल कूद में भाग लेने में उनकी सत्यता, ईमानदारी, न्यायप्रियता की परीक्षा हो जाती है। वे अच्छी-बुरी बातों में से उचित बात चुनना सीखते हैं। अपने नेता द्वारा जो आज्ञाएं दी जाती हैं उनका वे सहर्ष पालन करते हैं। इस प्रकार आत्म अनुशासन की भावना उनमें स्वतः उत्पन्न हो जाती है। प्रो० मुहीउद्दीन के शब्दों में, "By participating in these activities the pupil learns to act in obedience to the will and in accordance with the standards of the group."

(५) नागरिकता की भावना का विकास—पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएं छात्रों को नागरिकता की शिक्षा प्रदान करती हैं। स्व शासन (Self Government) द्वारा छात्र प्रजातन्त्र की शिक्षा प्राप्त करते हैं। चुनाव में किस प्रकार खड़ा हुआ जाता है, किस व्यक्ति को मत देना उचित है किसको अनुचित आदि की शिक्षा वे विद्यालय में इन क्रियाओं के द्वारा सहज रूप में प्राप्त कर लेते हैं। विभिन्न समितियों द्वारा छात्र

---

1 "By reason of social appeal of these activities their co-operative methods their spontaneity and their intrinsic interests, they are a significant medium for the civic and moral living of the youth."

—प्रो० मुहीउद्दीन

विद्यालय म अनुशासन स्थापित करने म योग देत हैं। इस प्रकार पाठ्य सहगामी क्रियाओ द्वारा छात्र प्रजातन्त्र तथा नागरिकता का व्यावहारिक पाठ पढ़त है। वे शासन म भाग लेना तथा शासित होने की कला सीखते हैं।

(६) अवकाश के क्षणो का सदुपयोग—वतमान मशीन युग मे अवकाश के क्षणो का सदुपयोग करने की कला सीखना परम आवश्यक है। मानव के बहुत-से काय मशीनो द्वारा होने लगे हैं, परिणामस्वरूप प्रत्यक व्यक्ति को पर्याप्त मात्रा म अवकाश मिलता है। यदि छात्रो को अवकाश के क्षणो का सदुपयोग करना नही सिखाया गया तो व अतिरिक्त, गन्दी और बकार की बातो म अपने को उलझा सकते हैं। पाठ्य-सहगामी क्रियाओ द्वारा उनकी रुचियो म कलात्मकता आ जाती है। व अतिरिक्त समय म, वाद विवाद, खेल कूद आदि करते हैं। सत्साहित्य पढ़कर तथा निब ध प्रतियोगिता म भाग लेकर व बचपन से ही अध्ययन की ओर प्रवृत्त होते हैं। भविष्य मे भी अपने अवकाश के क्षणो को अच्छी बातो म ही व्यतीत करते हैं। प्रो० मुहीउद्दीन लिखते हैं कि "These not only stability for energies that are the fluctuating between the elements of the lower nature and the appeal of higher ideal' but they also later on, reserve the adult from emptiness of leisure, deliver him from the perversions of pleasure and help to enrich and recreate his life The last but certainly not least Important function of these activities is thus to convert the leisure in after school life from a curse into a blessing "

(७) मूल प्रवृत्तियों का शोधन—प्रत्येक छात्र ज म से ही मूल प्रवृत्तिया लेकर आता है। यदि मूल प्रवृत्तियो का शोधन नहीं किया गया तो वे छात्र को गलत माग पर ले जा सकती हैं। पाठ्य सहगामी क्रियाओ द्वारा छात्रो की मूल प्रवृत्तिया का शोधन सरलता से किया जा सकता है। काम वासना की प्रवृत्ति का शोधन करने के लिए—कविता पाठ, कहानी प्रतियोगिता आदि को आयोजित किया जा सकता है। आत्म प्रदशन की प्रवृत्ति के लिए वाद विवाद, खेल, नाटक आदि का सगठन किया जाना चाहिए।

(८) नेतृत्व की शिक्षा—पाठयक्रम सहगामी क्रियाएँ छात्रो को नेतृत्व की शिक्षा प्रदान करती है। अधिकाशत छात्र ही इन क्रियाओं का सचालन करते हैं। इस कारण उन्ह अपने साथियो के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु सहयोग हृदय की विशालता और स्वाथ त्याग बिना नहीं मिलता, इसलिए वे अपने अन्दर इन गुणों का विकास करते है। उनके सामने अनेक ऐसी परिस्थितियाँ आती है जबकि उन्ह धयशील सहनशील तथा न्याय प्रिय होना पडता है। ये समस्त गुण नेतृत्व के लिए परम आवश्यक है, जिन्ह वे छात्र जीवन मे ही पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं द्वारा अनायास ही सीख लेते हैं। ये क्रियाएँ उन्ह आत्म विश्वासी, निस्स्वाथ तथा विचारशील बनाती हैं। अध्यापक का कार्य तो केवल माग दशक का रहता है।

(६) शारीरिक विकास—खेल-कूदो म भाग लेने से छात्रो का शारीरिक विकास होता है। दौडन-भागन से उनके अग प्रत्यग पुष्ट होते हैं। व मुक्त वायु का सेवन करते है जिससे उनका चित्त प्रसन्न रहता है, और प्रसन्नता स्वास्थ्य की जननी है।

उपयुक्त विवेचन के पश्चात् पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओ के महत्त्व को हम स्वीकार करना ही पडेगा। य क्रियाएँ छात्रो का सर्वागीण विकास करती है तथा उन्हे जीने की कला सिखाती है।[1] इन क्रियाओ के सहयोग स विद्यालयो की नीरसता समाप्त हो जाती है और वे छात्रो के लिए आकर्षण का केन्द्र बन जाते हैं।

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओ के प्रकार

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओ के महत्त्व के ऊपर प्रकाश डालने के पश्चात् अब हम उनके विभिन्न रूपो का अध्ययन करेंगे। विद्यालयो म अनेक प्रकार की क्रियाओ को सगठित किया जा सकता है। यह विद्यालय के आर्थिक स्तर तथा आकार के ऊपर निर्भर है। नीचे हम प्रमुख पाठ्य सहगामी क्रियाओ का उल्लेख करेंगे।

(१) साहित्यिक क्रियाएँ (Literary Activities)
- (क) वाद विवाद तथा भाषण कला (Public Speaking and Debating)
- (ख) विद्यालय पत्रिका (School Magazine)

(२) सगीत तथा नाट्य क्रियाएँ (Music and Dramatic Activities)
(३) खेल कूद तथा शारीरिक व्यायाम (Games and Athletics)
(४) छात्र समिति (Student Council)
(५) परिभ्रमण या सरस्वती यात्राएँ (Picnics or Excursions)
(६) स्काउटिंग (Scouting)
(७) गर्ल गाइड (Girl Guide)
(८) विभिन्न रुचियाँ (Hobbies)
(९) श्रमदान तथा समाज सेवा (Social Service)
(१०) रेडक्रास तथा प्राथमिक चिकित्सा (Red cross and First aid)

---

[1] What we like the teachers to bear in mind is that these have a double function to perform on the one hand they provide an opportunity for students to develop their individual talents and capacities and self confidence and on the other, they lend themselves to being made the leaders in co operative work which trains them in the division and integration of functions and in the allied qualities of discipline and leadership The secondary school as we visualize it

—*Report of Secondary Education Commission page 218*

उपयु क्त क्रियाओ म से एक एक पर हम प्रकाश डालेंगे ।

(१) साहित्यिक क्रियाएँ (Literary Activities)—साहित्यिक क्रियाओ का आयोजन करने का मूल उद्देश्य छात्रो को आत्म प्रकाशन का अवसर प्रदान करना है। साहित्यिक क्रियाओ के द्वारा छात्र अपने मन के विचार प्रकट करना सीखते है। किशोरावस्था मे छात्र के अ दर आत्म प्रदर्शन की भावना तीव्र होती ह इस कारण इन क्रियाओ का महत्त्व और भी अधिक बढ जाता है।

(क) वाद विवाद तथा भाषण कला (Public Speaking and Debating)—मौखिक रूप से आत्म प्रदर्शन का सबस सु दर ढग वाद विवाद है। इससे किसी विषय को तय करके छात्रो को पर्याप्त मात्रा मे विचार का अवसर प्रदान किया जाता है। जहा तक हो सके छात्र को विचार करने का पर्याप्त अवसर देना चाहिए। आवश्यकता पडने पर अध्यापक, छात्रो के लिए विषय सामग्री जुटाने म सहायता प्रदान कर सकता है। विषय के पक्ष तथा विपक्ष पर बोलन वालो को प्रोत्साहित करना चाहिए। अधिकाशत अध्यापक विषय के पक्ष पर बोलने वाले को अधिक उत्साहित करते हैं यह अनुचित है। विपक्ष पर बोलने वाले छात्र को भी उतना ही महत्त्व देना चाहिए जितना कि पक्ष म बोलने वाले को। पुरस्कार प्रदान करते समय भी दोनो पर बोलने वाले को एक सा महत्त्व दिया जाय।

वाद विवाद द्वारा छात्र अपने अ दर भाषण कला का विकास करते हैं। इस प्रकार जिस शैली मे अपने भावो को प्रकट किया जा सकता है, वे वाद विवाद द्वारा सरलता से सीख जाते है। रायबर्न के मतानुसार वाद विवाद का अत्यधिक उन्नत रूप तर्क वितर्क (Penal Discussion) है। इसके अन्दर तर्क वितर्क म भाग लेने वाले सदस्यो को अर्द्धगोलाकार म बैठा लिया जाता है, इसका एक सभापति होता है जो अध्यक्ष का काम करता है। प्रत्येक सदस्य को मनचाही बार बोलन का अधिकार रहता है। वाद विवाद तथा तर्क वितर्क, गोष्ठी आदि का आयोजन जहाँ तक हो सके मातृभाषा मे ही कराया जाय। समय समय पर अंग्रेजी भाषा म भी बोलने का अवसर दिया जा सकता है।

(ख) विद्यालय पत्रिका (School Magazine)—आत्म प्रकाशन की दूसरी शैली लिखकर भावो को प्रकट करना है। जो छात्र बोलकर अपने भाव प्रकट नही कर सकते व लेखनी के द्वारा आत्म प्रकाशन कर सकते है। विद्यालय पत्रिका द्वारा छात्र लेखन कला सीखते हैं। जब उनकी कोई रचना पत्रिका मे छपती है तब वे अत्यन्त प्रसन्न होते है, छपी रचना देखकर अन्य छात्रो को भी लिखन का भाव उठता है। दूसरी बार और अधिक परिश्रम स लिखन का प्रयत्न करते है। देश के लिए भावी लेखक तथा कवियो को उत्पन्न करने म विद्यालय पत्रिका अत्यन्त सहायक सिद्ध होती है। विद्यालय पत्रिकाएँ वर्ष म दो बार निकाली जा सकती हैं। पहली के मध्य म तथा दूसरा, वर्ष के अन्त म। पत्रिका म जहाँ तक हो सके श्रेष्ठ को महत्त्व दिया जाय। सम्पादक-मण्डल म शिक्षको के अतिरिक्त छ

भी महत्त्व देना चाहिए तथा उनके ऊपर सुविधानुसार कार्य भार डालना भी उचित है। इसमे वे सम्पादन कला की शिक्षा प्राप्त करते हैं। अध्यापक सम्पादक का कर्त्तव्य है कि वह नवीन लेखकों तथा कवियों की रचना में आवश्यकतानुसार परिवर्तन तथा सुधार करके उन्हे सुझाव देता रहे। विद्यालय-पत्रिका में छोटे बालकों की रचनाओं को उपेक्षा की दृष्टि से न देखा जाय, वरन् सुविधानुसार रचनाओं के लिए पृथक अंगों में उन्हे स्थापित कर दिया जाय। अध्यापक भी छात्रों को प्रेरणा प्रदान करने वाले लेख प्रकाशित कर जिनसे छात्रों में सामूहिक चेतनता का उद्भव हो। रायबर्न ने विद्यालय पत्रिका के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है—Magazine forms a very useful means of developing the creative powers of pupils and giving an opportunity for expression '

(२) संगीत तथा नाट्य-क्रियाएँ—संगीत हमारे देश की सबसे प्राचीनतम तथा लोकप्रिय कला है। वर्तमान पाठ्यक्रम में संगीत को एक विषय के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। अधिकांश विद्यालयों में संगीत की शिक्षा का प्रबन्ध भी कर दिया गया है। इस कला को प्रोत्साहन देने के लिए कभी कभी विद्यालय में संगीत प्रतियोगिताओं का आयोजन भी करना चाहिए। जहाँ तक हो सके सिनेमाओं के अश्लील गानों का निरुत्साहित किया जाय।

वाद विवाद की भाँति नाटक भी आत्म-अभिव्यक्ति का एक सुन्दर साधन है। रंगमंच को तैयार करना बैठने आदि का प्रबन्ध छात्र कर सकते हैं। परन्तु नाटक के निर्देशन का कार्य अध्यापक को ही करना चाहिए। नाटक ऐतिहासिक तथा शिक्षाप्रद हो तो अच्छा है। छात्रों को भूमिका (पाट) प्रदान करते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि एक प्रकार की भूमिका किसी छात्र को न दी जाय। यदि किसी छात्र को चरित्रहीनता का पाट बार बार प्रदान किया गया तो उसके ऊपर इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। इस कारण पाट बदल बदल कर बारी बारी से प्रदान किये जाने चाहिए। यदि छात्र नाटक स्वयं लिखें तथा अध्यापक उनका संशोधन कर सकने लायक बना दे तो अच्छा है इससे छात्रों में नाटक लिखने की रुचि को प्रोत्साहन मिलेगा। जब नाटक खेले जायें तब छात्रों के अभिभावकों को बुलाना चाहिए। इससे छात्रों को अपना अभिनय प्रदर्शित करने में उत्साह आता है। नाटक सदा एक प्रकार के ही न खेले जायें। कभी ऐतिहासिक तथा कभी सामाजिक नाटकों का प्रदर्शन किया जाय तो उचित है। नाटक छात्रों की वाक् शक्ति को विकसित करते हैं उन्हें भाषण करना सिखाते हैं तथा उनकी कल्पना शक्ति को उत्तेजित करते हैं।

(३) खेल कूद तथा शारीरिक व्यायाम—खेल कूद के महत्त्व पर हम अनुशासन वाले अध्याय में काफी प्रकाश डाल चुके हैं। यहाँ पर केवल इतना कह देना चाहते हैं कि विद्यालय में खेल-कूद के अतिरिक्त शारीरिक व्यायाम (Physical Exercise) को भी महत्त्व प्रदान करना चाहिए। अधिकांश विद्यालय अपने यहाँ

फुटबाल, हाकी आदि का ही सगठन करते हैं। सामूहिक रूप से व्यायाम करने को अधिक महत्त्व नही दिया जाता।

(४) छात्र समिति—विद्यालय मे अनुशासन स्थापित करने मे छात्रो का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। यदि छात्रो की कुछ समितियाँ बना दी जायें तथा प्रत्येक समिति को विभिन्न कार्य, जैसे—वाद विवाद, खेल-कूद अन्ताक्षरी तथा अनुशासन आदि कार्य सौंप दिये जायें तथा प्रत्येक समिति मे एक अध्यापक सहायक के रूप मे हो तो अनुशासन का कार्य अत्यन्त सरल हो जाता है। इससे छात्रो मे आत्म-निर्भरता की भावना का भी विकास होता है। छात्र समिति के लाभो के विषय पर हम स्व शासन वाले अध्याय मे प्रकाश डालेंगे।

(५) परिभ्रमण या सरस्वती यात्राएँ (Picnics or Excursions)—छात्रो मे घूमने फिरने की प्रवृत्ति स्वभाव से ही होती है। अवकाश के समय मे छात्र प्राय बिना उद्देश्य के घूमते फिरते हैं। परिभ्रमण तथा सरस्वती यात्राओ के द्वारा उनकी घूमने फिरने की इच्छाओ को सन्तुष्ट कर उचित मार्ग पर लगाया जा सकता है। अध्यापको का कर्त्तव्य है कि वे समय समय पर परिभ्रमण की योजना बनावे तथा छात्रो को बाहर ले जाकर बाह्य वातावरण से परिचित करावे। छात्रो के परिभ्रमण कराने के अनेक लाभ हैं। प्रथम जैसा कि हम ऊपर लिख चुके है इसके द्वारा छात्र की घूमने फिरने की इच्छा सन्तुष्ट हो जाती है।

दूसरे, परिभ्रमण द्वारा अपने आस पास के वातावरण से भली प्रकार परि-चित हो जाता है। वह नगर जीवन के अतिरिक्त आस पास के गाँव के जीवन को देखता है और उसे वहाँ की समस्याओ पर विचार करने का अवसर प्राप्त होता है। वह पुस्तको द्वारा जो नही समझ पाता, उसे आँखो से देखकर [illegible] है। नगर के मुख्य मुख्य उद्योग धन्धे तथा विशाल कल-कारखाने [illegible] पर आने जाने वाली वस्तुएँ आदि को ले जाकर दिखाने मे छात्रों को अपने नगर के विषय मे वास्तविक जानकारी करायी जा जा सकती है। इस प्रकार परिभ्रमण द्वारा विद्यालय का जीवन की यथार्थता से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।

तीसरे, परिभ्रमण पाठ्य विषयो को [illegible] में भी सहायक होता है। इतिहास और भूगोल जैसे नीरस विषय परिभ्रमण द्वारा [illegible] रोचक हो जाते हैं। ताज के सौन्दर्य का ज्ञान छात्रो को कक्षा मे [illegible] मे नहीं कराया जा [illegible] है जितना कि प्रत्यक्ष ताज को दिखाकर। इसी प्रकार किसी युद्ध का वर्णन [illegible] स्थल पर छात्रो को ले जाकर कराना [illegible] अधिक रोचक [illegible] है। भूगोल शिक्षण मे भी परिभ्रमण [illegible] सहायक तथा उपयोगी है। [illegible] पर्वत, नदियाँ दिखाकर छात्रों को [illegible] उतना [illegible] सकता जितना कि छात्रो को [illegible] दिखाकर।

वनों से ढकी पर्वत श्रेणियाँ नदियों के उद्गम तथा झरने आदि को दिखाकर छात्रों के मन में देश के भौगोलिक ज्ञान के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न की जा सकती है।

परिभ्रमण पर जाने से पहले योजना (Plan) बना लेनी चाहिए। किस उद्देश्य से परिभ्रमण हो रहा है। किन किन स्थलों पर जाना है तथा वहाँ जाकर क्या क्या बताना है आदि सबका निश्चय अध्यापक को पहले से कर लेना चाहिए। वहाँ जाकर छात्रों को प्रत्येक वस्तु के निरीक्षण की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की जाय तथा उनकी जिज्ञासा का भी शान्त किया जाय। बिना योजना के परिभ्रमण के लिए चल देना समय तथा धन की बरबादी है। परिभ्रमण तभी सफल समझा जायगा, जबकि छात्र घर लौटने पर नूतन ज्ञान के प्रति सन्तोष प्रकट करें।

(६) स्काउटिंग (Scouting)—इस संस्था को जन्म दक्षिणी अफ्रीका में सर राबर्ट बेडेन पावेल ने दिया था। दक्षिणी अफ्रीका में बोअर युद्ध चल रहा था बेडन पावेल ने छोटे-छोटे बालकों द्वारा शत्रु पक्ष की सूचना प्राप्त करने के लिए इस संस्था का निर्माण किया। आज के प्रत्येक देश ने इस संगठन को अपना लिया है। वर्तमान स्काउटिंग का अर्थ दूसरे रूप में लिया जाता है। स्काउटिंग का संगठन आजकल सेवा तथा अच्छे गुणों को विकसित करने के लिए किया जाता है। अवकाश के समय बड़े भाई छोटे भाइयों के साथ सम्मिलित होते हैं और उन्हें सत्संग का अवसर देते हैं। स्काउटिंग के अनेक लाभ हैं। खेल-खेल में छात्र अपने अन्दर अनेक सद्गुणों को विकसित करते हैं। वे समय समय पर वन-भ्रमण तथा प्राकृतिक सौन्दर्य को देखने जाते हैं जिससे बाह्य वातावरण को समझने का अवसर प्राप्त होता है। प्रत्येक छात्र को प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि वह सत्य बोलेगा, देश भक्त तथा ईश्वर भक्त रहेगा। इस संस्था द्वारा यह प्रयत्न किया जाता है कि प्रत्येक बालक विश्वसनीय, समाज सेवी विनम्र, धैर्यवान तथा दूसरे के प्रति दयालु बने। सेकण्डरी एजूकेशन रिपोर्ट में स्काउटिंग के निम्न लाभ बताये जाते हैं।

Scouting is one of the most effective means for training of character and the qualities necessary for good citizenship It has the great merit that it appeals to pupils of all ages and taps their manifold energies through its various games, activities and technical skill It is possible to lay the foundation of the ideals of social service good behaviour and a prepareness to meet any situation

स्काउटिंग-संगठन को आयु के आधार पर तीन भागों में विभाजित किया गया है—(१) सात साल से बारह वर्ष तक की आयु के बालकों को 'कब' (Cubs) कहा जाता है। (२) बारह वर्ष से अठारह वर्ष तक के छात्र 'स्काउट' (Scout) कहलाते हैं। (३) अठारह वर्ष से ऊपर के छात्रों को 'रोवर' (Rober) कहकर पुकारा जाता है।

प्रत्येक विद्यालय में स्काउटिंग संगठन को अवश्य महत्त्व प्रदान किया जाय।

स्काउटिंग काय या तो किसी अध्यापक को सौंपा जाय या अलग से स्काउट-मास्टर की नियुक्ति की जाय। स्काउट-मास्टर को स्काउटिंग की प्रत्येक बात का ज्ञान होना चाहिए।

(७) गर्ल गाइड (Girl Guide)—स्काउटिंग जिस प्रकार लडको की सस्था है उसी प्रकार लडकियो की सस्था गर्ल गाइड है। इस सस्था के द्वारा किशोर अवस्था की छात्राओ को खेल द्वारा अनेक अच्छी बाते सिखायी जाती है। उनको खाना पकाना, नृत्य, सगीत, गृह विज्ञान आदि की शिक्षा खेल-खेल मे प्रदान की जाती है। स्काउटिंग के समान इसके द्वारा भी छात्राओ म सद्गुणा का विकास करने का प्रयत्न किया जाता है। इस सगठन के द्वारा छात्राओ के चरित्र का निर्माण सरलता स किया जा सकता है तथा उन्हे समाज सेवी बनाया जा सकता है।

इस सस्था को तीन भागो मे बाँटा गया है—(१) ग्यारह वष से कम आयु वाली लडकियाँ, 'The blue bird flock' के नाम से पुकारी जाती है। (२) ग्यारह से सोलह साल की छात्राएँ 'Girl Guide Company' के अ तगत आती है। (३) सोलह साल से ऊपर की लडकिया 'Ranger Company' म आती है।

गर्ल-गाइड आ दोलन को देश के प्रत्यक कन्या-विद्यालय ने महत्व प्रदान किया है। इस सगठन के नीचे छात्राएँ सगठित होकर जाति-पाँत तथा साम्प्रदायिकता की भावना को भूल जाती हैं और वे आपस म काम करना सीखती हैं। उनमे सच्ची नागरिकता तथा सामाजिकता का विकास होता है।

(८) विभिन्न रुचियाँ (Hobbies)—अवकाश के क्षणा का उपयोग करने के लिए छात्रो मे अच्छे शौक या रुचिया उत्पन्न करना आवश्यक है। हमारे देश म छात्र प्रत्यक शौक की पूर्ति घर पर आर्थिक कठिनाइयो के कारण पूरा नही कर सकते, इस कारण पाठशाला मे कुछ मुख्य मुख्य रुचियो का प्रब ध आवश्यक है। अध्यापको को चाहिए कि वे पहले इस बात का निणय करे कि किन किन उपयोगी रुचियो का प्रोत्साहन प्रदान किया जाय। प्रमुख रुचियो म टिकट तथा सिक्के इकटठे करना, बागवानी तथा फोटोग्राफी आत है। टिकट तथा सिक्के सग्रह करने से ऐतिहासिक ज्ञान की वृद्धि होती है। छात्रो को विभिन्न सिक्के तथा टिकट सग्रह करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय तथा उनसे सम्ब धित ऐतिहासिक ज्ञान का परिचय कराया जाय। बागवानी सबस सुन्दर तथा लाभदायक रुचि है। इसमे छात्र प्रकृति से अपना सीधा सम्ब ध जोड लेते हैं। वे स्वय अपने हाथो से बीज बाते हैं तथा उनका उगना अपनी आँखों स देखते हैं और बडे होने पर उनके फल प्राप्त कर हर्षित होते हैं। विद्यालय म बागवानी के लिए कुछ भूमि अवश्य सुरक्षित रखी जानी चाहिए। छात्रो द्वारा जहाँ तक हो सके समस्त काय करवाया जाय। फोटोग्राफी एक महँगी कला है, इस कारण उसके लिए एक क्लब (Club) स्थापित कर दिया जाय तो अच्छा है। कैमरे का प्रयोग, ऐतिहासिक स्थलो के चित्र लेने मे जहाँ तक हो सके, किया जाय।

(६) रेडक्रास तथा प्राथमिक सहायता—अन्य क्रियाओं के साथ-साथ प्राथमिक सहायता तथा रेडक्रास संस्थाओं का विद्यालय में अत्यधिक महत्व है। इन संस्थाओं के संगठन का प्रमुख उद्देश्य छात्रों को नित्य प्रति दुर्घटनाओं में जो चोट फोट लग जाती है, उस सामान्य इलाज की शिक्षा प्रदान करना है। इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करके छात्र न केवल अपने को ही लाभ पहुचायेंगे, वरन् आवश्यकता पड़ने पर वे समाज की भी सेवा कर सकते हैं। प्राथमिक चिकित्सा में छात्र को सामान्य चोटों के उपचार से लेकर हड्डी टूटना साँप काटे के इलाज आदि सम्बन्धी सामान्य शिक्षा प्रदान की जाती है। किसी योग्य अध्यापक की देख रेख में प्राथमिक चिकित्सा (First aid) तथा रेडक्रास सोसायटी का संगठन किया जा सकता है। छात्रावास में इसका संगठन और भी अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। संगठन को उपयोगी बनाने के लिए सदस्यों से चन्दा एकत्रित करके पट्टियों, दवाइयों आदि का प्रबन्ध किया जा सकता है। सदस्यों का कर्त्तव्य है कि वे बाढ़, भूकम्प तथा मेले आदि में जाकर सेवा निस्वार्थ भाव से करें। समय समय पर पास के गाँव में जाकर स्वास्थ्य के सामान्य सिद्धान्तों से ग्रामीण निवासियों को परिचित करावें तथा साधारण चोट और बीमारियों के उपचारों से भी अवगत करावें। अपने इस कार्य के लिए वे Magic Lantern का प्रयोग कर सकते हैं। अवसर पड़ने पर रोग तथा खान पीने में असावधानी के परिणाम आदि पर नाटक खेले जा सकते हैं। संस्था के सदस्य अपने ज्ञान की वृद्धि के लिए आस पास के डाक्टर की सहायता ले सकते हैं।

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के संगठन के सिद्धान्त

(१) पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के संगठन में विभिन्नता के सिद्धान्त को अवश्य अपनाना चाहिए। उनका संगठन इस प्रकार से हो कि प्रत्येक रुचि वाले तथा विभिन्न आयु वाले छात्र भाग ले सकें।[1]

(२) इन क्रियाओं में जहाँ तक हो सके अधिक से अधिक छात्र भाग लें। केवल थोड़े से छात्रों को ही प्रवेश की सुविधाएँ न प्रदान की जायें।

(३) पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं को धीरे धीरे लागू किया जाय। विद्यालय में उनकी भीड़ लगाना पूर्णतया अनुचित है।

(४) पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं की भी समय तालिका बनायी जाय, केवल खानापूरी न हो।

---

1 "In the planning of these activities it is important to remember that they should be as varied as the resources of the school will permit Academic activities like debates, discussions dramas school magazine must all be woven into a rich and unified pattern Within which every child will be able to find something to suit his tastes and interests"

—*Report of the Secondary Education Commission*

(५) प्रत्येक क्रिया का उत्तरदायी एक शिक्षक हो जो भली प्रकार से निरीक्षण आदि करे।

(६) अध्यापक इन क्रियाओं में छात्र को स्व शासन प्रदान करें, जहां तक हो सके छात्र ही इन क्रियाओं का संचालन करें। अध्यापक केवल मार्ग दर्शक ही रहे।

(७) शिक्षकों को इन क्रियाओं का उत्तरदायित्व योग्यता तथा रुचि को ध्यान में रखते हुए दिया जाय।

(८) अध्यापकों की कार्य कुशलता का मापदण्ड केवल अध्यापन न हो, इन क्रियाओं की सफलता को ध्यान में रखकर उसकी पद वृद्धि की जाय।

(९) क्रियाएँ जहां तक हो सकें, बौद्धिक तथा नैतिक स्तर को ऊपर उठाने वाली हों।

(१०) क्रियाएँ साधन हों न कि साध्य।

(११) संगठन करते समय छात्रों की आयु तथा मानसिक अवस्था को ध्यान में रखा जाय।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का विद्यालय के जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। इन क्रियाओं के द्वारा समाज और विद्यालय में परस्पर सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। समाज के प्रत्येक नागरिक को अनेकों संस्थाओं तथा सभाओं का सदस्य बनना, अपनी उन्नति के लिए आवश्यक होता है, उसी प्रकार विद्यालय का प्रत्येक छात्र भी अपनी सर्वाङ्गीण उन्नति, विभिन्न पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं में भाग लेकर, कर सकता है। इस कारण प्रधान अध्यापक को इन क्रियाओं के प्रति सर्वदा सचेष्ट रहना चाहिए। उसे समय समय पर यह देखना चाहिए कि अध्यापक गण इन क्रियाओं का संचालन ठीक प्रकार से कर रहे हैं अथवा नहीं।

Q Write a short note—'A school co operative store'

(A U, B T 1951)

प्रश्न—'स्कूल सहकारी भण्डार' पर टिप्पणी लिखो।

उत्तर—सहकारी समितियां (Co operative societies) या सहकारी कोष के माध्यम से छात्रों को सहयोग तथा प्रेम से काम करने का पाठ सिखाया जा सकता है इस विषय में रायबर्न का कथन उल्लेखनीय है, 'किसी भी बच्चे को सामान्य रूप से सहयोग का और विशेष रूप से सहकारी समितियों का ज्ञान प्राप्त किये बिना पाठशाला से नहीं गुजरना चाहिए। यह ज्ञान जितना अधिक व्यावहारिक होगा, उतना ही अच्छा होगा। वे आगे सहकारी समितियों के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—' यदि किसी तरह सम्भव हो तो पाठशाला में एक सहकारी समिति होनी चाहिए जहां विद्यार्थी सावधानी के साथ किये जाने वाले निरीक्षण के अन्दर रहकर काम करते हैं और यथार्थ अभ्यास के द्वारा सीखते हैं कि सहकारी समिति किस प्रकार चलाई जाती है।" सहकारी समितियों के अर्थ समझने

के लिए यहाँ एक लेखक द्वारा उद्धृत परिभाषा का उल्लेख करते हैं। 'एक सहकारी समिति मिलकर व्यापार करने का वह संगठन है जो दुर्बल व्यक्तियों में बनता है और निष्काम भावना से ऐसी शर्तों पर संचालित किया जाता है कि सभी व्यक्ति, जो इसमें सदस्यता से सम्बन्धित कर्त्तव्यों को ग्रहण करते हैं, उसके लाभ में से उसी अनुपात में पायेंगे जिनमें उन्होंने अपने संगठन का प्रयोग किया है।'' सहकारी समितियों व सहकारी भण्डार के विषय में प्रधान अध्यापक को निम्न बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए

(१) सहकारी भण्डार में जहाँ तक सम्भव हो पुस्तकें, कापी तथा लिखने पढ़ने आदि चीजों को ही विक्रय के लिए रखा जाय।

(२) सहकारी भण्डार का भार जहाँ तक हो वाणिज्य के अध्यापक को सौंपा जाय।

(३) सहकारी भण्डार की एक समिति का निर्माण किया जाय। निर्माण का आधार प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली हो।

(४) समिति के सदस्य छात्र भी हों तो अच्छा है।

(५) छात्र अध्यापक एक सीमा तक ही हिस्से खरीदें। सीमा का निर्धारण कर लिया जाय।

(६) क्या सामान खरीदा जाय और किस दर पर बेचा जाय। इसका निर्णय समिति की बैठकों द्वारा किया जाय।

(७) समय समय पर हिसाब किताब की जाँच करते रहना चाहिए।

(८) आवश्यकता पड़ने पर समिति को रजिस्टर्ड करा लिया जाय।

(९) सारा माल नकद दामों में बेचा जाना चाहिए, उधार तनिक भी नहीं। वास्तव में सहकारी समितियों और सहकारी भण्डारों की आवश्यकता से छात्रों को व्यापार करने की कला सिखाई जा सकती है।

स्व-शासन
(Self Government)

Q What is Self Government in schools ? How does it help in maintaining good discipline ? Give examples

(A U, B T 1959)

प्रश्न—विद्यालय में स्व शासन का क्या अर्थ है ? यह अनुशासन स्थापन में किस प्रकार सहायक है ? उदाहरण सहित लिखिए।

Or

Discuss fully the place of a students' union in a high school or intermediate with special reference to utilize it for bringing about a good tone and healthy discipline in the institution

हाईस्कूल या इण्टर कालेज में 'छात्र संघ' का महत्त्व बताइए। इसका स्कूल की 'टोन' (Tone) तथा अच्छे अनुशासन की स्थापना में किस प्रकार प्रयोग किया जा सकता है ?

Or

Estimate the value of 'student self government' in schools

(A U, B T 1965)

'छात्र स्वशासित सरकार' का मूल्यांकन करो।

उत्तर—एक युग था, जब छात्रो द्वारा शासन की कोई कल्पना भी नहीं करता था। विद्यार्थी को अज्ञानी, अनुभवहीन तथा अविकसित समझ कर उसे विद्यालय शासन मे भाग लेने की सुविधाएँ प्रदान करने की कोई बात भी नही सोचता था। अध्यापक छात्रो पर शासन करना अपना कर्त्तव्य समझते थे।

अंग्रेजी शिक्षा के युग म इस प्रकार की व्यवस्था को और भी अधिक महत्त्व दिया गया। अध्यापक अपनी इच्छानुसार कक्षा मे से एक को मानीटर चुनता था तथा जब चाहे उसको हटाकर दूसरा रख देता था। परन्तु देश के स्वतन्त्र होने के तथा प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली को अपनाने के पश्चात् शिक्षा आयोगो तथा शिक्षा-समितियो न विद्यालय म उचित अनुशासन स्थापित करने के लिए छात्रो का सहयोग प्राप्त करने की सिफारिश की। छात्रो के सहयोग से हमारा तात्पर्य है कि विद्यालय म इस प्रकार की सगठन प्रणाली अपनायी जाय जिसमे छात्र अधिकाश प्रबन्ध का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लें।

वास्तव म विद्यालय सगठन म स्व शासन को महत्त्व प्रदान करने की भावना का उदय, प्रधानाध्यापक प्रणाली के अपनाने के कारण हुआ। प्रजातन्त्रात्मक देशो म जनता अपने ऊपर शासन करती है। इस कारण प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिए समाज म इस प्रकार के व्यक्तियो की प्रमुख आवश्यकता है जो उचित प्रकार से अपने ऊपर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शासन कर सके। विद्यालय समाज का लघु रूप है। यदि हम विद्यालय म ही छात्रो को अपने ऊपर शासन करने की उचित शिक्षा प्रदान कर देगे तो वे अपने भावी जीवन म प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तो का पालन भी उचित प्रकार से कर सकेंगे।

प्रजातन्त्रात्मक देश म शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य छात्र का सर्वाङ्गीण विकास करना है। उसे केवल पुस्तकीय शिक्षा ही नही प्रदान करनी है, वरन् उसे इस प्रकार की शिक्षा देनी है जिससे वह अपना उत्तरदायित्व समझ सके। यदि छात्र विद्यालय के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझ लेता है तो वह अपने भावी जीवन म समाज के प्रति उत्तरदायित्व को भली प्रकार समझ सकेगा परन्तु छात्रो को उत्तरदायित्व उठाने की प्रजातन्त्र की शिक्षा केवल सिद्धान्तो द्वारा नही प्रदान की जा सकती। जिस प्रकार भाषा का वास्तविक ज्ञान केवल पढ़ने से नही आता वरन् लिखने तथा बोलने से आता है, उसी प्रकार प्रजातन्त्र की शिक्षा बिना व्यावहारिकता का अवसर

प्रदान किये नहीं जा सकती। इस कारण छात्रों को विद्यालय के शासन में भाग लेने का अवसर प्रदान करना परम आवश्यक हो जाता है। स्व-शासन द्वारा वे अपने ऊपर नियन्त्रण स्थापित करना सीखते हैं तथा उनमें नागरिकता के गुण उत्पन्न होते हैं। वे स्वशासन द्वारा अपने अधिकार तथा कर्त्तव्यों को भली-भाँति समझ जाते हैं।

स्व-शासन से लाभ

(१) **नेतृत्व की शिक्षा**—स्व-शासन द्वारा छात्रों में नेतृत्व की शक्ति का विकास होता है। वे स्व-शासन में भाग लेकर जीवन की व्यावहारिकता से परिचित होते हैं। पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का संगठन तथा समय समय पर विद्यालय के समारोह के आयोजन का प्रबन्ध आदि करना उनको व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करता है जो कि पुस्तकों द्वारा नहीं प्राप्त की जा सकती। वे अपने कार्य को सफल बनाने के लिए अपने मित्रों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं जिससे उनमें सामाजिकता, विनम्रता आदि गुणों का विकास होता है जो एक सफल नेता के लिए परम आवश्यक होते हैं। दूसरे विद्यालय के छात्र भी अपने सभापति को गुप्त मत से ही चुनते हैं। सभापति का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपनी योग्यता तथा क्षमता द्वारा अपने सहपाठियों की माँग को पूरा करे। अध्यापक को भी छात्रों की शक्तियों का आभास मिल जाता है तथा योग्य छात्र को वह नेतृत्व की शिक्षा प्रदान कर सकता है।

(२) **सहयोग की शिक्षा**—स्व-शासन छात्रों को सहयोग द्वारा काम करना सिखाता है। वे आपस में मिलकर कार्य करते हैं। किसी भी कार्य का उत्तरदायित्व एक व्यक्ति पर न होने के कारण छात्रों में सामूहिकता की भावना का विकास होता है, वे परस्पर मिलकर अपने कार्य को सफल बनाने का प्रयत्न करते हैं।

(३) **आत्म नियन्त्रण की भावना का उदय**—स्व-शासन छात्रों में आत्म-अनुशासन की भावना का उदय करता है। छात्र विद्यालय में अनुशासन के महत्व को समझते हैं। स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करते हैं तथा अपने उत्तरदायित्व का भी अनुभव करते हैं। छात्रों को आत्म-नियन्त्रण का पाठ केवल मौखिक रूप से नहीं सिखाया जा सकता वरन् अभ्यास द्वारा सिखाया जा सकता है—स्व-शासन उनको अभ्यास का अवसर प्रदान करता है। रायबर्न के मतानुसार, "The best way to build up a positive and constructive discipline in a school, to teach that self control which is real discipline is through a system of Self-Government. Pupils will learn self control not through hearing it, but by practising it."

(४) **उचित चुनाव करने की शिक्षा**—स्व-शासन छात्रों को उचित प्रतिनिधि चुनने की शिक्षा देता है। प्रत्येक चुनाव में चुने गए प्रतिनिधि कसौटी पर कसे जाते हैं। उनके द्वारा किए गए कार्यों द्वारा छात्र अपने चुनाव का निर्णय करते हैं तथा भविष्य के लिए पाठ सीखते हैं।

(५) सगठन की शिक्षा—विद्यालय म होने वाली विभिन्न क्रियाओं का सगठन छात्र समितियाँ ही करती हैं। खेल कूद, वाद विवाद, नाटक तथा विद्यालय के समारोह आदि का सगठन करना छात्र सीखते हैं। इस प्रकार सगठन करने की शक्ति का विकास होता है, व भविष्य मे सामाजिक जीवन म भी कुशल सगठनकर्ता सिद्ध होते हैं।

(६) छात्र अध्यापक सम्पर्क में दृढ़ता—स्व शासन द्वारा छात्र तथा शिक्षको के सम्ब ध म दृढता आती है। विद्यालय की प्रत्येक क्रिया का सगठन यद्यपि छात्रो द्वारा होता है, पर तु अध्यापक निर्देश के रूप म उन्हे सलाह देते है। छात्र अपने अपने अध्यापको की सलाह का लाभ उठाते हैं। इस प्रकार छात्र अध्यापको को और अध्यापक छात्रो को खूब समझ जाते हैं। अध्यापक छात्रो की शक्तियो से परिचित हो जाने के कारण, उनका प्रयोग आवश्यकतानुसार कर सकते है।

(७) विद्यालय का स्तर उठाना—जब छात्रो पर ही अनुशासन स्थापित करने का भार डाल दिया जाता है, तब वे तन मन धन से इस बात का प्रयत्न करते है कि विद्यालय का अनुशासन भग न हो जाय। वे अपनी जिम्मेदारियाँ समझने लगते है तथा उन्हे निभाने का प्रयत्न करते है। विद्यालय म उत्पन्न होने वाली अनुशासनहीन प्रवृत्तियो को नष्ट करने म वे अपना योग सहर्ष प्रदान करते हैं। दूसरे स्व शासन छात्रो म विद्यालय के प्रति प्रेम उत्पन्न करता है। विद्यालय की शान को वे अपनी शान समझते है। जिन विद्यालयो म स्व शासन को महत्त्व प्रदान नहीं किया जाता, वहा अनुशासनहीनता का प्रदर्शन प्राय होता रहता है। वास्तव म जब तक छात्रो म विद्यालय के प्रति प्रेम नही उत्पन्न हो जाता, तब तक स्थायी अनुशासन स्थापित करना अत्यन्त कठिन है।

१८

खेल तथा व्यायाम

GAMES

Q Write a short note on 'organized games as a factor in moral teaching'

प्रश्न—'सगठित खेल कूद नैतिकता का प्रशिक्षण है।' सक्षेप में टिप्पणी लिखो।

(A U 1958)

उत्तर—एक समय था जब कि खेल कूद को विद्यालय म तनिक भी महत्त्व नहीं दिया जाता था। विद्यालयों को केवल शिक्षा प्रदान करने के स्थल के रूप म ही स्वीकार किया जाता था। अध्ययन को ही विशेष महत्त्व प्रदान किया जाता था। खेल कूद आदि क्रियाओं को उपेक्षा की दृष्टि स देखा जाता था। पाठ्य पुस्तकें ही शिक्षा का आधार थीं। परन्तु धीरे धीरे शिक्षा शास्त्रियों ने यह अनुभव किया कि बिना शारीरिक विकास के बालकों का मानसिक विकास सम्भव नहीं। अत विद्यालयों म खेल-कूद तथा शारीरिक व्यायाम की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। अब प्राय समस्त विद्यालयों म शारीरिक व्यायाम तथा खेल कूद आदि को किसी न किसी रूप म महत्त्व दिया जाता है। प्रधान अध्यापक को यह नहीं भूलना चाहिए कि छात्रों के शारीरिक विकास का उतना ही महत्त्व है जितना कि मानसिक विकास का। अत विद्यालय म केवल पुस्तकीय ज्ञान पर ही बल नहीं दिया जाय वरन् शारीरिक व्यायाम को भी महत्त्व दिया जाय। पी० सी० रेन ने, इसके कथन का उल्लेख अपनी पुस्तक म किया है। जिसमें कि वे लिखते हैं हमारे राष्ट्र की उन्नति का प्रमुख कारण हमारी शारीरिक शक्ति है जिसे कि हमने बाल-अवस्था में खेलों द्वारा प्राप्त किया है We as a nation owe our success chiefly to our mental and bodily vigour a vigour which is responsible, and dependent mainly upon the games of boyhood, which render possible our sports manhood' Dukeas दूसरे किसी विद्यालय म अनुशासन की नींव दृढ़ करने के लिए खेल-कूद की उचित व्यवस्था करना परमावश्यक है। साधारण दृष्टि स खेल-कूद का अनुशासन म सम्बन्ध कुछ अजब सा लगता है

परन्तु ध्यानपूर्वक अवलोकन करने पर हमें ज्ञात होगा कि अनुशासन की स्थापना में खेल-कूद की व्यवस्था अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होती है। आज शिक्षा का उद्देश्य बालक का एकांगी विकास करना नहीं है, वरन् उसका बहुमुखी विकास करना है। हमें इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करनी है जिससे प्रत्येक बालक का मानसिक विकास होने के साथ शारीरिक विकास भी हो सके। वास्तव में मानसिक विकास के साथ साथ यह भी आवश्यक हो जाता है कि बालक का शारीरिक विकास भी हो। एक सुन्दर मस्तिष्क के लिए सुन्दर, स्वस्थ शरीर का होना परम आवश्यक है। खेल-कूद से होने वाले लाभों का उल्लेख हम नीचे करेंगे—

(१) **स्वास्थ्य में वृद्धि**—खेल-कूद में छात्रों के स्वास्थ्य में वृद्धि होती है। उनका प्रत्येक अंग सुडौल होता है। जिस समय बालक खेल खेलते हैं उस समय उनकी समस्त मांसपेशियाँ कार्य करती हैं तथा रक्त तीव्रता से शरीर में चक्कर लगाने लगता है। इस प्रकार खेल-कूद छात्रों के शारीरिक विकास में परम सहायक सिद्ध होते हैं।

(२) **मानसिक विकास में सहायक**—शारीरिक स्वास्थ्य का मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है। एक सुन्दर नीरोग शरीर में एक सुन्दर नीरोग मस्तिष्क रहता है। जो छात्र खेल में पर्याप्त भाग लेते हैं, उनका मस्तिष्क भी तीव्र गति से काम करता है। वे किसी प्रश्न को अन्य छात्रों की अपेक्षा सरलता से समझ लेते हैं। दूसरे, पढ़ते पढ़ते छात्रों का मस्तिष्क थक जाता है तो उसे आराम देने के लिए खेल-कूद एक दवा का काम करता है। बालक खेलने के पश्चात् पुनः पढ़ने के लिए अपने को तरो-ताजा कर लेते हैं।

(३) **अतिरिक्त शक्ति का उचित प्रयोग**—किशोरावस्था में बालक के अन्दर अतिरिक्त शक्ति होती है। यदि उसका उचित प्रयोग नहीं किया गया तो वह शक्ति बुरे कार्यों में लगेगी। खेल कूदों के द्वारा छात्रों की अतिरिक्त शक्ति का सदुपयोग होता है। बालक खेल कूद में इतने थक जाते हैं कि उन्हें व्यर्थ की बातें सूझती ही नहीं। इस प्रकार जो शक्ति तोड़ फोड़ तथा ऊधम मचाने में लग सकती है, उसे खेल-कूद की व्यवस्था द्वारा सरलता से उचित मार्ग पर लाया जा सकता है।

(४) **अवकाश का उचित प्रयोग**—खेल कूद के माध्यम से अवकाश का सुन्दर प्रयोग होता है। यह बात ध्यान में रखने की है कि विद्यालयों में अनुशासनहीनता का प्रमुख कारण छात्रों को अवकाश का प्रयोग करने की सुविधा न देना है। अध्ययन के पश्चात् अतिरिक्त समय में छात्र कुछ न कुछ उपद्रव करने की कमी सोचते हैं। जिन विद्यालयों में सन्ध्या समय खेल कूद की व्यवस्था रहती है वहाँ के छात्र अवकाश का समय खेल कूद में लगाते हैं, साथ ही वहाँ किसी भी प्रकार अनुशासनहीनता नहीं होती है। इस प्रकार खेल-कूद की व्यवस्था द्वारा छात्रों को विद्यालय के पश्चात् भी व्यस्त रखा जा सकता है।

(५) **सामाजिकता की भावना का विकास**—खेल बालकों के केवल शरीर को

ही नहीं दृढ करते, वरन् उन्हें आपस में मिलकर खेलना भी सिखाते हैं, जिससे उनके अन्दर सामाजिकता की भावना का उदय होता है। खेल के समय वे परस्पर प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हैं तथा आपसी वैर-भाव को बिलकुल भूल जाते हैं। समस्त छात्र मिलकर एक लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार उनमें सहयोग की भावना का भी विकास होता है।

(६) **विद्यालय के प्रति प्रेम की भावना**—जिस समय छात्र किसी अन्य विद्यालय से मैच या प्रतियोगिता में भाग लेते हैं उस समय उनमें अपने विद्यालय को जिताने तथा उसके सम्मान को ऊपर उठाने का भाव रहता है। इस प्रकार की भावना छात्रों में स्कूल के प्रति प्रेम उत्पन्न करने में परम सहायक होती है।

(७) **अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं का विकास**—खेल-कूद छात्रों में अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं का विकास करते हैं। वे संसार में होने वाली खेल प्रतियोगिताओं में अत्यन्त दिलचस्पी लेते हैं। किस देश का खिलाड़ी किस ढंग से खेलता है, आदि बात जानकर छात्रों में उस देश के प्रति उत्सुकता की भावना उत्पन्न होती है। देश के खिलाड़ी दूसरे देश में जाकर अपना खेल दिखाते हैं तो उस देश के निवासियों में अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं का विकास होता है। दूसरे छात्रों में भी अन्तर्राष्ट्रीय खेल कूद प्रतियोगिता में भाग लेने की भावना का उदय होता है और वे इसके लिए प्रयत्न भी करते हैं।

(८) **चारित्रिक विकास**—खेल कूद छात्रों के चरित्र के विकास में भी सहायक होते हैं। यह हम पहले ही लिख चुके है कि खेल कूद से शरीर स्वस्थ रहता है। शरीर के स्वस्थ तथा निर्बल रहने से चारित्रिक दुर्बलताएँ मस्तिष्क में प्रवेश नहीं करतीं। बालकों का समय खेल तथा अध्ययन के अतिरिक्त इधर-उधर कहीं नहीं भटकता। दूसरे, खेल खेलते समय प्रत्येक बालक के अन्दर दृढ़ता, गम्भीरता तथा एकाग्रता की भावनाओं का विकास होता है जिससे कि चरित्र के गठन में सहायता मिलती है। बालक खेल के मैदान में अधिक सफलता प्राप्त कर लेते हैं। वे भविष्य में जीवन में भी सफलता प्राप्त करते हैं।

खेल का मैदान—खेल कूद की उचित व्यवस्था के लिए विद्यालय में एक खेल का मैदान होना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो खेल का मैदान विद्यालय के निकट ही रखा जाय जिससे छात्र सरलता से खेलों में भाग ले सकें। मैदान भली प्रकार से खुला होना चाहिए। मैदान की भूमि कंकड़दार न हो तथा जगह जगह बीच बीच में गड्ढे भी न हों जिसमें उसमें पानी भर जाय। दूसरे शब्दों में खेल के मैदान का एक सार होना आवश्यक है। वर्षा और धूप से बचने के लिए खेल के मैदान का कुछ भाग ढका हुआ रहना चाहिए कुछ छायादार पेड़ों को लगाकर इस कमी को दूर किया जा सकता है। खेल के मैदान की लम्बाई-चौड़ाई इतनी हो कि उसमें विद्यालय के अधिक से अधिक छात्र एक साथ खेल सकें। मैदान में कोमल दूब की घास लगाई जाय।

खेलों का संगठन—(१) खेलों का संगठन करते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाय कि विद्यालय के समस्त छात्र खेल-कूदों में भाग ले सकें। अधिकांश

विद्यालयो म बडी सख्या म छात्रो की उपेक्षा करके कुछ इने गिने छात्रो को सुविधाएँ प्रदान की जाती है, परन्तु यह पूणतया अनुचित है। प्रधान अध्यापक को चाहिए कि वह खेलो के काय क्रम को इस प्रकार व्यवस्थित करे कि विद्यालय के समस्त छात्र नियमित रूप से खेलों म भाग ले सके।

(२) एक समय मे सब बालक एक साथ नही खेल सकते, अत सुविधा के लिए छात्रो का वर्गीकरण किया जाय जाय। प्रत्येक टोली या वग को सुविधानुसार खेलने का अवसर प्रदान किया जाय। एक ही खेल सप्ताह भर न चले समय समय पर उसमे परिवतन किया जाय तो उत्तम होगा।

(३) समय विभाग चक्र मे खेल के लिए कम से कम एक घण्टे का समय अवश्य दिया जाय।

(४) विद्यालय मे खेल कूद प्रतियोगिताओ का आयोजन अवश्य किया जाय। एक टोली को दूसरी टोली का प्रतियोगी बनाया जाय। समयानुसार इन टोलियो का मैच करा दिया जाय। पारस्परिक मैच प्रतियोगिताओ को करवाते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाय कि छात्रो म पारस्परिक द्वेष भाव न उत्पन्न हो जाय।

(५) आन्तरिक प्रतियोगिता के साथ साथ अन्य स्कूलो के साथ भी मैच-प्रतियोगिताओ का आयोजन किया जा सकता है। प्राय विद्यालयो मे पारस्परिक मैच होते रहते हैं। इन मचो से विद्यालयो के खेलो का स्तर ऊँचा उठता है। परन्तु अध्यापको को सावधानी बरतनी चाहिए और यह देखना चाहिए कि आपस मे लडाई झगडे तो नही होते।

(६) खेल का सामान पर्याप्त मात्रा मे लिया जाय जिसस बालक भली प्रकार खेल सक।

(७) खेल कूद म स्पोट स को भी उचित महत्व दिया जाय। स्पोट् स म भाग लेने के लिए अधिक से अधिक छात्रो को उत्साहित किया जाय।

(८) सबसे अच्छे खेल वे है जिनम अधिक-से-अधिक खिलाडी भाग ले सके जसे—फुटबाल, हाकी, क्रिकेट तथा रस्सा कशी। कम दाम म इन खलो मे अधिक स अधिक खिलाडी भाग ले सकते हैं।

(९) खल-कूद व्यवस्था को उचित प्रकार से चलाने के लिए एक खल कूद परिषद् का निर्माण किया जाय। जहाँ तक सम्भव हो इस परिषद् का निर्माण जनतन्त्रात्मक ढग से हो। परिषद् का सदस्य प्रत्येक कक्षा से चुना जाय, जो अपनी कक्षा का प्रतिनिधित्व उचित रूप से करता है। परिषद् को खेल-कूद सम्बन्धी क्रियाओ का सगठन करने का पूण अवसर दिया जाय।

(१०) जो छात्र शारीरिक दुबलता के कारण महनत वाले खेलो को नही खेल सकते, उनके लिए इण्डोर खेलो की व्यवस्था की जाय। इण्डोर (Indoor) खेल जहाँ तक हो मानसिक शक्ति का विकास करने वाले हो।

खेल-कूद का व्यवस्थापक—खेल-कूद का उचित सगठन करने के लिए —

व्यवस्थापक अवश्य रखा जाय। व्यवस्थापक (Games Superintendent) के अभाव म खेलो का उचित प्रकार से सगठन नही हो सकता। व्यवस्थापक जहा तक हो प्रशिक्षित हो। प्रशिक्षित व्यवस्थापक को खेलो का पूरा पूरा ज्ञान होता है। ही व्यवस्थापक को खेलो से प्रेम करने वाला होना चाहिए।

खेलो के विभिन्न स्वरूप—अपने देश मे खेले जाने वाले खेलो को दो भागो म बाटा जा सकता है —

(१) भारतीय खेल—कबडडी रूमाल दौड, खो, रस्सा कशी आदि आदि।

(२) पाश्चात्य खेल—फुटबाल, क्रिकेट, हाकी, वालीबाल, बास्केट बाल आदि।

जहाँ तक सम्भव हो विद्यालय मे दोनो प्रकार के खेलो का आयोजन किया जाय।

शारीरिक व्यायाम—विद्यालय म खेल कूद के अतिरिक्त शारीरिक व्यायाम को भी महत्त्व दिया जाय। शारीरिक व्यायाम छात्रो के लिए अत्यन्त लाभदायक है, 'जिस प्रकार रेल के इजन को चलाने के लिए कोयले और पानी की आवश्यकता होती है उसी प्रकार शरीर को कायशील बनाये रखने के लिए व्यायाम रूपी ईंधन की आवश्यकता होती है। व्यायाम से सारा शरीर सुडौल, सुगठित एव दृढ बन जाता है। रक्त सचार ठीक तरह तथा तीव्र गति से होता है। हृदय की गति म वेग पैदा हो जाता है तथा पाचन शक्ति भी अपना काय ठीक तरह से करती है। पुट्ठे मजबूत हो जाते हैं सीना चौडा हो जाता है। इस प्रकार व्यायाम के माध्यम से शरीर की समस्त इंद्रिया ठीक प्रकार अपना काय करने लगती है। हृदय उत्साह तथा उमग से भरा रहता है जिससे पढने तथा लिखने म भी आनन्द का अनुभव होता है। नीचे हम शारीरिक व्यायाम से होने वाले लाभो का उल्लेख करेगे—

(१) समस्त शरीर में रक्त सचार—व्यायाम करने का सबसे बडा लाभ यह है कि हमारा रक्त शरीर म भली प्रकार प्रवाहित हो जाता है जिससे हम दिन भर के लिए अपने को काय करने के लिए तैयार कर लेते हैं।

(२) मस्तिष्क का विकास—व्यायाम से मानव शरीर म स्फूर्ति का स्रोत प्रवाहित होने लगता है। अध्ययन तथा मनन के लिए शरीर का नीरोग रहना परम आवश्यक है। नीरोग व्यक्ति ही देर तक स्वाध्याय कर सकता है।

(३) चरित्र का विकास—नित्य व्यायाम करने वाले व्यक्ति सयमी होते हैं और सयम ही प्रत्येक व्यक्ति के चरित्र का भूषण है।

(४) शरीर का प्रत्येक अग क्रियाशील—खेल खेलने म मुख्यतया टाँगो तथा हाथो को ही गति मिलती है परन्तु व्यायाम करने से शरीर का प्रत्येक अग क्रियाशील होना है जिससे शरीर का समुचित विकास होता है।

(५) मांसपेशियों में दृढता आती है—व्यायाम का प्रभाव मांसपेशियो पर भी पडता है। प्रात कालीन व्यायाम मासपेशियो को दृढ तथा लोचदार बनाना है।

व्यायाम का कार्य क्रम

(१) जहा तक सम्भव हो व्यायाम प्रात काल के समय ही कराया जाय।

(२) व्यायाम का घण्टा अधिक बडा न हो।

(३) व्यायाम कठिन तथा थकाने वाले न हो।

(४) प्रात कालीन व्यायाम म भारतीय आसनो का भी समावेश किया जाय।

(५) सामूहिक रूप स व्यायाम करना अधिक उत्तमकारी होगा।

(६) व्यायाम तरह तरह के हो, एक-से व्यायाम छात्रो मे नीरसता उत्पन्न करते हैं।

सामूहिक ड्रिल (Mass Drill)—व्यायाम के साथ ही साथ सामूहिक ड्रिल का आयोजन किया जा सकता है। ड्रिल कराने के लिए अत्य त योग्यता तथा सावधानी की आवश्यकता है। ड्रिल के मध्य श्वास सम्ब धी क्रियाओ का भी स्थान दिया जाय। ड्रिल के विषय म सावधानी बरतने के लिए रायबन लिखते हैं—"इस बात पर विशेष रूप से बल दिया जाय कि ड्रिल का घण्टा किसी परिस्थिति में सैनिक ढग की किसी क्वायद के लिए प्रयोग में न लाया जाय।" ड्रिल कराने का प्रमुख उद्देश्य व्यायाम होता है।

व्यायामशाला—विद्यालय म एक व्यायामशाला का होना परम आवश्यक है। व्यायामशाला म व्यायाम करन स छात्रा म जोश आता है। दूसरे, व्यायाम शाला व्यायाम करन का वातावरण बनाती है। व्यायामशाला म तारो क भूले, समा तर बार (Parallel bar), कूदने का बक्स, व्यायाम के रस्से आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। व्यायामशाला का फश यदि लकडी का हो तो और भी अच्छा है। पर तु व्यायामशाला म व्यायाम छात्र सदा अध्यापक की देख रेख म ही करे।

१९

विद्यालय का ससृष्ट जीवन

THE CORPORATE LIFE OF THE SCHOOL

Q What do you understand by "Esprit de corps" ? As the headmaster of a large school, what measures will you adopt to have it in your pupils ? (L T 1948)

प्रश्न—'ससृष्ट जीवन' से तुम क्या समझते हो ? प्रधान अध्यापक होने के नाते आप किन किन साधनों को अपनायेंगे जिससे छात्रों में यह भावना जम ले सके ?

Or

What objectives should be kept in mind in organizing corporate life in schools ? As headmaster, what steps would you take to develop true community spirit in your schools ? (B T, 1961)

विद्यालय के ससृष्ट जीवन के लिए आप क्या-क्या पग उठायेंगे ? विद्यालय के ससृष्ट जीवन के लिए किन किन बातो को ध्यान में रखना चाहिए ?

उत्तर—विद्यालय को समाज का लघु रूप बनाना परम आवश्यक है क्योंकि विद्यालय में पढ़ने वाला छात्र समाज का सदस्य होता है। अल्प आयु में ही बालक विद्यालय में प्रवेश करता है अतः विद्यालय के वातावरण का प्रभाव उस पर स्थायी पड़ता है। यदि किसी विद्यालय का वातावरण चेतना तथा सहानुभूतिपूर्ण होता है तो वहां से निकले हुए छात्र समाज के योग्य सदस्य सिद्ध होते हैं। अतः विद्यालय का कर्त्तव्य है कि वह अपना वातावरण ऐसा बनाये कि उसमें शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र समाज के योग्य सदस्य सिद्ध हों। इस विषय में आर० पी० शर्मा लिखते हैं—"जो स्कूल बालकों के बौद्धिक व नैतिक विकास की सामग्री उपस्थित कर देता है तो वह समाज को असली प्रतिच्छाया बन जाता है। एक आदर्श स्कूल बालकों के बाह्य अनुभवों का लाभ उठाकर उनके आधार पर शिक्षा देगा और उनके द्वारा उन्हें वास्तविक जीवन में परिचित करायेगा। स्कूल का और बाह्य जीवन के अनुभव का

समन्वय स्थापित हो जाना तथा स्कूल के ज्ञान और स्कूल के बाहर के अनुभव का युग्म बन जाना ही स्कूल की सफलता की निशानी है। ऐसे स्कूलों के विद्यार्थी स्कूल से ज्ञान लेकर समाज में फैलायेंगे और समाज का स्तर ऊँचा करेंगे।" जो छात्र अपने विद्यालय से प्रेम करते है तथा विद्यालय के प्रत्येक कार्य क्रम के प्रति अपना भली प्रकार कर्तव्य निभाते हैं, वे भविष्य मे समाज के सुयोग्य नागरिक सिद्ध होते हैं। परन्तु यह तभी सम्भव है जबकि विद्यालय मे समृष्ट जीवन अपनी नींव जमा चुका हो। अत विद्यालय के सामुदायिक या समृष्ट जीवन पर विशेष रूप से बल दिया जाय, क्योंकि समृष्ट जीवन ही बालक को सामाजिक जीवन के उपयुक्त बनाता है। इस विषय म रायबर्न का कथन उल्लेखनीय है। वे लिखते है—"जो प्रभाव हम बालक पर डालना चाहते हैं, वह एक दम ही नही पडता। छात्र विद्यालय के समृष्ट जीवन म धीरे धीरे प्रवेश करता है। प्रथम वह अपनी कक्षा के समाज से अपनी रुचियो सहित अपने सामुदायिक जीवन म प्रवेश करता है और उसके पश्चात् विद्यालय के विस्तृत समाज मे प्रवेश करता है। विद्यालय के सामाजिक जीवन म उसका प्रवेश करना बाहर जाकर समस्त ससार के सामाजिक जीवन म प्रवेश करने की तैयारी है।" वास्तव म विद्यालय के अन्दर सामाजिक जीवन की भूमि को तयार करना सरल काय नही है, वरन् इसके लिए दीघकालीन धैय तथा प्रयास करना होगा। अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हमे कुछ निश्चित तथा प्रभावशाली उपायो को प्रयोग मे लाना होगा। कुछ प्रभावशाली उपायों का उल्लेख हम नीचे करेंगे। विद्यालय के समृष्ट जीवन के लिए निम्न भावनाओं का होना आवश्यक है—

(१) अध्यापक मण्डल तथा प्रधान अध्यापक के मध्य सहयोग की भावना।

(२) अध्यापको म परस्पर सहयोग की भावना।

(३) अध्यापक मण्डल तथा छात्रो के मध्य सहयोग की भावना।

(४) सम्पूण विद्यालय म सामाजिकता की भावना।

(१) अध्यापक मण्डल तथा प्रधान अध्यापक के मध्य सहयोग की भावना— विद्यालय के समृष्ट जीवन के लिए सबसे महत्त्वपूण बात प्रधान अध्यापक तथा अध्यापक मण्डल के मध्य सहयोगपूण वातावरण का होना है। विद्यालय मे वास्तविक सामूहिक चैतन्यता तभी आ सकती है जबकि दोनो के बीच मधुर सम्बन्धो की स्थापना हो। रायबर्न के अनुसार, "सबसे प्रमुख वस्तु है अध्यापक मण्डल के मध्य सामाजिक तथा मैत्रीपूण भावना का होना। यदि उनम सहयोग है और व पारस्परिक निर्भरता तथा उत्तरदायित्वो को भली प्रकार समझते हुए एक साथ मिलकर काम करते हैं, तो समझो कि विद्यालय मे सच्चे समृष्ट जीवन की नींव पड चुकी है।" "The first essential is a feeling of friendship and community among

the members of the staff and between the headmaster and the staff If they are a team, all feeling together, feeling their mutual dependence privileges and responsibilities, then foundation of real corporate life in the school has been laid" अध्यापक और प्रधान अध्यापक के मध्य की इन सद्भावनाओं को छात्रों के बीच भी पहुचाने का प्रयत्न किया जाय। यह पूर्णतया सत्य है कि प्रधान अध्यापक और अध्यापक मण्डल के मध्य की सद्भावना का प्रभाव विद्यालय के छात्रों पर गहरा पड़ता है।

(२) अध्यापक मण्डल में परस्पर सहयोग की भावना—यह सत्य है कि प्रधान अध्यापक तथा अध्यापकों के बीच की सद्भावना का प्रभाव बालकों पर अधिक पड़ता है, परन्तु स्वयं अध्यापक मण्डल के सदस्यों में सद्भावना का होना परमावश्यक है। अध्यापकों का कर्तव्य है कि वे परस्पर किसी प्रकार की ईर्ष्या द्वेष की भावना न रखें। वास्तविक सहयोग तथा सद्भावना की शिक्षा अध्यापकों के परस्पर सम्बन्ध ही दे सकते हैं। इसके विपरीत यदि अध्यापक परस्पर सहयोग और प्रेम से नहीं रहते हैं तो इसका प्रभाव अल्प आयु के बालक पर अत्यधिक बुरा पड़ेगा। अतः विद्यालय को उचित मार्ग पर ले जाने के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक परस्पर सहयोग और सद्भावना के साथ रहें।

(३) अध्यापक मण्डल तथा छात्र—अध्यापक छात्रों के मध्य भी सद्भावना का होना आवश्यक है। अध्यापक का कर्तव्य है कि वे छात्रों के साथ जहाँ तक हो सके मैत्रीपूर्ण व्यवहार करें। किसी कार्य का भार सौंपते समय छात्रों पर पूरा पूरा विश्वास किया जाय। छात्रों को हीन दृष्टि से देखना पूर्णतया अनुचित है। वास्तव में यदि छात्रों और अध्यापकों के मध्य कटुता और अविश्वास की भावना उत्पन्न हो जाती है तो विद्यालय का समस्त वातावरण दूषित हो जाता है। अतः जहाँ तक सम्भव हो छात्रों और अध्यापकों के मध्य सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया जाय।

(४) सामाजिकता की भावना का विकास—विद्यालय समाज का ही अंग है अतः विद्यालय में सामाजिक क्रियाओं को अवश्य स्थान दिया जाय। छात्रों को इस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाय कि वे समाज के योग्य नागरिक सिद्ध हो सकें। इस विषय में आर० पी० शर्मा लिखते हैं, 'स्कूल के जो सम्बन्ध हमारे समाज और देश में टूटे पड़े हैं उन्हें जोड़ा जाय। शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित न रहे वरन् उन समस्त गुणों व आदतों को बच्चों को सिखाए जिनके द्वारा वे अपनी शक्तियों का पूर्ण प्रयोग कर सकें जो उन्हें समाज का विश्लेषण करने की क्षमता प्रदान करें, जो उन्हें व अपने वातावरण से पूर्ण परिचित कराकर उनको अपने वातावरण के साथ समन्वय स्थापित करने की शक्ति दे।' दूसरे शब्दों में शिक्षा को समाजोपयोगी बनाने का प्रयत्न किया जाय जैसा कि वे आगे लिखते हैं, "हमें आवश्यकता यह है कि हमारी शिक्षा हमारे बालकों की सामाजिक प्रवृत्तियों को

प्रोत्साहन दे और उन्हे समाजोपयोगी गुण सिखाकर सामाजिक क्रियाओ की क्षमता प्रदान कर सफल नागरिक बनावे।" विद्यालय को समाज का लघु रूप बनाने के लिए हम निम्न उपायो को अपनाना होगा—

(१) विद्यालय के पाठ्यक्रम मे सामाजिक क्रियाओ को स्थान दिया जाय। दूसरे शब्दो म पाठ्यक्रम समाज की क्रियाओं की प्रतिच्छाया हो।

(२) विद्यालय म प्रौढ़ शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय।

(३) विद्यालय के पुस्तकालय का प्रयोग, समाज के सदस्य कर सके।

(४) चार्ट, मानचित्र, स्लाइड, फिल्म तथा रेडियो के माध्यम से छात्रो को समाज का यथार्थ ज्ञान कराया जाय।

(५) सुविधानुसार भ्रमण या पर्यटन का आयोजन किया जाय। भ्रमण के द्वारा अध्यापक छात्रो को वाह्य सामाजिक जीवन से परिचित करावे।

(६) समय समय पर समाज सेवा शिविरो का आयोजन किया जाय।

ऊपर हमने विद्यालय और वाह्य समाज के मध्य सम्पर्क स्थापित करने के उपायो पर प्रकाश डाला, अब हमे देखना है कि विद्यालय के अन्दर किन उपायो से सहयोग तथा सामाजिकता की भावना उत्पन्न हो सकती है।

(१) विद्यालय का एक आदर्श वाक्य (Motto) चुना जाय। उदाहरण के लिए '*सत्य अमर है*' या '*सदा सत्य बोलो*' आदि आदि।

(२) विद्यालय का एक झण्डा हो जिसकी शान हर क्षेत्र मे बनाये रखने के लिए छात्रो को प्रेरित किया जाय।

(३) विद्यालय की एक यूनीफार्म हो जिसका उपयोग समारोह या विशेष दिवसो पर किया जाय।

(४) विद्यालय से सम्बन्धित किसी कार्य को अध्यापक छात्रो के साथ सफलतापूवक पूरा करे। किसी योजना मे अध्यापक यदि छात्रो का हाथ बँटाते हैं तो इससे सहयोग तथा सामाजिकता की भावना का विकास होगा। रायबन के अनुसार, "किसी भी रूप मे स्वयं विद्यालय की सेवा करना या उस समाज की सेवा करना जिसमे विद्यालय स्थित है, सद् सामाजिक प्रवृत्ति और जीवन को विकसित करने वाला अमूल्य साधन होगा। इस सम्बन्ध म हमे यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि चाहे काम भूमि खोदने का हो या किसी दूसरी तरह का परन्तु सफलता उसमे तभी मिलेगी, जब अध्यापक शाब्दिक तथा लाक्षणिक दोनो रूपो म अपने कोट उतार कर रख देंगे और अपने भाग का काम करेंगे। इस प्रकार के उदाहरण विद्यालय म सामाजिकता की भावना उत्पन्न करने म जितने सहायक हो सकते हैं उतने और कोई नही।"

(५) विद्यालय की पढाई के आरम्भ होने से पूर्व एक प्रार्थना-सभा का आयोजन अवश्य किया जाय। एक प्रेरणादायक प्रार्थना के पश्चात् किसी घोषणा या सूचना आदि को छात्रो को सुनाया जा सकता है। वास्तव मे विद्यालय के दैनिक

काय के आरम्भ हाने से पूव समस्त छात्र तथा अध्यापको का एक जगह एकत्र होना विशेष महत्त्व रखता है। ऐसे अवसर पर प्रधान अध्यापक छात्रो को आवश्यकतानुसार निर्देश कर सकता है।

(६) छात्रा को स्वशासन के अवसर दिए जायें। स्वशासन के महत्त्व पर पिछले पृष्ठो म पर्याप्त प्रकाश डाल चुके है।

(७) विद्यालय के वातावरण म धम-निरपेक्षता बनाये रखने का प्रयत्न किया जाय।

उपयुक्त उपायो को अपनाने से विद्यालय म ससृष्ट जीवन की स्थापना सरलता से हो सकती है। परन्तु प्रधान अध्यापक को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसके किसी काय म कृत्रिमता न आ जाय। जो भी काय किया जाय वह सहज तथा स्वाभाविक ढग से किया जाय। ससृष्ट जीवन की स्थापना म विद्यालय की परम्पराएँ विशेष सहायक होती है। अत विद्यालय म जहा तक सम्भव हो श्रेष्ठ परम्पराओ को विकसित होने का अवसर दिया जाय। श्रेष्ठ परम्पराए छात्रा पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालती है।

२०

शिक्षा में निदर्शन

GUIDANCE IN EDUCATION

Q What do you understand by 'Educational Guidances'? What are the aims and purposes of 'Educational Guidance' in schools?

प्रश्न—शिक्षा निदशन से तुम क्या समझते हो? विद्यालय में शिक्षा निदर्शन के क्या उद्देश्य हैं?

Or

Do all children need guidance? Defend your answer using suitable illustrations? (P U, B T 1959)

क्या समस्त छात्र निदशन चाहते हैं? उदाहरणो से अपने उत्तर की पुष्टि करो।

Or

Estimate the value of 'Organization of Guidance Programme' in schools (A U, B T 1965)

विद्यालयो में 'निदशन काय क्रम सगठन' के महत्त्व को समझाइये।

Or

"A guidance programme has a more important role to play than the present system of evaluation in our schools" Examine this statement critically (B Ed 1967)

'हमारी शालाओं में वतमान मूल्याकन पद्धति से निदर्शन काय क्रमों का महत्त्व अधिक है।" इस कथन को समालोचनात्मक ढग से जाचो।

उत्तर—निदर्शन का शिक्षा मे अत्यधिक महत्त्व है। शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर निदशन की आवश्यकता रहती है यह मनोवनानिक सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से भिनता रखता है, अत व्यक्तिगत भिनता के आधार पर शिक्षा देना परम

आवश्यक है। परन्तु व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर शिक्षा देना कोई सरल कार्य नहीं है। व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर शिक्षा देने में हम अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। हम कितना भी चाहें कि एक कक्षा में समान योग्यता तथा रुचि के छात्रों को रखा जाय, परन्तु व्यवहार में ऐसा करना सम्भव नहीं है। किसी भी कक्षा में चले जायँ छात्रों की रुचियों, ज्ञान, योग्यताओं में हम पृथकत्व मिलेगा। इस कठिनाई को दूर करने के लिए तथा बालकों को उचित मार्ग-प्रदर्शन करने के लिए ही निदर्शन आन्दोलन का आरम्भ हुआ है। यह निश्चित है कि निदर्शन के अभाव में बालकों को उचित उपयोगी शिक्षा नहीं प्राप्त हो सकती।

निदर्शन का अर्थ

निदर्शन का वास्तविक अर्थ छात्रों को जीवन की समस्याएँ समझने तथा हल करने की सहायता देना है। डा० माथुर के अनुसार—"यह एक क्रिया है जो व्यक्ति को शिक्षा, जीविका, मनोरंजन तथा मानव क्रियाओं के समाज सेवा सम्बन्धी कार्यों को चुनने, तैयार करने, समाज में प्रवेश करने तथा वृद्धि करने में सहायता प्रदान करती है।" वे और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—"निदर्शन व्यक्तिगत रूप से वह सहायता है जो एक व्यक्ति को उसके जीवन की समस्याओं को हल करने को दी जाती है। निदर्शन के द्वारा व्यक्ति की समस्याएँ सुलझा नहीं दी जातीं परन्तु स्वयं सुलझाने में व्यक्ति को सहायता मिल जाती है।" माध्यमिक शिक्षा-आयोग के अनुसार निदर्शन का अर्थ—'Guidance involves the difficult art of helping boys and girls to plan their own future wisely in the full light of all the factors that can be mastered about themselves and about the world in which they are to live and work." दूसरे शब्दों में एक विद्वान के मतानुसार—'निदर्शन एक सक्रिय एवं गतिशील प्रक्रिया है। यह व्यक्ति को आत्म दर्शन तथा आत्म शक्ति का समुचित सहयोग करने में सहायता प्रदान करती है। निदर्शन द्वारा व्यक्ति को अपनी बुद्धि, योग्यता, विशिष्ट योग्यता, अभिरुचि और व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं, सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों आदि का ज्ञान होता है। इस प्रकार से निदर्शन प्राप्त किया हुआ व्यक्ति अपने जीवन को अच्छा बनाता है। समाज सेवा के उपयुक्त हो जाता है।"

निदर्शन के उद्देश्य

(१) छात्रों को विभिन्न विषयों के चुनने में सहायता देना।

(२) छात्रों को विभिन्न विद्यालयों के पाठ्यक्रम के विषय में बताना जिनमें कि वे जाना चाहते हैं।

(३) पाठ्य-पुस्तकों के चुनाव में सहायता देना।

(४) अध्ययन तथा स्वाध्याय की विधियाँ बताना।

(५) पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के चुनाव में सहायता देना।

(६) किसी उपयुक्त व्यवसाय के चुनने में मार्ग-दर्शन करना।

(७) वालक के शारीरिक, मानसिक तथा भावात्मक दोषो को दूर करना ।

(८) विभिन्न रुचियो तथा अभिरुचियों के चुनने मे वालक की सहायता करना ।

निदशन की प्रणाली

वालको को निदशन दो प्रकार से प्रदान किया जाता है—

(१) शिक्षा सम्बन्धी निदशन

(२) जीविका सम्ब धी निदशन

(१) शिक्षा सम्ब धी निदर्शन—शिक्षा सम्ब धी निदशन से हमारा तात्पय विद्यालया के छात्रो को पाठ्यक्रम मे से उचित विषय चुनने म सहायता देने से है। एक लेखक के अनुसार—"शिक्षा निदशन इस प्रकार को सहायता है, जो विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम तथा अनेक शिक्षा सम्बन्धी क्रियाओ का चुनाव करने में तथा उनके साथ अनुकूलन करने में दी जाती है।" इस प्रकार शिक्षा-निदशन म रुचिया तथा शारीरिक शिक्षा को भी स्थान दिया जाता है।

एक योग्य निदशक को अपने काय मे सफलता प्राप्त करने के लिए छात्रों की रुचिया, सुझावा तथा योग्यताओ का पूरा-पूरा ज्ञान रखना चाहिए। साथ ही उसे विभिन्न विद्यालयो के सगठना का भी ज्ञान रखना चाहिए। जिसमे वह छात्रा को ज्ञात करा सके कि कौन सा विद्यालय उनके उपयुक्त होगा।

(२) जीविका सम्ब धी निदशन—जीविका सम्ब धी निदशन का अथ छात्रो को उनके व्यवसाय चुनने मे सहायता प्रदान करता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सभा म जीविका निदशन की निम्न परिभाषा दी थी—"जीविका निदशन एक सहायता है जो एक व्यक्ति को उसकी जीविका निणय तथा जीविका म उन्नति सम्ब धी समस्याओ को हल करने के लिए उसकी व्यक्तिगत विशेषताओ को उसकी जीविका सम्ब धी अवसरो के सम्बन्ध म ध्यान रखते हुए दी जाती है।" हर व्यवसाय को प्रत्येक वालक नही कर सकता, अत निदशक का ऐसी दशा मे कत्तव्य हो जाता है कि वालको को उनकी योग्यता के अनुसार निदशन दे। व्यावसायिक निदशन करते समय छात्रो की रुचिया तथा झुकावो को भी ध्यान म रखना चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा निदशन—मुदालियर कमीशन ने उचित जीविका सम्ब धी निदशन पर विशेष बल दिया। इस विषय म कमीशन ने आगे लिखे सुझाव प्रस्तुत किये।

(१) शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् छात्र कौन-कौन से व्यवसाय अपना सकते हैं, इस विषय पर शिक्षा-अधिकारिया को विशेष ध्यान देना चाहिए।

(२) इस काय के लिए निदशन पदाधिकारियो (Guidance Officers) की नियुक्ति की जाय।

(३) छात्रो को विभिन्न जानकारी कराने के लिए, चल चित्रो को माध्यम

बनाया जा सकता है। इस विषय पर फिल्मे तैयार करवाई जाय तथा उन्हें छात्रों को दिखाया जाय।

(४) छात्रों को उद्योगों का यथार्थ ज्ञान कराने के लिए कल-कारखानों में ले जाया जाय।

(५) सरकार का कर्तव्य है कि वह मार्ग प्रदर्शन की तथा करियर सम्बन्धी के प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था करे। ये प्रशिक्षण-केन्द्र देश के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित किये जायें।

निदर्शन से लाभ

(१) निदर्शन से बालक के व्यक्तित्व का विकास होता है, क्योंकि निदर्शन बालक को उसकी योग्यता तथा रुचि के अनुसार ही शिक्षा प्राप्त करने की सलाह देता है।

(२) निदर्शन से बालक मन चाहे विषय लेता है, अतः उसके मस्तिष्क में भावना-ग्रंथियाँ नहीं पड़ती।

(३) निदर्शन से बालकों को उनका उद्देश्य ज्ञात होता है, अतः वे उसकी प्राप्ति का पूरा पूरा प्रयत्न करते हैं।

(४) जीविका निदर्शन से बालक उस व्यवसाय को ही चुनता है जिसमें वह सबसे अधिक सफलता प्राप्त कर सकता है।

(५) निदर्शन छात्रों के समय की बचत करता है, क्योंकि उचित निदर्शन मिल जाने पर वे इधर उधर नहीं भटकते।

(६) निदर्शन से समाज का भी भला होता है, क्योंकि उसे "सुसंगठित व्यक्तित्व वाले तथा उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले सदस्य प्राप्त हो जाते हैं। जिससे समाज प्रगति की ओर बढ़ता है।" जब कोई कार्य रुचि तथा योग्यता के अनुकूल होता है तो वह ऊपर से लादे गये कार्य से कहीं अच्छा होता है।

२१

विद्यालय-निरीक्षण
SCHOOL INSPECTION

Q Point out the chief defects in the existing system of school inspections How could they be made non effective ?

(A U 1958)

प्रश्न—वतमान शिक्षा प्रणाली में विद्यालय निरीक्षण के मुख्य दोषों को लिखिए। उनको किस प्रकार दूर किया जा सकता है ?

Or

What are the main objectives of a supervision programme ? As an educational officer of a district, what steps would you take to realize these objectives in the schools under your jurisdiction ?

(B Ed 1967)

परिवेक्षण काय क्रमों के मुख्य उद्देश्य क्या हैं ? जिला के एक शिक्षा अधिकारी के नाते आप इन उद्देश्यो को अपने अधीन शालाओं में प्राप्त करने हेतु किन उपायों को अपनायेंगे ?

उत्तर—वतमान शिक्षा प्रणाली मे निरीक्षण का महत्वपूण स्थान है। भारतीय सरकार के पास इतना धन नही है कि वह देश की समस्त माध्यमिक सस्थाओ का सचालन कर सके। अधिकाश प्राइवेट सस्थाएँ माध्यमिक शिक्षा का सचालन कर रही हैं। इन माध्यमिक सस्थाआ को सरकार की ओर से अनुदान प्रदान किया जाता है। अत उन पर सरकारी निय त्रण की आवश्यकता हो जाती है। इस नियन्त्रण की स्थापना के लिए प्रत्येक जिले मे एक जिला विद्यालय निरीक्षक की नियुक्ति की जाती है। जिला विद्यालय निरीक्षक का काय अपने क्षेत्र के विद्यालयो का निरीक्षण करना तथा शिक्षण के स्तर की जाँच करना होता है। निरीक्षक विद्यालया मे स्वय जाकर यह भी देखते हैं कि विद्यालय के अन्दर राज्य द्वारा प्रतिपादित शिक्षा-नियमा का पालन हो रहा है अथवा नही। सरकार द्वारा प्रदान की गई सहायता का यदि

किसी विद्यालय में दुरुपयोग होता है तो वह उस विद्यालय को मिलने वाले अनुदान को बन्द करवा कर अमान्य (Unrecognized) करवा सकता है। उसका प्रमुख कार्य प्रबन्ध-समिति तथा अध्यापक वर्ग के मध्य सन्तुलन बनाये रखना है। यदि किसी विद्यालय की प्रबन्ध समिति अध्यापकों पर अन्याय करती है, तो वह उस अन्याय को रोकने के लिए हस्तक्षेप कर सकता है। उसके प्रत्येक कथन का पालन प्रधान अध्यापकों के लिए कानून होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जिला विद्यालय निरीक्षक के हाथ में अपरिमित शक्ति होती है। यदि वह उसका उपयोग ठीक प्रकार से करता है तो वह अपने क्षेत्र के विद्यालयों का स्तर उठा सकता है परन्तु इसके विपरीत उसकी उदासीनता विद्यालयों के शिक्षण स्तर तथा प्रबन्ध को रसातल पर ले जा सकती है।

वर्तमान दोष (Existing Defects)

(१) निरंकुश नीति—वर्तमान निरीक्षण प्रणाली अत्यन्त दोषपूर्ण है। प्रत्येक जिला निरीक्षक अपने पद की 'निरंकुशतापूर्ण' स्थिति से लाभ उठाता है। वे पग पग पर अपनी इच्छाओं को कानून की तरह मनवाने का प्रयत्न करते हैं। दूसरे की सलाह मानना वे अपना अपमान समझते हैं। प्रत्येक प्रधान अध्यापक को अपने पद की लाज तथा विद्यालय के हित के लिए निरीक्षक की आज्ञा आँख मीच कर माननी पड़ती है।

(२) केवल खानापूरी—दूसरे वर्तमान निरीक्षक किसी विद्यालय का निरीक्षण केवल कर्त्तव्य निभाने के लिए खाना-पूरी करते हैं। उन्हें निरीक्षण करना है, अतः शीघ्रता से देखभाल करके अपने कर्त्तव्य को समाप्त कर देते हैं। इस प्रकार निरीक्षण केवल खानापूरी (Perfunctory) करना रह जाता है।

(३) समय का दुरुपयोग—निरीक्षण में जिन बातों में समय देना चाहिए उनमें न देकर व्यर्थ की बातों में अधिक समय बरबाद किया जाता है। अधिकांश निरीक्षक अपना अधिक समय एकाउन्टस देखने, व्यवस्था का निरीक्षण करने आदि में लगा देते हैं, शिक्षण की ओर तथा अध्यापकों की दशा की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता। जैसा कि सेकण्डरी एजूकेशन कमीशन ने वर्तमान निरीक्षकों के दोषों का उल्लेख किया है—"The time is spent by the inspector at any particular place was insufficient, that the greater part of his time was taken up with routine work line, checking accounts and looking into the administrative aspect of the school There was not enough time devoted to the academic side and contact between the inspectors and teachers were casual" निरीक्षक उदार हृदय तथा सहयोगी भावना के बजाय अत्यन्त तानाशाह तथा कठोर व्यवहार करने वाले होते हैं। वे अध्यापकों के साथ अपने सम्बन्ध मित्रवत बनाने का कभी प्रयत्न नहीं करते।

(४) कुछ विषय निरीक्षण के क्षेत्र से परे—अ त म कुछ विषयो को प्रत्यक निरीक्षक नही समझ सकता। उदाहरण के लिए सगीत, काष्ठकला, चित्रकला आदि। अत इस प्रकार के विषयो के लिए अलग निरीक्षक की नियुक्ति का कुछ भी प्रब ध नही है। सामा य निरीक्षक इन विषया को समझ न सकने के कारण निरीक्षण ठीक प्रकार नही कर पाते।

(५) अध्यापको से सम्पक का अभाव—अधिकाशत निरीक्षक अध्यापको से अपने को पूणतया अलग रखते हैं। इस प्रकार वे अध्यापको की समस्याओ को समझने मे असमथ रहते है।

निरीक्षण के सिद्धा त

(१) सहयोग की भावना—निरीक्षक को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि निरीक्षण का तात्पय केवल आलोचना करना ही नही है। उसे समस्त अध्यापको को अपना छोटा भाई मानना चाहिए। वह जब भी निरीक्षण करने निकले तो सहयोग की भावना का अवश्य ध्यान रखे।

(२) कक्षा निरीक्षण का महत्त्व—विद्यालय मे अध्यापक का स्तर कहाँ पर है। यह जानने के लिए कक्षा-निरीक्षण अत्य त सावधानी तथा चतुरता के साथ किया जाय। कक्षा म पढाते हुए अध्यापक को इस बात का आभास भी न हो कि कोई उसके काय का निरीक्षण कर रहा है। उसे चाहिए कि वह अध्यापक की शिक्षण विधियो को ध्यान स देखे तथा भूलो को नोट करता जाय। कुछ अध्यापक निरीक्षक की उपस्थिति म धय खो बैठत हैं, अत निरीक्षक को अपने चेहरे से स्नेह का भाव प्रदर्शित करते रहना चाहिए। यदि अध्यापक का पढाने का ढग अमनोवैज्ञानिक तथा शिक्षण विधियो के प्रतिकूल है, तब ऐसी अवस्था म निरीक्षक को स्वय उस कक्षा को पढ़ा कर दिखाना चाहिए।

(३) लिखित काय का निरीक्षण—कक्षाओ के लिखित काय का निरीक्षण करना आवश्यक है। बहुत से विद्यालयो म वष भर मौखिक शिक्षण चलता रहता है। अध्यापक छात्रो को कुछ भी लिखाने का कष्ट नही करते। अत निरीक्षक को लिखित काय की जाच सावधानी स करनी चाहिए। प्रत्यक कक्षा म जाकर उसे छात्रो की अभ्यास पुस्तिकाएँ देखनी चाहिए। क्या उनम विषय-अध्यापक ठीक प्रकार से हस्ताक्षर करता है, क्या वे ठीक प्रकार से जाची गयी हैं, क्या छात्र अध्यापक द्वारा बताय गए सुझावो का व्यवहार म लाते है—आदि आदि बातो को ध्यान म रखकर अभ्यास पुस्तिकाओ का निरीक्षण किया जाय।

(४) अध्यापक को सलाह दें—अध्यापको की भूलो और दोषो को कक्षा मे छात्रो के सामन न बताया जाय। यदि निरीक्षक किसी अध्यापक के शिक्षण मे कुछ दोष पाता है तो अपनी राय लिखकर उस अध्यापक के पास भज द। कक्षा म समस्त छात्रो क समक्ष अध्यापको को डाटना पूणतया अनुचित है।

(५) प्रयोगशालाओं का निरीक्षण—कृषि, चित्रकला तथा विज्ञान आदि

व्यावहारिक विषयों का निरीक्षण तब करें, जब कि छात्र स्वयं कक्षाओं या प्रयोगशालाओं में प्रयोग कर रहे हों। विज्ञान की प्रयोगशाला का निरीक्षण सावधानी से करना चाहिए। प्रयोगशाला पर जितना व्यय दिखाया जाता है, क्या उसमें उतना सामान है, क्या कक्षा के प्रत्येक छात्र को प्रयोग करने का अवसर प्राप्त होता है, आदि आदि बातों को विशेष ध्यान में रखा जाय।

(६) निरीक्षण विस्तारपूर्वक किया जाय—निरीक्षण अत्यन्त विस्तारपूर्वक किया जाय। अध्यापन, पाठ्यक्रम सहगामी क्रिया, खेल-कूद, छात्रावास, पुस्तकालय आदि सब का उचित प्रकार से निरीक्षण किया जाय। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि निरीक्षण केवल धन तथा व्यवस्था से सम्बंधित न होकर विद्यालय के प्रत्येक अंग से सम्बंधित हो।

(७) रचनात्मक दृष्टिकोण—निरीक्षक को अपना दृष्टिकोण सदा आलोचनात्मक नहीं रखना चाहिए। शिक्षकों के जिस कार्य की आलोचना करके उस कार्य को उचित ढंग से करने के लिए उन्हें ठीक सलाह भी दे, उसे अपने विचार रचनात्मक रखने चाहिए न कि ध्वंसात्मक। उसकी आलोचना प्रधान अध्यापक तथा अध्यापकों को प्रेरणा प्रदान करने वाली हो न कि निराशा उत्पन्न करने वाली।

(८) बाह्य आडम्बरों से बचे—प्राय निरीक्षक के आगमन से पूर्व विद्यालयों में बड़े जोर-शोर से सजावट की जाती है। कुछ विद्यालयों में अनाप सनाप धन निरीक्षक के आगमन की तैयारी में व्यय कर दिया जाता है। वास्तव में यह कार्य विद्यालय की दुर्बलताओं को छिपाने के लिए किया जाता है। प्रत्येक निरीक्षक को इस प्रकार के बाह्य आडम्बरों से बचना चाहिए। विद्यालय में निरीक्षक के जाने पर जो व्ययपूर्ण सजावट की जाती है उसे निरीक्षक द्वारा सदा निरुत्साहित किया जाना चाहिए। कभी कभी बिना सूचना दिये भी निरीक्षण किया जाय। इस प्रकार का निरीक्षण विद्यालयों की स्थिति का वास्तविक पता देगा। परन्तु उसे ध्यान रखना चाहिए कि बिना सूचना के जो निरीक्षण किया जाय वह सन्देहयुक्त न होकर आपसी ढंग का मित्रवत हो।

(९) अच्छे कार्य की प्रशंसा—निरीक्षक अच्छे कार्य की सदा प्रशंसा करे। यदि वह किसी विद्यालय में नवीनतम अच्छाई देखता है तो उसे चाहिए कि उस विद्यालय के प्रधान अध्यापक से उनके कार्य की प्रशंसा करे तथा अन्य विद्यालयों को अपनाने की सलाह दे। वास्तव में निरीक्षक के लिए अच्छे कार्य की प्रशंसा करना उतना ही आवश्यक है जितना असंतोषजनक कार्य की निन्दा।

(१०) अभिभावक शिक्षक परिषद् से भेंट—निरीक्षक को अपने को केवल विद्यालय की दीवारों तक ही सीमित नहीं रखना है। उसे सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि विद्यालय का अटूट सम्बन्ध समाज से है। अत निरीक्षण करते समय उसे अभिभावक शिक्षक-परिषद् से भी मिलना चाहिए। वह छात्रों के अभिभावकों के समक्ष विद्यालय की कठिनाइयों तथा समस्याओं को स्पष्ट रूप में रख

सकता है तथा अभिभावक उसमे कहाँ तक योग दे सकते है, उचित सलाह प्रदान कर सकता है। डॉ० एस० एन० मुकर्जी के मतानुसार—"If education to improve, the rank and life of citizen must understand what the schools are doing The inspector should, therefore take appropriate steps to keep the community and truthfully informed about the schools the purpose of proposed reform, and what part the parents should play in modern education

(११) निरीक्षण का मूल्याकन—अन्त मे निरीक्षक को अपने द्वारा किये गए निरीक्षण के प्रभावो का मूल्याकन करना चाहिए। उसे देखना है कि निरीक्षण द्वारा उसे अपने काय मे सफलता प्राप्त हुई अथवा नही। शिक्षको को जो उसने सुझाव दिय हैं क्या उनका पालन होता है, क्या उसके द्वारा प्रदान किय गए सुझाव रचनात्मक हैं, आदि का उसे स्वय आत्म निरीक्षण करना चाहिए। निरीक्षण बिना उद्देश्य, बिना निश्चित योजना के व्यथ है।

निरीक्षण के प्रकार (Types of Inspections)

निरीक्षण के तीन प्रकार होते हैं जिनका उल्लेख हम नीचे करेग

(१) सुधारात्मक (Corrective Type) निरीक्षण—इस प्रकार के निरीक्षण म निरीक्षक अधिकतर त्रुटियो पर ध्यान देता है। वह विद्यालय का समस्त निरीक्षण करने के बाद प्रधान अध्यापक के सामने समस्त दोष तथा बुराइयाँ प्रस्तुत कर देता है।

(२) अवरोधात्मक (Preventive Type) निरीक्षण—इस प्रकार के निरीक्षण म निरीक्षक अध्यापको को हर प्रकार की उचित सलाह प्रदान करता है। वह शिक्षको की प्रत्येक कठिनाइ को समझ कर उन्हे दूर करने का प्रयत्न करता है। वास्तव मे निरीक्षण का यह सफल रूप है।

(३) सृजनात्मक (Creative Type) निरीक्षण—यह निरीक्षण का सबसे उत्तम ढग है। निरीक्षण केवल शिक्षकों को सलाह ही प्रदान नही करता, वरन् आवश्यकता पडने पर स्वय भी सलाह मानता है। इस प्रकार के निरीक्षण म अध्यापक अपने को पूण स्वतन्त्र अनुभव करते हैं। निरीक्षक उनके लिए भय की वस्तु न रहकर प्रेरणा प्रदान करने वाला होता है।

आदर्श निरीक्षक के गुण

Q What are good qualities of a good school inspector ?

प्रश्न—एक अच्छे विद्यालय निरीक्षक के क्या गुण हैं ?

Or

What should be the qualities of a district inspector of schools and should he proceed to discharge his duties ? *(B T 1952)*

एक जिला विद्यालय निरीक्षक के क्या गुण होने चाहिए? उसे अपने कर्तव्यों का कैसे पालन करना चाहिए ?

उत्तर—ऊपर हमने निरीक्षण के सामान्य सिद्धान्तों का उल्लेख किया है। नीचे हम विद्यालय-निरीक्षण में किन किन गुणों का होना आवश्यक है, पर प्रकाश डालेंगे

(१) शैक्षिक योग्यता—निरीक्षण के पद के लिए जिस व्यक्ति को चुना जाय वह विद्वान् तथा उच्च शिक्षा प्राप्त हो। सेकण्डरी एजूकेशन कमीशन' के मतानुसार, निरीक्षक को कम से-कम दस वर्ष का शैक्षिक अनुभव होना चाहिए या वह किसी विद्यालय में कम से कम तीन साल तक प्रधान अध्यापक रह चुका हो।

विद्यालय निरीक्षक को शैक्षिक दृष्टि का होना चाहिए। शिक्षा-दर्शन तथा शिक्षा क्षेत्र में जो नित नये विकास होते रहते हैं, उनका ज्ञान निरीक्षक के लिए परम आवश्यक है। उसे अपने को केवल परीक्षाफल तक ही सीमित नहीं रखना है, वरन् उसे तो प्रत्येक विद्यालय के सर्वांगीण विकास की ओर ध्यान देना है। परीक्षाफल तथा आफिस के कार्य निरीक्षण के अंग हैं, उसे उन्हें ही सब कुछ नहीं मानना चाहिए।

(२) सृजनात्मक विचारधारा—निरीक्षक को केवल आलोचनात्मक विचारधारा का ही नहीं होना चाहिए, वरन् उसे जहाँ तक हो सके अपना दृष्टिकोण रचनात्मक या सृजनात्मक बनाना चाहिए। आलोचना करना कोई बुरी बात नहीं परन्तु आलोचना के साथ साथ सृजनात्मक सुझाव रखना भी आवश्यक है। यदि किसी अध्यापक का शिक्षण दोषपूर्ण है, तो निरीक्षण द्वारा शिक्षक को सुझाव देने चाहिए, इन दोषों को किस प्रकार दूर किया जा सकता है।

(३) उदार विचारधारा—निरीक्षक को उदार विचारधारा का व्यक्ति होना चाहिए। उसे अध्यापकों के साथ उदार व्यवहार करना चाहिए। उन्हें हर प्रकार की प्रेरणा प्रदान करना उसका कर्त्तव्य है। उसे कभी भी नहीं सोचना चाहिए कि उसका पद ऊँचा है अतः शिक्षकों से सम्पर्क बनाये रखना उचित नहीं। आवश्यकतानुसार किसी निर्माण की योजना में प्रधान अध्यापक तथा अध्यापकों का सुझाव लेना शिक्षकों के मन में उसके प्रति आदर का भाव उत्पन्न कर देगा।

(४) पक्षपातहीन—निरीक्षक के लिए पक्षपात-रहित होना परम आवश्यक है। रायबर्न के मतानुसार, 'An inspector should have an open mind and should always be on his guard against the demon of authority which brings him so much temptation' निरीक्षक को अपने पद का ध्यान रखते हुए सदा पक्षपात रहित होकर कार्य करना चाहिए। किसी व्यक्ति के कहने पर या व्यक्तिगत विरोध के कारण उसे किसी अध्यापक के विरुद्ध कारवाई नहीं करनी चाहिए।

(५) प्रयोगात्मक दृष्टिकोण—निरीक्षक को प्रयोगवादी होना चाहिए। विभिन्न विद्यालयों का निरीक्षण करते समय उसे अनेक नवीन बातें ज्ञात होती हैं। उसका कर्त्तव्य है कि वह देखे कि प्रत्येक विद्यालय में जो नवीन योजना अपनाई गई है वह

विद्यालय के लिए वहा तक हितकर है तथा कहाँ तक उसके सफल होने की सम्भावना है। यदि कोई योजना किसी विद्यालय मे सफल होती है तो उसे चाहिए कि उस योजना को अन्य विद्यालयो के प्रधान अध्यापको को भी अपनाने की सलाह दे।

(६) हिसाब-किताब तथा आफिस के कार्य का ज्ञान—निरीक्षक को आफिस तथा हिसाब किताब के काय म निपुण होना चाहिए। अनेक विद्यालयो मे धन का दुरुपयोग किया जाता है। प्रबन्धक तथा प्रधान अध्यापक दोना मिलकर विद्यालय के धन को व्यक्तिगत कार्यो म व्यय कर सकते हैं। अत निरीक्षक को विद्यालय पर व्यय होने वाले धन की जाच सावधानी के साथ करनी चाहिए। उसे यह भी देखना है कि सरकार द्वारा प्रदान की गई सहायता का प्रयोग विद्यालय के हित मे किया जा रहा है अथवा नही। यदि निरीक्षक हिसाव किताव के मामले म निपुण नही होता तो विद्यालय को प्रदान की जाने वाली आर्थिक सहायता का दुरुपयोग की जाने की सम्भावना हो सकती है।

(७) सामाजिकता की भावना—निरीक्षक को यह कभी नही भूलना है कि विद्यालय समाज का अग है। और चूँकि उसका काय विद्यालय से सम्बन्धित है अत वह भी समाज से दूर नहीं जा सकता। उसे विद्यालयो के विषय मे समाज को ज्ञान कराते रहना है। उसे छात्रो के अभिभावको तथा समाज के नागरिको से अपने सम्पर्क जहाँ तक हो सके मधुर बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। डा० एस० एन० मुकर्जी के मतानुसार, "As the educational leader of the district or division, he should strive to secure the co operation of all forces for improvement of the school and should avoid alliances and practices which tend to defeat the accomplishment of that purpose"

(८) सगठन की योग्यता—एक सफल निरीक्षक म सगठन की योग्यता का होना भी परम आवश्यक है। उसे समय पर नगर म गोष्ठिया का आयोजन करना पडता है तथा आवश्यकता पडने पर स्वय भी भाग लेता है। अत उसके लिए आवश्यक है कि वह अपने अन्दर एक अच्छे सगठन कर्त्ता का विकास करे।

(९) आत्मविश्वास की भावना—निरीक्षक को आत्मविश्वासी होना चाहिए। उसका कर्तव्य है कि वह दूसरो के कहन म न आय वरन् वह काय करे जिसको वह अध्यापको के हित के लिए उचित समझता है।

विद्यालय के रजिस्टर तथा उन्नति वृत्तान्त

Q What are the main school records, about which the headmaster to be careful? How far can the staff help him in their maintenance?

(L T 1956)

प्रश्न—विद्यालय के कौन कौन-से मुख्य वृत्तान्त हैं जिनके प्रति प्रधान अध्यापक को सावधान रहना चाहिए? उनके रखने में अध्यापक-मण्डल किस प्रकार सहायक हो सकता है?

उत्तर—विद्यालयों म अनेक छात्र प्रवेश करते हैं, प्रतिवप विद्यालय छोडते है। अनक अध्यापक प्रतिवप विद्यालय म अध्यापन कार्य करन आते हैं, अनेक चले जाते है, विद्यालय पर सरकारी धन व्यय होता है, छात्रो से शुल्क लिया जाता है, आदि अनेक ऐसे काय है जिनका लखा-जोखा करना परम आवश्यक हो जाता है। विद्यालय निरीक्षक कभी भी विद्यालय से सम्बन्धित होने वाले आय व्यय तथा अन्य आवश्यक बातो की जाच कर सकता है। अत विद्यालय की व्यवस्था उचित प्रकार स चलाने के लिए प्रत्येक के काय का विवरण रखना परम आवश्यक है। परिस्थिति के अनुसार हर प्रकार के विवरण को रजिस्टरो म दज किया जाय जिससे आवश्यकता पडने पर प्रत्यक रजिस्टर का देखकर विद्यालय की परिस्थिति ज्ञात हो सके। यदि रजिस्टरो को उचित प्रकार से भरा जाता है ता विद्यालय का प्रत्येक विभाग उचित रीति से अपना काय कर सकता है। दूसरे प्रधान अध्यापक को अध्यापक, छात्र, सरकार तथा समाज आदि सबके साथ सम्ब ध रखना पडता है तथा इन सबके लिए उसे विद्यालय म विवरण रखने की आवश्यकता पडती है। अत प्रधान अध्यापक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह विद्यालय के रजिस्टरो की दखभाल करे तथा दख कि उनम विवरण ठीक प्रकार से भरा जाता है।

प्रधान अध्यापक को निम्नलिखित रजिस्टरो के विषय म पूण जानकारी रखनी चाहिए।

(१) उपस्थिति और शुल्क रजिस्टर—प्रत्येक कक्षा अध्यापक को उपस्थिति तथा शुल्क रजिस्टर सौपा जाता है, जिसम वह अपनी कक्षा के छात्रो की उपस्थिति तथा प्रतिमास के शुल्क का विवरण रखता है। अधिकाशत शुल्क और उपस्थिति का विवरण एक ही रजिस्टर म रखा जाता है। प्रधान अध्यापक को समय समय पर शुल्क तथा उपस्थिति दोनो के विवरणो को सावधानी के साथ देखना चाहिए। उपस्थिति के विवरण म उसे यह दखना है कि क्या उपस्थिति लेत समय ही ठीक प्रकार से भर दी जाती है। कुछ अध्यापक पेन्सिल से निशान बनाकर बाद म हाजिरी लगा दते हैं जो पूणतया अनुचित है। इसी प्रकार शुल्क विवरण की भी समय-समय पर जाँच की जाय। प्रतिमाह प्रधान अध्यापक को शुल्क विवरण की जाँच करनी चाहिए। जो छात्र छुट्टी की अर्जी देते हैं, वे अभिभावको की ओर स लिखी जानी चाहिए। शुल्क का धन कक्षा-अध्यापक को अपन पास नही रखना चाहिए वरन् उसे तुरन्त ही कार्यालय म जाकर जमा कर द। कक्षा अध्यापक को चाहिए कि वह प्रत्येक छात्र को शुल्क की रसीदें उचित ढग स बाट कर दें। उपस्थिति के रजिस्टर म छुट्टियाँ ठीक प्रकार स भरी जायें। उपस्थिति रजिस्टर को कभी भी छात्रो के हाथ म न दिया जाय।

(२) अध्यापक उपस्थिति रजिस्टर—अध्यापकों की प्रतिदिन की उपस्थिति का विवरण इस रजिस्टर म रखा जाता है। अध्यापक किस समय विद्यालय म आते हैं यह पता लगाने के लिए प्रत्येक अध्यापक का अपने हस्ताक्षर के साथ आने का

समय भी लिखना पडता है। जो अध्यापक देर से आते हो, उन्हे प्रधान अध्यापक को चेतावनी देनी चाहिए। अध्यापक ने किस प्रकार से छुट्टिया ली हैं, इस सबका सकेत रजिस्टर म किया जाता है।

(३) वेतन रजिस्टर—विद्यालय म वेतन रजिस्टर का होना परम आवश्यक है। प्रतिमास अध्यापको तथा अन्य कर्मचारियो को जो वेतन प्रदान किया जाता है, उसका विवरण इसम रखा जाय। अध्यापक को वेतन देते समय टिकिट सहित हस्ताक्षर करवाये जायें। प्राविडेन्ट फण्ड आदि के लिए काटी जाने वाली धन की राशि को भी ठीक प्रकार से दिखाया जाय।

(४) प्रवेश तथा वापसी का रजिस्टर—इस रजिस्टर मे विद्यालय मे प्रवेश पाने वाले छात्रो का विवरण रहता है, जिसमे छात्रो का जिस दिन नाम काटा जाता है वह तिथि भी अकित रहती है। जब कोई छात्र विद्यालय छोड जाता है तो इसी रजिस्टर के आधार पर उसे ट्रासफर सार्टीफिकेट (Transfer Certificate) प्रदान किया जाता है। इस रजिस्टर के भरन म सबस वडी सावधानी, छात्रो की जन्मतिथि भरने म की जाय, क्योकि जन्म तिथि देखने के लिए कभी कभी इस रजिस्टर की आवश्यकता पडती है।

(५) आय व्यय रजिस्टर—विद्यालय म होने वाले समस्त आय व्यय का विवरण इस रजिस्टर म लिखा जाता है। भवन की मरम्मत, भवन का किराया, पुस्तको पर किया गया व्यय, डाक-व्यय आदि सबका उल्लेख इसके अन्दर किया जाता है। जिस वस्तु पर धन व्यय किया जाता है, उसकी रसीद इसमे अवश्य दर्ज कर दी जाय।

(६) सम्पत्ति रजिस्टर—विद्यालय की समस्त चल सम्पत्ति का विवरण इस रजिस्टर म दर्ज किया जाता है। मेज, कुर्सी, श्यामपट, अल्मारिया, मानचित्र आदि एक जगह स दूसरी जगह पर ले जाये जा सकते है। अत उनके टूटने फूटने तथा चोरी हो जाने का भय रहता है। अत इस रजिस्टर म प्रत्येक वर्ष खरीदे जाने वाले सामान का ठीक प्रकार से उल्लेख किया जाय तथा प्रत्येक सामान का मूल्य भी ठीक प्रकार मे दर्ज किया जाय। प्रधान अध्यापक को इसकी जाच प्रति वर्ष करनी चाहिए।

(७) पत्र व्यवहार के रजिस्टर—इस रजिस्टर मे विद्यालय से सम्बन्धित आने जाने वाले प्रत्येक पत्र का विवरण लिखा जाता है। अमुक पत्र किस दिन पाया तथा उसका उत्तर किस दिन दिया गया आदि का उल्लेख स्पष्ट रूप से इसमे किया जाय। यदि पत्र-व्यवहार अधिक होता है तो दो रजिस्टर रखे जा सकते हैं। प्रथम जिसम विद्यालय म आने वाले पत्रो का उल्लेख किया जाय। दूसरे म विद्यालय से बाहर भेजे जाने वाले पत्रो का उल्लेख किया जाय। दोनो रजिस्टरो मे पत्र-सख्याओ के लिए अलग से एक खाना रखा जाय।

(८) लाग बुक (Log Book)—प्रत्येक विद्यालय को लाग बुक रख चाहिए। इसके अन्दर शिक्षा विभाग के अधिकारी विद्यालय के प्रति अपनी टि निरीक्षण हे। विद्यालय निरीक्षक भी अपनी रिपोर्ट इसी में दर्ज करता है। सुवि लिए इसमें आँकड़े दर्ज कर दिये जाते हैं जिससे विद्यालय निरीक्षक को वा विवरण प्रस्तुत करने में सरलता रहती है।

(९) आँकड़े का रजिस्टर—इस रजिस्टर में सम्पूर्ण विद्यालय के छात्रों संख्या प्रत्येक वर्ग में छात्रों की संख्या तथा औसत उपस्थिति के आँकड़े रख जाते है। इसमें विद्यालय पर होने वाले अन्य व्यय का भी उल्लेख किया जाता है।

(१०) दर्शकों के विवरण की पुस्तिका (Visitors' Book)—कोई भी विद्यालय में बाहर से आने वाला दर्शक, इस पुस्तिका में विद्यालय के प्रति जो कुछ भी विचार हों उनका उल्लेख करता है। इस पुस्तिका को पढ़कर विद्यालय की प्रगति का पता लगाया जा सकता है।

(११) भत्ता रजिस्टर—इसमें अध्यापकों को प्रदान किए जाने वाले विभि भत्तों का उल्लेख किया जाता है। प्रायः विद्यालयों में गेम सुपरिण्टेण्डेण्ट तथा छात्रावास के सुपरिण्टेण्डेण्ट को अलग से भत्ता दिया जाता है।

(१२) ट्यूशन रजिस्टर—जो अध्यापक प्राइवेट ट्यूशन करते हैं उनका सब विवरण इस रजिस्टर में रखा जाता है। प्रत्येक अध्यापक कितने ट्यूशन करता है तथा प्रत्येक ट्यूशन पर कितना समय दिया जाता है आदि का विस्तृत विवरण रखा जाय। प्रधान अध्यापक को इस बात की सदा सावधानी रखनी चाहिए, कोई भी अध्यापक बिना उसकी आज्ञा के ट्यूशन न करे तथा ट्यूशनों की संख्या दो से अधिक न हो।

(१३) चरित्र रजिस्टर—इस रजिस्टर के अन्दर छात्रों के आचरण का विवरण रखा जाता है।

(१४) दण्ड रजिस्टर—छात्र को जो दण्ड प्रदान किये जाते हैं उनका विवरण इसमें दर्ज किया जाता है। जिस छात्र को दण्ड दिया जाता है उसका नाम, दण्ड का कारण तथा दण्ड के प्रकार आदि सबका विस्तृत उल्लेख इसमें किया जाता है। छात्र पर दण्ड का क्या प्रभाव पड़ा इसका उल्लेख भी इस रजिस्टर में किया जाता है।

(१५) कैश बुक—कैश बुक के अन्दर विद्यालय से सम्बन्धित समस्त रुपये पैसे के मामले को दर्ज किया जाता है। सरकारी अनुदान, छात्रों के शुल्क आदि से जो कुछ भी पैसा प्राप्त होता है वह सब कैश बुक में दर्ज किया जाता है। कैश बुक प्रति दिन सावधानी से भरी जानी चाहिए।

(१६) पुस्तकालय रजिस्टर—विद्यालय-पुस्तकालय में दो रजिस्टर रखे जाते हैं। एक रजिस्टर में पुस्तकों का विवरण होता है जिसमें पुस्तकों के नाम, उनके लेखक का नाम तथा क्रम संख्या दर्ज होती है। दूसरे रजिस्टर में पुस्तकें प्राप्त करने

वाले छात्र के हस्ताक्षर तथा पुस्तक के नाम, पुस्तक प्राप्त करने की तिथि तथा पुस्तक वापस करने की तिथि आदि को दर्ज किया जाता है।

(१७) निरीक्षण पुस्तिकाएँ—प्रत्येक अध्यापक के शिक्षण-कार्य तथा व्यवहार सम्बन्धी अन्य कार्यों का विवरण प्रधान अध्यापक को अपने पास रखना चाहिए। इस कार्य को सुविधाजनक बनाने के लिए प्रत्येक अध्यापक के नाम की निरीक्षण पुस्तिका बना ले। जब कभी वह निरीक्षण पर निकले तो अध्यापक के विषय में अपना मत इस पुस्तिका में लिख दे। इस पुस्तिका द्वारा वह प्रत्येक अध्यापक की स्थिति का अनुमान लगा सकता है।

(१८) छात्रों के प्रगति विवरण—

Q How would you maintain a comprehensive record of students' progress in the school? What use should you make of it deciding the promotion of individual student? (B T 1957)

प्रश्न—विद्यालय में छात्रों की आपेक्षिक प्रगति का विवरण आप कैसे रखेंगे? प्रत्येक छात्र की प्रगति निश्चित करते समय आप इसका किस प्रकार उपयोग करेंगे?

उत्तर—विद्यालय में छात्र की प्रगति किस दिशा में चल रही है, इसका ज्ञान अभिभावकों को कराने के लिए प्रधानाध्यापक को चाहिए कि वह प्रति मास के अन्त में प्रत्येक छात्र का प्रगति विवरण (Progress Report) घर भेजे। प्रगति-विवरण के अन्दर विद्यालय में होने वाली प्रत्येक क्रिया की सूचना तथा मासिक परीक्षाओं का विवरण रहना है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्रगति विवरण के अन्दर केवल छात्र की शैक्षिक प्रगति का ही लेखा जोखा नहीं रहता वरन् उसकी बौद्धिक, शैक्षिक, सामाजिक, चारित्रिक तथा शारीरिक उन्नति का विवरण होता है। यदि प्रगति विवरण प्रति मास न भेजा जा सके तो कम से कम तिमाही अवश्य भेजा जाय। प्रगति विवरण में विद्यालय के समस्त दर्शन तथा जनतन्त्र की झलक हो।

प्रगति विवरण बनाने के निम्न उद्देश्य होते हैं—

(१) प्रगति विवरण द्वारा अभिभावकों को छात्रों की सर्वांगीण उन्नति का पता चलता है। विद्यालयों में छात्रों ने जो उन्नति की तथा उनका अपने गुरुओं के प्रति किस प्रकार का व्यवहार है, आदि का पता प्रगति विवरण द्वारा लगाया जा सकता है।

(२) प्रगति विवरण से शिक्षक छात्रों की व्यक्तिगत कठिनाइयाँ सरलता से समझ सकते हैं तथा उनको दूर कर छात्र के सर्वांगीण विकास में अपना योग प्रदान कर सकते हैं।

(३) प्रगति विवरण द्वारा छात्र भी अपनी दुर्बलता समझ लेते हैं। उन्हें अपना विवरण देखकर ज्ञात हो जाता है कि वे किस विषय में कमजोर हैं तथा किस विषय में वह आगे चलकर विशेषज्ञ हो सकते हैं।

(४) प्रगति-विवरण से शिक्षक तथा अभिभावकों के सम्पर्क में मधुरता आती है तथा विद्यालय और समाज दोनों एक-दूसरे के निकट आते हैं।

(५) प्रगति विवरण द्वारा प्रधान अध्यापक अपने शिक्षकों की कार्य कुशलता का पता लगा सकता है। प्रधान अध्यापक को प्रत्येक मास के हर कक्षा के प्रगति विवरण पर हस्ताक्षर करते समय सावधानी के साथ देखना चाहिए। प्रगति विवरण द्वारा सरलता से पता लग जायेगा कि अमुक अध्यापक उस विषय के छात्रों को ठीक प्रकार से नहीं पढाता। दूसरे मास ही प्रधान अध्यापक उस अध्यापक को चेतावनी दे सकता है।

ऊपर हमने प्रगति विवरण के लाभों का वर्णन किया। जो अध्यापक छात्रों के प्रगति विवरण बनाता है उसे छात्रों की शारीरिक उन्नति तथा व्यवहार आदि का भी उल्लेख करना चाहिए। प्रगति विवरण में एक खाना स्वास्थ्य का भी होना चाहिए जिसमे छात्र का प्रति मास का वजन दर्ज किया जाय। अन्य खाने छात्र के व्यवहार तथा उपस्थिति आदि के हों।

प्रगति विवरण प्रति मास छात्रों के अभिभावकों के पास भेजा जाय। अभिभावक उस पर हस्ताक्षर करके तीन दिन के अन्दर वापस कर दें। अभिभावक के पास जाने से पूर्व प्रगति विवरण पर प्रधान अध्यापक के हस्ताक्षर अवश्य होने चाहिए। कक्षा-अध्यापक को अभिभावकों के हस्ताक्षर सावधानी से देखने चाहिए। कभी कभी छात्र अपने अभिभावकों के हस्ताक्षर बना कर ले आते हैं। ऐसे छात्र को कठोर से कठोर दण्ड प्रदान किया जाय। रायबर्न के अनुसार—'जिन छात्रों का कार्य असंतोषजनक होता है उनके लिए साप्ताहिक विवरण रखा जाय और तब तक छात्र अपना कार्य ठीक प्रकार से करने न लायें तब तक ये विवरण चलते रहें।'

२२

विद्यालय की परीक्षाएँ

EXAMINATIONS

Q "The examination system is a good servant and a bad master" Discuss this statement, and give your suggestion for improvement if any (A U 1952, 1953)

प्रश्न—"परीक्षा प्रणाली एक अच्छी सेविका है और बुरी स्वामिनि" इस कथन को स्पष्ट करो तथा सुझाव दो।

Or

Describe the function of the public and home examination in a school Suggest methods for improving the later (A U 1951)

सार्वजनिक तथा गृह परीक्षा के उद्देश्यों को स्पष्ट करो। उनमें सुधार के सुझाव भी दो।

उत्तर—शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षा का अत्यधिक महत्त्व है। यद्यपि पाठशाला प्रबन्ध में अनेक विषय हैं, परन्तु उनमें सबसे प्रमुख परीक्षा है जिसके द्वारा विद्यालय की उन्नति या अवनति का पता लगाया जा सकता है। अभिभावक, छात्र, शिक्षा-विभाग आदि सभी परीक्षाओं को प्रमुखता प्रदान करते हैं। परीक्षाओं के आधार पर ही सरकारी तथा गैर सरकारी नौकरियाँ प्रदान की जाती हैं। वर्तमान काल में परीक्षाओं का महत्त्व बढ़ जाने से अधिकांश विद्यालयों ने परीक्षा को ही अपना ध्येय बना लिया है। परीक्षा विद्यालयों का ध्येय हो जाने से शिक्षा के महानतम उद्देश्यों को भुला दिया जाता है। यद्यपि परीक्षा को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है, परन्तु साथ ही साथ शिक्षा शास्त्रियों द्वारा परीक्षा प्रणाली की कटु आलोचना भी होती रहती है। यहाँ पर हम परीक्षा प्रणाली के पक्ष तथा विपक्ष दोनों पर विचार करेंगे।

परीक्षा प्रणाली की आवश्यकता

(१) छात्रों की प्रगति का ज्ञान—छात्रों ने अपने अध्ययन-काल में किस सीमा तक उन्नति का है, इसकी जाँच शिक्षक तथा अभिभावक दोनों के लिए आवश्यक है।

परीक्षा ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा छात्रों की प्रगति का पता लगाया जा सकता है। शिक्षा द्वारा छात्रों का मानसिक विकास होता है, परन्तु वह किस सीमा तक हुआ यह ज्ञात करने के लिए हम परीक्षा प्रणाली की ही शरण लेते हैं। परीक्षा के बिना शिक्षक तथा अभिभावक दोनों ही अन्धकार में रहेंगे।[1]

(२) अध्ययन के लिए प्रोत्साहन मिलता है—परीक्षा छात्रों को अध्ययन करने के लिए उत्साहित करती है। छात्र एक निश्चित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अधिक से अधिक परिश्रम करते हैं। जो छात्र अच्छे अंक प्राप्त करते हैं, वे भविष्य में और भी अधिक परिश्रम करते हैं तथा जो असफल हो जाते हैं, वे अपनी कमी को दूर करने का प्रयास करते हैं।

(३) अध्यापक की कार्य कुशलता का मापदण्ड—परीक्षा द्वारा अध्यापक की कार्य कुशलता का पता चलता है। यदि अध्यापक कक्षा में मन लगाकर तथा शिक्षण की विधियों का भली प्रकार प्रयोग करके पढ़ाता है तो उस कक्षा का परीक्षाफल निश्चित ही अच्छा होगा। अध्यापक द्वारा किये गये परिश्रम का पता परीक्षाफल से हम सरलता के साथ लगा सकते हैं। जो अध्यापक कक्षा में उचित रीति से नहीं पढ़ाते उनका परीक्षाफल अत्यन्त गिर जाता है। परीक्षाफल से अध्यापक अपने शिक्षण को भी सुधार सकता है क्योंकि उसे ज्ञात हो जाता है कि कहाँ पर उसके कार्यों में कमी रह गई है जिसके परिणामस्वरूप परीक्षाफल कम रहा।

(४) वर्गीकरण में सफलता—परीक्षाफल द्वारा हम छात्रों का वर्गीकरण सरलता से कर सकते हैं। किस बालक को किस कक्षा में रखा जाय तथा किस बालक की बुद्धि मन्द है किसकी तीव्र है आदि का निर्णय बिना परीक्षा के नहीं हो सकता। परीक्षा छात्रों की रुचि का भी पता देती है कि अमुक छात्र किस विषय में विशेष योग्यता रखता है तथा भविष्य में चलकर वह किस विषय में ठीक [illegible] कर सकेगा आदि सबका निर्णय करने के लिए हम परीक्षा का ही सहारा लेते हैं।

(५) शिक्षा के सामान्य स्तर की स्थापना—बाह्य परीक्षाओं (External examinations) से शिक्षा का सामान्य स्तर स्थापित हो जाता है, जिससे नौकरी के लिए नियुक्ति तथा चुनाव करने में आसानी हो जाती है।

(६) पाठों की पुनरावृत्ति—परीक्षायें छात्रों को अपने पाठ को दुहराने का अभ्यास कराती हैं। यदि परीक्षायें नहीं हों तो सम्भवतः छात्र अपने पाठ को [illegible]

---

[1] The subject of examination and evaluation occupies an important place in the field of education. It is necessary for parents and teachers to know from time to time how the students progress and what their attainments are at each stage.

—Report of the Secondary Education Commission

_हराव ही नहीं। इस प्रकार की परीक्षा द्वारा छात्र अपने पढ़े हुए पाठ का मस्तिष्क
मे दृढ करने का प्रयत्न करते है।

(७) सम्पूर्ण विद्यालय के स्तर का ज्ञान—परीक्षा छात्रो तथा अध्यापको के स्तर को ही नही बताती वरन् उनसे हम सम्पूर्ण विद्यालय के स्तर का ज्ञान हो सकता है। वास्तव मे किसी विद्यालय के स्तर की सूचना समाज को विद्यालय के परीक्षाफल द्वारा हो जाती है।

(८) उच्च पद तथा छात्रवृत्तियो के निर्णय मे सहायक—उच्च पद प्रदान करने तथा छात्रो को वजीफे आदि प्रदान करने मे परीक्षाएँ सहायक होती है। बिना परीक्षा लिए यह निर्णय करना कठिन है कि कौन व्यक्ति किस पद के लिए उपयुक्त है। इसी प्रकार वजीफे भी किन किन छात्रो को प्रदान किये जायें इसका निर्णय भी परीक्षाओ द्वारा ही सम्भव है। भारत सरकार ने भी ऊँचे पदो के लिए नियुक्त करने का साधन परीक्षा ही रखा है।

वर्तमान परीक्षा प्रणाली

हमारे देश के अधिकाश विद्यालयो मे मुख्यतया दो तथा कही कही पर तीन—त्रैमासिक, अर्धवार्षिक तथा वार्षिक परीक्षाएँ होती है। प्रत्येक विषय मे छात्र को कम से कम ३३% अक प्राप्त करने होते है। कुल योग भी अधिकाशत ३३% रखा जाता है। कही कही पर प्रतिशत की मात्रा मे अन्तर रखा जाता है। बाह्य (External) तथा आतरिक (Internal) परीक्षाएँ भी होती है। आतरिक परीक्षाएँ साधारणतया कक्षा ६ या ७ तक होती है। जो छात्र निश्चित किये गये मापदण्ड को पार कर सकते है वे दूसरी कक्षा मे चढा दिये जाते है। शेष को पुन परीक्षा मे बैठना पडता है।

परीक्षा प्रणाली के दोष

ऊपर हमने परीक्षा प्रणाली के महत्त्व तथा लाभो पर प्रकाश डाला। परन्तु आजकल परीक्षा शिक्षा का साधन न बनकर उद्देश्य बन गई है, इस कारण उसमे अनेक दोष उत्पन्न हो गए है। नीचे हम दोषो का वर्णन करेंगे—

(१) सम्पूर्ण प्रगति की जांच नहीं होती—छात्र ने किस सीमा तक प्रगति की इस बात का पूर्ण पता परीक्षाओ द्वारा नही लगाया जा सकता। परीक्षाएँ केवल पुस्तकीय ज्ञान का मानदण्ड स्थिर करती है। छात्र का शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक विकास किस सीमा तक हुआ है इसका पता परीक्षा द्वारा नहीं लगाया जा सकता।

(२) भाग्यवादी बनाती है—परीक्षाएँ छात्रो को भाग्यवादी बनाती हैं। एक छात्र वर्ष भर कुछ नही पढ़ता परन्तु परीक्षा के दिनो मे वह मुख्य पाठ याद कर लेता है, यदि वह ही परीक्षा मे आ गया तो वह सरलता से पास हो जाता है। इसके विपरीत एक छात्र वर्ष भर मेहनत करता है और परीक्षा की रात को वह पाठ नही देख पाता तो उसका वर्ष भर का प्रयास बेकार हो जाता है। इस प्र

के कारण छात्र कुछ चुने हुए प्रश्न रट कर परीक्षा में पास होने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार की प्रवृत्ति ने छात्रों को आलसी बना दिया है वे पुस्तक को पूर्ण रूप से हृदयङ्गम करने के बजाय केवल परीक्षा में आने वाले पाठ को ही रट लेते हैं।

(३) **शिक्षा का उद्देश्य परीक्षा हो गई है**—वास्तव में परीक्षा शिक्षा का साधन है न कि साध्य। परन्तु वर्तमान काल में परीक्षा को ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मान लिया गया है। छात्र तथा शिक्षक दोनों ही परीक्षा में पास होने का उद्देश्य लेकर पढ़ते पढ़ाते है। दोनों ही का मुख्य ध्यान परीक्षा में रहता है, जिसके लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देते हैं। इस प्रकार शिक्षा के महानतम उद्देश्यों को त्याग कर परीक्षा पास करना ही उद्देश्य रह जाता है। छात्र के सर्वांगीण विकास के लिए किसी भी प्रकार का प्रयत्न नहीं किया जाता। कुछ विद्यालय परीक्षा पास कराने के उद्देश्य से ही खोले जाते है।

(४) **शिक्षण का स्तर गिरता है**—परीक्षाएँ अध्यापकों के शिक्षण स्तर को गिराती हैं। अध्यापक अध्यापन विधियों को त्याग कर परीक्षा में आने वाले मुख्य मुख्य प्रश्नों को लिखाकर रटा देते हैं। छात्रों को ठीक प्रकार से समझ में आया या नहीं इसका कोई ध्यान नहीं करता।[1]

(५) **ज्ञान का ठीक पता नहीं लगता**—परीक्षा में प्रश्न भी छात्रों की मानसिक तथा बौद्धिक शक्ति का पता न लगा कर केवल पुस्तकीय ज्ञान का पता लगाते है। दूसरे जो कापियां परीक्षकों द्वारा जांची जाती है, उनमें अंक प्रदान करने में परीक्षक की व्यक्तिगत भावनाओं का बहुत बड़ा हाथ होता है। इतिहास के एक प्रश्न में किसी अध्यापक द्वारा यदि दस में से पाँच अंक प्रदान किये जाते हैं तो दूसरे अध्यापक द्वारा उसी प्रश्न में केवल तीन अंक भी प्रदान किये जा सकते हैं।

(६) **छात्रों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव**—परीक्षाएँ छात्रों के स्वास्थ्य पर भी प्रभाव डालती है। वे वर्ष के मध्य तक पुस्तकों से हाथ नहीं लगाते, परन्तु अन्त में जब कि परीक्षा बिल्कुल निकट आ जाती है, तब वे पढ़ने लिखने में दिन रात एक कर देते है। रात रात भर जगकर पढ़ने से उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(७) **अनैतिक साधनों का प्रयोग**—परीक्षा ही छात्रों के लिए सब कुछ हो जाने के कारण वे उचित तथा अनुचित का ध्यान न करके परीक्षा देते समय अनैतिक

---

1 The dead weight of the examination has tended, to curb the teacher's initiative stereotype the curriculum, to promote mechanical and lifeless methods of teaching to discourage all spirit of experimentation and to place the wrong or unimportant things in education

—*Report of the Secondary Education Commission*

साधनों का प्रयोग करते है। नकल करना छात्र अपना धर्म समझते है, उनके इन कार्य मे बाधा डालने पर वे लडने मरने पर भी उतारू हो जाते हैं।

(८) निराशा को जन्म देती हैं—एक छात्र वर्ष भर परिश्रम करता है। दुर्भाग्यवश यदि वह असफल हो जाता है, तो उसके मस्तिष्क पर संवेगात्मक धक्का लगता है, वह जीवन के प्रति निराश हो जाता है। अनेक छात्रा द्वारा परीक्षा मे असफल होने पर आत्म हत्या करने के समाचार मिलते हैं। इस प्रकार की दुर्घटनाओं का प्रमुख कारण परीक्षाएँ ही है।

(९) अध्यापक के लिए असुविधाजनक—परीक्षाएँ अध्यापकों को परेशानी में डालती है। जब किसी छात्र का कोई प्रश्न-पत्र बिगड जाता है, तो छात्र परीक्षक का पता लगा कर उस पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव डालने का प्रयत्न करते है। नम्बर बढ़वाने के लिए रुपए पैसे का लालच दिया जाता है, ऐसे अवसर पर परीक्षक के सामने समस्याएँ खडी हो जाती हैं।

परीक्षा प्रणाली में सुधार के उपाय

परीक्षा प्रणाली मे चाहे कितने भी दोष क्यो न हों, परन्तु उसे हमें आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार करना होगा, क्योंकि छात्रों की प्रगति का पता लगाने का हमारे पास और कोई अन्य उपाय नही है। इस कारण परीक्षा प्रणाली दोषपूर्ण होते हुए भी त्याज्य नही है। हम परीक्षा प्रणाली को प्रभावशाली बनाने के लिए उसके दोषों का निराकरण करना होगा। नीचे हम परीक्षा प्रणाली के सुधार के उपायो का उल्लेख करेंगे—

(१) परीक्षा को शिक्षा का उद्देश्य न मानकर केवल साधन माना जाय। यदि परीक्षा को हम स्वामी मान बैठेंगे तो उसका आधिपत्य छात्रों के सम्पूर्ण जीवन पर हो जायगा। इस कारण परीक्षा को केवल दासी के रूप में ही स्वीकार किया जाय जैसा रेन (Wren) ने परीक्षा के विषय में लिखा है—

"The examination system is a good servant and a bad master, and devolves here upon the headmaster to see that it is kept as a servant' प्रधान अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह सावधानी से इस बात का निरीक्षण करे कि वहा विद्यालय में शिक्षा प्रदान करने का उद्देश्य केवल परीक्षा पास करना तो नहीं रह गया है।

(२) प्रश्न पत्रों में सुधार की आवश्यकता है। अधिकांशतः प्रति वर्ष एक ही प्रकार के प्रश्न आया करते है जो कि छात्रों की रटने की शक्ति का पता लगाते हैं न कि तार्किक शक्ति का। विद्यार्थी चार या पाँच वर्ष के प्रश्न पत्रों मे से कुछ प्रश्नों को छाँट कर उनके उत्तर रट लेते हैं, परीक्षा में जाकर ज्यों-का-त्यों उगल देते हैं। इस प्रकार के दोषों को दूर करने के लिए प्रश्न-पत्र इस प्रकार के बनाये जाय, जिनसे यह ज्ञात हो कि छात्र ने विषय को कहा तक समझा है। सेकण्डरी एजूकेशन कमीशन के मतानुसार—"The type of questions should be thoroughly

changed They should be such as to discourage cramming and encourage intelligent understanding They should not deal with details but should concern themselves with a rational understanding of a problem and a general mastery of the subject matter प्रश्न चक्कर म डालन वाले भी न हो, जहा तक हो सके प्रश्न इस ढग स पूछ जाय जिनसे छात्रा की तार्किक शक्तियो का तथा विचार प्रधानता का पता लग सके।

(३) वाह्य परीक्षाएँ अधिक न ली जायें। वाह्य परीक्षाए छात्र की समस्त प्रगति का पता नही लगा सकती। इस कारण वाह्य परीक्षाओ को अधिक महत्व न दिया जाय।

(४) वतमान प्रश्न पत्रा म प्रश्न इस ढग से दिये जाते है कि जिनका उत्तर लेख के रूप म देना पडता है। यह सत्य है कि इस प्रकार क प्रश्न (निबन्धात्मक) छात्रा की भाव प्रकाशन शैली का विकास करते है, परन्तु इनसे छात्रा की समस्त योग्यता की जाच करना अत्य त कठिन है। इस कारण निब धात्मक प्रश्ना क साथ साथ कुछ नवीन प्रकार के प्रश्न (New Type Tests) तथा परीक्षाए भी ली जाय। इस नूतन प्रकार की परीक्षा प्रणाली म आब्जेक्टिव टेस्टस (Objective Tests) बुद्धि परीक्षा (Intelligent Tests) तथा अर्जित ज्ञान परीक्षा (Achievement Tests) आदि को भी सम्मिलित किया जाय।

(५) वाह्य परीक्षाओ म भी सुधार की आवश्यकता है। बाह्य परीक्षा क परिणामो की पूर्ति करन वाल आ तरिक प्रगति सम्बन्धी रिकार्ड भी हो। केवल बाह्य परीक्षा को ही छात्र की प्रगति का मानदण्ड न माना जाय, उसके साथ आन्तरिक प्रगति का भी महत्व दिया जाय।

(६) आन्तरिक परीक्षाओ म भी परिवतन करन की आवश्यकता है। वार्षिक परीक्षाओ को अत्यधिक महत्त्व न दिया जाय। प्रति मास छात्रो की परीक्षा ली जाय और उसी क अनुसार उन्ह सालाना तरक्की प्रदान की जाय। मासिक परीक्षा या साप्ताहिक परीक्षा का सबस अधिक लाभ यह होता है कि छात्र पढने लिखन क प्रति सजग रहते है। सकण्डरी एजूकेशन कमीशन क अनुसार—'The emphasis on all important annual examination should depend not only on the result of the annual final examination but also on the results of periodic tests and the progress shown in the school record' जो सुझाव बाह्य परीक्षाओ क लिए बताए गए हैं व ही आन्तरिक परीक्षा क लिए भी लागू हो सकते हैं।

(७) छात्रा क ज्ञान की अधिक-स अधिक जाच करन क लिए लिखित परीक्षा क साथ साथ मौखिक परीक्षा भी हो। लिखित परीक्षा म केवल रटने की जाच होती है जब कि मौखिक परीक्षा (Viva voce) म छात्र की वाक् शक्ति, उच्चारण की शैली आदि का भी पता लगता है।

(८) परीक्षकों की नियुक्ति भी ध्यान से करनी चाहिए। जो अध्यापक जिस विषय का गहन ज्ञान रखते हों उन्हें उसी विषय का परीक्षक बनाया जाय। हाईस्कूल की परीक्षा के लिए परीक्षक हाईस्कूल के अध्यापक ही नियुक्त किए जायें तो अच्छा है, विश्वविद्यालय के प्रोफेसर हाईस्कूल के छात्रों के साथ न्याय नहीं कर सकते क्योंकि उन्हें छात्रों के मानसिक स्तर का ज्ञान नहीं होता।

(९) शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य छात्रों का सर्वांगीण विकास करना है। अतः छात्र द्वारा किये गए वर्ष भर के कार्यों का विद्यालय में लेखा (School record) होना चाहिए। समय समय पर विभिन्न क्षेत्रों में किये गए कार्यों की प्रगति, व्यवहार तथा उसके बौद्धिक भुकाव आदि का पूर्ण विवरण रिकार्ड में प्रतिवर्ष भर दिया जाय। छात्रों को प्रमाण-पत्र प्रदान करते समय विद्यालय के रिकार्डों के विवरण का भी उचित प्रयोग किया जाय।

(१०) परीक्षा को भय की वस्तु न बनाया जाय। जहाँ तक हो सके परीक्षा स्वाभाविक वातावरण में ही ली जाय, छात्र परीक्षा को दैनिक कार्य-क्रम से अलग न समझें। अधिकांश अध्यापक छात्रों की परीक्षा के प्रति भय उत्पन्न कर देते हैं, यह पूर्णतया अनुचित है। यदि सप्ताह में तथा माह में एक बार परीक्षा हो जायगी, तब छात्रों के लिए वह भयप्रद न होगी जब कि वर्ष में लेने पर उन्हें उसके प्रति भय उत्पन्न हो सकता है।

ऊपर हमने परीक्षा प्रणाली में सुधार करने के कुछ सुझाव रखे। यदि ये सुझाव किसी सीमा तक व्यवहार में लाए जायें तो किसी सीमा तक परीक्षा प्रणाली के दोषों को दूर किया जा सकता है। परन्तु पुनः हम इस बात पर बल देंगे कि छात्र की समस्त प्रगति का पता उसको पढ़ाने वाले अध्यापक को ही रहता है, इस कारण अध्यापक द्वारा भरे गये वर्ष भर के रिकार्ड को अवश्य महत्व प्रदान किया जाय।

२३

छात्रावास

HOSTEL

Q How would you regulate the life of a boarder during his stay in the hostel ? Give a detailed plan (Agra, B T 1954)

प्रश्न—आप छात्रावास में रहने वाले छात्रों का जीवन किस प्रकार नियमित करेंगे ? विस्तृत योजना दो।

Or

If you are appointed the warden of hostel how would you set about organising the life of resident boys and girls of secure a balanced routine in which studies, rest, recreation, sleep, physical exercise, co curricular activities and hobbies may find their proper place ? (A U 1958)

यदि आप छात्रावास के वार्डन बना दिये जाय तो आप वहाँ के छात्र तथा छात्राओं के जीवन को किस प्रकार नियमित बनायेंगे कि जिससे उनके अध्ययन आराम, निद्रा, मनोरंजन, पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं तथा प्रिय व्यापारों को उचित समय मिल सके।

उत्तर—

छात्रावास की आवश्यकता तथा महत्त्व

(१) विद्यालय में छात्रावास का होना परम आवश्यक है। स्कूल में पढ़ने के लिए अनेक छात्र आते हैं जिनमें कुछ तो विद्यालय के निकट ही रहते हैं तथा कुछ को बहुत दूर से आना पड़ता है यहाँ तक कि नगर के बाहर गाँव आदि से भी। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि विद्यालय दूर से अध्ययन करने हेतु आने वाले छात्रों के निवास का प्रबन्ध करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए छात्रावास की आवश्यकता पड़ती है।

(२) छात्रावास केवल उन छात्रों के लिए ही लाभदायक नहीं है जो कि दूर के गाँवों से आते हैं वरन् विद्यालय के निकट रहने वाले उन छात्रों के लिए भी लाभदायक

: जिनके घर में पठन पाठन की विशेष सुविधाएँ निधनता तथा स्थान की कमी के ारण उपलब्ध नही हो पाती।

(३) नगरो की घनी बस्ती म स्थान की सदा कमी रहती है। अधिकाश छात्रो के पास अध्ययन करने के लिए अलग कमरा नही होता इस कारण उनके पढन लिखने म असुविधा रहती है। दूसरे मोहल्ले तथा गन्दी गलियो का वातावरण इतना दूषित होता है, कि छात्रो पर उसका दूषित प्रभाव पडता है और उनके गुम राह होने की सम्भावना रहती है। इन सब बुराइयो से बचने के लिए छात्रावास सबस अधिक उपयुक्त स्थल है जहाँ पर छात्र बिना किसी बाधा के अध्ययन कर सकते है। छात्रावास का वातावरण नगर के दूषित वातावरण से दूर स्वास्थ्यप्रद होता है वहाँ छात्र खुले मैदान म खेल कूद सकते है तथा नियमित जीवन व्यतीत करके अपने चरित्र को दृढ कर सकते हैं।

(४) छात्रावास म विद्यार्थी एक साथ रह कर एक दूसरे के सुख-दुख मे हाथ बटा कर, सामूहिकता तथा सहयोग की भावना का विकास करते हैं। वे एक साथ उठते हैं, एक साथ खाते हैं तथा एक साथ खेलते हैं अत उनम अनुशासन की भावना का उदय स्वत हो जाता है।

(५) छात्रावास मे रहने से छात्र स्वावलम्बी बनते हैं क्योकि अधिकाश काय उन्हे स्वय करने पडते हैं। परन्तु छात्रावास विद्यार्थियो के लिए तभी लाभदायक सिद्ध हो सकता है जब कि छात्रालय प्रबन्धक (सुपरिण्टेण्डण्ट) छात्रो के साथ पुत्रवत् व्यवहार करे। दूसरे शब्दो म छात्रावास की सफलता बहुत कुछ छात्रालयाध्यक्ष के ऊपर है।

छात्रालयाध्यक्ष (Hostel Snperintendent)

छात्रावास के वाडन का पद अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण है। उसके व्यक्तित्व तथा चरित्र का प्रभाव छात्रो पर और अध्यापको की अपेक्षा अधिक सरलता के साथ पडता है, क्योकि उसका अधिकाश समय छात्रो के साथ व्यतीत होता है। इस कारण प्रधान अध्यापक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि छात्रावास के वाडन का चुनाव अत्यन्त सावधानी के साथ करें। अधिकाश विद्यालयो म अध्यापको मे से ही किसी एक अध्यापक को वाडन बना दिया जाता है। छात्रो की सख्या यदि छात्रावास म अधिक नही है तो इस प्रकार वाडन का चुना जाना किसी सीमा तक उचित है परन्तु जब छात्रो की सख्या अधिक हो जाती है तो छात्रावास के लिए पूरे समय का एक प्रबन्धकर्त्ता या वाडन नियुक्त होना चाहिए। परन्तु अधिक कठिनाइयो के कारण अलग से वाडन नियुक्त बहुत कम विद्यालयो म किये जाते है। साधारणतया विद्यालय के अध्यापको से ही काम चलाना पडता है। यदि अध्यापको मे से किसी एक को वाडन का पद प्रदान किया जाता है, तो यह आवश्यक है कि उसे अतिरिक्त वेतन भी मिले। वाडन का निवास स्थान छात्रावास से सम्बन्धित होना चाहिए। यदि वह छात्रावास से दूर रहेगा तो उचित प्रकार से छात्रावास म रहने वाले छात्रों

रेख नहीं कर सकेगा। अत वार्डन का छात्रावास के निकट रहना परम आवश्यक हो जाता है।

छात्रालयाध्यक्ष के गुण

प्रधान अध्यापक को छात्रालयाध्यक्ष या वार्डन की नियुक्ति अत्यन्त सोच समझ कर करनी चाहिए। हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं कि छात्रावास के प्रबन्ध का सम्पूर्ण भार वार्डन के हाथ में होता है। यदि असावधानी से किसी अयोग्य व्यक्ति को वार्डन के पद पर नियुक्त कर दिया गया तो छात्रावास के प्रबन्ध में सकट उत्पन्न हो जायेंगे तथा छात्रों का जीवन भी गलत मार्ग पर चला जायगा। ऐसी दशा में छात्रों तथा वार्डन के मध्य तनाव भी उत्पन्न हो सकता है जिससे छात्रों के अध्ययन में बाधा आ सकती है।

छात्रालयाध्यक्ष को चुनते समय प्रधान अध्यापक को सबसे पहले यह देखना है कि क्या वह व्यक्ति दृढ चरित्र का है। छात्रालयाध्यक्ष को अपना अधिकांश समय छात्रों के साथ व्यतीत करना पड़ता है, अत उसके सम्पर्क में आने वाले छात्र उससे अवश्य ही प्रभावित होंगे। यदि छात्रालयाध्यक्ष उत्तम चरित्र का होगा तो छात्रों पर उसका प्रभाव भी अच्छा पड़ेगा। इसके विपरीत चरित्रहीन छात्रालयाध्यक्ष छात्रों को गलत मार्ग पर चलने की प्रेरणा देगा। छात्रालयाध्यक्ष को सादा जीवन तथा उच्च विचारों वाला होना चाहिए। धूम्रपान आदि वासनाओं से उसे दूर रहना चाहिए।

छात्रावास में विद्यार्थी अपने माता पिता से दूर रहते हैं। उन्हें केवल छुट्टियों में ही अपने माता पिता से मिलने का अवसर प्राप्त होता है। अत छात्रालयाध्यक्ष को उनके साथ इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए जिस प्रकार पिता अपने पुत्र के साथ करता है। वास्तव में छात्रालयाध्यक्ष उनके पिता के स्थान पर होता है। इस कारण उसे छात्रों के साथ वात्सल्य भाव प्रदर्शित करना चाहिए। वह बालकों से प्रेम करे तथा अपने स्वभाव को सदा उदार बनाये रखे।

छात्रावास की उचित प्रकार से व्यवस्था चलाने के लिए छात्रालयाध्यक्ष को कुशल प्रबन्धकर्त्ता होना परम आवश्यक है। प्रधान अध्यापक को योग्य तथा अनुभवी व्यक्ति को ही इस पद के लिए नियुक्त करना चाहिए। छात्रावास में अनेक विभाग हैं जिनके लिए कुशल सगठन तथा उचित प्रबन्ध की आवश्यकता होती है।

उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त छात्रालयाध्यक्ष को न्यायप्रिय तथा समानता का व्यवहार करने वाला होना चाहिए। उसे समस्त छात्रों के साथ एक सा व्यवहार करना चाहिए। छात्रावास में विभिन्न सम्प्रदाय तथा जाति के छात्र आते हैं। अत छात्रालयाध्यक्ष को बिना किसी भेद भाव के सबको समान स्नेह दान करना चाहिए। उसे चाहिए कि वह छात्रों के साथ इस प्रकार का व्यवहार करे कि कोई छात्र उसके विरुद्ध उसके मरने पर भी शिकायत न कर सके। वार्डन को इस बात का ध्यान

रखना है कि उसका काय केवल छात्रो की दग रेख करना ही नही है वरन् प्रेम, स्नेह तथा न्याय प्रदान करना भी है।

छात्रालयाध्यक्ष के कत्तव्य

(१) प्रजातन्त्रात्मक भावना को महत्त्व देना—छात्रालयाध्यक्ष को यह कभी नही भूलना चाहिए कि उसे छात्रावास मे इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न करना है जिससे छात्र जनतन्त्रात्मक प्रणाली को ठीक प्रकार से समझ सके तथा भविष्य म उसे व्यवहार मे ला सके। उसे उनके साथ एक तानाशाह के समान व्यवहार नही करना चाहिए। छात्रालय का प्रब ध विद्यार्थियो की सहायता स चलाया जाय, जिससे व अपने अन्दर आत्म निभरता का अनुभव कर सके। जिस प्रकार विद्यालय मे स्व शासन परम आवश्यक है उसी प्रकार छात्रालय के जीवन को सहयोगपूण बनाने के लिए प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली को अपनाना भी आवश्यक हो जाता है। छात्रो मे प्रजातन्त्रात्मक भावना का विकास करने के लिए कुछ समितियो का निर्माण कर दिया जाय। प्रत्यक समिति के एक या दो सदस्य हो जिनकी नियुक्ति चुनाव द्वारा की जाय तो अच्छा है। समितियाँ आवश्यकतानुसार बनाई जा सकती है, उदाहरण क लिए—खेल कूद समिति, साहित्यिक समिति, स्वास्थ्य सफाई समिति तथा अनुशासन समिति आदि आदि। इन समितियों को अपन क्षेत्र म काय करने की पूण स्वतन्त्रता प्रदान की जाय पर न्तु समय समय पर वाडन प्रत्यक समिति के सदस्यो को आवश्यकतानुसार सलाह प्रदान करे, तथा उनके दोषो को दूर करन का प्रयत्न करता रहे।

(२) नियमों का निर्माण—छात्रावास के छात्र नियमित जीवन व्यतीत करे तथा नगर के दूषित वातावरण से अपने को बचाय रखें, इसके लिए छात्रालयाध्यक्ष को चाहिए कि वह छात्रावास के लिए कुछ निश्चित नियम बना द। जो छात्र नियमो को भग कर, उन्हे उचित दण्ड प्रदान किया जाय। नियम अधिक न हो, वे अच्छी तरह सोच समझ कर बनाय जायें। नीचे लिखे नियमो पर विशेष बल दिया जाय—

१—स्कूल की पढ़ाई के समय कोई भी विद्यार्थी छात्रावास मे नही रहेगा (बीमारी की दशा को छोडकर)।

२—छात्रावास मे कोई भी विद्यार्थी धूम्रपान नही करेगा।

३—कोई भी छात्र बिना वाडन की आज्ञा के छात्रालय से बाहर नही जा सकता।

४—छात्रावास म बाहर का कोई भी व्यक्ति अतिथि के रूप म बिना वाडन की आज्ञा के नही रह सकता।

५—कोई भी छात्र किसी भी दूकानदार से उधार नही लेगा।

६—बहुमूल्य सामान या नकद रुपयो को छात्र अपने पास न रखकर छात्रालयाध्यक्ष के पास रखें।

७—छात्रालय की सम्पत्ति का नुकसान पहुचाने वाले छात्र को, उस नुकसान को पूरा करना होगा जो उसके द्वारा किया गया है।

८—कोई भी छात्र छात्रालय में गन्दगी न फैलाये।

९—छात्र एक दूसरे से वस्तु पूछ कर लें, यदि कोई छात्र किसी छात्र की वस्तु बिना पूछे लेगा तो वह दण्डित किया जायगा।

१०—प्रत्येक छात्र को प्रातः ५½ बजे बिस्तर छोड़ देना चाहिए तथा जब तक सोने की घण्टी न बजे कोई भी छात्र बिस्तर पर सोने को न जाय। कोई छात्र अध्ययन के समय में किसी दूसरे छात्र के कमरे में जाकर शोरगुल न करे।

उपर्युक्त नियमों के अतिरिक्त परिस्थिति के अनुसार और नियम भी बनाये जा सकते हैं। इन नियमों को लिख कर सूचना-पट पर टाँग दिया जाय। छात्रालयाध्यक्ष को इस विषय में पूरी सावधानी रखनी है कि छात्र इन नियमों का ठीक रीति से पालन करते हैं या नहीं।

(३) अभिभावकों से सम्पर्क बनाये—छात्रालय के विद्यार्थियों की समस्याओं को ठीक प्रकार से समझने के लिए छात्रालयाध्यक्ष को उनके अभिभावकों से मधुर सम्पर्क बनाये रखना चाहिए। उसे चाहिए कि वह प्रत्येक छात्र के अभिभावक को समय समय पर अपने पास बुलाये तथा उन्हें छात्रों की प्रगति तथा शरारतों के विषय में सूचित करता रहे। जो छात्र अत्यधिक पैसे खर्च करते हैं, उनके अपव्यय की सूचना अभिभावकों को करना छात्रालयाध्यक्ष का परम कर्त्तव्य है।

(४) छात्रों की कठिनाइयों को दूर करे—छात्रालयाध्यक्ष को चाहिए कि वह आवश्यकतानुसार छात्रों की अध्ययन सम्बन्धी कठिनाइयों को भी दूर करता रहे। जिन विषयों को वह अच्छी तरह जानता है उनको छात्रों को बताने में उसे किसी प्रकार का संकोच नहीं करना चाहिए। यदि छात्रालयाध्यक्ष थोड़ा बहुत समय भी छात्रावास के छात्रों को पढ़ाने में लगाता है, तो छात्र उससे स्नेह करने लगेंगे तथा छात्रालय के वातावरण में आत्मीयता तथा मधुरता आ जायगी।

(५) एकता की भावना उत्पन्न करे—छात्रालय में गरीब, अमीर, ऊँच-नीच तथा साम्प्रदायिकता की भावना को न पनपने दिया जाय। जहाँ तक हो सके समस्त छात्रों को एक साथ रखा जाय तथा उनके साथ एक सा व्यवहार किया जाय। हरिजन छात्रों को अन्य छात्रों के समान सुविधाएँ प्रदान की जायँ। जो छात्र, छात्रावास में भेद भाव फैलाने का प्रयत्न करें उन्हें चेतावनी दी जाय तथा आवश्यकता पड़ने पर छात्रावास से निकाला भी जा सकता है।

(६) उचित निरीक्षण—छात्रालयाध्यक्ष को उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त सबसे प्रमुख कार्य निरीक्षण का करना है। बिना उचित प्रकार से निरीक्षण किये छात्रावास की गति विधि का पता नहीं लग सकता। अतः छात्रालयाध्यक्ष को विभिन्न विषयों तथा क्रियाओं का निरीक्षण समय समय पर करते रहना चाहिए। उसे किन किन कार्यों का निरीक्षण करना है उनका उल्लेख हम नीचे करेंगे।

(क) भोजन तथा भोजनालय का निरीक्षण—मनुष्य के स्वास्थ्य पर भोजन का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। जैसा भोजन होगा वैसा ही स्वास्थ्य होगा। अतः

ात्रालयाध्यक्ष को ध्यान से देखना है कि छात्रो को जो भोजन प्रदान किया जा रहा है क्या वह पौष्टिक है, क्या उसम जीवन शक्ति प्रदान करने वाले तत्त्व उपस्थित हैं। उसे देखना है कि छात्रो को दिए जाने वाले भोजन मे उचित मात्रा मे प्रोटीन, चर्बी, कार्बोहाइड्रेट्स तथा लवण उचित मात्रा मे उपस्थित हैं। हमारे देश मे गोश्त खाने की प्रथा नही है। अत हरे साग, फल तथा दूध आदि को भोजन मे अवश्य सम्मिलित किया जाय। दूध की मात्रा को बढाया जा सकता है, क्योकि शाकाहारियो के लिए दूध का प्रयोग परम आवश्यक है। दूध मे प्रोटीन, चर्बी तथा कार्बोहाइड्रेटस उचित मात्रा मे होते हैं।

भोजन मे सफाई का प्रबन्ध, खाने का प्रबन्ध तथा खाना पकाने की व्यवस्था ठीक प्रकार से है अथवा नही यह देखना भी आवश्यक है। खाना पकाने म नौकर लापरवाही तथा चोरी करने का प्रयत्न करते हैं, इस कारण नौकरो के काय पर छात्रालयाध्यक्ष को कडी निगाह रखनी चाहिए। चोरी करने वाले नौकरो को तुरन्त अलग कर दिया जाय।

(ख) छात्रों के रहन सहन का निरीक्षण—छात्रालयाध्यक्ष को विद्यार्थियो के रहन सहन की दशा का निरीक्षण अत्यन्त ध्यानपूर्वक करना चाहिए। उसका कत्तव्य है कि वह छात्रो के कमरो म प्रकाश आता है या नही, उनके सोने का प्रब ध ठीक है या नही, आदि का निरीक्षण समय समय पर करता रहे। उसे देखना है कि छात्र सोते समय अपने कमरो की खिडकिया खोलकर रखते हैं या नहीं, उन्हे सोने मे तो कोई विशेष असुविधा नही होती। बहुत से छात्र अपने कमरे गन्दे रखते है तथा कमरे का सामान भी उनका अस्त व्यस्त रहता है—छात्रालयाध्यक्ष को चाहिए कि ऐसे छात्रो पर कडी निगरानी रखे तथा उन्हे अपने कमरे ठीक रखने का आदेश दे। क्या छात्रालय के नौकर विद्यार्थियो के कमरे ठीक प्रकार से साफ करते है, क्या भगी शौचालय की सफाई ठीक प्रकार से करते हैं या नही आदि की देखभाल करना आवश्यक है। छात्रो को उनकी आवश्यकतानुसार फर्नीचर भी मिलता रहे पर साथ साथ यह भी ध्यान मे रहे कि वे उनका प्रयोग लापरवाही के साथ न करें।

(ग) छात्रो के अध्ययन का निरीक्षण—छात्रालयाध्यक्ष का मुख्य काय छात्रो के अध्ययन का निरीक्षण करना है। उसे प्रातःकाल तथा रात्रि म छात्रावास का एक चक्कर लगाना चाहिए और देखना चाहिए कि छात्र अध्ययन के समय ठीक प्रकार से पढते हैं या नही। कुछ छात्रो की आदत होती है कि वे पढने के समय मे दूसरे छात्रो के कमरो म जाकर बातचीत करते हैं तथा पढने लिखने वाले छात्रो के अध्ययन म बाधा डालते हैं। इस प्रकार के छात्रो को चेतावनी दी जाय जिससे वे भविष्य मे पढने का समय बरबाद न करें। उसे छात्रों के कमरे मे जाकर यह भी देखना चाहिए कि वे क्या पढ रहे है—कहीं वे कोर्स की पुस्तक पढने के बहाने कहानी किस्से तो नही पढ रहे हैं।

(घ) पाठ्य सहगामी क्रियाओ का निरीक्षण—छात्रावास में पाठ्य-सहगामी क्रियाओ का सगठन विद्यालय के समान ही महत्त्वपूर्ण है। अवकाश के समय छात्रो के खेलने कूदने का प्रबन्ध करना भी आवश्यक है। छात्रालयाध्यक्ष का कर्त्तव्य है कि वह छात्रालय के समस्त छात्रो के लिए खेल कूद के लिए समान अवसर प्रदान करे। जो छात्र खेल के मैदान मे जाने से हिचकते है उन्हे उसे खेलने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

प्रत्येक शनिवार को छात्रावास मे एक साहित्यिक सभा का होना परम आवश्यक है। इस सभा की प्रत्येक बैठक मे छात्रालयाध्यक्ष को उपस्थित होना चाहिए। उसे देखना है कि छात्र वाद विवाद तथा कविता प्रतियोगिता आदि मे ठीक प्रकार से भाग लेते है या नही।

उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त छात्रालयाध्यक्ष को छात्रावास मे काम करने वाले नौकरो के काम की देख रेख भी करनी चाहिए। उसे देखना है कि वहाँ नौकर अपने कार्य मे लापरवाही तथा आलस्य तो नही दिखाते है। साधारणतया नौकर निर्धन छात्रो का काम करने से जी चुराते हैं वे केवल उन छात्रो का कार्य तत्परता से करते है जो उन्हे समय-समय पर कपडे आदि देते रहते है, जो पूर्णतया अनुचित है। उसे यह ध्यान रखना है कि छात्रावास के नौकर समान रूप से सब के नौकर हैं। छात्रालयाध्यक्ष को नौकरो की कठिनाइयो को भी हल करना चाहिए।

छात्रावास एक परिवार के समान है। यदि कोई छात्र बीमार पडता है तो छात्रालयाध्यक्ष का कर्त्तव्य है कि वह पिता के समान उसकी देख रेख करे। रोग यदि असाध्य हो जाता है तो छात्र को तुरन्त अस्पताल पहुँचा कर उसके अभिभावकों को सूचना दे देनी चाहिए।

(च) छात्रावास का समय विभाग चक्र—समय विभाग चक्र का महत्व जिस प्रकार विद्यालय के लिए है उसी प्रकार छात्रावास के लिए भी महत्वपूर्ण है। छात्रालयाध्यक्ष को समय विभाग चक्र का निर्माण खूब सोच समझ कर करना चाहिए। खेलने का समय खाने का समय आदि को भली-भाँति निर्धारित कर देना चाहिए। प्रातःकालीन व्यायाम के लिए समय विभाग चक्र मे कम-से कम ३० मिनट का समय दिया जाय। इसी प्रकार पढ़ने के लिए प्रातः तथा रात्रि के समय का विभाजित किया जाय। स्कूल जाने की तैयारी के लिए भी कुछ समय अवश्य प्रदान किया जाय। छात्रावास के छात्रो की उपस्थिति सुबह शाम दोनो समय ली जाय। उपस्थिति मे न आने वाले छात्रो की छानबीन की जाय तथा उन्हे उचित दण्ड प्रदान किया जाय।

(छ) विद्यार्थी और उनका स्वास्थ्य—अन्य कार्यों के समान छात्रो के स्वास्थ्य की देखभाल करना भी छात्रालयाध्यक्ष का प्रमुख कर्त्तव्य है। उन छात्रावास मे स्वास्थ्य के समस्त साधनो को जुटाना है जिससे आवश्यकता पडने पर उनका भली प्रकार से प्रयोग किया जा सके।

सबसे पहली बात जो छात्रालयाध्यक्ष को ध्यान मे देने की है, वह है एक डाक्टर तथा नर्स का प्रबन्ध। नर्स (स्त्री या पुरुष) सामान्य रोगियो की देखभाल तथा उनका उचित रीति से दैनिक निरीक्षण करेगी। यदि नर्स उपलब्ध न हो तो एक नौकर रखकर काम चलाया जा सकता है। गम्भीर रोगो के उचित उपचार के लिए छात्रालयाध्यक्ष को किसी डाक्टर का प्रबन्ध रखना चाहिए। डाक्टर को विद्यालय की ओर से कुछ मासिक भत्ता देना आवश्यक है, जिससे वह छात्रालय के रोगियो की समय समय पर देखभाल करता रहे।

प्लेग, चेचक तथा हैजा आदि के टीके समय-समय (कम से कम वर्ष मे एक बार) लगा दिये जायें। रोगियो का कमरा छात्रावास से जरा हट कर हो, जिससे छूत की बीमारियो के फैलने का अधिक भय न रहे। रोगियो के कमरे मे उचित प्रकाश का प्रबन्ध हो, खिड़की तथा रोशनदान उचित मात्रा मे होने चाहिए।

शौचालय, पेशावघर आदि की सफाई पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय। समय समय पर सेनेटरी इन्स्पेक्टर को छात्रालय की सफाई की देखभाल के लिए आमन्त्रित किया जाय। छात्रावास के जलपान गृह का निरीक्षण छात्रालयाध्यक्ष को प्रति सप्ताह करना चाहिए। गन्दे तेल या चिकनाई की बासी वस्तुएँ बेचने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाय, क्योंकि इस प्रकार के खाद्य पदार्थो से छात्रो के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

छात्रावास का अपना छोटा सा दवाखाना होना चाहिए, जिसमे आकस्मिक दुर्घटनाओ से आई चोटो के उपचार के लिए दवाइयो का प्रबन्ध हो। टिंचर आयोडीन, स्प्रिट, लाल दवा, बोरिक एसिड, ऐसेन्शियल आयल तथा कुनैन आदि दवाइयो का रखा जाना परम आवश्यक है। छात्रावास के दवाखाने का प्रबन्ध स्वास्थ्य समिति को सौंपना चाहिए। स्वास्थ्य समिति के सदस्यो को प्राथमिक चिकित्सा का प्रशिक्षण अवश्य प्राप्त हो।

अन्त मे छात्रालयाध्यक्ष को इस बात का अवश्य ध्यान रखना है कि वह छात्रो मे सफाई की भावना को प्रोत्साहित करता रहे। वह छात्रो को बताये कि सफाई का स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है। स्वच्छता तथा स्वास्थ्य के कुछ नियम बनाकर सूचना पट पर टाग देनी चाहिए और समय समय पर पालन करने के लिए प्रेरणा प्रदान करता रहे।

(ज) छात्रावास के रजिस्टर—छात्रावास के समस्त कार्य-कलापो का लेखा जोखा रखने के लिए छात्रालयाध्यक्ष को निम्नलिखित रजिस्टर रखने चाहिए।

(१) उपस्थिति रजिस्टर—इसमे सुबह और शाम को हाजरी भरी जायगी।

(२) प्रवेश रजिस्टर—जो छात्र प्रतिवर्ष छात्रावास मे प्रवेश लेंगे उनका नाम इसमे दर्ज किया जायेगा।

(३) सम्पत्ति रजिस्टर—इसमें छात्रावास की समस्त सम्पत्ति का लेखा रहता है। छात्रावास में जो वस्तु प्रतिवर्ष आती है उसकी तिथि, मूल्य आदि इसमें दर्ज कर दी जाती हैं। प्रधान अध्यापक को इस रजिस्टर की जाँच ध्यानपूर्वक करनी चाहिए।

(४) भोजनालय रजिस्टर—भोजन के लिए जिन जिन वस्तुओं को खरीदा जाय उन सबका हिसाब किताब इस रजिस्टर में रखा जाय। छात्रों द्वारा माह में प्रदान किया गया शुल्क इसमें दर्ज रहना चाहिए। छात्रालयाध्यक्ष को इस रजिस्टर की जाँच पड़ताल अत्यन्त सावधानी के साथ करनी चाहिए क्योंकि अधिकांशतया मैस मैनेजर कहीं-न कहीं से पैसा खाने का प्रयत्न करते हैं।

(५) सुरक्षा रजिस्टर—जब छात्र विद्यालय में प्रवेश करते हैं तो उनसे सुरक्षा के रूप में कुछ धन जमा करना आवश्यक हो जाता है। उस धन का लेखा जोखा इस रजिस्टर में रखा जाय। प्रत्येक छात्र के लिए अलग से पृष्ठ रखा जाय तो सुविधाजनक होगा।

(६) कैश बुक—विद्यालय की कैश बुक के समान छात्रावास की कैश बुक भी रखी जाय। इसमें आय व्यय की सब मदें उचित प्रकार से भरी जायें।

(७) पुस्तकालय तथा वाचनालय रजिस्टर—छात्रावास में प्रतिवर्ष कितनी पुस्तकें आती है तथा किस मात्रा में छात्रों को पढ़ने के लिए प्रदान की जाती हैं आदि का भी रजिस्टर में दर्ज किया जाना चाहिए। प्रतिदिन तथा सप्ताह में आने वाले अखबारों को भी इसमें दर्ज कर दिया जाय।

(८) छात्र समिति रजिस्टर—छात्रावास में होने वाली पाठ्य सहगामी क्रियाओं का विवरण जानने के लिए एक छात्र समिति रजिस्टर का होना परम आवश्यक है। इसमें प्रति माह तथा प्रति सप्ताह होने वाली क्रियाओं का उल्लेख कर दिया जाय।

(९) छात्रालय का भवन—जहाँ तक सम्भव हो सके छात्रावास की इमारत विद्यालय के समीप होनी चाहिए। छात्रावास के लिए किराए पर भवन न लेकर इसी काम के लिए नया भवन निर्मित किया जाय तो अच्छा है। छात्रावास की इमारत का आकार आवश्यकता और आर्थिक परिस्थितियों पर निर्भर रहेगा। रायबन के मतानुसार— सबसे सुन्दर शैली की इमारत एक मंजिल की होती है जो चारों ओर बनी हो तथा जिसके मध्य में आँगन हो।" इमारत में सबसे मुख्य बात ध्यान में रखने की यह है कि उसके चारों ओर एक ऊँची दीवार हो तथा जिसमें केवल एक द्वार हो जिसे रात्रि के समय आवश्यकता पड़ने पर सरलता के साथ बन्द किया जा सके। यदि दीवार नीची होगी तो छात्र रात्रि में सरलता के साथ घूमने फिर सिनेमा आदि जा सकेंगे। द्वार, छात्रालयाध्यक्ष के निवास के पास होना चाहिए।

प्रत्येक छात्र के लिए अलग से एक कमरा बनाया जाय, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर एक कमरे में दो छात्र भी रह सकते हैं। कमरे में सोने तथा पढ़ने के लिए पर्याप्त स्थान होना चाहिए। अल्मारियां यदि दीवार में बनी हों तो अच्छा है क्योंकि इस प्रकार की अल्मारी सस्ती और मजबूत होती है। कमरों में प्रकाश और वायु के लिए रोशनदान तथा खिड़कियां होनी चाहिए। कमरे का फर्श पक्का सीमेंट का बना हो जिससे धोने में सरलता रहे। इमारत के अन्दर की ओर चारों तरफ बरामदे होने चाहिए। छात्रावास के मध्य में छोटा सा उद्यान हो जो हरी भरी घास तथा फूलों से युक्त हो।

छात्रों के कमरों के अतिरिक्त छात्रावास के भोजनालय का निर्माण भी सोच-समझ कर करवाना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो सके भोजनालय छात्रों के कमरों से कुछ दूरी पर हो। धुएँ के निकलने का पर्याप्त स्थान हो, तथा बर्तन साफ करने आदि का उचित प्रबंध होना चाहिए।

छात्रावास का एक अलग से हॉल हो जिसका प्रयोग प्रार्थना, सामाजिक बैठकों आदि के लिए किया जा सके। इसके अतिरिक्त छात्रावास में वाचनालय, पुस्तकालय तथा कार्यालय आदि के लिए अलग कमरे होने चाहिए। छात्रावास के स्नानागार में जल की उचित व्यवस्था हो तथा पानी निकलने के लिए नालियां भी पर्याप्त संख्या में हों। स्नानागार में छोटे छोटे अलग-अलग नहाने के कमरे हों जिनमें खूंटियां लगी हों। शौचालय का निर्माण छात्रावास से दूर करना चाहिए, जिससे बदबू न आ सके। छात्रावास में एक गोदाम भी होना चाहिए जिसमें फर्नीचर आदि सुरक्षा से रखा जा सके। छात्रावास से हटकर नौकरों के कमरे बनवाये जायें।

छात्रालयाध्यक्ष को इस बात का ध्यान रखना है कि विद्यार्थी अपना घर छोड़कर छात्रावास में आते हैं। अतः उसका कर्त्तव्य हो जाता है कि छात्रावास को घर जैसा सुखप्रद बनाये। जैसा कि रायबर्न ने लिखा है—' It must always be remembered that the boarding house is taking the place of the home for a considerable portion of the pupils' year and it should therefore be made as attractive as possible, Pictures should be freely used and the boarders encouraged to make their boarding-house as comfortable and home like as possible " छात्रालयाध्यक्ष के विद्यार्थियों को आपस में मिलने जुलने की पूर्ण स्वतन्त्रता देनी चाहिए। छात्रों पर अत्यधिक नियन्त्रण न रखा जाय, नहीं तो वे छात्रावास को बन्दीगृह समझेंगे और उनके जीवन में नीरसता आ जाएगी। अतः छात्रावास का जीवन कुटुम्ब के समान प्रेम तथा स्नेह करने वाला होना चाहिए।

बालिकाओं के छात्रालय के सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य बातें

(१) बालिकाओं के छात्रालयाध्यक्ष को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि

लडकियो का स्वभाव कोमल होता है अत उनके साथ व्यवहार भी स्नेह चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो उन्हे अपनी पुत्रियों के समान माना जाय।

(२) छात्रावास के अन्दर अन्यत्र व्यक्ति को बिना आज्ञा न जाने दिया जाय मुख्य द्वार पर एक चौकीदार नियुक्त किया जाय।

(३) छात्रावास की दीवारें पर्याप्त ऊँची होनी चाहिए।

(४) छात्राओ को बिना आज्ञा अकेले घूमने फिरने की आज्ञा न दी जाय।

(५) बालिकाओ के छात्रावास मे खेल-कूद की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए, छात्राओ के शारीरिक स्वास्थ्य की देखभाल का प्रबन्ध आवश्यक है।

(६) छात्रावास के कर्मचारी यथासम्भव पुरुष न हो।

२४

शिक्षक-अभिभावक सहयोग

PARENTAL CO OPERATION

Q What do you understand by parents-teachers association ? How far can they help in the development of healthy social life in the pupils ? (L T 1950)

प्रश्न—शिक्षक अभिभावक सहयोग से आप क्या समझते हैं ? छात्रों में सामाजिकता की भावना विकसित करने में इनका क्या योग रहता है ?

Or

Write short note on "Parental Co operation" (A U 1950)

"अभिभावक सहयोग" पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।

उत्तर—

शिक्षक-अभिभावक सहयोग की आवश्यकता

बालक का पालन-पोषण परिवार में होता है। उसके विकास में परिवार का भारी हाथ रहता है। यदि विद्यालय के कार्य में कुटुम्ब सहयोग न दे तो उसका विकास ठीक प्रकार न हो सकेगा। बालक के शारीरिक, मानसिक विकास में परिवार का प्रमुख हाथ रहता है। उनके माँ-बाप प्रथम शिक्षक होते हैं, जो उनको किसी न किसी रूप में शिक्षा प्रदान करते हैं। बालक विद्यालय में जब प्रवेश करता है तो वह माँ-बाप द्वारा प्रदान किये गये संस्कारों तथा परम्पराओं को साथ लाता है। अतः हम देखते हैं कि बालक की शिक्षा का उत्तरदायित्व जितना अध्यापक पर है, उससे अधिक उनके अभिभावक पर है। छात्र का अधिकांश समय घर पर बीतता है, जब कि वह कठिनता से चार या पाँच घण्टे विद्यालय में व्यतीत करता है। यदि हम छात्रों का सर्वांगीण विकास चाहते हैं तो हमें उनके अभिभावकों से सहयोग प्राप्त करना होगा। बालक के व्यक्तित्व का निर्माण 'घर' तथा 'विद्यालय' दोनों

जगह होता है तथा दोनों का एक ही उद्देश्य है वह है, बालक का 'सर्वांगीण विकास।"[1]

(१) छात्रों को समझने में सहायता—शिक्षक अभिभावक सहयोग का सबसे बड़ा लाभ यह है कि अध्यापक, अभिभावकों की सहायता से बालक को भली प्रकार समझ सकता है, तथा उनके घर के वातावरण को समझ कर उनके व्यक्तित्व के विकास में अपना योग प्रदान कर सकता है। छात्रों के ऊपर घर के वातावरण का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है, वे जिस वातावरण में पलते हैं वैसे ही भाव उनके मस्तिष्क में दृढ़ हो जाते हैं। अतः अध्यापकों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे छात्रों के घर के वातावरण को समझें तथा स्कूल और घर के वातावरण में समन्वय स्थापित करें। इसी प्रकार अभिभावकों का भी कर्त्तव्य है कि विद्यालय तथा शिक्षकों से सम्पर्क बनाये रखें। डॉ० एस० एन० मुकर्जी के अनुसार—"Home school co-operation is a two way traffic between parents and school It can be effective provided parents take the trouble to learn about the school and what it is trying to do for their children, in return the school must take into account how the child lives at home"

(२) विद्यालय के कार्यों को सफल बनाने में सहायता—कुछ भी हो, छात्र के सर्वांगीण विकास के लिए तथा विद्यालय के कार्य को सफल बनाने के लिए शिक्षक अभिभावक सहयोग की परम आवश्यकता पड़ती है। गृह कार्य, स्वास्थ्य एवं अनुशासन की समस्या तथा अन्य क्रियाओं को सफल बनाने के लिए अभिभावक का सहयोग लेना अनिवार्य हो जाता है।

(३) परस्पर विश्वास की भावना—शिक्षक-अभिभावक सम्पर्क में मधुरता आ जाने से दोनों में एक दूसरे के प्रति विश्वास हो जाता है। बालकों के माता-पिता विद्यालय के प्रत्येक कार्य में उत्साह दिखाते हैं। वे अध्यापक के सम्पर्क द्वारा अपने बच्चों की कमजोरियाँ ज्ञात करके उन्हें दूर करने का प्रयत्न करते हैं।

(४) अनुशासन स्थापना में सहायक—शिक्षक अभिभावक सहयोग विद्यालय में अनुशासन स्थापित करने में भी सहायक होता है। जब बालकों के माता-पिता अध्यापकों के साथ सद्व्यवहार करते तथा उनसे समय-समय पर मिलते रहते तो उसका प्रभाव बालकों पर भी पड़ता है। वे अपने अध्यापकों को आदर की दृष्टि से देखने लगते हैं तथा उनकी आज्ञा मानने के लिए वे सदा तत्पर रहते हैं। उन्हें डर रहता है कि कहीं अध्यापक उनके माता-पिता से शिकायत न कर दें।

---

1 Education is a continuous process in school and out of it at all stages parents and teachers should help to make children confident C I C E (England) School and Life Quoted by Dr S N Mukerji

(५) विद्यालय समाज के निकट आता है—शिक्षक-अभिभावक सहयोग जितना मधुर होता जायगा उतना ही विद्यालय समाज के निकट आता जायगा। दोनों मिलकर बालक को समाज का सच्चा तथा जागरूक नागरिक बना सकते हैं।

हमारे देश में दुर्भाग्य से इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता। अभिभावक अपने बालकों के प्रति उदासीन रहते हैं, वे केवल फीस देकर निश्चिन्त हो जाते हैं—विद्यालय में जाकर बालक पढ़ता है या नहीं, वह किस संगत में रहता है, आदि के विषय में जानने की वे आवश्यकता नहीं समझते। घर के वातावरण का बालक के मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ता है—इसका ज्ञान भारतीय अभिभावक को नहीं है और न वे जानने का ही प्रयत्न करते हैं। परिणामस्वरूप विद्यालय में विद्यार्थियों के लिए अच्छे से अच्छा प्रबन्ध करने पर भी, घर का वातावरण दूषित होने के कारण समस्त आयोजन व्यर्थ हो जाते हैं। घर और विद्यालय के मध्य सम्बन्धों की खाई तब और भी गहरी हो जाती है जब माता पिता अज्ञान वश बालकों की उन आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करते जो उन्हें विद्यालय में बताई जाती हैं। [illegible] के लिए जब कोई बालक, विद्यालय में होने वाले किसी समारोह या [illegible] के लिए अपने माँ बाप से चन्दा माँगता है तो उसके माँ बाप विद्यालय के इस [illegible] को व्यर्थ समझते है और उसे डाँट देते हैं।

शिक्षक-अभिभावक सम्पर्क को दृढ करने के [illegible]

ऊपर हमने शिक्षक-अभिभावक सहयोग के महत्व [illegible] हम यह देखना है कि विद्यालय में किस ढंग से अभिभावकों [illegible]। नीचे हम उन उपायों का उल्लेख करेंगे जिनके अपनाने से [illegible] प्राप्त किया जा सकता है—

(१) प्रवेश के समय सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार—[illegible] अभिभावक का सम्पर्क विद्यालय में प्रथम बार तब होता है [illegible] विद्यालय में प्रवेश के लिए आता है। प्रधान [illegible] कि इस अवसर का लाभ उठाए तथा प्रत्येक बालक के अभिभावकों के [illegible] सहानुभूति तथा [illegible] का व्यवहार करे। प्रधान अध्यापक को [illegible] मानवता के आधार पर मिलना चाहिए। [illegible] अभिभावकों के [illegible] दुर्व्यवहार किया जायगा, तो उनके [illegible] विद्यालय के प्रति [illegible] जायगा। अत प्रधान अध्यापक [illegible] अभिभावकों के [illegible] नम्रता तथा उदारता का व्यवहार करना चाहिए।

(२) अभिभावकों को [illegible] सूचना देना—[illegible] से छात्रों की शिक्षा-सम्बन्धी [illegible] का विवरण [illegible] भावकों के पास प्रति माह [illegible] जाना। [illegible] तक हो सके अभि[illegible] विवरण को विस्तार [illegible]

है तो छात्र भी उसे प्यार और स्नेह की दृष्टि से देखगे तथा अपने घर पर अपने माँ बापो से अध्यापक की प्रशसा करेंगे। अभिभावक अपने बच्चो द्वारा अध्यापक की प्रशसा सुनकर, उनसे मिलने को उत्सुक होगे। अत अध्यापको को अपने छात्रो क साथ सदा प्रेम और उदारता का व्यवहार करना चाहिए।

(८) अभिभावक दिवस (Parent Day)—वप मे एक बार अभिभावक दिवस मनाया जाय। इस दिन अभिभावको को दिखाया जा सकता है कि विद्यालय ने वप भर म क्या क्या प्रगति की है। नाटक, कवि-सम्मेलन, सगीत-प्रतियोगिता आदि काय-क्रमो का आयोजन इस दिन अवश्य किया जाय। अभिभावको को आकर्षित करने के लिए एक प्रदर्शिनी का आयोजन किया जा सकता है जिसमे छात्रो द्वारा बनाये गये चाट, नक्शे, हस्त लेख तथा पत्रिकाओ को सजा कर रखा जाय।

अभिभावक दिवस पर छात्रो के मा बापो को विद्यालय का निरीक्षण करने की पूण स्वतन्त्रता प्रदान की जाय। छात्रो को अवसर प्रदान किया जाय कि वे अपने माता पिता को विद्यालय की समस्त योजनाओं से परिचित करा सके। अभिभावको को विद्यालय, पुस्तकालय, छात्रावास तथा खेल का मैदान आदि सभी का निरीक्षण करने की छूट दी जाय।

स्काउटिंग, गर्ल गाइड्स, रेडक्रास, खेल-कूद आदि क्रियाओं का प्रदशन भी इस दिन किया जाय। वार्षिक पारितोषिक-वितरण भी इस दिन हो, जिससे कि माता-पिता अपने बच्चो को पुरस्कार पाते देख प्रसन्न हो।

प्रधान अध्यापक का चाहिए कि अभिभावक दिवस पर छात्रो के माता पिता के सामने, विद्यालय की योजनाओ, उसकी समस्याओ तथा आदर्शो का पूण विवरण प्रस्तुत करे तथा उनसे सहयोग प्रदान करने के लिए राय मांग। इस काय को सुगम बनाने के लिए एक रजिस्टर रखा जाय जिसम छात्रो के अभिभावको की विद्यालय के विषय म जो सम्मति हो, लिख सके।

(६) अभिभावक शिक्षक समिति (Parents teachers Association)—शिक्षक-अभिभावक सहयोग को सुदृढ बनाने के लिए "अभिभावक शिक्षक समिति" का निर्माण परम आवश्यक है। इस समिति के सदस्य शिक्षक तथा अभिभावक होते हैं। वप म दो या तीन बार इसकी बैठके होना आवश्यक है। समिति का अध्यक्ष अभिभावकों म से ही चुना जाय तो उत्तम रहेगा। प्रत्येक बैठक का अपना कोई विशेष काय क्रम हो जो किसी रूप म विद्यालय से सम्बन्धित होना चाहिए। शिक्षकों के पास विद्यालय की उन्नति से सम्बन्धित यदि कुछ विचार हो तो उन्ह अभिभावको के समक्ष रखा जाय नही तो छात्रो की समस्या, विद्यालय की आर्थिक समस्या, अनुशासन आदि पर विचार विमर्श किया जाय। प्रधान अध्यापक को चाहिए कि वह स्वय विद्यालय द्वारा की गई प्रगति तथा आवश्यकताओ पर अपने विचार स्पष्ट करें।

इस प्रकार की बैठको का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि छात्रों के अभि

भावक विद्यालय की समस्याओं को भली प्रकार समझ पायेंगे तथा शिक्षक, अभिभावकों के सहयोग द्वारा, छात्रों में अनुशासन की भावना भर सकेंगे। विद्यालय और घर एक दूसरे के निकट आ सकेंगे तथा दोनों में विरोध की भावना समाप्त हो जायगी। प्रधान अध्यापक सरलता से अभिभावकों के सम्पर्क में आ सकेगा तथा उनसे आवश्यकतानुसार सहयोग प्राप्त कर सकेगा।

(१०) विद्यालय को सामुदायिक योजनाओं का केन्द्र बनाया जाय—यदि विद्यालय को समाज की विभिन्न क्रियाओं का केन्द्र बनाया जाय तो उचित है। विद्यालय में प्रौढ़ पाठशालायें खोली जायें। सुविधानुसार प्रौढ़ पुस्तकालय की स्थापना की जा सकती है। समय-समय पर सामाजिक गोष्ठियों तथा व्याख्यानों का भी आयोजन किया जा सकता है। साथ ही साथ विद्यालय के छात्रों को समाज-सेवा आदि कार्य के लिए गाँव आदि में भेजना चाहिए।

अभिभावकों का उत्तरदायित्व

ऊपर हमने विद्यालय तथा शिक्षकों के कर्त्तव्य पर प्रकाश डाला कि किस प्रकार वे अभिभावकों को अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं। अब हम यह देखना है कि अभिभावकों के क्या कर्त्तव्य हैं। जिनसे विद्यालय तथा घर के बीच का अन्तर समाप्त हो सके—

(१) शिक्षक द्वारा निमन्त्रित करने पर अभिभावकों का कर्त्तव्य है कि वे विद्यालय जाकर उनसे मिलें तथा अपने बालक की शिकायत को ध्यान से सुनें।

(२) अभिभावकों को चाहिए कि वे घर के वातावरण को विद्यालय के विपरीत न बनायें। बालक को अध्ययन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की जाय।

(३) बालक को समय पर विद्यालय भेजें, वह स्कूल जाता है या नहीं इसका पता शिक्षक से लगाते रहें।

(४) वे नित्य देखें कि बालक स्कूल का काम करके ले जाता है या नहीं।

(५) समय-समय पर अभिभावकों को प्रधान अध्यापक तथा कक्षा अध्यापक से मिलते रहना चाहिए। विद्यालय के उत्सव पर भी उनको उपस्थित रहना चाहिए।

(६) अभिभावकों को चाहिए कि वे अपने बच्चों को बुरी संगत में न पड़ने दें।

वास्तव में शिक्षक-अभिभावक सहयोग तभी ठीक प्रकार सफल हो सकता है जबकि दोनों अपने कर्त्तव्यों को निभाते हुए पारस्परिक प्रेम को बढ़ाने का प्रयत्न करते रहें। एक की उदासीनता दोनों के सम्पर्क में कड़वाहट उत्पन्न करती है।

२५

पुस्तकालय

LIBRARY

Q Discuss fully the importance of library in the educational system of our Higher Secondary School How should the head of a school ensure that children of all ages are taking full advantage from it ? (A U , B T 1951)

प्रश्न—हमारे उच्चतर माध्यमिक शिक्षालयो की शिक्षा प्रणाली में पुस्तकालय के महत्व को बताइए। भिन्न भिन्न आयु वाले छात्रो को पुस्तकालय का पूर्ण लाभ प्रदान करने के लिए प्रधानाध्यापक को किन साधनो को ग्रहण करना चाहिए ?

Or

How would you use the library as a means of stimulating love of reading and guiding the reading of individual pupils along the lines of their special interests ? (A U , B T 1656)

आप शिक्षालय के पुस्तकालय का प्रयोग किस ढग से करेंगे जिससे बालको के अन्दर अध्ययन के लिए प्रेम उत्पन्न हो सके तथा उनको अपनी विशेष रुचियो की पुस्तके पढ़ने में पथ प्रदर्शन मिलता रहे।

Or

What are the criteria of a satisfactory school library ? If you were appointed headmaster of a school, how would you set about ensuring the effective use of book by both teachers and pupils ? (A U , B T 1957)

एक सतोषजनक स्कूल पुस्तकालय के क्या सिद्धान्त हैं ? यदि आप किसी विद्यालय के प्रधानाध्यापक नियुक्त कर दिये जायें तो आप शिक्षकों तथा छात्रों को पुस्तकालय का उचित लाभ पहुँचाने के लिए किस प्रकार की व्यवस्था करेंगे ?

Or

How Yould you make it possible for children of a higher secondary school (vi to xii) to make the fullest and most effective use of school library?

(A U, B T 1959)

किसी उच्चतर माध्यमिक शिक्षालय के छात्रो को पुस्तकालय का अधिकाधिक एव प्रभावशाली उपयोग कराने के लिए आप किन उपायो को काम में लायेंगे?

उत्तर—

आधुनिक विद्यालय मे पुस्तकालयो के दोष

विद्यालय म पुस्तकालय का होना परम आवश्यक है। परन्तु यह दुर्भाग्य की बात है कि हमारे विद्यालय के पुस्तकालय नाम मात्र के पुस्तकालय हैं जैसा कि माध्यमिक शिक्षा आयोग म उल्लेख किया गया है कि " In a large majority of schools, there are at present on libraries worth the nam Th books are generally old, outdated, unsuitable usually selected with out reference to the student, tastes and interests They are sto ked in a few book shelves which are housed in a inadequate and different teacher who does this on a part time technique" स्पष्ट है इस प्रकार के पुस्तकालय से छात्र क्या लाभ उठा सकते हैं। पुस्तकालय वे ही छात्रों के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं जिनमे अच्छी पुस्तकें हो और छात्रो को सुविधानुसार पढने का प्रबन्ध की जाती है।

पुस्तकालय का महत्त्व

विद्यालय म पुस्तकालय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पुस्तकालय द्वारा छात्र अपनी बुद्धि का विकास करते हैं तथा अध्ययन करने की प्रवृत्ति डालते हैं। पुस्तकों द्वारा हम अपने पूर्वजो के अनुभवो से परिचित होते हैं तथा हम ज्ञात होता है कि हमारे देश ने किस सीमा तक सास्कृतिक उत्थान किया। पुस्तकें हमारे जीवन की पथ प्रदर्शक है। उनके द्वारा हम जीवन के गूढ़तम रहस्यो को समझने की चेष्टा करते हैं। महान दार्शनिक सिसरो के अनुसार 'A room without book is a without soul' ससार के महान व्यक्तियो ने सदा पुस्तकों द्वारा अपने को प्रेरित किया है। ना हम विद्यालय मे पुस्तकालय के महत्त्व पर प्रकाश डालेंगे।

(१) ज्ञान का विकास—पिछले अध्याय म हमने इस बात का उल्लेख किया था कि माध्यमिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य छात्रा का सर्वांगीण विकास करना है—परन्तु प्रश्न उठता है कि क्या केवल पाठ्य-पुस्तको द्वारा ही छात्र का सर्वांगीण विकास सम्भव है? पाठ्य-पुस्तकें केवल परीक्षा प्राप्त कराने योग्य बनाती हैं। छात्र पाठ्य-पुस्तको को रट रटकर परीक्षा म पास हो जाते हैं इस कारण उनका ज्ञान भी पाठ्य-पुस्तको तक ही सीमित रहता है, परन्तु ज्ञान के विकास के लिए अन्य पुस्तकों

ा पढना भी आवश्यक है। पुस्तकालय में सभी प्रकार की पुस्तकें होती है जिन्हें ढकर छात्र अपने सामान्य ज्ञान की वृद्धि करते हैं।

(२) **स्वाध्याय का अभ्यास**—पुस्तकों का अध्ययन करके छात्र अपने अन्दर स्वाध्याय की आदत डालते हैं। पाठ्य-पुस्तकों से सम्बन्धित अन्य पुस्तकों को पढ़ने से उनके अन्दर अपने विषय के प्रति जिज्ञासा तथा रुचि उत्पन्न होती है।

(३) **पाठ्य सहगामी क्रियाओं में सहायक**—विद्यालय में होने वाली विभिन्न पाठ्य सहगामी क्रियाएँ—जैसे वाद विवाद तथा कविता प्रतियोगिता आदि में, पुस्तकालय द्वारा सहायता ली जाती है। छात्र इन क्रियाओं में भाग लेने के लिए विभिन्न पुस्तकों का अध्ययन करते हैं।

(४) **विभिन्न रुचियों का विकास**—पुस्तकालय, छात्रों में विभिन्न रुचियों का विकास करता है। वे अनेक विषयों पर पुस्तकें पढते हैं तथा अपनी विशेष रुचि तथा मानसिक सामर्थ्य के अनुसार अपने मस्तिष्क का विकास करते हैं। जिन छात्रों की विज्ञान में रुचि होती है वे विज्ञान की पुस्तकें पढकर तथा जिन्हें इतिहास में वे इतिहास की पुस्तकें पढकर अपने ज्ञान में वृद्धि पुस्तकालय द्वारा कर लेते है।

(५) **निधन छात्रों की सहायता**—प्रत्येक छात्र पुस्तकें नहीं खरीद सकता, परन्तु पुस्तकालय द्वारा वह पुस्तकें प्राप्त करके अपनी ज्ञान की पिपासा को शान्त कर सकता है। पुस्तकालय से पाठ्य पुस्तकें भी निधन छात्रों को विशेष काल के लिए प्रदान की जा सकती हैं।

(६) **अवकाश का सदुपयोग**—पुस्तकालय छात्रों को अवकाश का सदुपयोग करना सिखाता है। खाली घण्टों में छात्र इधर उधर घूमने के बजाय, पुस्तकालय में बैठकर अपना समय अध्ययन में लगाते हैं।

(७) **अध्यापकों के लिए उपयोगी**—पुस्तकालय छात्रों के लिए ही नहीं लाभदायक है वरन् अध्यापक भी पुस्तकालय से लाभ उठाते हैं। अध्यापकों को अपने बौद्धिक विकास के लिए पुस्तकालयों से बड़ी सहायता मिलती है। वे अपने विषय की अनेक पुस्तकें पढकर अपने ज्ञान की वृद्धि करते हैं।

(८) **सामूहिक अध्ययन के दोषों का निवारण**—पुस्तकालय द्वारा सामूहिक अध्ययन के दोषों को दूर किया जा सकता है। कक्षा में छात्रों की अधिक संख्या होने के कारण अध्यापक प्रत्येक छात्र को अधिक समय नहीं दे सकता। इस दोष को हल करने के लिए अध्यापक, छात्रों को किसी विशेष विषय से सम्बन्धित पर्याप्त पुस्तकें पढ़ने के लिए बता सकता है। छात्र उन पुस्तकों को पढकर कक्षा में पढ़े गए विषय को अपने मस्तिष्क में सरलता के साथ दृढीभूत कर सकते है।

(९) **मौन पाठ का अभ्यास**—पुस्तकालय का सबसे बड़ा लाभ, छात्रों में मौन पाठ का अभ्यास डालना है। पुस्तकालय में बैठकर छात्र जोर जोर से नहीं पढ सकते, उन्हें पुस्तकें मौन रूप से ही पढनी पडती है, इस प्रकार वे मौन पाठ की आदत डालते है।

(१०) **विद्यालय के पश्चात् भी शिक्षा**—पुस्तकालय छात्रो को अध्ययन म इतना शौकीन बना देता है कि शिक्षा समाप्त करने के पश्चात भी पुस्तक पढ़ना नही छोड़ते। इस प्रकार उनकी शिक्षा का क्रम भग नही होता।

पुस्तकालय का सगठन

विद्यालय म केवल पुस्तकालय खोल देने से ही छात्र लाभान्वित नहीं हो सकते। पुस्तकालय का ठीक प्रकार से लाभ उठाने के लिए उसका उचित स्थान तथा उत्तम पुस्तको का सकलन परम आवश्यक है। विद्यालय म पुस्तकालय को अधिक उपयोगी बनाने के लिए निम्न बात ध्यान म रखनी चाहिए—

पुस्तकालय की स्थिति—(क) विद्यालय म पुस्तकालय ऐसे स्थान पर हो जहाँ अत्यधिक शोरगुल न होता हो। यदि पुस्तकालय ऐसी जगह पर है जहाँ पर छात्रो का आना जाना रहता है तथा छोटी कक्षाएँ शोर मचाती हैं ऐसी अवस्था म पुस्तकालय म बैठकर अध्ययन करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। इस कारण यह आवश्यक है कि पुस्तकालय की स्थापना जहा तक हो सके शान्तिपूर्ण स्थान म की जाय। यदि स्कूल की इमारत दो मजिल की है तो पुस्तकालय भी दूसरी मजिल पर निर्मित करवाया जाय।

(ख) पुस्तकालय के लिए एक विशाल हॉल चुना जाय, जिसम पर्याप्त रोशनदान हो। हॉल की दीवारो का ऊँचा होना आवश्यक है। दीवारो को महान साहित्यकारो तथा इतिहासकारो के चित्रो से सजाया जाय जिससे छात्रो के मन म उनके विषय म जानने की इच्छा उत्पन्न हो। पुस्तकालय की सजावट उत्तम ढग से हो जिससे छात्र हर्षित होकर वहाँ आना चाहे, सेकण्डरी एजूकेशन कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार—" the library must be made the most a[illegible] tive place in the school so that student will be naturally drawn to it It should be housed in a spacious well lit hall (or room) with the walls suitably coloured and the rooms decorated with the flowers and artistically framed pictures and prints of famous painting " पुस्तकालय की सजावट का सबसे बडा लाभ यह होगा कि छात्र अधिक देर तक बैठकर अध्ययन करना चाहेंगे।

(ग) पुस्तकालय के फर्श पर चटाई बिछाई जाय जिससे जूतो का शोर छात्रों का ध्यान भग न करे। हॉल के एक ओर तीन या चार लम्बी मेजें बिछी हों जिन पर दैनिक समाचार पत्र तथा मासिक पत्र पत्रिकाएँ सजाकर रखी जायें। दूसरे भाग म open shelf की व्यवस्था हो। इस व्यवस्था के अन्दर पुस्तकों की जानकारी सुगमता से रहती है छात्र अपनी रुचि के अनुसार पुस्तक लेकर वहीं पुस्तकालय म बैठकर पढ़ते हैं तथा पढ़कर उचित स्थान पर रख देते हैं। इस प्रणाली का सबसे बड़ा लाभ यह है कि छात्रों को पुस्तकें सरलता से प्राप्त हो जाती हैं तथा एक समय म अनेक पुस्तकों का प्रयोग भी सरलता के साथ किया जा सकता है।

पुस्तकों का चुनाव—सकण्डरी एजूकेशन कमीशन म पुस्तको के उचित चुनाव पर अत्यधिक बल दिया गया है। कमीशन के मतानुसार—' the success of the library depends largely on the proper selection of books, journals and periodicals "

(क) पुस्तकालय में पुस्तके *विभिन्न स्तर की हो*। *पाठ्य पुस्तका* की प्रतियाँ पर्याप्त सख्या म हो जिससे अध्यापकों के अतिरिक्त छात्रो को भी प्रदान की जा सके। अंग्रेजी तथा हिन्दी शब्द कोषा का समावेश अवश्य किया जाय। पाठ्य-पुस्तका के अतिरिक्त सामान्य ज्ञान का विकास करने वाले तथा मनोरजन साहित्य को भी स्थान दिया जाय। परन्तु यह ध्यान म रखने की बात है कि पुस्तकालय म सस्ता, अश्लील साहित्य न प्रवेश करे। छोट बालको क लिए शिक्षाप्रद कथा, कहानियाँ अवश्य मँगाई जायँ।

(ख) पुस्तकों का मुख पृष्ठ छपाई आदि आकर्षक हो। छोट बच्चा की पुस्तका म चित्रो की सख्या का अधिक होना आवश्यक है। किशोर अवस्था के छात्रा के लिए महान नेताओ, साहित्यकारो तथा राजनीतिज्ञा की जीवनियाँ रखी जायँ।

(ग) अध्यापको के ज्ञान की वृद्धि के लिए उच्च कोटि की पुस्तको का सकलन किया जाय। प्रत्येक विषय पर अच्छी अच्छी पुस्तकों की अनेक प्रतियाँ होनी चाहिए। पुस्तकालय म शिक्षण या अध्यापन सम्बन्धी पुस्तका का भी होना आवश्यक है। शिक्षा मनोविज्ञान, अध्यापन की विधियाँ, पाठशाला प्रब ध आदि पुस्तकें अवश्य रखी जायँ।

(घ) मासिक तथा साप्ताहिक पत्र पत्रिकाएँ मँगाना भी परम आवश्यक है। हिन्दी तथा अंग्रेजी पत्रिकाएँ मँगाई जा सकती ह। य पत्रिकाएँ छात्रो की रुचि के अनुकूल तथा ज्ञानवर्द्धक हो। छोट बच्चा के लिए बाल-पत्रिकाएँ मँगाई जा सकती है। पत्र पत्रिकाएँ वाचनालय मे रखी जायँ। प्रधान अध्यापका को चाहिए कि वह योग्य अध्यापको की एक कमेटी बना दे, प्रति वर्ष अच्छी पुस्तका की एक सूची बनाकर पुस्तकालय के अध्यक्ष के पास भेज दिया करे, तथा उन पुस्तको को सुविधानुसार मँगाने का प्रयत्न करता रह। पुस्तकालय म प्रति वर्ष कुछ न-कुछ पुस्तका का आना परम आवश्यक है। प्रधान अध्यापको का चाहिए कि वह प्रति वर्ष पुस्तकालय पर व्यय होन वाली धन राशि को निश्चित कर दे। पुस्तकालय कमेटी प्रति वर्ष इस धन राशि स ज्ञानवर्द्धक पुस्तक मँगाती रह।

दुःख के साथ कहना पडता है कि हमारे देश के विद्यालया मे पुस्तकालया की दशा अत्यन्त शोचनीय है। कुछ विद्यालया म तो पुस्तकालय नाम-मात्र के लिए रहते हैं। ऐस पुस्तकालय म पुस्तकें छात्रों के लिए न होकर अध्यापका के लिए परीक्षा पास करने हेतु मँगाई जाती हैं। पुस्तक चयन म छात्रा की रुचि का थोडा भी ध्यान नही रखा जाता।

पुस्तकालय की व्यवस्था

पुस्तकालय में केवल पुस्तकों का चयन ही नहीं करना है, वरन् पुस्तकालय की इस प्रकार की व्यवस्था करनी है, जिससे छात्र अधिक लाभ उठा सकें। पुस्तकों की अत्यधिक मात्रा में होना व्यर्थ है, जब तक कि उनका उचित प्रकार से छात्र लाभ न उठा सकें। अतः पुस्तकालय को जहाँ तक हो सके छात्रोपयोगी बनाने का प्रयत्न किया जाय। नीचे हम पुस्तकालय को उपयोगी बनाने के उपायों पर प्रकाश डालेंगे—

(१) पुस्तकालय की देख रेख तथा व्यवस्था करने वाला जहाँ तक हो प्रशिक्षित व्यक्ति रखा जाय। यदि विद्यालय की आर्थिक स्थिति इतनी दृढ़ न हो कि अलग से पुस्तकाध्यक्ष रखा जा सके तब ऐसी अवस्था में पुस्तकालय व्यवस्था का भार किसी पुस्तक प्रेमी अध्यापक को भी सौंपा जा सकता है। यदि अध्यापक ने पुस्तकालय विज्ञान में विशेष योग्यता, प्रशिक्षण-काल में प्राप्त कर ली हो तो और भी अच्छा है। जिस अध्यापक पर पुस्तकालय का भार सौंपा जाय उसे अध्यापन कार्य से कुछ छूट अवश्य प्रदान की जाय। उसके अतिरिक्त कार्य को देखते हुए वेतन में भी वृद्धि करना परम आवश्यक है।

पुस्तकालय के अध्यक्ष को नम्र स्वभाव का तथा छात्रों को अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करने वाला होना चाहिए। अधिकांश पुस्तकालयों के पुस्तकाध्यक्ष छात्रों को पुस्तक प्रदान करने में अरुचि प्रदर्शित करते हैं, मुख्यतया छोटे बच्चों को तो वे पुस्तकें देना व्यर्थ का जंजाल समझते हैं। प्रधान अध्यापक को इस विषय में पूर्ण सचेत रहना चाहिए तथा समय समय पर उसे पुस्तकालय से इशू बुक (Issue Book) मँगाकर देखनी चाहिए कि छात्रों को पर्याप्त मात्रा में पुस्तकें दी जाती हैं या नहीं।

(२) पुस्तकालय की समस्त पुस्तकों की सूची इस प्रकार से बनाई जाय कि छात्र सरलता के साथ मन पसन्द पुस्तकें प्राप्त कर सकें। सूची विषय के अनुसार बनाई जा सकती है। पुस्तकालय को अधिक उपयोगी बनाने के लिए विभिन्न कक्षाओं के छात्रों के लिए विभिन्न विषयों की पुस्तकों की सूची बना दी जाय जिससे छात्रों को आवश्यकतानुसार पुस्तक छाँटने में किसी प्रकार की असुविधा न हो। कहानी, उपन्यास तथा सामान्य ज्ञान की पुस्तकों के लिए अलग से सूचीपत्र तैयार कर लिया जाय।

उपर्युक्त सुझावों के अतिरिक्त पुस्तकालय को अधिक उपयोगी बनाने के लिए कक्षा पुस्तकालय तथा विषय पुस्तकालयों की स्थापना भी आवश्यक है। नीचे हम दोनों प्रकार के पुस्तकालयों पर प्रकाश डालेंगे।

Q What are class rooms and sectional libraries? Show their utility even when a well organized general library exists in the school (L T 1956)

प्रश्न—कक्षा पुस्तकालय तथा विभागीय पुस्तकालय क्या हैं? एक अच्छे

[प्र]कार सगठित सामान्य पुस्तकालय होने पर भी विद्यालयों म इन पुस्तकालयो की उपयोगिता दिखाइए।

उत्तर—

कक्षा पुस्तकालय

विद्यालय म केन्द्रिय पुस्तकालय के अतिरिक्त प्रत्येक कक्षा के लिए अलग से पुस्तकालय की स्थापना आवश्यक है। इस प्रकार की व्यवस्था स छात्र अधिक से-अधिक लाभ उठा सकेंगे। कक्षा-पुस्तकालय की व्यवस्था कक्षा अध्यापक करें। एक कक्षा म ३८ ४० छात्रा से अधिक सख्या नही होती। अत अध्यापक छात्रा को पुस्तकालय का अधिक उपयोग करने का अवसर प्रदान कर सकता है। सेकण्डरी एजूकेशन कमीशन की राय मे—'A wise class teacher can use the class library effectively to develop correct reading habits and for various other educative purposes In a way he is in a position of advantage as compared with other teachers and if he himself love books he is sure to infect his children with his own love and enthusiasm" कक्षा पुस्तकालय का सबसे अधिक लाभ छोटी कक्षा के छात्रों को होता है, क्योकि कम आयु के होने के कारण वे किसी विशेष विषय म तो रुचि नही रखते, अत उन्हे कक्षा अध्यापक पुस्तक पढने की सलाह देकर प्रोत्साहित कर सकता है।

विषय पुस्तकालय

छोटी कक्षाओ के लिए जिस प्रकार कक्षा पुस्तकालय लाभदायक है उसी प्रकार उच्च कक्षाओ के लिए विषय पुस्तकालय। उच्च कक्षाओ मे छात्र किसी एक विषय से अनुराग रखते हैं तथा उच्च कक्षाओ के पाठ्यक्रम के विषय भी सीमित हो जाते हैं अत विषय पुस्तकालय द्वारा वे अपने विषय की पुस्तकें सरलता से प्राप्त कर सकते हैं। विषयज्ञ अध्यापक भी विषय पुस्तकालय से पुस्तक प्राप्त करके अपने ज्ञान की वृद्धि कर सकता है। एक विषय की विभिन्न पुस्तके एक जगह एकत्रित रहने से, छात्रों म उस विषय के प्रति रुचि उत्पन्न होती है।

विषय पुस्तकालय के अन्दर केवल पाठ्य पुस्तकें ही न हो, वरन् वृहत ज्ञान-पूर्ण मौलिक ग्रथो का भी समावेश किया जाय जिससे छात्र अपने विषय का सच्चा ज्ञान प्राप्त कर सकें। अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह अपने विषय के छात्रों को विषय पुस्तकालय का अधिक-से-अधिक प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करे।

कक्षा-पुस्तकालय से लाभ

(क) कक्षा पुस्तकालय छोटी कक्षा के छात्रों के लिए अधिक लाभदायक सिद्ध होता है, क्योंकि इस अवस्था म छात्र किसी विशेष विषय म रुचि न रखकर सामान्य विषयो म रुचि रखते हैं।

(ख) कक्षा के छात्रो की सख्या कम होने के कारण पुस्तकालय से पुस्तक सरलता से प्राप्त हो जाती हैं।

(ग) कक्षा-अध्यापक प्रणाली वाले विद्यालयों के लिए कक्षा पुस्तकालय परम लाभदायक हैं।

(घ) अध्यापक भी शिक्षण करते समय पुस्तकों का प्रयोग सरलता से कर सकता है।

विषय पुस्तकालय से लाभ

(क) उच्च कक्षाओं में विषय-पुस्तकालयों के बिना काम नहीं चल सकता।

(ख) विषय विशेषज्ञ अपने ज्ञान की भूख विषय पुस्तकालय में ही मिटा सकता है।

(ग) उच्च कक्षाओं के छात्र किसी विषय को समझने के लिए अपने विषय की उच्च पुस्तकों को पढ़ना पसन्द करते हैं। अतः ऐसी दशा में विषय पुस्तकालय का महत्त्व बढ़ जाता है।

वाचनालय

पुस्तकालय, केवल पुस्तकों के आदान-प्रदान करने का स्थल ही न रह वरन् उसमें छात्रों के लिए दैनिक समाचार तथा साप्ताहिक पत्र आदि पढ़ने की व्यवस्था का होना भी आवश्यक है। अतः पुस्तकालय के एक भाग में एक वाचनालय की स्थापना की जाय। वाचनालय के अन्दर उचित मात्रा में छात्रों के बैठने के लिए फर्नीचर की व्यवस्था की जाय। अंग्रेजी तथा हिन्दी भाषा के दैनिक पत्र तथा प्रसिद्ध मासिक पत्रिकाएँ आदि नियमित रूप से आती रहे, जिन्हें पढ़कर छात्र अपने को संसार के समाचारों से अवगत कराते रहेंगे तथा उनसे सामान्य ज्ञान की वृद्धि भी स्वतः होती रहेगी। वाचनालय में छोटे बच्चों की पत्र-पत्रिकाएँ रखना परम आवश्यक है।

समय-विभाग चक्र और पुस्तकालय

पुस्तकालय कितना ही श्रेष्ठ क्यों न हो परन्तु यदि छात्रों को उसके उपयोग का अवसर ही न प्राप्त हो तो वह व्यर्थ हो जाता है। समय-विभाग चक्र बनाते समय इस बात का अवश्य ध्यान रखा जाय कि छात्रों को कम से कम एक घण्टा पुस्तकालय में अध्ययन करने के लिए अवश्य मिल जाय। इस प्रकार की व्यवस्था से सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि पुस्तकालय में छात्रों की एक ही समय भीड़ नहीं लगेगी तथा पुस्तकाध्यक्ष को भी पुस्तकें प्रदान करने में सरलता होगी।

पुस्तकालय विद्यालय के समय सदा खुला रहना चाहिए। यदि हो सके तो ग्रीष्म अवकाश तथा लम्बी छुट्टियों में भी पुस्तकालय खुला रहे तो छात्र उसका प्रयोग कर सकेंगे।

२६

विद्यालय और समाज

SCHOOL AND COMMUNITY

Q How could a functional two way relationship be established between a school and community to which it belong Suggest specific measures (A U, B T, 1958)

एक विद्यालय तथा समाज में किस प्रकार सक्रिय सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है ? इसके लिए उपयुक्त साधन बताइए।

Or

Write a short note on co operation between school and community (A U, B T 1955)

विद्यालय तथा समाज के मध्य सहयोग पर टिप्पणी लिखो।

Or

"Nothing can be mere demoralizing to the child than lack of unity and harmony between his social life and his school life" Discuss

What measures would you adopt to strength the school community relationship ? (B Ed 1967)

"बालक के सामाजिक जीवन और शाला के जीवन मे एकता और समन्वय की कमी से बढ़कर और कोई ऐसी चीज नहीं है जो उसे नैतिक पतन की ओर ले जा सके।" व्याख्या कीजिए।

आप किन उपायों से शाला एवं समाज के सम्बन्धों को सुदृढ़ बनायेंगे ?

उत्तर—

विद्यालय और समाज के सहयोग का महत्व

बालक का जन्म समाज म होता है। अत उस पर समाज का प्रभाव पडता है। जैसा समाज होगा वैसा ही वहाँ का बालक समुदाय होगा। यदि समाज म

दूषित तत्व पर टर गए है तो उसके सदस्य भी दूषित मनोवृत्ति के होंगे। अतः समाज की उन्नति के लिए आवश्यक है कि बालकों या समाज के सदस्यों के लिए उचित शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय। समाज के सदस्यों की शैक्षिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही विद्यालय का निर्माण किया गया है जो कि एक महत्वपूर्ण इकाई है। दोनों में पारस्परिक सम्बन्ध है तथा दोनों का उत्थान पतन एक दूसरे पर आधारित है। परन्तु समाज के शिक्षा सम्बन्धी प्रयत्न तभी सफल हो सकते हैं जबकि समाज की समस्त इकाइयाँ या संस्थाएँ सहयोग से कार्य करें। अतः पाठशाला तथा समाज दोनों को एक दूसरे के प्रति सहयोगपूर्ण भावना रखना चाहिए। दूसरे शब्दों में समाज को विद्यालय की आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिए और विद्यालय को समाज की।

परन्तु यह दुःख की बात है कि देश में विद्यालय और समाज के मध्य गहरी खाई है। विद्यालयों का समस्त वातावरण कृत्रिम होता है। छात्रों को केवल पुस्तकीय शिक्षा प्रदान की जाती है, जिसे समाप्त करने के बाद वे समाज के निष्क्रिय सदस्य बनकर रह जाते हैं। समाज की क्या माँग है इस पर विद्यालयों में तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता। विद्वान् सैयदैन के शब्दों में—"हम इस बात को भूल जाते हैं कि शिक्षा चाहे वह स्कूलों की शिक्षा हो या कालेजों की, कोई ऐसी क्रिया नहीं है जिसका किसी दूसरी चीज से सम्बन्ध ही न हो बल्कि जीवन के साथ हर कदम पर उसका सम्बन्ध है और जिन शक्तियों का भी उस पर प्रभाव पड़ता है उनके प्रति वह संवेदनशील होती है। स्कूल सामाजिक जीवन का एक आवश्यक निचोड़ होता है बल्कि यह कहना उचित होगा कि उसे ऐसा होना चाहिए, जिसमें समाज की मुख्य उपयोगी गति विधियों के तत्व प्रतिबिम्ब होते हैं।" आगे वे बताते हैं—'इसलिए यह आवश्यक है कि स्कूल के बाहर के जीवन के साथ स्कूल का सजीव सम्बन्ध रहे और वह एक बदलते हुए तथा गतिशील वातावरण के लिए बच्चों को शिक्षा दे।"

विद्यालय को समाज के निकट लाने के उपाय

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि विद्यालय और समाज का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। माध्यमिक शिक्षा आयोग में उल्लेख किया गया है— 'स्कूल एक वृहत् समुदाय के अन्तर्गत एक छोटा समुदाय है जिसमें वैसी ही प्रवृत्तियाँ, धारणाएँ तथा व्यवहार की विधियाँ प्रतिबिम्बित होती हैं जो राष्ट्रीय जीवन में प्रचलित होता है।' (School is a small community within a large community and that the attitudes values and modes of behaviour which have currency in national life are bound to be reflected in the schools) विद्यालय की समस्त क्रियाओं के संगठन में हम समाज की आवश्यकताओं का अवश्य ध्यान रखना होता है। हमें यह ध्यान रखना है—' यह तो निश्चित है कि व्यक्ति को (स्कूल में) प्रशिक्षित किया जाना चाहिए, परन्तु बाहर के वृहत्तर समाज की

आवश्यकताओं, तकाजों और आदर्शों के प्रसंग में, और कुछ हद तक उनके निमित्त ही उसे प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। और चूँकि समाज के ये तकाजे हमेशा बदलते रहते हैं, बढ़ते रहते हैं और उसमें सुधार होते रहते है, इसलिए यह आवश्यक है कि स्कूल के बाहर के जीवन के साथ स्कूल का सजीव सम्बन्ध रहे और वह बदलते हुए तथा गतिशील वातावरण के लिए बच्चों को शिक्षा दे।"[1] प्रो० नन (T P Nunn) का भी यही मत है—"A school is and ought to be a reflection of the community A nation's school are an organ of its life whose special function is to consolidate its spiritual strength to maintain its continuity to secure its past achievements, to guarantee its future" विद्यालय को समाज के निकट लाने के लिए हम निम्न बातों की ओर ध्यान देना चाहिए—

(१) विद्यालय का पाठ्यक्रम समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल हो—इस विषय में प्रो० आल्सेन का कथन उल्लेखनीय है। उनके अनुसार—'The curriculum should therefore be organized around a direct study of the local and regional community's physical setting organization, class and caste structure basic activities, climate of opinion, and needs problems as these and similar factors affect individual and group welfare" वास्तव में विद्यालय और समाज के सम्पर्क मधुर बनाने के लिए, विद्यालय के पाठ्यक्रम को सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के आधार पर बनाया जाय। पाठ्यक्रम में केवल साहित्यिक विषय ही न हों, वरन् उसमें उन विषयों को सम्मिलित किया जाय जिनसे कि उनमें सामाजिक कुशलता का विकास हो। दूसरे शब्दों में, सामाजिक क्रियाओं को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाय।

(२) पाठ्यक्रम लचीला हो—देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् हमारे सामाजिक ढाँचे में तीव्र गति से परिवर्तन हुए हैं। अतः ऐसी दशा में पाठ्यक्रम को समाज की गति के अनुसार परिवर्तनशील या लचकदार बनाया जाय। पाठ्यक्रम इस प्रकार का हो जो कि समाज की बदलती आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। इस कारण पाठ्यक्रम का लचीला होना परम आवश्यक है।

(३) पाठ्यक्रम में जीविकोपार्जन के उद्देश्य को न भूला जाय—पाठ्यक्रम निर्माण में जीविकोपार्जन के उद्देश्य को न भूला जाय। वर्तमान विद्यालयों के प्रति जनता में असन्तोष का प्रमुख कारण यह है कि विद्यालयों में कोई भी ऐसा विषय नहीं पढ़ाया जाता जो शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् छात्रों को जीविका कमाने में सहायता प्रदान करता हो। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि पाठ्यक्रम के अन्दर ऐसे विषय रखे जायें जो छात्रों में जीविकोपार्जन की क्षमता उत्पन्न कर सकें। छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करना परम आवश्यक है।

---

[1] के० जी० सैयदैन शिक्षा की पुनर्रचना।

(४) **शिक्षण में क्रिया को महत्त्व दिया जाय**—शिक्षा प्रणाली में भी परिवर्तन किया जाय। कक्षा में छात्रों को भाषण प्रणाली से शिक्षा प्रदान न करके क्रिया (Activity) द्वारा शिक्षा प्रदान की जाय। छात्र जो कुछ भी सीखें करके सीखें (Learning by doing)। उन्हें सामाजिक क्रियाओं का भी अनुभव करने दिया जाय। कर्म द्वारा प्राप्त की गई शिक्षा छात्रों को व्यावहारिक बनाती है।

(५) **विद्यालय के कार्य-क्रम में समाज के सदस्य भाग ले सकें**—विद्यालय के कार्य-क्रम में समाज के व्यक्तियों को भी भाग लेने का अवसर मिले। विद्यालय में होने वाले समारोह, नाटक आदि कार्यक्रमों में समाज के सदस्य भी भाग लें तथा उन्हें देखने की सुविधाएँ प्रदान की जायें। विद्यालय में कुछ ऐसे भी कार्य रखे जायें जो स्थानीय प्रौढ़ों की रुचि के अनुकूल हों। दूसरे शब्दों में विद्यालय को समाज का केन्द्र बनाया जाय जिससे समाज के सदस्य उसे अपना समझें।

(६) **प्रौढ़ शिक्षा का प्रबन्ध**—हमारे देश में अशिक्षितों की संख्या अपार है। अतः अशिक्षा के अन्धकार को दूर करने के लिए विद्यालय में प्रौढ़ों की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय। शाम के समय प्रौढ़ शिक्षा का प्रबन्ध करने से समाज और विद्यालय के सम्बन्धों में मधुरता आयेगी। वे एक दूसरे को अपना समझेंगे।

(७) **विद्यालय को समाज के निकट लाया जाय**—केवल समाज को ही पाठशाला के निकट नहीं लाना है, वरन् विद्यालय को भी समाज के निकट पहुँचाना है। इसके लिए विद्यालय के अध्यापक, छात्र आदि को सामाजिक क्षेत्र में प्रवेश करना होगा। शिक्षकों को अपने छात्रों में यह भावना भरनी होगी कि विद्यालय समाज का अभिन्न अंग है। परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है जब कि अध्यापक अपने समाज की दशा से पूर्णतया परिचित हों तथा सामाजिक जीवन में सक्रिय भाग लेते हों।

(८) **छात्रों को सामाजिक जीवन का ज्ञान कराया जाय**—बालकों को सामाजिक जीवन का ज्ञान कराने के लिए समय समय पर भ्रमण, समस्याओं से परिचित कराया जाय। कभी कभी समाज सेवा का संगठन कर श्रमदान, प्रौढ़ शिक्षा प्रसार आदि कार्यक्रम, ग्रामीण क्षेत्र में आयोजित किये जा सकते हैं। इस प्रकार के आयोजनों से छात्र समाज के निकट आयेंगे तथा उसकी आवश्यकताओं को भली प्रकार समझ सकेंगे।

(९) **शिक्षक-अभिभावक सहयोग की स्थापना**—विद्यालयों के शिक्षकों को अभिभावकों से मधुर सम्पर्क बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। समय पर उन्हें अभिभावकों के निवास-स्थान पर जाकर बालक के पढ़ने लिखने के सम्बन्ध में सूचना देनी चाहिए। विद्यालय के समारोह आदि के अवसर पर अभिभावकों को बुलाना न भूला जाय।

ग्रामीण विद्यालय तथा ग्रामीण समाज

हमारे देश की अधिकांश जनता गाँवों में बसती है। अतः देश में शिक्षा

का प्रसार करने के लिए गावों की ओर विशेष रूप ध्यान देना होगा। परन्तु हमारे ग्रामीण निवासी शिक्षा के महत्त्व को न समझने के कारण, स्वयं तथा अपने बालकों के पढने लिखने म अरुचि दिखाते हैं। ग्रामीण-जनता के अन्दर शिक्षा के प्रति उदासीनता का प्रमुख कारण विद्यालयों म प्रदान की जाने वाली सारहीन तथा अनुपयोगी शिक्षा है। ग्रामीण विद्यालयों का पाठ्यक्रम गाव की आवश्यकताओं को देखकर नहीं बनाया जाता। पाठशाला छोडने के बाद छात्र गाँव के सामाजिक जीवन म विद्यालय की शिक्षा का तनिक भी उपयोग नहीं कर पाते। इस प्रकार विद्यालय और ग्रामीण समाज के मध्य खाई दिन प्रति दिन गहरी होती जा रही है।

विद्यालयों को ग्रामीण समाज के निकट लाने के लिए ग्रामीण विद्यालयों के पाठ्यक्रम म परिवर्तन करना होगा। कृषि शिक्षा को पाठ्यक्रम म रखना परम आवश्यक है। उन्नत खेती करने के, खाद बनाने के तथा बीज सुरक्षित रखने के विभिन्न तरीके सिखाये जायें। पाठ्यक्रम म पशु चिकित्सा को भी स्थान दिया जाय।

समय समय पर ग्रामीण विद्यालय के छात्रों को तथा शिक्षकों को ग्रामीणों के पास जाकर उनको स्वास्थ्य के सामान्य सिद्धान्तों का भी परिचय कराना चाहिए। गाँव म सफाई किस प्रकार रखी जा सकती है, आदि व्यावहारिक सुझाव दिये जायें।

बालिकाओं की शिक्षा तथा प्रौढ शिक्षा के प्रसार के लिए विद्यालय को पूरा प्रयत्न करना चाहिए। यदि शिक्षक, ग्रामीणों म फैले अज्ञान को दूर करने के तथा अन्धविश्वासों को मिटाने का प्रयत्न ह्य स समय समय पर करते रहेंगे तो विद्यालय और समाज की खाई शीघ्र ही पट जायेगी। इस विषय म आर० पी० शर्मा का कथन उल्लेखनीय है—'शिक्षा समाज के जीवित रहने की प्रक्रिया है। हमारा ग्राम्य समाज तभी जीवित रह सकता है जब कि उसके लिए शिक्षा की व्यवस्था हो। यह शिक्षा ग्राम्य जीवन ग्राम्य समस्याओं, ग्राम्य वातावरण म सम्बन्ध रखने वाली होगी। शिक्षालय ग्राम्यों के बौद्धिक केन्द्र बनें और गावों मे प्रकाश फैलावें।"

एक आदर्श व्यवस्था म शिक्षालय समाज का लघु रूप होना चाहिए। अत हमारे ग्रामों के स्कूल ग्राम्य समाज के लघु रूप होने चाहिए। वे ग्राम्य समाज, ग्राम्य व्यवस्था समस्याओं आदि के ऊपर आधारित हों, परन्तु यह खेद का विषय है कि हमारे तरुण तथा नगर के पढ़े लिखे ग्राम्य जीवन को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं।

प्रत्येक ग्रामीण विद्यालय मे प्रौढ़ पाठशालाओं का आयोजन हो तथा समय-समय पर उनमे सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन भी किया जाय। अन्त मे हम माध्यमिक शिक्षा आयोग के इस कथन का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए—

'Students should take an active part in the various forms of social service for the good of the community, the school will not only inculcate the ideals and a desire for social service but also provide opportunities and the necessary material facilities If the village

of the town or the particular area of the city in which the school is located is unclean or happens to be infested with mosquitoes and flies carrying disease or compelled to use water that is impure, it will be the duty of the students to rouse the conscience of the local community to these evils and handicaps through effective forms of propaganda and also to do whatever they can, to improve this state of affairs and to win the enlightened co operation of public in this task."

स्थानीय स्रोतों का शिक्षण में उपयोग
(Exploitation of local resources for educational purpose)

Q. Estimate the value of 'use of local resources for educational purpose'

प्रश्न— 'स्थानीय साधनों का शिक्षण में प्रयोग' मूल्यांकन करो।
(A U, B T 1969)

उत्तर—ऊपर हमने उल्लेख किया था कि शिक्षा का सम्बन्ध केवल विद्यालय की चहार दीवारी तक ही सीमित नहीं है। विद्यालय में हम छात्रों को केवल पुस्तकीय ज्ञान ही प्रदान कर सकते हैं परन्तु छात्रों को जीवन की यथार्थ समस्याओं का ज्ञान कराने के लिए हम उन्हें विद्यालय की चहार दीवारी से बाहर निकालना होगा और उन्हें बताना होगा कि जो बातें पुस्तकों में सैद्धान्तिक ज्ञात होती हैं वे व्यावहारिक जीवन में कैसे घटित होती हैं। इस प्रकार की शिक्षा देने के लिए हमें विद्यालय या नगर के निकट के स्थानीय स्रोतों (Local resources) का सहारा करना होगा। किसी भी विषय के शिक्षण में स्थानीय स्रोतों का प्रयोग प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है। इतिहास के शिक्षण में स्थानीय ऐतिहासिक स्थलों से छात्रों को दिखाकर इतिहास के प्रति उनमें रुचि उत्पन्न की जा सकती है। इसी प्रकार विज्ञान, भूगोल तथा अर्थशास्त्र जैसे विषयों के अध्यापन को भी रोचक बनाया जा सकता है। स्थानीय स्रोतों का उचित ढंग से प्रयोग करने के लिए हमें पर्यटन (Excursion) का विशेष रूप से सहारा लेना पड़ेगा।

पहले पर्यटन द्वारा शिक्षा देने की कोई बात सोच भी नहीं सकता था। छात्रों को केवल पुस्तकीय शिक्षा ही प्रदान की जाती थी। शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान के प्रवेश ने इस विचारधारा का खण्डन किया। विद्वान पेस्टालॉजी ने ज्ञान प्राप्त करने के लिए क्षेत्रीय कार्य (Field work) को विशेष महत्त्व दिया। इसी प्रकार विद्वान रूसो अपने इमील (Emile) नामक बालक को भ्रमण के माध्यम से शिक्षा प्रदान करना उचित समझते थे। उनके विचार में पुस्तकें पढ़कर ज्ञान प्राप्त करने के बजाय प्रकृति निरीक्षण या भ्रमण करके जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है वह कहीं उत्तम तथा श्रेष्ठ होता है। पाश्चात्य देशों में आजकल पर्यटन विधि को प्रमुख स्थान दिया जा रहा है। वास्तव में अनेक ऐसे तथ्य तथा बातें हैं जिन्हें कक्षा में भाषण या व्याख्यानों के माध्यम से बालकों को हम नहीं समझा सकते जितना कि

त्यक्ष भ्रमण या पर्यटन द्वारा दिखाकर। एक विद्वान के शब्दों में—'बालक को घर अथवा विद्यालय में पुस्तकों अथवा व्याख्यानों द्वारा इतनी अच्छी शिक्षा नहीं दी जा सकती, जितनी कि उसे भ्रमण कराके दी जा सकती है। कक्षा में हम बालकों को ऐसी अनेक बातों के विषय में सूचनाएँ देते हैं जिनको वे मूल रूप से देखे बिना अच्छी तरह समझ नहीं सकते। हम प्राय बालकों को बिजलीघर के संचालन, नगर की जल व्यवस्था आदि की जानकारी देते हैं, किन्तु जब तक वे इनको अपनी आँखों से देख नहीं लेते तब तक उनके विचार पुष्ट नहीं बन पाते।" नगर में स्थित डेरी-फार्म, कारखाने देखकर ही छात्र यथार्थ ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न विषयों के शिक्षण को रोचक तथा प्रभावशाली बनाने के लिए स्थानीय स्रोतों का उपयोग विशेष लाभदायक सिद्ध होगा।

अध्यापक का कर्त्तव्य है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह समय-समय पर भ्रमण या पर्यटन योजनाओं का प्रबन्ध करे। पर्यटन को सफल बनाने के लिए निम्न बातों पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए—

(क) पर्यटन के स्थान का चुनाव (जो विषय के अनुकूल हो)
(ख) पर्यटन की तैयारी
(ग) पर्यटन के लिए सामग्री
(घ) पर्यटन का संगठन
(ङ) पर्यटन का मूल्यांकन

विभिन्न विषयों के शिक्षण में स्थानीय स्रोतों का उपयोग

इतिहास के शिक्षण में—प्राय कहा जाता है कि इतिहास एक नीरस विषय है। परन्तु विषय कोई नीरस नहीं होता वरन् उसके शिक्षण की प्रणाली नीरस होती है। इतिहास शिक्षण के नीरस होने का प्रमुख कारण उसे केवल कक्षा की चहार दीवारी का विषय माना गया है। परन्तु स्थानीय इतिहास का अध्ययन कक्षा के बाहर ही हो सकता है जैसा कि श्री त्यागी लिखते हैं—"स्थानीय इतिहास को समझने के लिए पर्यटन अति आवश्यक है। पर्यटन के लिए छात्रों को बाहर ले जाकर स्थानीय खण्डहर प्रसिद्ध भवन, स्मारक, मकबरे किले आदि को दिखाना चाहिए और बताना चाहिए कि यह उन लोगों की सभ्यता एवं उन्नति का परिणाम है कि इतना समय व्यतीत होने पर भी ये इसी या किसी अंश तक गिरी हुई दशा में खड़ी हैं। इस प्रकार ये ऐतिहासिक अवशेष छात्रों को अतीत काल के समझने में सहायता करते।" यदि छात्र मुगलकालीन संस्कृति का अध्ययन कर रहे हैं तो उन्हें आस-पास के मुगल कालीन भवनों का निरीक्षण कराना उचित होगा। किसी भवन या युद्ध स्थल को केवल दिखा देने मात्र से काम नहीं चलेगा, वरन् अध्यापक को उससे सम्बन्धित प्रश्न भी करने चाहिए। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि बालक आस-पास की वस्तुओं के प्रति विशेष रुचि रखता है। अत यथासम्भव स्थानीय स्रोतों का शिक्षण में अधिक से अधिक प्रयोग किया जाय।

भूगोल के शिक्षण में—इतिहास के समान भूगोल के शिक्षण में स्थानीय स्रोतों का उपयोग प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है। विद्वान हरनारायण सिंह लिखते हैं—"भूगोल वास्तविकता का विषय है। स्थानीय भूगोल छात्रों की निरीक्षण शक्ति को सरलता प्रदान करता है।" वे आगे लिखते हैं—"यदि बालक के पास पड़ोस में कोई कारखाना है तो वहाँ पर बालकों को ले जाकर, कारखाने में लाया गया कच्चा माल, कारखाने के काम में लाये जाने वाली शक्ति और उसका उद्गम, बना हुआ माल लाने और ले जाने के मार्ग, कार्य करने वाले मजदूर आदि का निरीक्षण करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।" स्थानीय स्रोतों का उपयोग प्राकृतिक भूगोल के अध्ययन में भी सफलता से किया जा सकता है। आस पास के पर्वत, नदियाँ, तालाब, तथा झील आदि का निरीक्षण छात्रों के लिए रोचक तो होगा ही परन्तु साथ ही ज्ञानवर्द्धक भी होगा।

विज्ञान के शिक्षण में—विज्ञान को केवल कक्षा या प्रयोगशाला का ही विषय न माना जाय। अतः विज्ञान के शिक्षण में भी स्थानीय स्रोतों का उपयोग किया जाना चाहिए। विज्ञान के अध्यापक का कर्त्तव्य है कि छात्रों को समय समय पर कक्षा के बाहर पर्यटन के लिए ले जाय। वनस्पति विज्ञान का शिक्षण पर्यटन के माध्यम से अधिक रोचक तथा प्रभावशाली बनाया जा सकता है। छात्र बाग बगीचों में घूमकर ही फल फूल, पत्तियों तथा उनसे सम्बन्धित विभिन्न बातों का ज्ञान प्राप्त कर सकते है। प्रायः देखा गया है कि छात्र कक्षा में पेड़ पौधों के चित्र देखकर जो ज्ञान प्राप्त करते हैं उसमें नीरसता होती है तथा छात्र बाहर जाकर पेड़ पौधों को पहचान भी नहीं पाते। इसके विपरीत प्राकृतिक वातावरण में वे यथार्थ वस्तुओं को देखते हैं जिससे शिक्षण में सरलता आती है और वे उनका ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करते हैं। भौतिक विज्ञान के लिए विद्यार्थियों को रेडियो स्टेशन, टेलीफोन एक्सचेंज, बिजली घर, इंजन की मरम्मत के वर्कशाप आदि का निरीक्षण कराया जाना चाहिए।

उपर्युक्त तीनों विषयों के अतिरिक्त अन्य विषयों के शिक्षण में भी स्थानीय स्रोतों का उपयोग किया जा सकता है। अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह अपने विषय को रोचक तथा सरस बनाने के लिए इनका यथासम्भव उपयोग करे।

२७

उत्तर प्रदेश का शिक्षा-विधान
EDUCATION CODE OF U P

Q Write short note on the revised Education Code

प्रश्न—उत्तर प्रदेश के सशोधित शिक्षा-विधान के ऊपर सक्षिप्त टिप्पणी लिखो ।

उत्तर—विद्यालयो से सम्बन्धित पाठ्यक्रम छात्रो के प्रवेश, शिक्षा व्यवस्था, परीक्षा का सगठन, छात्रो की तरक्की, अध्यापको की नियुक्ति, अवकाश, वेतन स्तर आदि का विस्तार से उल्लेख उत्तरप्रदेश द्वारा प्रकाशित 'शिक्षा-विधान' (Education Code) म होता है । सम्पूर्ण विधान १२ अध्यायों मे विभाजित ह—

1 Definitions and Classification
2 Controlling and Inspecting Agencies
3 Universities, Degree Colleges and Oriental Institutions
4 Recognized Higher Secondary Schools
5 Recognized Junior Basic (Primary) and Senior Basic (Junior High) Schools for boys
6 Training Institutions
7 Examinations
8 Government Stipends
9 Grant in Aid to Recognized Institutions
10 Grant in Aid to Local Bodies
11 Text books and other books for use in Basic Schools, Training Colleges, Libraries for Prizes
12 Miscellaneous

1 Definitions and Classification

उत्तर प्रदश की शिक्षा का नीचे लिखे स्तरो म विभाजित किया गया ह—

(क) पूव बसिक स्तर

(ख) जूनियर बेसिक स्तर (कक्षा १ से ५ तक)

(ग) सीनियर बेसिक स्तर (जूनियर हाईस्कूल)
(घ) उच्चतर माध्यमिक स्तर—
१—हाईस्कूल स्तर—कक्षा ९ और १०
२— इण्टरमीडिएट स्तर—कक्षा ११ और १२
(च) विश्वविद्यालयीय स्तर—कक्षा १३ स १६ तक।
सस्थाओ का वर्गीकरण—मा यता प्राप्त सस्थाएँ व हैं, जो माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा निर्धारित नियमो का पालन करती है। य दो प्रकार की हैं—
(अ) सावजनिक प्रब ध के अधीन—
१—व राजकीय शिक्षा सस्थाएँ जिनका प्रब ध शिक्षा विभाग स्वय करता है।
२—जिला-परिषद की शिक्षा सस्थाएँ।
३—नगरपालिका के प्रब ध की शिक्षा सस्थाएँ।
(ब) गैर सरकारी या व्यक्तिगत प्रब ध के अधीन शिक्षा सस्थाएं—
१—ये अधिकाशत हमारे प्रदश म सहायता प्राप्त शिक्षा सस्थाए हैं। ग गैर-सरकारी होने के बावजूद मा यता प्राप्त हैं। इ ह प्रदश सरकार सावजनिक निधि (Public Fund) स अनुदान देती है।
२—सहायता रहित वे शिक्षा संस्थाएँ है, जि ह सरकार सावजनिक निधि स कुछ सहायता प्रदान नही करती। जिन डिग्री कालजो म ११वी व १२वीं कक्षाएँ है उन पर वे ही नियम लागू होगे जो अ य इण्टरमीडिएट कालजो पर लागू होते हैं।

2 Controlling and Inspecting Agencies

उत्तर प्रदेश की शिक्षा सहिता मे निय त्रण और निरीक्षण के साधनों का निम्न ढग से उल्लेख किया गया है—

शिक्षा सचालक शिक्षा विभाग का अध्यक्ष है। उसकी सहायता के लिए हैड क्वाटर पर एक सयुक्त सचालक, अनेक उपसचालक रहते है। कुछ सहायक उप सचालक एक उपसचालिका तथा एक पुरुष तथा एक स्त्री वयक्तिक सहायक भी है।

पैरा ८ के अनुसार विद्यालयो के निरीक्षण और निय त्रण के लिए राज्य को आठ क्षत्रो (Regions) म विभाजित किया गया है। आठ म से सात क्षत्र एक उप शिक्षा सचालक के अधीन हैं। इन सातो क्षत्रो के हैडक्वाटर—मरठ आगरा बरेली, इलाहाबाद वाराणसी लखनऊ और गोरखपुर म हैं। आठवाँ क्षत्र नैनीताल म है जो कि जिला विद्यालय निरीक्षक के अधीन है।

परा ६ के अनुसार प्रत्यक जिल म एक जिला विद्यालय निरीक्षक होता है जिसका काम बालको के विद्यालयो का निरीक्षण करना है। जिला विद्यालय निरीक्षक क्षत्रीय उपशिक्षा सचालक के प्रशासकीय निय त्रण म है। आठो जिलो म प्रत्येक जिला विद्यालय निरीक्षक की सहायता के लिए सम्बद्ध विद्यालय निरीक्षक

। सम्बन्ध (Associate) विद्यालय निरीक्षक जिला विद्यालय निरीक्षकों के अधीन [र]हते हैं।

राजकीय माध्यमिक संस्थाओं और प्रशिक्षण विद्यालयों के प्रधानाचार्य जिला-[वि]द्यालय निरीक्षक के प्रशासकीय नियन्त्रण में हैं। केवल इलाहाबाद और लखनऊ [के] राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों पर ये नियम लागू नहीं होते।

पैरा ७ के अनुसार जिला विद्यालय निरीक्षक के अधीन एक विद्यालय उप-निरीक्षक है। जिले के बेसिक विद्यालयों ग्रामीण पुस्तकालयों और वाचनालयों का निरीक्षण करने का उत्तरदायित्व उसके ऊपर है। प्रत्येक जिले में अनेक (Sub-Deputy Inspectors of Schools) रहते हैं। ये प्रत्येक जिले में विद्यालय उप-निरीक्षक की सहायता करते हैं।

पैरा ८ के अनुसार लडकियों के स्कूलों के निरीक्षण और नियन्त्रण के लिए एक बालिका विद्यालय निरीक्षिका है। यह शिक्षा संचालक के प्रति उत्तरदायी है। क्षेत्रीय निरीक्षिकाओं को सहायता देने के लिए पन्द्रह जिलों में एक बालिका विद्यालय उप निरीक्षिका है और बाकी छत्तीस जिलों में एक बालिका विद्यालय सहायक निरीक्षिका है।

पैरा १४ में जिला विद्यालय निरीक्षक के अधिकारों की विस्तृत विवेचना की गयी है।

पैरा २४ के अनुसार जिला विद्यालय निरीक्षक दो वर्ष में कम-से-कम एक बार जिले में मान्यता प्राप्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों का निरीक्षण करेगा। इस प्रकार का निरीक्षण सामान्यतया तीन दिन का होगा। विद्यालय निरीक्षण की एक रिपोर्ट उपसंचालक को भेजी जायेगी तथा उसकी एक प्रतिलिपि निरीक्षित विद्यालय को भेजी जायगी।

पैरा ४३ के अनुसार निरीक्षिका उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में बालिकाओं की शिक्षा के तथा बेसिक शिक्षा के समस्त पक्षों का निरीक्षण कर सकता है। निरीक्षिका नवीन बालिका विद्यालयों की स्थापना की सिफारिश भी कर सकती है।

पैरा ४७ के अनुसार विद्यालय निरीक्षिका का सावास विद्यालयों (Residential schools) में छात्राओं के स्वास्थ्य पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। निरीक्षिका का कर्तव्य है कि वह छात्रावासों का उचित प्रकार से निरीक्षण करे तथा कमरे आदि के प्रकाश तथा अन्य आवश्यकताओं की रिपोर्ट दे।

अध्याय चार—७७—पाठ्यक्रम (Courses of Study)—कक्षा ९ से १२ तक के पाठ्यक्रम का निर्धारण 'Intermediate Board' के द्वारा किया जाता है। कक्षा ६ से ८ तक का निर्धारण शिक्षा विभाग द्वारा जैसा सीनियर बेसिक स्कूलों के लिए होता है।

७८—प्रत्येक विद्यालय के प्रधान को निर्धारित पाठ्यक्रम को सुविधानुसार व्यवस्थित करने का अधिकार है। विधान के अनुसार—"Heads of recognized

higher secondary school may, in conformity with the general principles that underline the curriculum make modifications in the distribution of the work in any subject among the various classes They may also regroup students in particular subjects independently of the recognized classification "

७९—शारीरिक श्रम की महत्ता देने के लिए तथा समाज सेवा की भावना भरने के लिए छात्रो को हाथ का काम या समाज सेवा करनी होगी।

८०—शिक्षा का माध्यम—शिक्षण की भाषा के माध्यम के विषय में 'Intermediate Board' के 'Prospectus' में दिया हुआ है। प्रास्पक्टस प्रतिवर्ष प्रकाशित होता है जिसका कि पालन प्रत्येक मान्यता प्राप्त विद्यालय को करना पड़ता है।

निर्धारित पाठ्य पुस्तक चाहे वह अँग्रेजी भाषा में हो उसे कोई भी विद्यालय प्रयोग में ला सकता है। अमान्य पाठ्य-पुस्तक का प्रयोग कोई भी मान्यता प्राप्त विद्यालय नहीं कर सकता है।

कक्षा में शिक्षण का माध्यम साधारणतया हिन्दी भाषा ही रहेगा। आवश्यकता पड़ने पर अध्यापक अंग्रेजी माध्यम का भी प्रयोग कर सकता है। छात्रों के उत्तर भी हिन्दी में आने चाहिए परन्तु कुछ छात्र इसमें कठिनाई का अनुभव करते हैं तो वे अंग्रेजी या अपनी मातृभाषा में भी उत्तर दे सकते हैं। श्यामपट पर वही भाषा प्रयोग में लायी जाय जिसे कक्षा के अधिकांश छात्र सरलता से समझ सकें।

वैज्ञानिक और तकनीकी शब्द अंग्रेजी में प्रयोग किए जा सकते हैं यदि उनके पारिभाषिक शब्द हिन्दी में नहीं मिल पाते हैं।

८१—शारीरिक व्यायाम (Physical Training)—प्रत्येक मान्यता प्राप्त विद्यालय में एक प्रशिक्षित 'Physical Training Instructor' की नियुक्ति का होना आवश्यक है। विद्यालय के प्रत्येक छात्र को शारीरिक व्यायाम की शिक्षा देना परम आवश्यक है। जूनियर कक्षाओं में छात्र सप्ताह में तीन बार तथा माध्यमिक स्तर पर सप्ताह में दो बार शारीरिक व्यायाम की शिक्षा अवश्य प्राप्त करें। किसी भी छात्र को शारीरिक व्यायाम से छूट प्रधान अध्यापक द्वारा शारीरिक अक्षमता पर ही दी जा सकेगी।

प्रधान अध्यापक छात्रों से खेल-कूद तथा व्यायाम का शुल्क निम्न दरों से वसूल कर सकता है—

कक्षा ६ से ८ तक	१६ पै० मासिक
कक्षा ९ से १० तक	२५ पै० मासिक
कक्षा ११ से १२ तक	३७ पै० मासिक

धन की आय तथा व्यय का पूरा विवरण रखना परम आवश्यक है। खेल के शुल्क का धन प्रयोग में लाने के सिवा किसी अन्य मद पर नहीं व्यय किया

येगा। खेल का धन प्रधान अध्यापक, अध्यापको की एक समिति की सहायता से खेल-कूद तथा मनोरजन सम्बन्धी क्रियाओ पर ही व्यय करेगा।

८२—इस धारा मे 'School Health Officer' के कर्त्तव्यो और कार्यों का ल्लेख है।

८३—नैतिक शिक्षा (Moral and Humanist Education)—विधान मे नैतिक शिक्षा को भी महत्त्व दिया गया है। विधान के प्रत्येक मान्यता प्राप्त विद्यालय मे नैतिक शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए। छात्रो को समस्त धर्मो की अच्छाइयो से परिचित कराना परम आवश्यक है। सप्ताह मे एक बार नैतिकता सम्बन्धी भाषण होने चाहिए। विधान मे इस विषय मे उल्लेख किया गया है—"The lives of founders of great religious of the world and moral leaders of humanity of all ages shall form part of instructions on moral and humanist education in higher secondary schools This instruction shall be imparted by the regular teaching staff during school hours as part of the school time table"

८४—पाठ्य पुस्तकें (Text-Books)—किसी भी मान्यता प्राप्त विद्यालय मे निर्धारित पाठ्य-पुस्तको के अतिरिक्त कोई दूसरी पाठ्य-पुस्तक नही पढाई जायगी।

८५—किसी पाठ्य पुस्तक की कुञ्जी (Key) अध्यापको द्वारा प्रयोग मे नही लाई जा सकेगी। मान्यता प्राप्त विद्यालयो के अध्यापक कुञ्जी लिखने मे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी प्रकार का योग नही दे सकते।

८६—विद्यालय का समय (School hours)—मान्यता प्राप्त विद्यालय के प्रधान अध्यापक तथा प्रबन्धक विद्यालय का समय निर्धारित कर सकते हैं। अगस्त से मार्च तक कम से कम पाँच घण्टे तथा अप्रैल से मई तक चार घण्टे विद्यालय अवश्य लगना चाहिए। बीच मे मध्यान्तर का होना परम आवश्यक है।

८७—किसी भी विद्यालय मे Double shift कक्षाएँ नही लगेंगी।

८८—समय तालिका (Time table)—विभाग द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों के आधार पर प्रत्येक प्रधान अध्यापक का विद्यालय की समय-तालिका के निर्माण का अधिकार है। सत्र के आरम्भ मे तयार की गयी समय-तालिका प्रत्येक कक्षा मे छात्रो के मार्ग-दर्शन के लिए अवश्य लटकायी जाय।

८९—छात्रो को दिए जाने वाले गृह-कार्य का निरीक्षण प्रधान अध्यापक को अवश्य करना चाहिए।

९०—इस धारा मे छात्रो के प्रवेश (Admission), वापसी (Withdrawal), दण्ड (Punishment) आदि का अत्यधिक विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। यहाँ इन प्रमुख बातो का ही उल्लेख करेंगे। प्रधान अध्यापक को [illegible]

प्रवेश की सख्या निर्धारित करने का अधिकार है। छात्रा की सख्या कक्षानुसार इस प्रकार होनी चाहिए।

Class VI to VII	35 Students
IX to X	40 "
XI to XII	50 "

जिला निरीक्षक आज्ञा देकर छात्रो की सख्या म वृद्धि कर सकता है।

छात्रा क प्रवेश की आयु १५ मई तक इस प्रकार होनी चाहिए—

कक्षा	प्रवेश के समय की आयु
६	
७	१३ वष
८	१४ वष
९	१५ वष
१०	१६ वष
	१७ वष

यदि कोई छात्र गाव के विद्यालय म प्रवेश ले रहा है तो प्रधान अध्यापक उसे आयु सीमा म एक वष की छूट दे सकता है।

प्रधान अध्यापक को छात्रो को दण्ड की प्रकृति के अनुसार दण्डित करने का पूरा पूरा अधिकार है। अत्यधिक अनैतिक काय करने पर शारीरिक दण्ड भी दिया जा सकता है।

पैरा १०१ मा यता प्राप्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो की विभिन्न कक्षाओं म शुल्क निम्न दरो से लिया जायगा।

	कक्षा ६	कक्षा ७–८	कक्षा ९–१०	कक्षा ११ १२
१—शिक्षा शुल्क	—	४ ५०	४ ५०	८ ५०
२—महँगाई भत्ता	७५	१ ००	१ ००	१ ००
३—परीक्षा शुल्क	७५	१ २५	१ ७५	२ ००
४—वाद्य सगीत शुल्क	प्रत्यक कक्षा म १ रुपया प्रतिमास			
५—स्याही शुल्क	प्रत्यक कक्षा म ० ०६ पसे प्रतिमास से अधिक[1] नहीं।			
६—खेल शुल्क	प्रत्यक कक्षा म १ रु० ५० पैसे प्रतिवष से अधिक नहीं।			
७—विज्ञान शुल्क	××	××	० ५०	१ ००
८—पुस्तकालय तथा वाचनालय शुल्क (वष म एक बार)	१ ५०	१ ५०	१ ५०	१ ५०
९—पत्रिका शुल्क	कक्षा ९ और १० म प्रतिवष १ रु० ५० पसे से अधिक नही ११ तथा १२वी कक्षा म प्रतिवष २ रु०।			

1 सन् १९६३ के सस्करण के अनुसार।

	कक्षा ६	कक्षा ७ ८	कक्षा ९-१०	कक्षा ११-१२
—दृश्य श्रव्य सहायता शुल्क	० ०६	० ०६	० ०६	० ०६
—कला एव शिल्प शुल्क	० १२	० १२	——	——
—विकास शुल्क	० २५	० २५	० ५०	० ७५

—जलपान शुल्क साधारणतया २५ पैसे प्रतिमास प्रति बालक। शिक्षा सचालक की आज्ञा से ४० पैस भी पौष्टिक आहार के हेतु लिए जा सकते है।

४—खेल-कूद शुल्क कक्षा ६ से ८ तक कुल १९ पैसे प्रतिमास।
कक्षा ९ तथा १० से २५ पैसे प्रतिमास।
कक्षा ११ और १२ से ३७ पसे प्रतिमास।

धारा १३९ के अनुसार मा यता प्राप्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो मे निम्न रजिस्टरो को रखना आवश्यक है।

1—Students' Attendance Register
2—Teachers' Attendance Register
3—Files of Students Register
4—Fees Account Book
5—Inspection Report File
6—Games Account Book
7—Cash Book
8—Register of Free and Half Rate Students
9—Register of Results of School Examinations
10—Log Book
11—Stock Book
12—Correspondence and Index Register
13—Catalogue of Library Books
14—Issue Book
15—Visitors' Book
16—Attendance Register of the Hostel
17—Hostel Account Book
18—Bill Book and Acquaintance Rolls
19—Guard Book of Department of Circulars
20—Order Book

धारा १४३—यह धारा मान्यता प्राप्त अध्यापको की नियुक्ति से सम्बन्धित है। अध्यापको की नियुक्ति से सम्बन्धित प्रमुख नियम अग्रलिखित हैं—

(च) प्रत्येक मान्यता प्राप्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में वही व्यक्ति अध्यापक के पद पर नियुक्त हो सकता है जो कि इण्टरमीडिएट बोर्ड द्वारा निर्धारित न्यूनतम योग्यताओं की पूर्ति करता हो। अप्रशिक्षित अध्यापक को स्थायी रूप से नियुक्त नहीं किया जा सकता। अल्प कालीन अस्थायी रिक्त पदों पर अप्रशिक्षित अध्यापक विद्यालय निरीक्षक की स्वीकृति से नियुक्त किए जा सकते हैं। उपर्युक्त नियम की पूर्ति के लिए निम्न सर्टीफिकेटों में से कोई सा होना चाहिए—

१—स्नातक के लिए L T या B T या B Ed

२—पूर्व स्नातकों (Under graduates) को विभाग द्वारा प्रदान किया गया 'टीचर्स सर्टीफिकेट'।

३—J T C

४—Acting Teacher's Certificate (A T C)

५—Junior Basic Training Certificate

(ग) विद्यालय के प्रत्येक स्थायी रिक्त स्थान की पूर्ति जुलाई ३१ तक कर दी जाय। अध्यापक एक वर्ष के लिए Probation पर सरकार द्वारा मान्य Mandatory Scales पर रखे जायें। Probation के काल को दो वर्ष से अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता।

(ग) मान्यता प्राप्त विद्यालय का कोई भी अध्यापक या प्रधानाचार्य तब तक अपने पद पर स्थायी नहीं हो सकता, जब तक कि उसने हाई स्कूल परीक्षा हिन्दी के साथ न पास कर ली हो।

(घ) उत्तर प्रदेश में तीन वर्ष रहने वाला व्यक्ति ही मान्यता प्राप्त संस्था में नौकरी कर सकता है।

(च) स्थायी शिक्षक, प्रधान अध्यापक, हैड क्लर्क, क्लर्क तथा पुस्तकाध्यक्षों से Agreement Form भरवाये जायें।

(छ) ३१ अक्टूबर से पूर्व नियुक्त होने वाला अस्थायी व्यक्ति दीर्घावकाश के वेतन का अधिकारी होगा।

(ज) निरीक्षक या निरीक्षिका की आज्ञा के बिना कोई प्रधान अध्यापक शिक्षक लिपिक पदच्युत निष्कासित, निलम्बित या नौकरी से नहीं हटाया जा सकता।

(झ) कोई भी अध्यापक प्रधान अध्यापक तथा क्लर्क ६० वर्ष की आयु तक अपने पद पर काम कर सकता है।

पैरा १४५—प्रत्येक क्षेत्र में तीन स्थायी क्षेत्रीय मध्यस्थ बोर्ड होंगे। प्रथम बोर्ड संस्थाओं के प्रधान अध्यापकों के लिए दूसरा अध्यापकों के लिए तथा तीसरा लिपिक कर्मचारी वर्ग के लिए। इन बोर्डों में प्रधान अध्यापकों, अध्यापकों तथा लिपिकों के तथा मैनेजरों के मध्य होने वाले झगड़ों का निर्णय होगा।

पैरा १४६—आचरणावलि (Character Role)—प्रधान अध्यापकों अध्यापकों लिपिकों और पुस्तकाध्यक्षों की आचरणावलियाँ निर्धारित प्रपत्र

म रखी जायेंगी । प्रधान अध्यापक की आचरणावलिया प्रवन्धक द्वारा रखी जायगी ।

पैरा १४७—क्षेत्रीय स्थानान्तर बोड (Regional Transfer Board)—एक सहायता प्राप्त सस्था से दूसरी सहायता प्राप्त सस्था मे अध्यापको का स्थानान्तरण अनुमति प्राप्त करने का विषय है और इस काय के लिए निम्नलिखित प्रत्येक क्षेत्र म एक क्षेत्रीय स्थानान्तरण वोड होगा ।

(१) शिक्षा का क्षेत्रीय उपसचालक ।

(२) प्रव धको का एक प्रतिनिधि ।

(३) प्रधान, अध्यापको, लिपिको तथा पुस्तकाध्यक्षा का एक प्रतिनिधि ।

परा १४८ के अनुसार अध्यापक को टयूशन करने से पूव विद्यालय के प्रधान स आज्ञा लना आवश्यक है । जिला परिषद् अथवा नगरपालिका के अध्यापका को वोड की स्वीकृति तथा निरीक्षक का अनुमोदन लेना होगा ।

प्रधानाचाय को टयूशन करने की आज्ञा नही है । प्रत्यक अध्यापक को दिन म २ घण्ट स अधिक तथा सप्ताह म १२ घण्टे से अधिक समय टयूशन करन म नही देना चाहिए ।

स्वास्थ्य-शिक्षा

स्कूल-स्वास्थ्य-विज्ञान का महत्त्व
IMPORTANCE OF SCHOOL HYGIENE

Q What do you understand by *School Hygiene* ? What is its importance for a teacher ?

प्रश्न—स्कूल स्वास्थ्य विज्ञान से तुम क्या समझते हो ? एक अध्यापक के लिए उसकी क्या उपयोगिता है ?

उत्तर—

स्वास्थ्य-शिक्षा का क्षेत्र

स्वास्थ्य शिक्षा के क्षेत्र पर प्रकाश डालने से पूर्व हम अंग्रेजी शब्द 'हाईजीन' (Hygiene) का अर्थ समझ लेना चाहिए। यूनान की पौराणिक गाथाओं में स्वास्थ्य की देवी को 'हाईजिया' (Hygea) के नाम से पुकारा गया है। इस देवी को यूनानी, स्वास्थ्य का रक्षक मानते थे। ग्रीक शब्द हाईजिया से ही 'हाईजीन' शब्द बना है। इस प्रकार 'हाईजीन' शब्द स्वास्थ्य रक्षा से सम्बन्धित है।

साधारणतया स्वास्थ्य विज्ञान का अर्थ व्यक्तिगत स्वास्थ्य (Personal Hygiene) से लगाया जाता है परन्तु जब हम स्वास्थ्य विज्ञान को व्यापक दृष्टि से देखते हैं तो उसके अन्दर 'सार्वजनिक स्वास्थ्य' तथा 'स्कूल स्वास्थ्य विज्ञान' दोनों को सम्मिलित पाते हैं। सार्वजनिक स्वास्थ्य का तात्पर्य जनता की स्वास्थ्य-सम्बन्धी समस्याओं को मनन करके, उनका हल खोजने से है। स्कूल स्वास्थ्य विज्ञान के अन्दर छात्रों की स्वास्थ्य रक्षा तथा उनके शारीरिक विकास की समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। छात्रों को रोगों से बचाना, उनके स्वास्थ्य में वृद्धि करना, विद्यालय के वातावरण को शुद्ध बनाना आदि विषय स्कूल स्वास्थ्य विज्ञान के अन्दर आते हैं। इस प्रकार स्वास्थ्य शिक्षा के क्षेत्र में निम्न विषय आते हैं —

(क) विद्यालय का भवन।

(ख) विद्यालय के निकट का वातावरण।

(ग) प्रकाश तथा वायु का प्रबन्ध।

(घ) विद्यालय का फर्नीचर।
(च) जल की व्यवस्था।
(छ) छात्रों का व्यक्तिगत स्वास्थ्य।
(ज) दैनिक कार्यक्रम।
(झ) शारीरिक दोष तथा पौष्टिक भोजन।
(ट) सक्रामक रोग तथा उन पर नियन्त्रण।

स्कूल स्वास्थ्य विज्ञान के अन्तर्गत केवल शारीरिक रोगों पर नियन्त्रण करना ही नही वरन् छात्रों के मानसिक रोगों का अध्ययन भी इसके अन्दर आता है। विद्यालय का कार्यक्रम, वातावरण तथा भवन आदि छात्रों के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं। अतः विद्यालय के अन्दर स्वास्थ्य वातावरण उत्पन्न करने के लिए गर्मी सर्दी वायु तथा विद्यालय की स्थिति आदि पर ध्यान दिया जाना चाहिए। छात्र का यदि मानसिक तथा शारीरिक विकास उचित प्रकार से नहीं हो रहा है तो स्वास्थ्य विज्ञान के ज्ञान द्वारा उन बाधाओं को दूर किया जा सकता है, जो छात्र के मानसिक तथा शारीरिक विकास को रोक हुए हैं। विद्यालय के अन्दर इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न की जा सकती हैं, जिनसे छात्र का शारीरिक तथा मानसिक विकास अबाध गति से होता रहे। परन्तु इस सबके लिए 'स्कूल स्वास्थ्य विज्ञान' के ज्ञान की परम आवश्यकता है।

स्कूल स्वास्थ्य विज्ञान तथा अध्यापक

सकीर्ण दृष्टिकोण से विद्यालय के शिक्षक का कार्य—छात्रों का केवल बौद्धिक विकास करना है। साधारणतया छात्रों को पुस्तकीय ज्ञान प्रदान करना अध्यापकों का कर्त्तव्य माना जाता है। परन्तु यह अत्यन्त पुरातन विचारधारा है। आज शिक्षा का उद्देश्य, छात्रों का केवल मानसिक विकास ही नहीं करना है बल्कि उनका सर्वांगीण विकास कर समाज का योग्य नागरिक बनाना है। रोगी तथा दुर्बल नागरिक राष्ट्र की सेवा किसी प्रकार से नहीं कर सकते। जब तक शरीर स्वस्थ नहीं होगा, तब तक मस्तिष्क भी स्वस्थ नहीं रह सकता। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क रहता है, अतः दोनों को हम एक दूसरे से अलग नहीं कर सकते। बालक के सम्पूर्ण विकास के लिए हम शरीर तथा मन दोनों पर समान रूप से ध्यान देना होगा।

स्वास्थ्य की नींव बचपन से ही डाली जाती है। बचपन में ही बालक को व्यक्तिगत स्वच्छता के महत्त्व तथा स्वास्थ्य के नियमों से परिचित करा दिया जाय तो आगे चलकर वह पूर्ण स्वस्थ नागरिक बनकर देश की सेवा कर सकेगा। इसके विपरीत यदि बचपन में ही बालक के स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं दिया गया तो बड़ा होने पर वह एक अस्वस्थ तथा रोगी बनकर राष्ट्र के लिए भार बन जायगा।

बालक के सम्पूर्ण विकास का भार अध्यापक के ऊपर होता है। अध्यापक का कार्य—छात्र का केवल मानसिक विकास करना ही नहीं है वरन् शारीरिक तथा मानसिक—दोनों विकास करने हैं। विद्यालय में बालक अल्प आयु से ही प्रवेश लेते

हैं, अत प्रारम्भ स ही उनके स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना अध्यापक का कर्त्तव्य हो जाता है। यदि बचपन म ही छात्रा को स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतो का अभ्यस्त बना दिया जाता है तथा उ हे नीरोग रहने के उपाय बताये जाते हैं तो उनके मन पर स्वास्थ्य शिक्षा का प्रभाव जीवन भर के लिए पड जायगा और वे देश क स्वस्थ नागरिक बन राष्ट्र कल्याण म योग प्रदान कर सकेंगे। अत प्रत्येक अध्यापक का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह प्रत्येक बालक के स्वास्थ्य पर भली प्रकार ध्यान द। जिस प्रकार माली अपने बाग क पौधा की देख रेख अत्यन्त सावधानी के साथ करता है, उसी प्रकार अध्यापक को भी चाहिए कि वह प्रत्यक बालक के स्वास्थ्य की देख-भाल अत्यन्त सावधानी के साथ करे। परन्तु इसके लिए अध्यापक का स्वास्थ्य शिक्षा के नियमो स, मानव शरीर की आन्तरिक क्रिया तथा सामान्य रोगा से परिचित होना आवश्यक है। बिना स्वास्थ्य शिक्षा के ज्ञान के अध्यापक बालक के शारीरिक विकास म किसी भी प्रकार का योग नहीं प्रदान कर सकता है। इस कारण प्रत्येक अध्यापक को स्वास्थ्य शिक्षा के नियमा की जानकारी अवश्य रखनी चाहिए।

स्वास्थ्य शिक्षा क उद्देश्य

ऊपर हमने स्वास्थ्य शिक्षा के महत्त्व पर प्रकाश डाला। अब हम देखना है कि स्वास्थ्य शिक्षा किस उद्देश्य को ध्यान म रखकर छात्रा को प्रदान की जाय। नीचे हम स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करने के प्रमुख उद्देश्यो पर प्रकाश डालेंग। यथा—

१—छात्रा को इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करना जिससे कि व स्वास्थ्य के प्रमुख नियमों को समझ सक तथा अपना शारीरिक विकास भली प्रकार स कर सक।

२—छात्रो को स्वास्थ्य रक्षा के उपाय बताना।

३—छात्रा को बुरे व्यसनो से बचाना। उन्हे बताना कि धूम्रपान आदि आदतो के क्या दुष्परिणाम होते हैं।

४—विद्यालय के अ दर इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न करना, जिससे छात्रा म शारीरिक स्वास्थ्य वृद्धि के प्रति सजगता तथा रुचि उत्पन्न हो। वे जीवन म स्वास्थ्य के महत्त्व का भली प्रकार समझ सक तथा अपने भावी जीवन म स्वास्थ्य के नियमा को अपनाएँ।

५—खेलो द्वारा तथा स्वास्थ्य की विभिन्न क्रियाओ द्वारा छात्रा म सामाजिकता की भावना का विकास करना।

६—मानसिक विकास के साथ साथ शारीरिक विकास की ओर ध्यान देना और छात्रो को अप्रत्यक्ष रूप स समझाना कि शारीरिक विकास उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि मानसिक। शारीरिक तथा मानसिक विकास का महत्त्व देना।

स्वास्थ्य शिक्षा क उद्देश्यो का अध्ययन करने के पश्चात् अब हम देखना है कि इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए कौन कौन से उपाय विद्यालय म अपनाने

स्वास्थ्य-वृद्धि तथा स्वास्थ्य-रक्षा के उपाय

Q Sketch a programme of Health Education desig (a) to create in growing boys and girls an awareness of the pi ples of healthful living, (b) to develop their bodies through exe and games and (c) to correct bodily defects (B T, 19

प्रश्न—स्वास्थ्य शिक्षा के कार्यक्रम की ऐसी रूपरेखा तयार कीजिए अधोलिखित बातों के लिए स्थान हो—

(क) युवक बालक तथा बालिकाओं में स्वस्थ रहने के सिद्धांतों की चे उत्पन्न हो जाय।

(ख) व्यायाम तथा खेल कूद द्वारा उनके शारीरिक विकास में वृद्धि।

(ग) शारीरिक दोषों को दूर करना। (बी० टी०, १९

Or

Q What factors in school adversely affect the health children? What steps can be taken to guard against these?

(B T, 195

विद्यालय में छात्रों के स्वास्थ्य को कौन से तत्त्व हानि पहुँचाते हैं? उन रक्षा के लिए किन उपायों को काम में लाना चाहिए? (बी० टी०, १९५

Or

Q What steps would you take as the head of a secondary school to ensure the health and physical development of the students under your charge (B Ed, 1957)

एक माध्यमिक शाला के प्रधान के नाते आप अपने रक्षण में आये हुए छात्रों के स्वास्थ्य एव शारीरिक विकास हेतु किन उपायों से काम लेंगे?

उत्तर—छात्रों का पूर्ण स्वस्थ बनाने के लिए हम कुछ इस प्रकार के उपाय अपनाने होंगे जिससे कि छात्रों के स्वास्थ्य की रक्षा हो सके। बिना स्वास्थ्य रक्षा के स्वास्थ्य में वृद्धि नहीं हो सकती। अत पहले हम स्वास्थ्य रक्षा के उपायों पर विचार करना होगा। निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का उल्लेख किया गया है —

विद्यालय में स्वास्थ्य-रक्षा के नियम

१ विद्यालय का वातावरण

छात्रों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए विद्यालय के वातावरण पर पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए। विद्यालय में छात्र चार-पाँच घण्टे रहते हैं अत उनके स्वास्थ्य के ऊपर वहाँ के वातावरण का प्रभाव पड़ता है। यदि विद्यालय का वातावरण अस्वास्थ्यकर होगा तो छात्रों का स्वास्थ्य भी दिन प्रति दिन गिरता जायगा तथा वे

अनक रोगो से ग्रस्त हो जायेग। विद्यालय के वातावरण को स्वास्थ्यकारी बनाने के लिए हमे निम्न बातो पर ध्यान देना होगा

(क) **विद्यालय की स्थिति**—विद्यालय की स्थिति ऐसी जगह पर होनी चाहिए जहा पर नगर के दूषित वायुमण्डल का प्रभाव न पड सके। विद्यालय का भवन दलदल, कब्रिस्तान, धुएँ के कारखाने आदि के निकट न हो। दूसरे शब्दो मे, विद्यालय की स्थिति नगर से दूर स्वास्थ्य वद्धक स्थल पर हो। दलदल तथा कारखाना के धुएँ का छात्रो के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पडता है।

(ख) **विद्यालय की स्वच्छता**—विद्यालय की नित-प्रति सफाई की जाय। विद्यालय का कोइ भी स्थल गन्दा नही रहना चाहिए। उद्यान, कक्षाओ के कमरे, बरामदे, दीवारें, क्रीडा स्थल, शौचालय तथा मूत्रालय आदि सब की नित सफाई होनी चाहिए। विद्यालय के आस पास की नालियो की धुलाई नित की जाय तथा उनम डी० डी० टी० समय समय पर छिडकवाई जाय। छात्रो को भी स्वच्छता के महत्व को समझाया जाय। जहाँ तक सम्भव हो सके, उनमे भी विद्यालय की सफाई रखने म योग लिया जाय।

(ग) **वायु और प्रकाश की व्यवस्था**—शुद्ध वायु स्वास्थ्य के लिए परम आवश्यक है, शुद्ध वायु के अभाव म शरीर मे अनेक रोग हो जाते हैं। अत विद्यालय के कक्षा कक्षा म पर्याप्त खिडकियाँ हो जिनसे वायु सरलता के साथ प्रवेश कर सकें। कमरे मे रोशनदान एक दूसरे के आमने सामने होने चाहिए जिससे वायु का आवागमन स्वच्छन्द रूप से हो सके। प्रत्येक कक्षा मे छात्रो के बैठने की जगह पर्याप्त हो, अधिक पास पास तथा पिच पिच म सीट लगा देने से कक्षा का वायुमण्डल दूषित होने की सम्भावना रहती है। प्रत्यक छात्र के बैठने के लिए उचित तथा आरामदायक फर्नीचर हो। दीवारो पर प्रत्येक वष सफेदी करवाई जाय।

वायु की भाँति प्रकाश का प्रबन्ध भी परम आवश्यक है। खिडकी तथा रोशनदान इस ढग से बनाये जायें कि जिससे प्रकाश कक्षा क मे प्रचुर मात्रा म प्रवेश कर सके। कक्षा-कक्ष म प्रकाश के अभाव म नेत्र रोग, क्षय रोग तथा सीलन फलने की सम्भावना रहती है।

(घ) **उपयुक्त फर्नीचर**—अधिकाशतया विद्यालयों मे खराब फर्नीचर का प्रयोग किया जाता है। फर्नीचर इस प्रकार का होना चाहिए कि जिस पर छात्र सुविधानुसार आराम से बठ सकें। यदि फर्नीचर इस प्रकार का है कि छात्र सीधे नहा बठ पात तथा उस पर बैठकर झुकना पडता है तो रीढ की हड्डी के टढे होने और आँखो के खराब हाने की सम्भावना रहती है। अत प्रधान अध्यापक को चाहिए कि वह विद्यालय के अन्दर उपयुक्त फर्नीचर के प्रयोग का प्रबन्ध करे। फर्नीचर क ठीक न हान पर छात्र गलत आसनो का प्रयोग करत हैं।

(च) **विद्यालय का कार्य क्रम**—विद्यालय का समय चक्र-विभाग इस प्रकार से बनाया जाय कि छात्र अध्ययन करते समय थकान का अनुभव न करें। समय-

चक्र विभाग का निर्माण करते समय उन सब बातो का ध्यान रखा जाय जो थकान दूर करने म सहायक होती है। अच्छा समय-चक्र विभाग छात्रो के स्वास्थ्य व अध्ययन शक्ति म वृद्धि करता है। समय-चक्र म खेल कूद को भी स्थान दिया जाय।

(छ) छात्रो के स्वास्थ्य की परीक्षा—विद्यालय के अधिकारियो के लिए यह परम आवश्यक है कि व वर्ष म एक या दो बार छात्रो के स्वास्थ्य की जाच डाक्टर से करायें। डाक्टरी जाँच का रिकार्ड रखना भी आवश्यक है। जहाँ तक सम्भव हो, छात्रो के स्वास्थ्य की परीक्षा किसी योग्य डाक्टर द्वारा कराई जाय। छात्र के स्वास्थ्य की सबसे पहले परीक्षा तो तब की जाय जबकि छात्र विद्यालय म प्रवेश लेता है। इसके बाद तीन या छह महीने पश्चात् डाक्टरी जाँच कराई जाय। यदि बालक के स्वास्थ्य म कोई रोग पाया जाता है तो उस रोग की सूचना बालक के अभिभावक को द दी जाय। अभिभावक का कर्त्तव्य है कि वह रोग का तुरन्त उप चार कराये। डाक्टरी निरीक्षण के विषय म आगे डाक्टर निरीक्षण के अध्याय म विस्तार से लिखेंगे।

(ज) दूषित वातावरण पर नियन्त्रण—विद्यालय के अन्दर किसी भी प्रकार स बाहरी सामाजिक बुराइया न प्रवेश कर सक। प्रधानाध्यापक तथा अध्यापको की जिम्मेदारी है कि वे छात्रो को सिगरेट, पान आदि का प्रयोग न करन द। इसके लिए उन्हे स्वय आदर्श उपस्थित करना होगा। यदि अध्यापक स्वय धूम्रपान करगे तो उसका प्रभाव छात्रो पर बुरा पड़ेगा। अत अध्यापको को विद्यालय के अन्दर तथा विद्यालय के बाहर सिगरेट बीडी का प्रयोग बिल्कुल नही करना चाहिए।

विद्यालय म बहुधा खोमचे वाले, चाट पकौडी बचन वाले आ जाया करते हैं। चटपटी मसालेदार वस्तुएँ छात्रो के लिए हानिकारक होती हैं, अत इन पर रोक लगा देना ही उचित है। फल बेचने की अनुमति प्रदान की जा सकती है। परन्तु यह देखना आवश्यक है कि रद्दी फल सडे गले तो नही बेचे जात।

विद्यालय म यदि उपयुक्त समस्त बातो का पूर्ण रूप से पालन किया जाय तो निश्चय ही विद्यालय का वातावरण स्वास्थ्यकारी हो सकता है। अब हम दखना है कि विद्यालय म किस प्रकार क कार्य क्रम को अपना कर छात्रो क स्वास्थ्य की वृद्धि की जा सकती है।

२ छात्रों के स्वास्थ्य की वृद्धि

छात्रो क स्वास्थ्य की वृद्धि क लिए हम एक निश्चित कार्य क्रम बनाना होगा। यथा—

(अ) पौष्टिक जलपान—छात्रो को दोपहर के समय पौष्टिक जलपान दना आवश्यक है। जलपान मे भोजन क आवश्यक तत्त्व होन चाहिए। जलपान देने का समय १ ३० ठीक रहेगा। इस समय तक बालको की क्षुधा तीव्र हो जाती है। जलपान म दूध तथा फल देना सबसे उत्तम है उबले चने भी दिये जा सकते हैं।

परन्तु मिठाई तथा चाट आदि का देना व्यर्थ है, इनसे लाभ होने के बजाय हानि की सम्भावना अधिक है ।

(ब) शारीरिक व्यायाम—विद्यालय के केवल पुस्तकीय ज्ञान पर ही बल न दिया जाय, अपितु शारीरिक व्यायाम को भी महत्त्व प्रदान किया जाय । विद्यालय के अन्दर एक व्यायामशाला का होना परम आवश्यक है, जिसमे झूले, समानान्तर बार (Parallel Bars), कूदने का बक्स व्यायाम के रस्से आदि होने चाहिए । टाइम टेबिल मे एक घंटा प्रत्येक कक्षा को व्यायाम करने के लिए प्रदान किया जाय।

सुविधानुसार विद्यालय मे प्रातःकालीन व्यायाम की भी व्यवस्था की जा सकती है । सामूहिक ड्रिल (Mass Drill) की आयोजना का प्रबन्ध भी समय समय पर किया जा सकता है । प्रातःकालीन व्यायाम मे भारतीय आसनो का भी समावेश किया जा सकता है । परन्तु शारीरिक व्यायाम कराते समय सदा इस बात का ध्यान रखा जाय कि व्यायाम अधिक कठिन तथा छात्रो को अधिक थकाने वाले न हो । व्यायाम की शिक्षा देने का उद्देश्य छात्रो मे स्फूर्ति उत्पन्न करना है, न कि थकावट ।

(स) खेल कूद की व्यवस्था—शारीरिक व्यायाम के साथ साथ प्रत्येक विद्यालय मे खेल-कूद की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए । छात्रो को खेल खिलाने के लिए अलग से एक अध्यापक की नियुक्ति की जाय । खेलो द्वारा छात्र अपने शरीर को सुदृढ तथा स्वस्थ बनाते है । बालको की शक्ति का उचित प्रयोग किया जा सकता है । खेल खेलते समय छात्रो की समस्त मासपेशिया कार्य करती हैं तथा रक्त तीव्रता से शरीर मे चक्कर लगाने लगता है । खेल बालको के केवल शरीर को ही दृढ नही करते, वरन् उन्हे आपस मे मिलकर खेलना भी सिखाते हैं । इस प्रकार खेलो द्वारा छात्रो मे सामाजिकता की भावना उत्पन्न होती है ।

खेल-कूद की उचित व्यवस्था के लिए विद्यालय मे एक खेल का मैदान होना चाहिए । खेल के मैदान की लम्बाई चौडाई इतनी हो कि उसमे हॉकी, फुटबाल तथा अन्य खेल सरलता के साथ खेले जा सके । मैदान मे कोमल दूब की घास लगी हो तथा कंकड पत्थर का पूर्णतया अभाव हो ।

एक समय मे सब बालक एक साथ नही खेल सकते, अतः सुविधा के लिए छात्रो का वर्गीकरण कर दिया जाय । प्रत्येक टोली या वर्ग को सुविधानुसार खेलने का अवसर प्रदान किया जाय । एक ही खेल पूरे सप्ताह भर न चले, समय समय पर उनमे परिवर्तन करना आवश्यक है ।

खेल खेलने का अवसर केवल चुने हुए छात्रो को ही न मिले, वरन् इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाय कि विद्यालय के समस्त छात्र खेल-कूद मे भाग ले सके । अधिकांश विद्यालयो मे बडी संख्या मे छात्रो की उपेक्षा करके कुछ इने गिने छात्रो को खेलने-कूदने की विशेष सुविधाएँ प्रदान की जाती है, जो किसी प्रकार भी उचित नही है । प्रधान अध्यापक को चाहिए कि वह खेलो के कार्य-क्रम को इस प्रकार व्यवस्थित करे कि विद्यालय के समस्त छात्र नियमित रूप से खेलो मे भाग ले सके ।

विद्यालय में खेल-कूद प्रतियोगिताओं का आयोजन अवश्य किया जाय। एक टोली को दूसरी टोली का प्रतियोगी बनाया जाय। समय समय पर इन टोलियों का मैच कराया जाय। इन प्रतियोगिताओं (मैच) को कराते समय इस बात का अवश्य ध्यान रखा जाय कि छात्रों में परस्पर द्वेष भाव उत्पन्न न हो जाय।

खेल कूद व्यवस्था को उचित प्रकार से चलाने के लिए एक खेल कूद परिषद का निर्माण किया जाय। इस परिषद् का निर्माण जनतन्त्रात्मक ढंग से हो। परिषद का सदस्य प्रत्येक कक्षा से चुना जाय, जो अपनी कक्षा का प्रतिनिधित्व उचित रूप से करता हो। परिषद् को खेल कूद सम्बन्धी क्रियाओं का सगठन करने का पूर्ण अवसर प्रदान किया जाय। जहाँ तक हो सके, वे अपना काय आप सम्हालें।

जो छात्र शारीरिक दुर्बलता के कारण मैदानी खेलों में भाग नहीं ले सकते उनके लिए इन्डोर गेम्स (Indoor Games) की व्यवस्था की जाय। यह खेल जहाँ तक हो सके मानसिक शक्ति का विकास करने वाले हों।

३ स्वास्थ्य शिक्षा का सगठन

छात्रों को स्वास्थ्य शिक्षा भी प्रदान की जाय। स्वास्थ्य की शिक्षा इस प्रकार प्रदान करनी चाहिए कि छात्र स्वास्थ्य की शिक्षा से भली भाँति परिचित हो जाय तथा स्वास्थ्य के नियमों का उन्हें ठीक प्रकार से ज्ञान हो सके।

स्वास्थ्य शिक्षा के अन्तर्गत निम्न बातें आनी चाहिए—

(क) छात्रों को व्यक्तिगत स्वच्छता के लाभों का ज्ञान कराना। दाँतों, नाखून तथा शरीर की स्वच्छता से क्या लाभ है? इसका ज्ञान छात्रों को अवश्य कराया जाय।

(ख) प्रातःकाल उठने के लाभों से छात्रों को परिचित कराना परम आवश्यक है। छात्रों को बताया जाय कि कितने घण्टे सोना चाहिए, कितने घण्टे खेलना और कितने घण्टे पढ़ना, आदि।

(ग) छात्रों को पौष्टिक तथा सन्तुलित भोजन के लिए प्रोत्साहित किया जाय। सन्तुलित भोजन में कौन कौन से तत्त्व होते हैं, आदि का भी ज्ञान छात्रों को कराया जाय।

(घ) जल तथा वायु की शुद्धता के महत्त्व को भी छात्रों को बताया जाय।

(च) शरीर के समस्त अंगों उनके काय, आदि—सबके बारे में छात्रों को बताया जाय।

(छ) संक्रामक रोग किस प्रकार फैलते हैं तथा उनको किस प्रकार रोका जा सकता है आदि की ठीक प्रकार से सूचना प्रदान की जाय।

४ स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करने के ढंग

स्वास्थ्य शिक्षा केवल उपदेशों द्वारा तथा पुस्तकों द्वारा ही नहीं प्रदान की जा सकती, वरन् उसके लिए हमें अन्य साधनों को भी अपनाना होगा। यथा—

(अ) विद्यालय का वातावरण—छात्रों में विद्यालय के वातावरण का

अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। अत प्रधान अध्यापक तथा अध्यापकों का कर्तव्य है कि वे विद्यालय के वातावरण को स्वास्थ्य वर्द्धक बनाएँ। समस्त अध्यापक स्वय स्वास्थ्य-शिक्षा के सिद्धान्तों का पूर्ण रूप से पालन करें। विद्यालय के अन्दर हर प्रकार की स्वच्छता का ध्यान रखा जाय।

(ब) पुस्तकों के माध्यम से—छात्रों को स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। पुस्तकालय मे इस विषय पर श्रेष्ठ पुस्तकों का होना परम आवश्यक है। स्वास्थ्य सम्बन्धी कुछ मासिक पत्रिकाएँ भी मँगाई जा सकती हैं।

(स) मैजिक लालटेन तथा फिल्म शो द्वारा—स्वास्थ्य की शिक्षा मैजिक लालटेन तथा फिल्म-शो द्वारा सरलता से दी जा सकती है। फिल्म शो के द्वारा छात्रों को अनेक बातें सरलता से बताई जा सकती हैं। छात्र फिल्म मे किसी बात को देखकर सरलता से समझ सकते हैं।

(द) समाज सेवा द्वारा—समय-समय पर छात्रों से समाज सेवा का कार्य कराया जा सकता है। उन्हे गावों मे भेजकर स्वास्थ्य के सामान्य सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। जिन बातों को वे दूसरे को बतायेंगे, उनका पालन वे स्वय भी अवश्य करेंगे। परन्तु समाज सेवा का कार्य छोटे छोटे बालकों से न करावें, वयस्कों से कराया जाय तो उचित है।

५ मानसिक स्वास्थ्य

शारीरिक स्वास्थ्य के साथ साथ, मानसिक स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। स्वस्थ शरीर के लिए स्वस्थ मस्तिष्क का होना परम आवश्यक है। अत हमे छात्रों के मस्तिष्क सम्बन्धी विकास की ओर भी अवश्य ध्यान देना चाहिए। छात्रों के मस्तिष्क को सदा स्वस्थ बनाने के लिए हमे उनके साथ सदा समानता का व्यवहार करना चाहिए। उन्हे प्रत्येक अवस्था मे स्वतन्त्रतापूर्वक सोचने, विचारने तथा भाव प्रकट करने की स्वतन्त्रता प्रदान की जाय।

अध्यापकों को चाहिए कि वे छात्रों के मस्तिष्क मे अश्लीलता को किसी भी प्रकार से प्रवेश न होने दे। सिनेमा के दूषित वातावरण से उनको जहाँ तक हो सके दूर रखा जाय। विद्यालय की सीमा के अन्दर सिनेमा के गानों पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाय।

विशेष बालकों' (Exceptional Children) की ओर अध्यापकों को मुख्य रूप से ध्यान देना चाहिए। जो छात्र किसी प्रश्न को देर से समझते हो तो उनको बात-बात पर डाटना फटकारना पूर्णतया अनुचित है। जिन छात्रों की मानसिक दशा पिछड़ी हुई हो, उनके साथ सद्भावना का व्यवहार किया जाय। प्रत्येक छात्र को कार्य, उसकी मानसिक दशा को ध्यान मे रखते हुए दिया जाय।

कभी कभी विद्यालय मे विद्वानों के भाषणों की भी व्यवस्था की जाय। नैतिकता तथा सदाचार के ऊपर उपदेश देने वाले विद्वानों के भाषणों का आयोजन

करना छात्रों के लिए लाभदायक होता है। अच्छी बातें बार बार सुनकर छात्र आचरण में भी लाने का प्रयत्न करते हैं।

सारांश

स्वास्थ्य शिक्षा का क्षेत्र— सार्वजनिक स्वास्थ्य' तथा स्कूल स्वास्थ्य विज्ञान' में भेद है। स्कूल-स्वास्थ्य विज्ञान के अन्दर निम्नांकित विषय आते हैं—

(क) विद्यालय का भवन, (ख) विद्यालय के निकट का वातावरण, (ग) प्रकाश तथा वायु का प्रबन्ध, (घ) विद्यालय फर्नीचर, (च) जल की व्यवस्था, (छ) छात्रों का व्यक्तिगत स्वास्थ्य (ज) दैनिक कार्यक्रम, (झ) शारीरिक दोष, (ट) संक्रामक रोग।

स्वास्थ्य शिक्षा का उद्देश्य—(क) छात्रों का स्वास्थ्य के प्रमुख नियम बताना, (ख) स्वास्थ्य रक्षा के उपाय बताना (ग) खेलों द्वारा स्वास्थ्य में वृद्धि करना, (घ) विद्यालय के वातावरण का स्वास्थ्यप्रद बनाना, (च) मानसिक विकास के साथ साथ शारीरिक विकास की ओर ध्यान देना, (छ) छात्रों को बुरे व्यसनों से बचाना।

स्वास्थ्य वृद्धि तथा स्वास्थ्य रक्षा के उपाय

विद्यालय का वातावरण—छात्रों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए विद्यालय के वातावरण की ओर अवश्य ध्यान दिया जाय। निम्न बातें प्रमुख रूप से ध्यान में रखी जाय—(क) विद्यालय की स्थिति (ख) विद्यालय की स्वच्छता, (ग) वायु और प्रकाश की व्यवस्था, (घ) उपयुक्त फर्नीचर, (च) विद्यालय का कार्यक्रम, (छ) छात्रों के स्वास्थ्य की परीक्षा, (ज) दूषित वातावरण पर नियन्त्रण।

छात्रों के स्वास्थ्य की वृद्धि—स्वास्थ्य वृद्धि के लिए निम्न उपाय अपनाये जायँ—(अ) पौष्टिक जलपान, (ब) शारीरिक व्यायाम, (स) खेल कूद की व्यवस्था।

स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करने का ढंग—(अ) विद्यालय का वातावरण, (ब) पुस्तकों के माध्यम से, (स) मैजिक लालटेन तथा फिल्म शो द्वारा, (द) समाज सेवा द्वारा।

२

बालक का शारीरिक विकास
PHYSICAL DEVELOPMENT OF THE CHILD

Q Discuss the comparative value of Heredity and Environment on the development of a child

प्रश्न—बालक के विकास पर वातावरण और वंशानुक्रम का क्या प्रभाव पड़ता है ? स्पष्ट करो ।

उत्तर—

बालक तथा वयस्क की शारीरिक बनावट मे अन्तर

बालक और वयस्क की शारीरिक बनावट मे पर्याप्त अन्तर होता है । बालक की अस्थिया और वयस्क की अस्थिया, विभिन्न अगो के पारस्परिक अनुपात तथा नाड़ी-जाल आदि, सब मे पर्याप्त अन्तर होता है । बालक का विकास पूर्ण रूप से नही होता, अत उसके विकास की गति तीव्र होती है, जबकि वयस्क पूर्ण विकसित होता है । अत उसके विकास की गति भी मन्द होती है । बालक वातावरण से शीघ्र प्रभावित होता है । उसे जैसे वातावरण मे रखा जायगा वैसा ही वह आचरण करेगा । अत वयस्क की अपेक्षा बालक की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए ।

बालक के विकास को प्रभावित करने वाली दो बातें प्रमुख हैं—

१—वंशानुक्रमण (Heredity), २—वातावरण (Environment) ।

१ वंशानुक्रमण Heredity

वंशानुक्रमण से हमारा तात्पर्य बालक के उन गुणो से है जो उसे माता पिता, (बाबा) दादा दादी, नाना नानी से उत्तराधिकार के रूप मे प्राप्त होते है । यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो हमे ज्ञात होगा कि किसी सीमा तक शरीर का सम्पूर्ण ढाँचा तथा स्वभाव, वंश परम्परा से प्रभावित रहता है । एक वैज्ञानिक के मतानुसार शरीर के बाल, रंग, कद की ऊँचाई, शरीर का ढाँचा आदि सभी सम्मित होते हैं । दूसरे शब्दो मे, वंशानुक्रम से हमारा तात्पर्य उस क्रिया से है जिससे अनेक जीव अपने

पूवजो के समान उत्पन्न होते है। यह क्रिया इस क्रम से चलती रहती है कि मानव की स तान मानव होती है और कुत्ते की कुत्ता।

अधिकाशतया देखा गया है कि स्वस्थ माता पिता के स्वस्थ स तान होती है तथा दुबल माता पिता के दुबल। बालक माता पिता के पारस्परिक सहवास के द्वारा इस ससार म आता है। सहवास करते समय पुरुष का शुक्रकोष स्त्री के बीज-कोष से सम्मिलित होता है, इस सम्मिलन के द्वारा ही नवीन प्राणी का ज म होता है। कोष का मुख्य भाग 'मीजी' (Nucleus) कहलाता है। इस यूक्लियस के द्वारा ही पिता के गुण पुत्र मे आते है। इन सबको देखत हुए हम बालक के विकास म उसके वश के प्रभाव की उपेक्षा नही कर सकते। कुछ विद्वानो के मतानुसार बालक के विकास म वशानुक्रम का विशेष हाथ रहता है।

२ वातावरण Environment

उपयु क्त विचारधारा के विपरीत कुछ लोगो के मतानुसार बालक के विकास मे वातावरण का प्रमुख हाथ रहता है।

वातावरण से हमारा तात्पय उन समस्त तत्वो से ह जो बालक को ज म से पूव और जन्म के पश्चात् प्रभावित करते है। जैसा वातावरण होगा, वैसा ही बालक का विकास होगा। बालक के विकास की दिशा का निर्धारण वातावरण द्वारा होता है। जिस व्यक्ति का पालन-पोषण स्वस्थ वातावरण मे होता है, उसका शरीर और मन—दोनो स्वस्थ रहत हैं। जो मा बाप अपने बालको के लिए स्वस्थ वातावरण उपस्थित करते है, उनके बच्चे भी शारीरिक और मानसिक रूप से पूण स्वस्थ रहते है। दूषित वातावरण म पले बालक भविष्य मे चलकर राष्ट्र और समाज के लिए सिर दद हो जाते हैं। एडवड वश मे पालन-पोषण के उचित वातावरण के परिणाम स्वरूप इस वश के समस्त बालक प्रतिभाशाली तथा बुद्धिमान निकले। इसके विपरीत ज्यूक वश के अ दर दूषित वातावरण होने के कारण उसके समस्त सदस्य पतित निकले। इस प्रकार हम दखते हैं कि बालक के विकास मे वातावरण का प्रमुख हाथ रहता है।

वातावरण को निम्नलिखित भागो म बाटा जा सकता है

१—बालक के उत्पन्न होने से पूव (Pre Natal)

२—उत्पत्ति के समय (Intra Natal)

३—बालक के उत्पन्न होने के पश्चात् (Post Natal)

१ बालक के उत्पन्न होने से पूर्व का वातावरण
(Pre Natal Environment)

(अ) माता का पौष्टिक भोजन—जब बालक गभ के अ दर रहता है, उस समय गर्भिणी स्त्री को पौष्टिक भोजन अवश्य मिलना चाहिए। यदि गभवती स्त्री को स्वास्थ्यप्रद भोजन नहीं मिलता है और बुरे वातावरण म रहती है तो उसका

प्रभाव गर्भ स्थित शिशु पर पड़ता है। बालक का स्वास्थ्य गर्भ में ही खराब हो जाता है। अतः गर्भ स्थित शिशु को पूर्ण स्वस्थ रखने के लिए गर्भिणी स्त्री को इस प्रकार का भोजन प्रदान किया जाय, जिसमें प्रोटीन, कैलशियम, लवण तथा विटामिन उचित मात्रा में हो। हरी सब्जी, दूध, मक्खन तथा पालक खूब खाने को देने चाहिए। माँ को दिया गया पौष्टिक भोजन बालक को निरोग तथा पूर्ण स्वस्थ बनाता है। जब माँ को पौष्टिक भोजन नहीं मिलता तब गर्भ में स्थित शिशु अपने विकास के लिए आवश्यक तत्त्व माँ की हड्डियों से प्राप्त करेगा, परिणामस्वरूप माँ के स्वास्थ्य पर भयंकर आघात लगेगा।

(ब) स्वच्छ तथा शुद्ध वातावरण—गर्भिणी स्त्री को स्वास्थ्यप्रद तथा शुद्ध वातावरण में रखा जाना आवश्यक है। शुद्ध वायु तथा प्रकाश से गर्भिणी का चित्त प्रसन्न रहता है। अतः कमरे के अन्दर पर्याप्त रूप में खिड़की और रोशनदान होने चाहिए। यदि कमरे के अन्दर वायु और प्रकाश का उचित प्रबन्ध नहीं है तो गर्भिणी तथा गर्भ स्थित शिशु—दोनों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। यदि सम्भव हो सके तो गर्भिणी को टहलने का अवसर प्रदान किया जाय।

(स) वंश परम्परागत रोग—वंश परम्परागत बीमारियों का भी बालक पर प्रभाव पड़ता है। रोगी माँ बाप के बच्चे भी रोगी होते हैं। अधिकांशतया यह देखा गया है कि जिन माँ बापों के सुजाक, उपदंश (Syphilis), तपेदिक आदि रोग होते हैं, उनकी सन्तानें भी इन्हीं रोगों से ग्रस्त होती हैं।

(द) माँ बाप की आयु—कच्ची उम्र के तथा वृद्ध माता पिताओं के बच्चे रोगी और कमजोर होते हैं। जब माँ बाप पूर्णतया जवान होते हैं तो उनके बालक पूर्ण स्वस्थ तथा नीरोग होते हैं। स्त्री के लिए गर्भ धारण करने के लिए १८ से ३८ वर्ष की आयु पूर्णतया ठीक है।

(य) आकस्मिक दुर्घटना—गर्भ में स्थित शिशु रहने पर यदि माँ के चोट लग जाय या ऊपर से गिर पड़े तो ऐसी दशा में शिशु के अंग भंग होने की सम्भावना रहती है।

(र) गर्भ दवाएँ—गर्भ दवाएँ, जैसे—कुनीन, आयोडीन आदि गर्भवती स्त्री खा ले तो गर्भपात होने की सम्भावना रहती है। गर्भ दवाएँ बालक का अंग भंग भी कर देती हैं।

(ल) चोट—गर्भ में चोट पहुँचने से पेट के बालक की मृत्यु हो सकती है।

२ जन्म होते समय का वातावरण
(Intra Natal Environment)

शिशु के जन्म होते समय असावधानी से चोट या छूत लग जाती है तो बालक का स्वास्थ्य बिगड़ जाने का भय रहता है। कभी-कभी सिर में चोट लग

जाने से अनेक मानसिक रोग हो जाते तथा मस्तिष्क की नाड़ियों से रक्त स्राव भी होने की सम्भावना रहती है। अतः बच्चे उत्पन्न होते समय पूर्णतया सावधानी रखनी चाहिए।

३ जन्म के पश्चात् का वातावरण
(Post Natal Environment)

जन्म के पश्चात् बालक के विकास पर अनेक बातों का प्रभाव पड़ता है। आगे उन बातों का वर्णन करेंगे जो जन्म के पश्चात् बालक के विकास पर प्रभाव डालती है—

(क) पौष्टिक भोजन—पौष्टिक भोजन का बालक के विकास पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यदि उचित रूप से पौष्टिक भोजन बालक को नहीं मिलता तब ऐसी अवस्था में न तो उसका मानसिक विकास ही होना सम्भव है और न शारीरिक ही। जन्म लेने के पश्चात् से ही बालक अत्यन्त क्रियाशील हो जाता है। वह निरन्तर कुछ-न-कुछ क्रिया करता ही रहता है। अतः शारीरिक क्रिया करने में जो शक्ति का व्यय होता है उसको पूरा करने के लिए पौष्टिक भोजन करना परम आवश्यक है। स्वास्थ्यप्रद भोजन से बालक का शारीरिक विकास उचित प्रकार से होता है और वजन, ऊँचाई तथा शक्ति में भी वृद्धि होती है। पौष्टिक भोजन लेने वाले बालक के बाल चमकीले, आँखें तेजयुक्त, दाँत मजबूत तथा शरीर सुदृढ़ होता है।

(ख) घर का वातावरण—घर का वातावरण भी बालक के विकास पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालता है। बालक का अधिकांश समय घर के अन्दर ही बीतता है। यदि घर का वातावरण स्वास्थ्यप्रद तथा शुद्ध रहता है तो बालक का शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार का विकास उचित ढंग से होता रहता है। जो बालक प्रकाशहीन गन्दे घरों में पलते हैं, उनका न तो शारीरिक विकास ही ढंग से हो पाता है और न मानसिक। अतः बालक के समुचित विकास के लिए हमें घर के वातावरण की ओर पूर्ण रूप से ध्यान देना चाहिए। जहाँ तक हो सके घर को स्वच्छ, शुद्ध वायु तथा प्रकाश से युक्त बनाना चाहिए।

(ग) विद्यालय का वातावरण—घर के वातावरण की भाँति विद्यालय का वातावरण भी बालक के विकास पर प्रभाव डालता है। जिस कक्षा में बालक बैठता है, यदि उसमें उचित रीति से प्रकाश का प्रबन्ध न हो, सीलन तथा दम घोटने वाला वातावरण हो तो बालक के शारीरिक तथा मानसिक विकास पर अत्यन्त बुरा प्रभाव पड़ेगा। प्रकाश के अभाव के कारण बालक की दृष्टि में अनेक दोष उत्पन्न हो जायेंगे। वायु का अभाव उसे फेफड़ों का रोगी बना देगा। इसी प्रकार खराब फर्नीचर में छात्रों को उठने बैठने की गलत आदतें पड़ जाती हैं जो उनकी हड्डियों में अनेक रोग उत्पन्न कर देती हैं। विद्यालयों में बालकों के मनोरंजन के लिए भी उचित प्रबन्ध होना चाहिए, जिससे उनके मानसिक विकास में किसी प्रकार की

बाधा न पड़े। वास्तव में विद्यालय का अशुद्ध वातावरण बालक के विकास में बाधा का कार्य करता है।

(घ) **अवकाश तथा आराम का प्रभाव**—बालक को कार्य करने के पश्चात् अवकाश अवश्य मिलना चाहिए। कार्य करने के पश्चात् अवकाश मिल जाने से शरीर पुनः शक्ति प्राप्त कर लेता है तथा नवीन स्फूर्ति आ जाती है। विद्यालय के अन्दर छात्रों को उचित समय के लिए अवकाश प्रदान किया जाय। समय-चक्र विभाग का निर्माण इस ढंग से किया जाय कि छात्रों को पर्याप्त अवकाश मिल सके।

(च) **विषयों की विभिन्नता का प्रभाव**—एक प्रकार के नीरस विषय पढ़ाने से भी छात्र के मानसिक विकास में बाधा आती है। जो अध्यापक अपने छात्रों को केवल परम्परागत विषय ही पढ़ाता है, वह छात्रों के मानसिक विकास में बाधा उत्पन्न करने का कार्य करता है। अतः परम्परागत विषयों के अतिरिक्त कला, संगीत आदि जैसे विषयों को भी पढ़ाया जाय। समय समय पर छात्रों को बाहर घूमने-फिरने के लिए भी ले जाया जाय।

(छ) **भौगोलिक स्थिति**—जलवायु का बालक के विकास पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। गर्म प्रदेशों में अनेक रोग फैला करते हैं। दूसरे, गर्म प्रदेशों में अधिक गर्मी होने के कारण लोग अधिकतर आलसी होते हैं। ठण्डे प्रदेशों के निवासी गर्म प्रदेशों की अपेक्षा कहीं बलवान तथा परिश्रमी होते हैं।

(ज) **पारिवारिक संख्या का प्रभाव**—जिस परिवार में बालकों की संख्या अत्यधिक होती है, वहाँ प्रत्येक बालक पर उचित रूप से ध्यान नहीं दिया जाता है। माँ बाप के लिए प्रत्येक बालक की आवश्यकताओं की पूर्ति करना कठिन हो जाता है। परिवार के सबसे छोटे बच्चों पर विशेष तौर पर ध्यान नहीं दिया जाता और न उन्हें विशेष स्नेह ही मिलता है। अतः इस प्रकार बालकों का शारीरिक तथा मानसिक विकास अत्यन्त मन्द गति से होता है। बड़े परिवार की आर्थिक स्थिति भी अच्छी नहीं होती है।

(झ) **माता पिता का आचरण**—बालकों पर उनके माता पिता का विशेष प्रभाव पड़ता है। यदि माता पिता स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतों के अभ्यस्त हैं तो बालक भी उनका अनुसरण करेंगे। माँ बापों को सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए, क्योंकि स्वच्छता बालकों को स्वस्थ रहने की प्रेरणा देती है। माता पिता को अपना आचरण शुद्ध रखना चाहिए।

वास्तव में बालक के विकास पर वंशानुक्रमण और वातावरण—दोनों का प्रभाव पड़ता है। दोनों में से किसको अधिक महत्त्व दिया जाय, यह कहना कठिन है। फिर भी अध्यापक और अभिभावक—दोनों का कर्त्तव्य है कि वे बालक के लिए शुद्ध तथा पवित्र वातावरण उपस्थित करने का प्रयत्न करें, क्योंकि वातावरण में परिवर्तन लाना मानव के लिए, वंशानुक्रमण की अपेक्षा सरल है।

साराश

बालक के विकास पर दो बातें अधिक प्रभाव डालती हैं —(१) वशानुक्रमण तथा (२) वातावरण।

१—वशानुक्रमण—बालक क ऊपर वशानुक्रमण का विशेष प्रभाव पडता है। स्वस्थ माँ बाप के स्वस्थ स तान होती है।

२—वातावरण—वातावरण को तीन भागो म विभाजित किया जा सकता है—(१) बालक के उत्पन्न होने से पूव, (२) उत्पत्ति के समय, (३) बालक के उत्पन्न होने के पश्चात्।

बालक के उत्पन्न होने के पश्चात् का वातावरण अधिक महत्त्वपूण है। इसम निम्न बातें ध्यान में रखी जायें—(क) पौष्टिक भोजन, (ख) घर का वातावरण, (ग) विद्यालय का वातावरण, (घ) अवकाश, (च) विषय विभिन्नता, (छ) भौगोलिक स्थिति, (ज) पारिवारिक सख्या, (झ) माता पिता का आचरण।

३

मानव-शरीर की रूपरेखा

OUT LINE OF HUMAN BODY

Q What are the important systems in human body ?

प्रश्न—मानव शरीर के प्रमुख संस्थान कौन कौन से हैं ?

उत्तर—मानव शरीर का पूर्ण अध्ययन करने के लिए उसकी समस्त व्यवस्था का क्रम से अध्ययन करना होगा। नीचे हम मानव शरीर की रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे। यथा—

कोष Cells

मानव शरीर का निर्माण अनेक सूक्ष्म कोषों (Cells) से हुआ है। कोष शरीर की सबसे छोटी इकाई है। ये कोष इतने छोटे होते है कि इनको साधारण दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। इनको देखने के लिए सूक्ष्मदर्शक यन्त्र की आवश्यकता होती है। कोष के अन्दर जीवन रहता है, इस कारण प्रत्येक कोष के अन्दर जीवित प्राणियों के लक्षण मिलते हैं। कोष एक प्रकार के अद्धतरल सजीव पदार्थ 'जीवोज' (Protoplasm) का छोटा भाग है। इसके खोल का निर्माण झिल्ली के द्वारा होता है तथा खोल अन्दर से 'जीवोज' (Protoplasm) नामक तरल पदार्थ से पूरित रहता है। जीवोज का निर्माण आक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन तथा गन्धक आदि से मिलकर होता है। कोष के मध्य में बीज के आकार का एक पदार्थ होता है जिसे वैज्ञानिक भाषा में 'न्यूक्लियस' (Nucleus) कहते हैं। न्यूक्लियस के द्वारा कोष के समस्त कार्य नियन्त्रित रहते है।

तन्तु Tissues

शरीर में विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ होती रहती हैं। इन विभिन्न प्रकार की क्रियाओं को सम्पादित करने के लिए भिन्न भिन्न प्रकार के कोष-समूह होते हैं। वैज्ञानिक भाषा में एक ही प्रकार के और एक ही काम करने वाले कोषों के समूह को तन्तु (Tissues) कहा जाता है। तन्तुओं के विभिन्न कार्य होते हैं। किसी तन्तु का कार्य शरीर को रक्षा करना होता है तो किसी का शरीर को साधे रखना। हड्डी को

भी हम त तु कह सकते हैं, क्योंकि उनका निर्माण हड्डी कोषा (Bone Cells) के द्वारा होता है। इसी प्रकार मास कोषा के सम्मिलन से मास-तन्तुओ का निर्माण होता है।

अवयव या अग Organs

ऊपर जैसा कि हमने उल्लेख किया है, कोषा स मिलकर त तुओ की रचना होती है, उसी प्रकार अनेक त तुओ स मिलकर नाना प्रकार के अगो का निर्माण होता है। हमारा शरीर अनेक अगो मे बना है। प्रत्येक अग अपना विशेष काय करता है। उदाहरण के लिए—आँख देखने का अग है, नाक साँस लेने का। प्रत्येक अग का निश्चित काय है जिसे कि वे आवश्यकतानुसार करते रहते हैं।

जब एक ही प्रकार का काय विभिन्न अगो के समूह करते हैं तो उसे हम सस्थान' (System) कहते हैं। उदाहरण के लिए—खाना पचाने का काय शरीर के विभिन्न अग करते है, जैसे—दाँत रोटी चबाते हैं, आँतें खाने को पचाती हैं, मल द्वार बेकार पदाथ को बाहर निकालता है। इस प्रकार खाना पचाने की सम्पूर्ण क्रिया शरीर के विभिन्न अगो द्वारा होती है। इस व्यवस्था को हम सस्थान (System) कहते है। हमारे शरीर मे निम्न सस्थान पाये जाते हैं—

(१) **अस्थि सस्थान** (The Skeleton)—इसके अन्दर शरीर की समस्त हड्डिया आ जाती है। सम्पूण शरीर इन्ही पर आधारित है। शरीर की समस्त अस्थिया एक दूसरे स अस्थि ब धन (Ligaments) द्वारा सम्बन्धित हैं।

(२) **मासपेशीय सस्थान** (Muscular System)—मासपेशियां का काय मासपेशियो के अभाव म खाना पीना, चलना फिरना आदि सभी क्रियाएँ नहीं हो पाती।

(३) **श्वासोच्छवास सस्थान** (Respiratoty System)—इस सस्थान का काय—रक्त साफ करने के लिए शुद्ध वायु उपलब्ध करना है। इसमे नाक, फफड़े (Lungs) तथा श्वास नली आदि सम्मिलित हैं।

(४) **पाचन सस्थान** (Digestive System)—इस सस्थान के अन्दर पाचन क्रिया मे भाग लेने वाले समस्त अग आते है जसे—मुख जीभ, लार ग्रथियाँ (Salivary Glands) भोजन नली (Gullet) आमाशय छोटी आत, बडी आँत, जिगर आदि सभी अग इस सस्थान म सम्मिलित हैं।

(५) **रक्त प्रवाह सस्थान** (Circulatory System)—इस सस्थान का प्रमुख काय समस्त त तुओ को भोजन तथा आक्सीजन प्रदान करना है। इसके अन्दर हृदय तथा रक्तवाहिनी नलिया (Blood Vessels) आते है। सारे शरीर म रक्त का चक्कर रक्तवाहिनी नलिकाओ के द्वारा होता है। इस सस्थान का दूसरा काय—निरथक पदार्थो का मल निष्कासन अग तक पहुचाने का भी है।

(६) **मल निष्कासन सस्थान** (Excretory System)—इस सस्थान का

प्रमुख काय—शरीर के अन्दर से निष्क्रिय पदार्थों को बाहर निकालना है। इसके अन्दर गुर्दे, मलद्वार, त्वचा, फेफड़े, बड़ी आँत आदि सम्मिलित हैं।

(७) स्नायु संस्थान (Nervous System)—इस संस्थान को दूसरे शब्दों में 'वात संस्थान' भी कहा जाता है। इसके अन्दर मानव मस्तिष्क, सुषुम्ना और समस्त शरीर के अन्दर फैले हुए स्नायु जाल आदि सम्मिलित हैं। शरीर के समस्त अंगों पर नियंत्रण इन्हीं के द्वारा होता है।

(८) सन्तान उत्पादक संस्थान (Reproduction System)—इस संस्थान का काय—सन्तान उत्पन्न करना है। इसके अन्दर स्त्री-पुरुष के सन्तान-उत्पादक अंग (Reproduction Organs) तथा अण्डकोष (Testes) और ओवरी (Overy) आदि सम्मिलित हैं।

(९) लसिका संस्थान (Lymphatic System)—इस संस्थान के अन्दर लसिका ग्रन्थियाँ तथा लसिका-नलिकाएँ आदि आती हैं। इनका प्रमुख काय तन्तुओं को खुराक पहुँचाना तथा व्यय के पदार्थों को बाहर निकालना है।

सारांश

मानव शरीर की रूपरेखा—(१) कोष (Cells)
(२) तन्तु (Tissues)
(३) अवयव या अंग (Organs)

जब एक ही प्रकार का काय विभिन्न अंगों के समूह करते हैं तो उसे हम संस्थान कहते हैं। हमारे शरीर में निम्न संस्थान (System) हैं—

(i) अस्थि संस्थान (The Skeleton)
(ii) मांसपेशीय संस्थान (Muscular System)
(iii) श्वासोच्छ्वास संस्थान (Respiratory System)
(iv) पाचन संस्थान (Digestive System)
(v) रक्त प्रवाह संस्थान (Circulatory System)
(vi) मल निष्कासन संस्थान (Excretory System)
(vii) स्नायु संस्थान (Nervous System)
(viii) सन्तान उत्पादक संस्थान (Reproduction System)
(ix) लसिका संस्थान (Lymphatic System)।

भी हम त तु कह सकते हैं, क्योंकि उनका निर्माण हड्डी कोषा (Bone Cells) के द्वारा होता है। इसी प्रकार मास कोषा के सम्मिलन से मास-त तुओ का निर्माण होता है।

अवयव या अग Organs

ऊपर जैसा कि हमने उल्लेख किया है कोषा स मिलकर त तुओ की रचना होती है, उसी प्रकार अनेक त तुओ से मिलकर नाना प्रकार के अगो का निर्माण होता है। हमारा शरीर अनेक अगो से बना है। प्रत्येक अग अपना विशेष काय करता है। उदाहरण के लिए—आँख देखने का अग है, नाक साँस लेने का। प्रत्येक अग का निश्चित काय है जिसे कि वे आवश्यकतानुसार करते रहते है।

जब एक ही प्रकार का काय विभिन्न अगो के समूह करते हैं तो उसे हम 'सस्थान' (System) कहते है। उदाहरण के लिए—खाना पचाने का काय शरीर के विभिन्न अग करते हैं, जैसे—दाँत रोटी चबाते हैं, आँतें खाने को पचाती है, मल द्वार बेकार पदाथ को बाहर निकालता है। इस प्रकार खाना पचाने की सम्पूर्ण क्रिया शरीर के विभिन्न अगो द्वारा होती है। इस व्यवस्था को हम सस्थान (System) कहते हैं। हमारे शरीर म निम्न सस्थान पाये जाते हैं—

(१) **अस्थि सस्थान** (The Skeleton)—इसके अ दर शरीर की समस्त हड्डिया आ जाती हैं। सम्पूर्ण शरीर इन्ही पर आधारित है। शरीर की समस्त अस्थिया एक दूसरे से अस्थि ब धन (Ligaments) द्वारा सम्बधित है।

(२) **मासपेशीय सस्थान** (Muscular System)—मासपेशियो का काय मासपेशियो के अभाव म खाना पीना, चलना फिरना आदि सभी क्रियाए नहीं हो पाती।

(३) **श्वासोच्छवास सस्थान** (Respiratoty System)—इस सस्थान का काय—रक्त साफ करने के लिए शुद्ध वायु उपलब्ध करना है। इसमे नाक, फेफड़े (Lungs) तथा श्वास नली आदि सम्मिलित हैं।

(४) **पाचन सस्थान** (Digestive System)—इस सस्थान के अन्दर पाचन क्रिया म भाग लेने वाले समस्त अग आते है, जैसे—मुख, जीभ, लार ग्रन्थियाँ (Salivary Glands), भोजन नली (Gullet), आमाशय छोटी आत, बडी आत, जिगर आदि सभी अग इस सस्थान म सम्मिलित है।

(५) **रक्त प्रवाह सस्थान** (Circulatory System)—इस काय समस्त त तुओ को भोजन तथा आक्सीजन प्रदान करना है। तथा रक्तवाहिनी नलियाँ (Blood Vessels) आते है। सारे चक्कर रक्तवाहिनी नलिकाओ के द्वारा होता है। इस सस्थान निरथक पदार्थो को मल निष्कासन अग तक पहुचाने का भी है।

(६) **मल निष्कासन सस्थान** (Excretory System

) अनियमित अस्थियाँ (Irregular Bones)—इसम रीत की अस्थियाँ

५) स्थानाकार या पन्ना के आकार की अस्थियाँ (Cuneiform Bones)—
र कलाई और टखन की अस्थियाँ आती हैं।

अस्थियो की रूपरेखा तथा वर्गीकरण

४

अस्थि-संस्थान

SKELETON SYSTEM

Q What is the importance of skeleton to your body? Give signs, symptoms and prevention of some of the important diseases

प्रश्न—हमारे शरीर के लिए अस्थियों का क्या महत्त्व है ? अस्थि सम्बन्धी प्रमुख रोगों तथा उनके निदान का उल्लेख करो।

उत्तर—हमारे शरीर का समस्त आधार अस्थियों पर ही टिका हुआ है। इस संस्थान का निर्माण २०६ अस्थियों से हुआ है। अस्थियाँ मांसपेशियों के कारण अत्यन्त गतिमान होती है। परन्तु हमारे शरीर के समस्त अंगों में सबसे कड़ी वस्तु अस्थियाँ ही हैं। अस्थियों का निर्माण चूना और लवणों से होता है। इनका आकार नली के समान होता है, जिसमें एक विशेष गूदा (Bone Marrow) भरा रहता है। हमारे सिर के ऊपरी भाग में ८ और चेहरे में १४ हड्डियाँ होती हैं। इस प्रकार सिर में कुल मिलाकर २२ अस्थियाँ हैं। हमारे सीने के अन्दर २४ अस्थियाँ हैं। हमारे प्रत्येक पैर में ३१ अस्थियाँ होती हैं।

अस्थियों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) चपटी अस्थियाँ (Flat Bones)—हमारे सिर की अस्थियाँ इसी प्रकार की हैं।

(२) लघु अस्थियाँ (Short Bones)—इसमें अँगूठे और अँगुलियों की अस्थियाँ आती हैं।

(३) लम्बी अस्थियाँ (Long Bones)—हमारी बाँह और टाँग की अस्थियाँ इसी के अन्दर आती हैं।

(४) गोल अस्थियाँ (Cubical Bones)—हमारे टखने और कलाई की अस्थियाँ गोल होती हैं।

(५) अनियमित अस्थियाँ (Irregular Bones)—इसमें रीढ़ की अस्थियाँ आती हैं।

(६) स्फानाकार या फन्नी के आकार की अस्थियाँ (Cuneiform Bones)—इनके अन्दर कलाई और टखने की अस्थियाँ आती हैं।

अस्थियों की रूपरेखा तथा वर्गीकरण
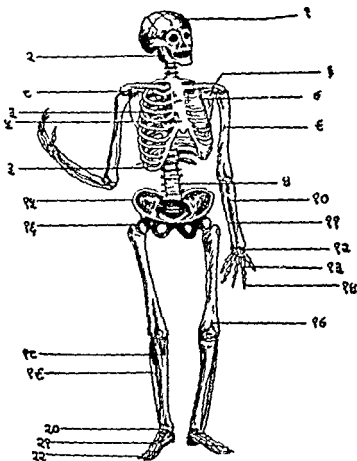
(अस्थि पंजर)

१ मस्तिष्क कोष, २ चेहरा, ३ पसलियाँ, ४ रीढ़, ५ वक्षोस्थि, ६ अक्षकास्थि, ७ स्कन्ध, ८ स्कन्ध मेखला, ९ प्रकोष्ठास्थि, १० बाहि प्रकोष्ठास्थि, ११ प्रकोष्ठास्थि, १२ मणि बन्ध अस्थियाँ, १३ कर-अस्थियाँ, १४ हस्त अगुल्यास्थियाँ, १५ कूल्हे की अस्थि, १६ कूल्हा मेखला, १७ उर्वास्थि, १८ जंघास्थि, १९ अन्त जंघास्थि, २० कुर्चास्थियाँ, २१ पैर की अस्थियाँ, २२ पैर की उँगलियाँ।

४

अस्थि-सस्थान

SKELETON SYSTEM

Q What is the importance of skeleton to your body ? Give signs, symptoms and prevention of some of the important diseases

प्रश्न—हमारे शरीर के लिए अस्थियों का क्या महत्त्व है ? अस्थि सम्बन्धी प्रमुख रोगो तथा उनके निदान का उल्लेख करो।

उत्तर—हमारे शरीर का समस्त आधार अस्थिया पर ही टिका हुआ है। इस सस्थान का निर्माण २०६ अस्थियो से हुआ है। अस्थियाँ मासपेशिया के कारण अत्य त गतिमान होती है। पर तु हमारे शरीर के समस्त अगो मे सबस कडी वस्तु अस्थिया ही है। अस्थियो का निर्माण चूना और लवणा स होता है। इनका आकार नली के समान होता है, जिसम एक विशेष गूदा (Bone Marrow) भरा रहता है। हमारे सिर के ऊपरी भाग म ८ और चेहर म १४ हड्डिया होती हैं। इस प्रकार सिर म कुल मिलाकर २२ अस्थिया है। हमारे सीन के अ दर २५ अस्थियाँ हैं। हमारे प्रत्येक पैर म ३१ अस्थिया होती हैं।

अस्थियो को निम्न भागो म विभाजित किया जा सकता है—

(१) चपटी अस्थियाँ (Flat Bones)—हमारे सिर की अस्थियाँ इसी प्रकार की है।

(२) लघु अस्थियाँ (Short Bones)—इसम अँगूठ और अँगुलिया की अस्थियाँ आती हैं।

(३) लम्बी अस्थियाँ (Long Bones)—हमारी बाँह और टाग की अस्थियाँ इसी के अ दर आती हैं।

(४) गोल अस्थियाँ (Cubical Bones)—हमारे टखने और कलाई की अस्थियाँ गोल होती हैं।

ख—निचले जवडे की अस्थियाँ (Intecior Bones)—गाल की अस्थि (Malar Bones)। इनकी सख्या दो है।

ग—दो, तालू की अस्थियाँ (Palate Bones)।

घ—दो, नाक की अस्थियाँ (Nasal Bones)।

च—दो, स्पज के आकार की अस्थियाँ (Spongy Bones)।

छ—दो, आयु से सम्ब ध रखने वाली अस्थियाँ जिन्हे Larchrymal के नाम से पुकारा जाता है।

ज—एक, नाक का पर्दा निमित करने वाली अस्थि (Vomar Bone)।

मानव चहरे का निर्माण उपयु क्त १४ अस्थियो से होता है। निचले जवडे को छोडकर शेष समस्त अस्थिया अचल ह। नीचे जवडे के चल होने के कारण ही हम भोजन को सरलता के साथ चवा सकते है। चेहरे के अ दर आँख, कान आदि ज्ञानेन्द्रियाँ रहती हैं।

(ख) धड (Trunk)

धड के अ दर निम्न अस्थियाँ सम्मिलित ह—(i) रीढ की हड्डी (Vertebral column) (ii) पसलियाँ (Ribs), (iii) वक्षास्थि (Sternum), (iv) कन्धे की अस्थियाँ (Shoulder Girdle), (v) कूल्हे की अस्थियाँ (Pelvic Girdle)।

(i) रीढ की अस्थि या मेरुदण्ड (Vertebral Column)—मानव-शरीर का आधार मेरुदण्ड है। इसका आरम्भ गर्दन से होता है तथा मलद्वार के निकट तक जाती है। मेरुदण्ड के २६ भाग हैं जो परस्पर आपस में सम्बधित हैं। प्रत्येक भाग मेरु की ३३ अनियमित अस्थियो से बनता है, बडे होने पर २६ अस्थियाँ ही रह जाती हैं। मेरुदण्ड कशेरुकाओ (Vertebrate) को निम्न भागो म विभाजित किया जाता है—

(१) सात कशेरुकाएँ (Cervical Vertebral)—जो कि गर्दन का निर्माण करती हैं।

(२) बारह कशेरुकाएँ (Dorsal Vertebral)—जो कि पीठ का निर्माण करती हैं।

(३) पांच कशेरुकाएँ (Lumbar Vertebral)—जो कि कमर का निर्माण करती हैं।

(४) हमारे वस्ति प्रदेश का निमाण नीचे की ६ कशेरुकाओ द्वारा होता है। प्रथम पाँच कशेरुकाओ को 'त्रिकास्थि' (Sacrum) तथा शेष चार को 'गुदास्थि' (Coccyx) के नाम से पुकारा जाता है।

अस्थि सस्थान के कार्य Functions of the Skeleton

(१) अस्थि सस्थान का प्रथम प्रमुख काय शरीर के सम्पूण भार को स॰ लना है ।

(२) हृदय, फफडे तथा मस्तिष्क आदि जो हमारे शरीर के कामल अग उनकी रक्षा करता है ।

(३) शरीर की मासपेशियो को सहारा प्रदान करता है ।

अस्थि सस्थान को निम्न तीन भागो म विभाजित किया जाता है—

(क) खोपडी, (ख) धड, (ग) ऊपर नीचे के अवयव ।

(क) खोपडी (Skull)

खोपडी के दो भाग होते हैं—(१) मस्तिष्क कोष्ठ तथा (२) चेहरा ।

(१) मस्तिष्क कोष्ठ—मस्तिष्क कोष्ठ का आकार एक मजबूत सन्दूक समान होता है । यह आठ अस्थियो द्वारा निर्मित है । इन अस्थियो के नाम नीचे दि जाते हैं—

क—ललाटास्थि (Frontal Bones)—यह माथा बनाती है ।

ख—पार्श्वकास्थि (Parietal Bones)—यह सिर की छत तथा दाए ब भाग बनाती है ।

ग—पाश्चादस्थि (Occipital Bones)—इसके द्वारा सिर का पिछला भ निर्मित होता है ।

घ—शखास्थि (Temporal Bones)—इसके द्वारा कनपटी बनती है ।

इन अस्थियो के अतिरिक्त जतुकास्थि (Sphenoid Bones) तथा एक बहु छिद्रास्थि (Ethmoid Bones) अस्थियाँ भी होती है जिनसे खोपडी का शेष बच हुआ भाग बना है ।

ये आठो परस्पर मिलकर मस्तिष्क कोष्ठ का निर्माण करती हैं । इनका परस्प सम्ब ध कधीदार सधियो (Sutures) द्वारा रहता है । परन्तु छोटे बालक के मस्तिष्क मे वे आपस मे सम्बंधित नही रहती । एक छेद, खोपडी के पीछे भाग की ओर खोपडी के आधार म रहता है । इस छेद के द्वारा ही सुषुम्ना का सम्ब ध मस्तिष्क से रहता है । दो वष से कम आयु के बालक के मस्तिष्क म दो दरारें होती हैं जिनमे एक पूव (Anterior) तथा दूसरी पश्चात् (Posterior) दरारो के नाम से पुकारी जाती हैं । इन दरारो के सहारे शिशु गहरी आघात को सहन कर लेता है । दो वष की अवस्था पूण होने पर य दरारें आपस म जुड जाती ह ।

(२) चेहरा—चेहरे का निमाण १४ अस्थियो से होता है—

क—जबडे की अस्थियाँ (Superior Maxillary)—इन अस्थियो की सख्या दो है ।

ख—निचले जबड की अस्थियाँ (Interior Bones)—गाल की अस्थि (Malar Bones)। इनकी सख्या दो है।

ग—दो, तालू की अस्थियाँ (Palate Bones)।

घ—दो, नाक की अस्थिया (Nasal Bones)।

च—दो, स्पज के आकार की अस्थियाँ (Spongy Bones)।

छ—दो, आँसू से सम्बन्ध रखने वाली अस्थियाँ जिन्हे Larchrymal के नाम से पुकारा जाता है।

ज—एक, नाक का पर्दा निर्मित करने वाली अस्थि (Vomar Bone)।

मानव चेहरे का निर्माण उपयुक्त १४ अस्थियो से होता है। निचले जबडे को छोडकर शेष समस्त अस्थियाँ अचल है। नीचे जबडे के चल होने के कारण ही हम भोजन को सरलता के साथ चबा सकते है। चेहरे के अन्दर आँख, कान आदि ज्ञानेन्द्रियाँ रहती हैं।

(ख) धड (Trunk)

धड के अन्दर निम्न अस्थियाँ सम्मिलित है—(i) रीढ की हड्डी (Vertebral column), (ii) पसलियाँ (Ribs), (iii) वक्षास्थि (Sternum), (iv) कन्धे की अस्थियाँ (Shoulder Girdle), (v) कूल्हे की अस्थियाँ (Pelvic Girdle)।

(i) रीढ की अस्थि या मेरुदण्ड (Vertebral Column)—मानव-शरीर का आधार मेरुदण्ड है। इसका आरम्भ गर्दन से होता है तथा मलद्वार के निकट तक जाती है। मेरुदण्ड के २६ भाग हैं जो परस्पर आपस में सम्बन्धित हैं। प्रत्येक भाग मेरु को ३३ अनियमित अस्थियो से बनता है, बडे होने पर २६ अस्थियाँ ही रह जाती है। मेरुदण्ड कशेरुकाओ (Vertebrate) को निम्न भागो म विभाजित किया जाता है—

(१) सात कशेरुकाएँ (Cervical Vertebral)—जो कि गर्दन का निर्माण करती हैं।

(२) बारह कशेरुकाएँ (Dorsal Vertebral)—जो कि पीठ का निर्माण करती है।

(३) पाँच कशेरुकाएँ (Lumbar Vertebral)—जो कि कमर का निमाण करती है।

(४) हमारे वस्ति प्रदश का निमाण नीचे की ९ कशेरुकाओ द्वारा होता है। प्रथम पाँच कशेरुकाओ को 'त्रिकास्थि' (Sacrum) तथा शेष चार को 'गुदास्थि' (Coccyx) के नाम से पुकारा जाता है।

सबसे ऊपर की २ तथा सबसे बाद की ६ कशेरुकाओं के अलावा अन्य सभी कशेरुकाओं की रूपरेखा समान होती है। इनके चार भाग होते हैं—

१ पिंड (Body), २ चक्र (Nevial Arch), ३ नुकीला उभार (Spinous Process), ४ व्यत्यस्तास्थि (Transverse Process)।

कशेरुकाओं के पिण्ड एक दूसरे पर स्थिर रहते है। कशेरुकाओं के घेरे भी एक दूसरे पर इस ढंग से बैठ जाते हैं कि उनके मध्य में से एक नली सी बन जाती है। इस नलिका को कशेरुकी नली (Spinal Canal) के नाम से पुकारा जाता है। यहीं से होकर सुषुम्ना नाडी गुजरती है। दो कशेरुकाओं के मध्य कार्टिलेज (Cartilage) की गद्दी रहती है। इन गद्दियो के होने से कशेरुकाएँ आपस में टकराती नहीं हैं।

कशेरुकाएँ आपस में कुछ अन्तर लिए हुए होती हैं। हमारी गर्दन की कशेरुकाएँ कमर की अपेक्षा अत्यन्त हल्की होती है। कमर की कशेरुकाएँ इसके विपरीत अत्यधिक भारी होती हैं।

गर्दन की प्रथम तथा द्वितीय कशेरुकाएँ कुछ विशेषताएँ रखती है। इनमें पिण्ड के स्थान पर एक चक्र होता है, जिसका पिछला उभार अत्यन्त लघु होता है। ऊपरी भाग में दो चिकने उभार रहते हैं। इन्हीं पर हमारी खोपडी स्थित रहती है। दूसरी कशेरुका को अक्ष' (Axis) के नाम से पुकारा जाता है, जिनके ऊपरी हिस्से मे दांत के समान कुछ उभार होते हैं जोकि शिरोधर (Atlas) के चक्र में भली प्रकार से स्थित होता है। इन्हीं दाँतो के आधार पर हमारी खोपडी इधर उधर घूम सकती है।

रीढ की बनावट एक स्तम्भ के समान होती है। इसमे अनेक झुकाव होते है। ये झुकाव चार प्रकार के होते हैं—

१—गर्दन का झुकाव (Cervical or Neck Curve)

२—कन्धे का झुकाव (Shoulder Curve)

३—कमर का झुकाव (Lumbar Curve)

४—कूल्हे का झुकाव (Sacrum or Coccyx Curve)

गुण—रीढ के ये झुकाव हमारे शरीर के लिए अत्यन्त लाभदायक है। इनसे हमे निम्न लाभ होते हैं —

(क) पेट और वक्ष की अस्थियो के अंगों को सहारा प्रदान करते है।

(ख) जब हम सिर पर भारी बोझ लेकर चलते है, तब ये मोड रीढ को शक्ति प्रदान करते है।

(ग) पीठ की मासपेशियों में आपसी सम्बन्ध स्थापित करने के लिए स्थान

(घ) इन झुकावो से ही रीढ, विस्तारण (Extension) तथा सकुचन (Compression) की क्षमता रखती है। दूसरे शब्दों म हम कह सकते हैं कि रीढ म फलाव और सकुचन इन झुकावो के कारण ही होता है।

दोष—अध्यापक को इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए कि छात्र अनुचित आसनो का प्रयोग न करे, क्योकि अनुचित आसनो का प्रयोग करने से पीठ म कूबड निकल आता है। अस्थियो म निम्न दोष उत्पन्न हो जाते हैं—

(क) अधिक धँसी कमर (Hollow Back)—कटि कभी कभी अन्दर धँस जाती है। उसम एक प्रकार का गड्ढा पड जाता है। इसका प्रमुख कारण उदर की मासपशियो का ढीला हो जाना है।

(ख) गोल कन्ध (Round Shoulder)—इसम वक्ष चपटा हो जाता है तथा पद का भाग आगे की ओर निकल आता है। इसका कारण कटि प्रदेश पर रीढ की अस्थिया ने अधिक झुकाव होने से कन्ध का भी झुकाव बढ जाता है। इस रोग का निराकरण—उचित आसन और उचित व्यायाम है।

(ग) टाँगों के छोटे होने से तथा एक ही पैर पर देर तक खडे रहने से कभी-कभी बाया स्कन्ध ऊपर उठ जाता है तथा दाहिनी ओर का कूल्हा अधिक आगे आ जाता है। इसका उपचार भी उचित व्यायाम है।

(ii) पसलियाँ (Ribs)—हमारे शरीर म पसलियो की सख्या २४ है। वक्षस्थल के दोनो ओर बारह बारह पसलिया हैं। सामने की तरफ से सात पसलिया कार्टिलेज के द्वारा वक्षोस्थि (Stemour) से जुडी हुई हैं। इसी प्रकार सातवी पसली से आठवी, नवी और दसवी पसली जुडी हुई हैं। आखिर की दो पसलिया का सम्बन्ध न तो वक्षास्थि (Stemour) से ही होता है, और न आपस म ही सम्बन्धित हैं। वैज्ञानिक भाषा मे इसी कारण उन्ह तैरने वाली पसलियाँ (Floating Ribs) कहा गया है। प्रत्येक दो पसलियो के बीच म एक मासपेशी होती है, जिसे 'इन्टर कोस्टल' (Intercostal Muscles) के नाम से पुकारा जाता है। हमारी पसलियो का पिंजरा ऊपर नीचे इन्ही मासपशियों के सकुचन तथा प्रसारण के कारण होता है।

(iii) वक्षोस्थि (Sternum)—यह ६ ७ इच लम्बी अस्थि है। इसमे हमारे हृदय और फफडे सुरक्षित हैं। इसका आकार ऊपर की ओर चौडा तथा नीचे की ओर पतला होता है। इसके तीन भाग होते हैं—

१ ऊपर क विस्तृत भाग के दोनो ओर हँसली की अस्थि मिलती है।

२ मध्य के भाग म दोनो ओर से आकर सात जोडे पसलिया के मिलते है।

३ कोमलास्थि (Cartilage) द्वारा जिनके भाग का निर्माण हुआ है।

(वक्षस्थल)

१—वक्षोस्थि, २—अक्षकास्थि, ३—स्कन्धास्थि
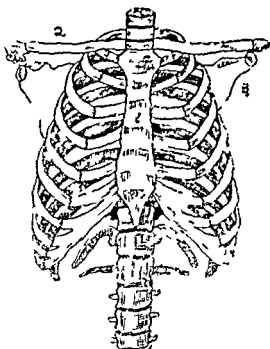
(iv) कन्धे की अस्थिया या स्कन्ध मेखला (Shoulder Girdle)—हमारे शरीर के ऊपर के अवयव स्कन्ध मेखला द्वारा 'धड' (Trunk) से मिले रहते हैं। हँसली की अस्थि वक्षोस्थि के कार्टिलेज द्वारा जुडी रहती है। पीछे की ओर स्कन्धास्थि (Shoulder Blade) तथा आगे की ओर अक्षकास्थि (Collor Bone) से स्कन्ध मेखला का निर्माण होता है। स्कन्धास्थि (Shoulder Blade) पसलियों की अस्थि पर समतल और ढीली रखी रहती है। स्कन्ध मेखला की अस्थियाँ पतली होने के कारण सरलता से इधर-उधर घुमाई जा सकती हैं।

(v) कूल्हा मेखला (Hip Girdle)—हमारे शरीर की टाँगे कूल्हा-मेखला द्वारा धड से सम्बन्धित है। कूल्हा की सख्या दो है। इन कूल्हा की दोनो अस्थियाँ (Hip Bones) पीछे से कमर के नीचे एक त्रिकोण अस्थि (Sacrum) से जुडी हुई है। ये अस्थियाँ अत्यन्त मजबूत व भारी होती है। इसी कारण शरीर का भार सरलता के साथ सम्हाल लेती हैं। इन अस्थियो के नीचे ही स्त्री पुरुष के गुप्तांग

भुजाओं की अस्थियाँ (Bones of the Upper Limbs)—हमारे शरीर की प्रत्येक भुजा के निम्नलिखित भाग किये जाते हैं—

१—प्रगण्डास्थि (Humerus)

२—प्रकोष्ठास्थि (Radius) तथा अन्त प्रकोष्ठास्थि (Ulna)
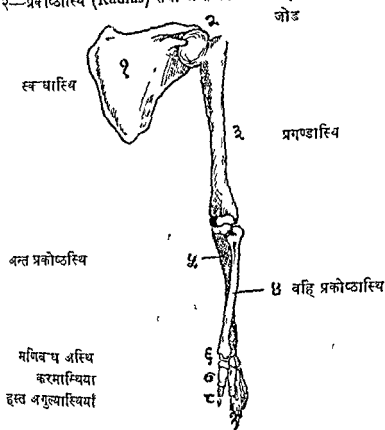
(ऊपर के अवयव की अस्थियाँ)

३—मणिबन्ध अस्थियाँ (Carpal Bones)।

४—करमास्थियाँ (Metacarpal Bones)—इनकी सख्या पाच होती है, जनके द्वारा हथली का निर्माण होता है।

५—हस्त अगुल्यास्थियाँ (Phalanges)—इनकी सख्या कुल मिलाकर चौदह है। य हर उँगली म तीन और अँगूठे म दो होती हैं।

टाँगो की अस्थियाँ (Bones of the Lower Limbs)—टागा की अस्थियो तथा भुजा की अस्थियो के आकार म कोई विशेष अन्तर नही होता।

हमारी टागा म निम्नलिखित अस्थियाँ होती है—

१—उर्वास्थि (Femur)—यह जाँघ से घुटनों तक जाती है।

२—जघास्थि (Tibia) तथा अनुजघास्थि (Fibula)

३—जानवास्थि (Pelella)

४—कुचवास्थियाँ (Tassols)—इन अस्थियो से मिलकर टखने का निर्माण होता है।

(नाचे के अवयव की अस्थियाँ)

५—प्रपादास्थियाँ (Metatarsals)—य पाँच अंगुलियाँ मिलकर पर क

पज का बनाती हैं।

६—प्रपाद अगुल्यास्थियाँ (Phalanges)—य कुल मिलाकर चौदह अस्थि

हाती हैं। प्रत्यक उंगली म तीन तथा प्रत्यक अंगूठे म दो प्रपाद अगुल्यास्थि

...) होती हैं।

अस्थियो की सन्धियाँ
(Joints of Bones)

हमारे शरीर की अस्थियो के ढाँचे मे अनेक जोड हैं। प्रत्येक एसे स्थल, जहा पर दो या दो मे अधिक अस्थिया के सिर मिलते हैं, वे 'जोड' या सधि के नाम से पुकारे जाते हैं। हमारे शरीर म दो प्रकार के जोड होते हैं—

(१) चल (Movable)

(२) अचल (Immovable)

१—चल सन्धियाँ Movable Joints

(i) गेंद तथा प्याले की सन्धि (Ball and Socket Joint)—इस प्रकार की सधि मे एक लम्बी अस्थि का गोल सिरा दूसरी अस्थि के प्याले के आकार के सिरे मे फँसा रहता है। इस सधि की यह प्रमुख विशेषता है कि परस्पर जुडी हुई अस्थिया स्वत त्रता से चारो ओर घूम सकती हैं। कूल्हे और कन्धे की सधियाँ इसी प्रकार की होती हैं।

(ii) कीलदार सधि (Pivot Joint)—इस प्रकार की सधि म एक अस्थि कीली के समान काय करती है तथा अन्य अस्थि की ओर घूमती है। एटलस तथा धुरी कशरकाओ के मध्य इस प्रकार की सधि पाई जाती है। इस सधि के आधार पर ही हम अपने सिर को इधर उधर घुमा सकते हैं।

(iii) कब्जेदार सधि (Hinge Joint)—दरवाजे को आगे पीछे करने म जिस प्रकार कब्ज काय करते हैं उसी प्रकार इन सधियो द्वारा अस्थियो म आगे-पीछे गति उत्पन्न होती है। हमारे शरीर म कुहनी टखने, घुटने, अँगुलिया आदि की सधियां इसी प्रकार की है।

(iv) फिसलन वाली सधि (Gliding Joints)—कलाई की अस्थिया इस प्रकार की सधि के अन्तगत आती हैं। इससे एक हड्डी दूसरी हड्डी के ऊपर कार्टिलेज की गद्दी द्वारा जुडी रहती है। इस सधि म थोडी फिसलन की गति रहती है।

चल सधि की रचना—अस्थिया को यथा स्थान रखने के लिए प्रत्येक सधि पर अस्थियाँ दृढ बन्धना (Ligaments) से जुडी रहती है। जिन स्थलो पर अस्थियो के सिरे आपस म मिले रहते है, वहा एक महीन सी झिल्ली भी होती है, जिसका आकार एक थली के समान होता है। इस थली की सधि को 'सधिकोष' (Capsule) के नाम स पुकारा जाता है। सधिकोष के अन्दर स्नेहिक कला की झिल्ली होती है, जिसम से एक चिकना तरल पदार्थ निकला करता है। इस चिकने पदार्थ के कारण अस्थिया आपस म रगड खाने से बची रहती हैं।

२—अचल सन्धियाँ Immovable Joints

ये सधियां अचल होती हैं।

प्रश्न—अस्थि के लक्षण, बचाव एव उपचार पर प्रकाश डालिये।

—(बनारस विश्वविद्यालय, बी० टी० १९५२)

उत्तर—

अस्थियों के साधारण रोग

१—अस्थि विकृति (Rickets)—इस रोग को 'सूखा रोग' के नाम से भी पुकारा जाता है। इस रोग के प्रमुख कारण—भोजन में कैलसियम, फासफोरस तथा विटामिन 'डी' की कमी का होना है। घर के अस्वास्थ्यकर वातावरण तथा प्रकाश की कमी के कारण भी यह रोग हो जाता है। इस रोग के कारण अस्थियाँ अत्यन्त कोमल हो जाती हैं और उनमें निम्नलिखित परिवर्तन आ जाते हैं—

(i) **चौकोर सिर** (Square Head)—सिर की अस्थियों में विकार उत्पन्न हो जाने के कारण सिर चौकोर सा हो जाता है तथा ललाटास्थि आगे की ओर अत्यधिक उभर आती है।

(ii) **गुरियों वाली पसलियाँ** (Breaded Ribs)—इसमें जिस स्थल पर कार्टिलेज तथा पसलियाँ परस्पर आकर मिलती हैं वहाँ पर वह कुछ मोटा हो जाता है।

(iii) **कबूतरी वक्ष** (Pigeon Chest)—वक्षस्थल एक तरफ से अत्यधिक उभर जाता है तथा दूसरी ओर का टेढ़ा हो जाता है।

(iv) **झुकी रीढ़** (Curved Spine)—मेरुदण्ड के झुक जाने से एक प्रकार का कूबड़ सा निकल आता है। कभी रीढ़ की अस्थि एक ओर को भी झुक जाती है जिसे स्कोलिओसिस (Scoliosis) के नाम से पुकारा जाता है।

(v) **मृदु अस्थियाँ** (Softened Bones)—छोटे बालकों की अस्थियाँ मुलायम रहती हैं। किसी भी प्रकार के दबाव से वे विकृत हो जाती हैं। कभी कभी चलना आरम्भ करते समय में ही विकृति आ जाती है। इन विकृतियों के कारण ही 'Knock Knees' तथा खमदार पिण्डुलियाँ हो जाती हैं। जब बालकों को समय से पूर्व ही चलाने का प्रयास किया जाता है तब भी विकार आ जाते हैं।

(vi) **बस्ति प्रदेश का सिकुड़ जाना** (Narrowing of the Pelvis)—जब बस्ति-प्रदेश की अस्थि पर दबाव पड़ता है तो उसमें एक प्रकार का संकुचन आ जाता है। बस्ति-प्रदेश के तंग हो जाने के परिणामस्वरूप प्रजनन सम्बन्धी अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

अस्थि रोगों के लक्षण

बालक की अस्थियों में विकार आ गया है या नहीं, इसका पता बालक के व्यवहार से ज्ञात हो जायगा—(१) अस्थियों में किसी भी प्रकार की विकृति आ जाने से बालक क्लान्त और खिन्न दिखाई देने लगता है। (२) उसके स्वभाव में कुछ चिड़चिड़ापन आ जाता है। (३) सोते समय उसके सिर में पसीना आता रहता है। (४) अस्थि बन्धनों में भी ढीलापन आ जाता है। मांसपेशियाँ पूर्ण विकसित नहीं हो पाती। (५) बालक के दूध के दाँत देर से निकलते हैं, और निकलते भी हैं तो उसमें विकार आ जाता है। (६) अस्थि-दोष का प्रभाव पाचन क्रिया पर भी पड़ता है।

(७) बालक का पील बदबूदार दस्त जाने लगते है। मांसपेशियां इतनी दुर्बल हो जाता हैं कि पेट बाहर की ओर निकल आता है। (८) कमजोरी अधिक बढ जाने के परिणामस्वरूप खासी, जुकाम का आक्रमण शीघ्र हो जाता है। फेफडे दिन प्रति-दिन कमजोर होते चले जाते है।

अस्थियों के साधारण रोगों का उपचार

१—प्रधान अध्यापक का कर्तव्य है कि विद्यालय में जो निर्बल बालक हैं उन पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय। उन्हें इस प्रकार की सजा न दी जाय कि जिससे उनकी अस्थियो पर किसी प्रकार का प्रभाव पडे। कभी कभी अध्यापक छात्रो को इस प्रकार का शारीरिक दण्ड प्रदान करते हैं कि उनकी अस्थियो में विकार उत्पन्न हो जाता है।

२—बालक के भोजन में भी सुधार की आवश्यकता है। भोजन के अन्दर उचित मात्रा में कैलसियम, फासफोरस तथा विटामिन 'डी' आदि का होना आवश्यक है। गर्भिणी स्त्री को इन तत्वों से युक्त भोजन प्रदान करना चाहिए। जहाँ तक हो सके बालक अपनी माँ का ही दूध पीये। जो बालक ऊपर का दूध पीते है, उन्हें मछली का तेल भी अवश्य दिया जाय।

३—कम अवस्था के बालकों को अधिकांशत सूखा रोग (Rickets) हो जाया करता है। अत इस रोग से मुक्त होने के लिए गन्दी प्रकाशहीन गलियों को छोड़कर, स्वच्छ एव प्रकाश युक्त मकान में रहना आवश्यक हो जाता है। बालकों को सध्या समय खुले मैदान में खेलने कूदने की पूर्ण स्वतन्त्रता मिले। जाडो के समय कुछ काल तक बालकों को धूप में नग्न खडा रहने दिया जाय।

अस्थियों का क्षय रोग—अभी हमने अस्थियों के साधारण रोगो के लक्षण तथा उपचारो का उल्लेख किया था। यहा हम अस्थियो के क्षय रोग का अध्ययन करेंगे। अस्थियो का क्षय रोग जीवाणु (Bacillus) द्वारा फैलता है। इस रोग के होने पर जोडों में दर्द होता है, रोग के बढने पर जोडों में सूजन तथा पीप भर जाती है। रोगी को चलने फिरने में अत्यन्त तकलीफ होती है।

उपचार—क्षय से रोगग्रस्त बच्चों को विद्यालय के अन्य छात्रों से अलग रखा जाय। रोगी गायों को या तो समाप्त कर दिया जाय या दूध को शुद्ध (Sterilize) कर लिया जाय। इस रोग को दूर करने में सूरज की किरण अत्यन्त सहायक होती है। यदि रोगी बालकों को सूरज की 'अल्ट्रावायलेट' (Ultraviolet) किरणों में नित स्नान कराया जाय तो अत्यन्त लाभ होता है। सबसे मुख्य बात समस्त अस्थि रोगों के उपचार के लिए है—शुद्ध वायु और सन्तुलित भोजन, जिसके ऊपर ध्यान देना परम आवश्यक है।

सारांश

अस्थि-संस्थान निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) चपटी अस्थियाँ (Flat Bones)

शरीर को शक्ति एव ताप मिलता है तथा शरीर के विकसित होने म सहायता मिलती है। ऑक्सीजन शरीर मे प्रवेश करके दूसरा काय—व्यय के पदार्थों को जलाने का करती है। बेकार के तत्त्व जल जाने के पश्चात् कार्बन डाइ आक्साइड गैस का रूप धारण कर लेते है और नाक द्वारा शरीर से बाहर निकल जाते हैं। जब हम नाक द्वारा ऑक्सीजन को लेते है तो उसे सास लेना' (Inspiration) कहा जाता है तथा जब हम सास त्यागते है उसे 'सास छोडना' (Expiration) कहा जाता है।

वायु के अ दर निम्नलिखित गस मिली हुइ है—

(i) ऑक्सीजन	प्राय	२१ प्रतिशत
(ii) कार्बन डाइ ऑक्साइड	,,	०४ ,,
(iii) नाइट्रोजन	,,	७६ ,,
(iv) धूल तथा भाप्प के कण		कुछ मात्रा म।

जब हम सास बाहर निकालते है तब उसम उपयुक्त गसें निम्नलिखित मात्रा म रहता है —

(i) आक्सीजन	१६ ५ प्रतिशत
(ii) कार्बन डाइ आक्साइड	४ ०४ ,,
(iii) नाइट्रोजन	७६ ०० ,,

इस प्रकार हम देखत है कि सास निकालने पर आक्सीजन गस की मात्रा ४ ५ प्रतिशत कम होती है तथा कार्बन-डाइ-आक्साइड गस की मात्रा ४ प्रतिशत शुद्ध वायु स अधिक हो जाती है। जब हम साधारण तौर पर सास लेते है तो ३० घन (३० Cubic) इच वायु हमारे फेफडो म प्रवेश करती है। अधिक जोर स सास लने पर २५० घन इच तक वायु प्रवेश कर सकती है तथा उतनी ही निकल सकती है।

श्वास क्रिया के यन्त्र Organs of Respiration

जिन अगो की सहायता से हम सास लते हैं तथा निकालते है व सब श्वास सस्थान के अ दर आत है। जिस माग से वायु हमारे शरीर म प्रवेश करती है तथा बाहर निकलती है उसे श्वास माग के नाम से पुकारा जाता है।

श्वास-माग निम्न भागो म विभाजित किया जाता है—

१—नाक (Nostrils) ३—वायु प्रणाली (Trachea)
२—स्वर-यन्त्र (Larynx) ४—फेफडे (Lungs)।

१ नाक या नासिका माग (Nasal Passage)—'नाक' हमारे शरीर का प्रमुख अग है। इसका आकार सुरग की तरह होता है, जिसम होकर वायु शरीर के भीतर पहुचती है। हमारे शरीर की श्वास क्रिया का आरम्भ इसी अग स होता है। नाक के अ दर दो छेद होत ह, जिनके बीच म एक पर्दा होता है। छेदो की दीवारो पर कोमल बाल होत हैं। बालो क कारण रेत के कण तथा छोट तिनके आदि वायु के साथ अन्दर तक नही जा पात। य छेद कार्टिलेज द्वारा सुरक्षित रहत

हैं तथा इनके ऊपर श्लष्मिक झिल्ली (Mucous Membrane) का आवरण रहता है। श्लष्मिक झिल्ली का सबसे बडा काय यह होता है कि यह एक लसलसा तथा चिपचिपा तरल पदार्थ उत्पन्न करती है जिससे वायु के साथ आने वाले कीटाणु नष्ट हो जाते ह। श्लष्मिक झिल्ली म बहुत सी केशिकाएँ फैली हुइ होती ह। जब सास लेने पर वायु नाक के अन्दर जाती है तो य कोशिकाएँ बाहर से आने वाली ठण्डी हवा को शरीर के तापक्रम के बराबर कर देती ह। श्लैष्मिक झिल्ली का अन्य काय—किसी बाहरी हानिकारक वस्तु को अन्दर घुसने से रोकना है। अक्सर हम देखते हैं कि नाक म यदि कोई वस्तु प्रवेश करती है तो हमे एकदम छींक आने लगती है। यह श्लैष्मिक झिल्ली (Mucous Membrane) के कारण ही होता है।
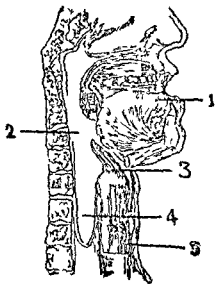
(श्वास मार्ग)

वायु के मार्ग—(१) जीभ, (२) ग्रसनिका, (३) काग मुख, (४) भोजन नली, (५) वायु नली।

नाक द्वारा सास लेना अत्यन्त प्राकृतिक तथा लाभदायक क्रिया है। जो लोग सदा नाक से सांस लेते ह वे अपने को गले के अनेक रोगो से मुक्त रखते हैं। नाक से सांस लेने की आदत बालको को बचपन से डाली जाय। यदि बालक मना करने पर भी मुख से सांस लेता है तो अध्यापक का कर्तव्य हो जाता है कि वह देखे कि कहीं नाक म किसी प्रकार की रुकावट तो नही ह, जिसके कारण छात्र मुँह से सास ले रहा है।

२ स्वर यन्त्र (Larynx)—नाक तथा मुँह के पीछे की ओर एक छोटी-सी कोठरी होती है जिसे 'फेरिंक्स' (Pharynx) के नाम से पुकारा जाता है। फेरिंक्स

के अ दर ही आकर हमारी नाक के भीतरी नथुए खुलते हैं। जब हम सास लेते हैं तो वायु फेरिंक्स से होती हुई स्वर य त्र (Larynx) म जाती है। स्वर-यन्त्र (Larynx) का निर्माण कार्टिलेजो द्वारा बने हुए बक्स से होता है। स्वर यन्त्र के ऊपर वायु जाने के माग के मुँह पर एक कार्टिलेज का बना हुआ ढक्कन होता है। इस ढक्कन को 'वाग मुख' (Epiglottis) कहा जाता है। सांस लेते समय यह ढक्कन खुल जाता है पर तु पानी पीते समय तथा भोजन करत समय यह ढक्कन ब द होता है। वास्तव मे इस ढक्कन का काय—खाने पीने की चीजो को वायु नली म जाने से रोकना है। स्वर य त्र के अ दर स्वर-रज्जु (Vocal Cords) होते है। स्वर रज्जु के स्प द से ही स्वरो का ज म होता है।

३ वायु प्रणाली (Trachea or Wind pipe)—स्वर य त्र के नीचे ही वायु नली (Trachea) स्थित है। वायु नली की लम्बाई लगभग पाच इच होता है। गोलाई प्राय एक इच से कम होती है। नली का आकार बिल्कुल गोल नही होता है। इसके अ दर अग्रेजी के 'सी' अक्षर के आकार के छल्ले पडे रहते है। ये छल्ले कार्टिलेज क बने होते है। स्वर य त्र के पश्चात् सास इसी नली मे प्रवेश करती है। इस नली म श्लेष्मिक झिल्ली (Mucous Membrane) की परत बिछी रहती है। झिल्ली की परत पर बालो क आकार के महीन बारीक तार होते है, जिन्हे सीलिया' (Cilia) के नाम से पुकारा जाता है। जब हम सास लेत हैं तो वायु क साथ कुछ धूल कण भी चल जाते है। सीलिया इन धूल क कणो को वायु से पृथक करते है।

पहला भाग बाएँ फेफडे म चला जाता है तथा दूसरा भाग दाए फेफडे म चला जाता है। फेफडे म प्रवेश करन के पश्चात् प्रत्यक भाग अनक छोटी नलिया म विभाजित हा जाता है। यह विभाजन उसी प्रकार स होता है जिस प्रकार किसी वृक्ष की एक मोटी शाखा आग चलकर अनेक शाखाओ म विभाजित हो जाती है। वायु नली की इन छोटी छोटी शाखाओ के सिरे पर सूक्ष्म वायु कोष्ठा (Air Sac) का गुच्छा रहता है। इन वायु कोष्ठो म श्वास आकर भर जाती है। यह वह स्थल है जहा पर वायु और रक्त आकर मिलत है। वायु रक्त म मिलने क पश्चात् दूषित पदाथ अपने म सोख कर बाहर निकल जाती है।

४ फेफडे (Lungs)—फेफडे वक्षस्थल के दोना ओर स्थित हैं। फेफडे दुहरी झिल्ली से ढक रहत हैं, य झिल्लियाँ फेफडा की सुरक्षा करती हैं। फेफडे आकार म कुछ तिकोनापन लिए होते हैं। रग इनका कुछ भूरापन लिए होता है। फेफडा की रक्षा करने वाली झिल्ली का फुस्फुसावरण (Pleura) के नाम से पुकारा जाता है। झिल्लिया के दोना परता क मध्य जो स्थान रहता है उसे 'फुस्फुसीयावरणीय गत' (Pleural Cavity) कहत हैं। जब कभी इस गत म किसी प्रकार पानी भर जाता है तो 'प्लूरिसी' (Pleurisy) नामक बीमारी हो जाती है।

श्वास क्रिया Mechanism of Respiration

हमारा जीवन वायु के ऊपर निर्भर है। बिना वायु के हम एक क्षण के लिए भी जीवित नहीं रह सकते। इसी कारण हमारे फेफड़ों में वायु आने-जाने का क्रम लगा रहता है। जब हम साँस लेते हैं तो ताजी वायु हमारे फेफड़ों में प्रवेश करती है और जब साँस बाहर निकालते हैं तब अशुद्ध वायु निकलती है। इस प्रकार हमारी श्वास क्रिया दो भागों में विभाजित की जा सकती है—(१) साँस लेना (Inspiration) व (२) साँस छोड़ना (Expiration)। साँस लेने में हमारी छाती का विकास अधिक हो जाता है। साँस लेने पर हमारी छाती के विकसित होने के दो कारण हैं। प्रथम में तो महा प्राचीरा (Diaphragm) का आकार इस कार्य में सहायक होता है। महा प्राचीरा वायु-नली आगे चलकर दो भागों में विभाजित हो जाती है। नली का एक भाग अर्द्ध चन्द्राकार में होता है। परन्तु जब यह सिकुड़ती है,
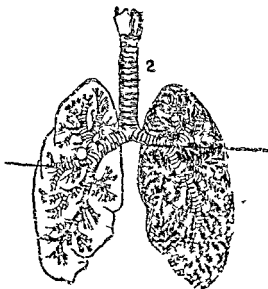
(१) स्वर यन्त्र, (२) वायु-नली, (३) वायु प्रणाली, (४) वायु प्रणालिकाएँ।

इसका उठा हुआ भाग समतल हो जाता है। परिणामस्वरूप फेफड़ों तथा महा प्राचीरा के मध्य कुछ स्थान रिक्त हो जाता है, इस खाली स्थान के कारण ही फेफड़े फैलते हैं। दूसरे कारण के अनुसार जब हम साँस लेते हैं तो पसलियों के बीच की मांसपेशियाँ सिकुड़ती हैं और उनके साथ समस्त पसलियाँ ऊपर की ओर उठ जाती हैं। इस प्रकार फेफड़ों को विकसित होने के लिए पर्याप्त स्थान मिल जाता है तथा शुद्ध वायु जो आक्सीजनयुक्त होती है फेफड़ों में प्रवेश कर जाती है। फेफड़ों में जो रक्त ले जाने वाली सूक्ष्म नलियाँ हैं, वे फेफड़ों में भरी वायु में से आक्सीजन खींच लेती हैं तथा उसके स्थान पर कार्बन डाइ-ऑक्साइड छोड़ देती हैं। साँस के बाहर निकालने में महा प्राचीरा और पसली के बीच के स्नायु ढीले पड़ जाते हैं जिससे

का स्थान कम हो जाता है तथा दबाव पडने से फेफड़ों में सकुचन आ जाता है। इस सकुचन के कारण ही फेफड़ों की दूषित वायु बाहर निकल जाती है। यह क्रिया निरन्तर चलती रहती है। एक स्वस्थ मनुष्य एक मिनट में १६ से १८ बार तक सास लेता है। छोटे बालक एक मिनट मे २० से २८ बार सांस लेते हैं।

श्वास क्रिया और बालकों का स्वास्थ्य

बालकों के स्वास्थ्य का श्वास क्रिया से घना सम्बन्ध है। यदि कोई बालक पूर्ण रूप से श्वास नही लेता तो श्वास सम्बन्धी अनेक रोग हो जाते हैं। रक्त उचित रूप से साफ होने के लिए आवश्यक है कि सांस गहरी ली जाय। गहरी सास लेने से फेफड़ो में वायु पूर्ण रूप से भर जाती है जिससे रक्त की शुद्धि भली प्रकार से होती रहती है। जब रक्त शुद्ध रहेगा तो स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा।

बालकों को शरीर झुकाकर काम करने तथा बैठने की आदत पड जाती है। परिणामस्वरूप वक्षस्थल का विकास रुक जाता है। सकीर्ण वक्षस्थल में वायु कम प्रवेश कर पाती है। फेफड़ों में वायु कम जाने के कारण रक्त साफ करने की क्रिया उचित प्रकार से नही हो पाती। अत अध्यापकों का कर्त्तव्य है कि वह बालकों को आरम्भ से ही सीधे बैठने, सीधे खडे होने की आदतें सिखाएँ। बालकों की अस्थियां कोमल होती है। बचपन में एक बार अस्थियों के विकृत हो जाने से आगे चलकर ठीक होने में बाधा आती है।

छात्रो को श्वास सम्बन्धी व्यायाम करने के लिए भी प्रोत्साहित करना आवश्यक है। प्रात काल मे कुछ इस प्रकार की क्रियाएँ करवाई जायँ जिनसे बालकों के वक्षस्थल का विस्तार हो। परन्तु इस बात का सदा ध्यान रहे कि श्वास-सम्बन्धी व्यायाम सदा खुले स्थान में किया जाय जहा पर कि शुद्ध वायु हो। यदि वायु शुद्ध होने के स्थान पर अशुद्ध या दूषित होगी तो लाभ होने के स्थान पर हानि होने की सम्भावना है।

प्रधान अध्यापक को चाहिए कि विद्यालय के फर्नीचर पर उचित रूप से ध्यान दे। प्रत्येक कक्षा का फर्नीचर उस कक्षा के छात्रों की अवस्था के अनुकूल हो। डेस्क इतने छोटे न हों कि छात्रों को झुककर बैठना पडे।

श्वास सस्थान के साधारण रोग

श्वास सस्थान में गडबडी उत्पन्न हो जाने से निम्नलिखित रोग होते है—

(क) श्वास-नलियों में सूजन (Bronchitis)—इस रोग मे श्वास की नली सूज जाती है। जब कभी भी श्लेष्मिक झिल्ली (Mucous Membrane) मे रोग के कीटाणु प्रवेश कर जाते है तभी श्वास नलिया सूज जाती है। खसरा चेचक तथा काली खासी—इस रोग का प्रमुख कारण बन जाती हैं। कभी कभी बढ़े हुए टान्सिल तथा एडिनाएड्ज (Adenoids) बीमारी के कारण बालक नाक से सास नही ले पाते, इस कारण उसे मुख से सास लेनी पडती है। मुख द्वारा ली गई श्वास ठंडी होती है जो कि श्वास-नलिकाओं में ठंड की सूजन उत्पन्न कर देती है।

रोग के लक्षण—१ इसका आक्रमण अधिकतर मूखा रोग से पीड़ित बालको पर होता है।

२ यह जुकाम के पश्चात् भी हो जाता है।

३ खासी के साथ तेज श्वास चलने लगती है।

४ धीरे धीरे खासी तेज होने लगती है।

५ रोग बढ़ जाने पर ताप भी बढ़ जाता है।

रोग का पता लगते ही इसका उपचार आरम्भ कर दिया जाय। यदि रोगी की देख रेख तथा इलाज म लापरवाही की गई तो 'ब्राको निमोनिया' (Broncho Pneumonia) होने की सम्भावना रहती है। जो बालक इस रोग से पीडित हों, उन्हें पूर्ण विश्राम प्रदान किया जाय।

(ख) एडिनाएड्ज (Adenoids)—हमारी नाक के पिछले गत की झिल्ली से जुडे हुए मास के बढ़े हुए भाग को एडिनाएड्ज कहकर पुकारा जाता है।

जुकाम, खसरा तथा छूत की बीमारियो के कारण नाक की श्लैष्मिक झिल्ली म सूजन आ जाती है जो कि एडिनाइड का प्रमुख कारण होता है। वे बालक जिनको कि सन्तुलित भोजन नही मिलता, इस रोग के सरलता म शिकार हो जाते हैं, क्योंकि जीवन शक्ति कम होने के परिणामस्वरूप रोग के कीटाणु सरलता से आक्रमण कर देते हैं। वायु हीन दूषित वातावरण भी इस रोग का कारण होता है।

रोग के लक्षण—(१) बेचैनी इस रोग का प्रमुख लक्षण है, (२) बालक नाक रुक जाने के कारण मुख से सास लेता है, (३) सुनाई कम पडने लगता है, (४) कभी-कभी कान म मवाद पड जाता है, (५) पलकें भारी हो जाती हैं, (६) बालक सुस्त-सा लगने लगता है—मानो इसका कुछ खो गया है।

उपचार—इस रोग को दूर करने के लिए सबसे पहले शुद्ध एव प्रकाश-युक्त वातावरण का आयोजन करना आवश्यक है। रोगी को स्वच्छ तथा खुली हवा मे रखा जाय। जहाँ तक हो सके, नाक द्वारा सास लेने का प्रयत्न किया जाय। अध्यापक को देखना चाहिए कि ऐसे बालक अपना मुख खोले न रहे। भोजन पर भी विशेष ध्यान रखा जाय।

रोग के अधिक बढ जाने पर आपरेशन करा दिया जाय। आपरेशन रोगी को अत्यन्त लाभ पहुचाता है।

(ग) जुकाम (Common Cold)—यह अत्यन्त साधारण रोग है परन्तु बढ जाने पर यह उग्र रूप धारण कर लेता है। जुकाम का प्रमुख कारण—ठण्ड लग जाना है। जुकाम 'वाइरस' (Virus) द्वारा होता है। ये कीटाणुओ से भी अधिक छोटे होते हैं। शारीरिक शक्ति कम हो जाने से जुकाम का जल्दी जल्दी आक्रमण होता है। नम व तर स्थल जुकाम के घर होने हैं।

रोग के लक्षण—जुकाम का रोगी अपनी नाक म भारीपन का अनुभव करता है। नाक म पानी बहने लगता है तथा रोगी की नाक म एक प्रकार की खुजली

महसूस होती है। बार-बार छीकें आने लगती है। आँखों म एक प्रकार की सूजन आ जाती हे। सिर मे दद होन लगता है। रोग के बिगड जान पर कभी कभी बुखार भी आ जाता है।

उपचार—जुकाम का आक्रमण होते ही रोगी की देख रेख आरम्भ कर दी जाय। जुकाम बिगड जाने पर ब्रोंकाइटिस तथा निमोनिया होने की सम्भावना रहती है। यह रोग श्वास द्वारा एक दूसरे से फैलता है। अत विद्यालय म जिन छात्रों को यह रोग हो, उन्हे तुर त ही छुट्टी प्रदान कर दी जाय तथा जब तक कि उनका रोग पूर्ण रूप से ठीक न हो जाय उ हे विद्यालय मे न आने दिया जाय। घर पर भी जुकाम के रोगी के पास बैठ कर बातें न की जायें। रोगी को इस काल म पूर्ण विश्राम करना चाहिए। चाय तथा जोशादा इस रोग को दूर करने म सहायक होते है। जोशादे का सेवन रात्रि म करके सोना अत्यन्त लाभकारी होता है। रोगी अपना भोजन हल्का रखे तथा स्वच्छ, प्रकाश युक्त कमरे मे सोने का प्रबन्ध किया जाय। ठण्ड से बचने का सदा प्रयत्न किया जाय। भोजन के अ दर 'ए' तथा 'डी' विटामिन की मात्रा बढा दी जाय।

(घ) टान्सिल (Tonsils) का बढ़ना—यदि हमारे मुख को फाडकर देखा जाय तो उसम मास के दो पिण्ड मिलेगे जो गले के दोनों ओर स्थित हैं। इन मास पिण्डो के मध्य कोमल मास का सा टुकडा लटका रहता है, जिसे 'कऊआ' कहकर पुकारा जाता है। इसके बढ जाने से गले मे सूजन आ जाती है।

दूषित वातावरण, अस तुलित भोजन, मुख से सास लेन की आदत आदि इस रोग के प्रमुख कारण होते हैं।

रोग के लक्षण—इस रोग मे भी रोगी नाक के बजाय मुख से साँस लेता है। टॉन्सिल इतने बढ जाते हैं कि उनको हम सरलतापूर्वक देख सकते हैं। रोगी कुछ ऊँचा सुनने लगता है। कभी कभी टान्सिल की सूजन इतनी बढ जाती है कि खाँसी, डिप्थीरिया, दमा, गठिया आदि रोग हो जाने का भय हो जाता है।

टान्सिल के बढने की प्रारम्भिक अवस्था म ही डॉक्टर के पास ले जाकर उपचार करवाया जाय। अधिक टान्सिल बढ जान पर आपरेशन कराया जाय। बालकों को नाक से साँस लेने की आदत डलवाई जाय।

(ङ) खराब गला (Sore Throat)—इस रोग का कारण—गले की सूजन है। खसरा, लाल बुखार आदि रोगों का प्रारम्भिक अवस्था म भी गला खराब होने लगता है। कभी कभी गिल्टिया के कडे हो जाने से भोजन तक नही निगला जाता।

जुकाम की तरह यह भी अछूत का रोग है। जिन बालकों के गले म किसी प्रकार की खराबी ज्ञात हो उन्हे तुरन्त डाक्टर के पास भेज देना चाहिए। गिल्टियों की परीक्षा अवश्य कराई जाय। रोग ग्रस्त बालकों का विद्यालय म छुट्टी प्रदान की जाय।

रोग के लक्षण—

१ रोगी की आवाज बदल जाती है।

२ गले के अधिक खराब हो जाने पर आवाज का निकलना बद हो जाता है।

३ कभी-कभी घुटन का भी अनुभव सा होने लगता है।

४ खखारने की इच्छा बार-बार करती है, पर थूक कम निकलता है।

५ श्वास म तीव्रता आ जाती है। नाडी भी तीव्र हो जाती है।

६ कण्ठ की परीक्षा करने पर उसमे लालिमा दिखाई देगी।

जहाँ तक सम्भव हो, रोगी की शैया गम रखी जाय। वायु का उचित प्रब न्ध रखा जाय। कण्ठ की गम जल द्वारा बाहर से सिकाई की जाय।

(ब) स्वर-यन्त्र की सूजन—इस रोग का प्रमुख कारण जुकाम होता है। जुकाम की सूजन उप-नलिया का सहारा लकर श्वास नली मे पहुच जाती है। कभी-कभी खसरे, स्कारलेट ज्वर आदि की दशा म स्वर-यन्त्र मे सूजन आ जाती है। इस दशा म यह रोग अत्यन्त भयानक हो जाता है।

रोग के लक्षण—

१ आवाज म परिवतन आ जाता है।

२ गले मे घुटन का अनुभव होता है।

३ गले को साफ करने की इच्छा बनी रहती है।

४ मुख की लार धीरे धीरे गाढी हो जाती है।

५ ज्वर तथा नाडी तेज हो जाती है।

६ रोगी श्वास लेने म कठिनाई का अनुभव करता है।

उपचार—जहाँ तक सम्भव हो, रोगी की शैय्या को गम रखा जाय। कमरे की हवा को जहाँ तक सम्भव हो, ताजा रखा जाय। गले के बाहरी भाग पर अलसी की पुल्टिस का प्रयोग किया जाय। रोगी को सदा हल्का भोजन दिया जाय। रोगी को लाभ न पहुँचने पर डॉक्टर को दिखाया जाय।

(स) निमोनिया—जब फुफ्फुस म सूजन आ जाती है तो निमोनिया हो जाता है। जब एक साथ दोनो फुफ्फुस सूज जाते है तो डबल निमोनिया हो जाता है। रोग का प्रमुख कारण 'Pneumococcus नामक जीवाणु होता है। रोगी को ठड का अनुभव होने लगता है तथा बुखार १०४ से लेकर १०५° तक रहता है। त्वचा गम तथा शुष्क हो जाती है। नाडी की गति तीव्र हो जाती है। रोगी की सास शीघ्र चलने लगती है। प्यास अधिक लगती है। भूख नही लगती। कभी कभी सांस लेने म भी कठिनाई होती है।

उपचार—रोगी को गम कपडो से ढका जाय। रोगी का कमरा भी गम रखा जाय। वायु का प्रबन्ध विशेष रूप से किया जाय। तरल पदार्थ मुख द्वारा ही दिये जायें।

महसूस होती है। बार बार छींकें आने लगती हैं। आँखो मे एक प्रकार की सूजन आ जाती है। सिर मे दद होने लगता है। रोग के बिगड जाने पर कभी कभी बुखार भी आ जाता है।

उपचार—जुकाम का आक्रमण होते ही रोगी की देख रेख आरम्भ कर दी जाय। जुकाम बिगड जाने पर ब्रोकाइटिस तथा निमोनिया होने की सम्भावना रहती है। यह रोग श्वास द्वारा एक-दूसरे से फैलता है। अत विद्यालय म जिन छात्रो को यह रोग हो, उन्हे तुरन्त ही छुट्टी प्रदान कर दी जाय तथा जब तक कि उनका रोग पूर्ण रूप से ठीक न हो जाय उन्हे विद्यालय म न आने दिया जाय। घर पर भी जुकाम के रोगी के पास बैठ कर बाते न की जायँ। रोगी को इस काल म पूर्ण विश्राम करना चाहिए। चाय तथा जोशाँदा इस रोग को दूर करने म सहायक होते है। जोशाद का सेवन रात्रि म करके सोना अत्यन्त लाभकारी होता है। रोगी अपना भोजन हल्का रखे तथा स्वच्छ, प्रकाश-युक्त कमरे मे सोने का प्रबन्ध किया जाय। ठण्ड से बचने का सदा प्रयत्न किया जाय। भोजन के अन्दर 'ए' तथा 'डी' विटामिन की मात्रा बढा दी जाय।

(घ) टांसिल (Tonsils) का बढ़ना—यदि हमारे मुख को फाडकर देखा जाय तो उसम मास के दो पिण्ड मिलेंगे जो गले के दोनो ओर स्थित हैं। इन मास पिण्डो के मध्य कोमल मास का सा टुकडा लटका रहता है, जिसे 'कऊआ' कहकर पुकारा जाता है। इसके बढ जाने से गले मे सूजन आ जाती है।

दूषित वातावरण, असन्तुलित भोजन, मुख से सास लेने की आदत आदि इस रोग के प्रमुख कारण होते हैं।

रोग के लक्षण—इस रोग मे भी रोगी नाक के बजाय मुख से साँस लेता है। टॉसिल इतने बढ जाते हैं कि उनको हम सरलतापूवक देख सकते हैं। रोगी कुछ ऊँचा सुनने लगता है। कभी कभी टांसिल की सूजन इतनी बढ़ जाती है कि खाँसी, डिप्थीरिया, दमा, गठिया आदि रोग हो जाने का भय हो जाता है।

टॉसिल के बढने की प्रारम्भिक अवस्था मे ही डॉक्टर के पास ले जाकर उपचार करवाया जाय। अधिक टांसिल बढ जाने पर आपरेशन कराया जाय। बालको को नाक से साँस लेने की आदत डलवाई जाय।

(ङ) खराब गला (Sore Throat)—इस रोग का कारण—गले की सूजन है। खसरा, लाल बुखार आदि रोगो की प्रारम्भिक अवस्था म भी गला खराब होने लगता है। कभी कभी गिल्टिया के कडे हो जाने से भोजन तक नही निगला जाता।

जुकाम की तरह यह भी अछूत का रोग है। जिन बालको के गले म किसी प्रकार की खराबी मालूम हो उन्हे तुरन्त डाक्टर के पास भेज देना चाहिए। गिल्टियो की परीक्षा अवश्य कराई जाय। रोग-ग्रस्त बालको का विद्यालय मे छुट्टी प्रदान की जाय।

रोग के लक्षण—

१ रोगी की आवाज बदल जाती है ।

२ गले के अधिक खराब हो जाने पर आवाज का निकलना बन्द हो जाता है ।

३ कभी-कभी घुटन का भी अनुभव-सा होने लगता है ।

४ खखारने की इच्छा बार-बार करती है, पर थूक कम निकलता है ।

५ श्वास में तीव्रता आ जाती है । नाडी भी तीव्र हो जाती है ।

६ कण्ठ की परीक्षा करने पर उसमें लालिमा दिखाई देगी ।

जहाँ तक सम्भव हो, रोगी की शैया गर्म रखी जाय । वायु का उचित प्रबन्ध रखा जाय । कण्ठ की गर्म जल द्वारा बाहर से सिकाई की जाय ।

(च) स्वर-यन्त्र की सूजन—इस रोग का प्रमुख कारण जुकाम होता है । जुकाम की सूजन उप-नलिया का सहारा लेकर श्वास नली में पहुच जाती है । कभी-कभी खसर, स्कारलेट ज्वर आदि की दशा में स्वर-यन्त्र में सूजन आ जाती है । इस दशा में यह रोग अत्यन्त भयानक हो जाता है ।

रोग के लक्षण—

१ आवाज में परिवर्तन आ जाता है ।

२ गले में घुटन का अनुभव होता है ।

३ गले को साफ करने की इच्छा बनी रहती है ।

४ मुख की लार धीरे-धीरे गाढी हो जाती है ।

५ ज्वर तथा नाडी तेज हो जाती है ।

६ रोगी श्वास लेने में कठिनाई का अनुभव करता है ।

उपचार—जहा तक सम्भव हो, रोगी की शैय्या को गर्म रखा जाय । कमरे की हवा को जहाँ तक सम्भव हो, ताजा रखा जाय । गले के बाहरी भाग पर अलसी की पुल्टिस का प्रयोग किया जाय । रोगी को सदा हल्का भोजन दिया जाय । रोगी को लाभ न पहुचने पर डॉक्टर को दिखाया जाय ।

(छ) निमोनिया—जब फुफ्फुस में सूजन आ जाती है तो निमोनिया हो जाता है । जब एक साथ दोनों फुफ्फुस सूज जाते हैं तो डबल निमोनिया हो जाता है । रोग का प्रमुख कारण 'Pneumococcus नामक जीवाणु होता है । रोगी को ठण्ड का अनुभव होने लगता है तथा बुखार १०४° से लेकर १०८° तक रहता है । त्वचा गर्म तथा खुश्क हो जाती है । नाडी की गति तीव्र हो जाती है । रोगी की सास तीव्र चलने लगती है । प्यास अधिक लगती है । भूख नही लगती । कभी कभी सास लेने में भी कठिनाई होती है ।

उपचार—रोगी को गर्म कपडो से ढका जाय । रोगी का कमरा भी गर्म रखा जाय । चाय का सेवन विशेष रूप से किया जाय । तरल पदार्थ मुख द्वारा ही दिये जायें ।

६

रक्त-प्रवाह संस्थान
CIRCULATORY SYSTEM

Q With the help of a diagram explain the circulation of blood in human body What is the function of blood ?

प्रश्न—चित्र की सहायता से रक्त परिभ्रमण का वर्णन करो। रक्त का क्या कार्य है ?

Or

Describe, with the help of a diagram the circulation of blood in human body How would you ensure the healthy functioning of the circulatory organs ? (A U, B T, 1963)

चित्र की सहायता से मनुष्य के शरीर में रक्त-परिभ्रमण का वर्णन करो। रक्त-परिभ्रमण में कार्य करने वाले अंगों को स्वस्थ रूप से काम करने के लिए आप क्या करोगे ? (बी० टी०, १९६३)

उत्तर—रक्त हमारे जीवन का प्राण है। बिना रक्त संचार के हमारा जीवन निष्प्राण है। अतः रक्त संचार से सम्बन्धित अंग का सर्वप्रथम अध्ययन किया जाय। रक्त संस्थान के अन्दर—रक्त (Blood), रक्त-वाहिनियाँ (Blood Vessels) तथा दिल (Heart) आते हैं।

रक्त का रूप

रक्त का रूप लाल रंग लिए हुए होता है जोकि सारे शरीर में आक्सीजन तथा भोजन पहुँचाता है तथा उनमें उत्पन्न होने वाले मल या दूषित पदार्थों को बाहर निकालता है। हमारे शरीर के भार का बीसवाँ भाग रक्त होता है। साधारण दृष्टि से देखने पर रक्त द्रव सा ज्ञात होता है। परन्तु सूक्ष्म दर्शक यंत्र से देखने पर इसमें चार प्रकार के तत्त्व मिलते हैं—

१—लाल रक्त-कण (Red Corpuscles)
२—श्वेत रक्त कण (White Corpuscles)

३—तालू (Plateletes)

४—रक्त रस (Plasma)

(१) लाल रक्त कण (Red Corpuscles)—लाल रक्त-कणो का स्वरूप छोटी छोटी गोल टिकियो के आकार का होता है। सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देखने पर इसका रग पीला लाल होता है। परन्तु अधिकता के कारण रक्त का रग लाल लाल होता है तथा 'हीमोग्लोबिन' (Haemoglobin) नामक लाल रग का पदार्थ भी रक्त कणो को लाल बनाता है। आकार मे लाल रक्त-कण इतने छोटे होते हैं कि रक्त की एक बूँद में प्राय ५००,००० कण समा जाते हैं। हीमोग्लोबिन की प्रमुख विशेषता यह है कि इसका ऑक्सीजन के लिए बडा खिचाव होता है। ऑक्सीजन से मिलकर यह ऑक्सीहीमोग्लोबिन नामक पदार्थ उत्पन्न होता है। जब रक्त तन्तुओ म पहुच जाता है, तब तन्तु ऑक्सीजन ले लेते हैं तथा पुन उसे हीमोग्लोबिन मे परिवर्तित कर देते है। लाल रक्त कणो का प्रमुख कार्य—ऑक्सीजन को फेफडो से ले जाकर तन्तुओ मे पहुचाना है। ये कण दो सौ दिन तक जीवित रहते है फिर टूटकर इनका हीमोग्लोबिन रक्त कणो म सम्मिलित हो जाता है। लाल रक्त-कणो का निर्माण यकृत, अस्थि तथा मज्जा से होता है।

(२) श्वेत रक्त कण (White Corpuscles)—ये रक्त कण रगहीन बिना रूप के होते हैं। ये अपने रूप को बराबर बदलते रहते हैं। इनकी सख्या लाल रक्त-कणो से कम होती है। ये आकार मे 'अमीबा' नाम के कोषधारी जीव से मिलते हैं। इनकी चेष्टाएँ भी अमीबा के समान होती हैं। इनका प्रमुख कार्य—बाहरी रोगाणुओ से शरीर की रक्षा करना है। जब कभी भी बाहरी रोगाणु शरीर पर आक्रमण करते हैं तो ये उन्हे नष्ट कर देते हैं। ये हमारे शरीर के टूटे हुए तन्तुओ की मरम्मत भी करते रहते हैं। जब कभी भी हमारे शरीर मे चोट-फेट लगती है, तो ये चोट के स्थल पर पहुच कर बाहरी रोगाणुओ को नष्ट कर देते है। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्वेत कणो का कार्य शरीर रक्षको के समान होता है। जिस प्रकार शरीर रक्षक बाहरी आक्रमण का सामना करते हैं, उसी प्रकार के ये कण रोगाणुओ का सामना करते है। परन्तु जब कभी भी श्वेत कण और बाहरी रोगाणुओ म सघर्ष होता है और उस सघर्ष मे यदि श्वेत कण हार जाते हैं तो शरीर रोगग्रस्त हो जाता है।

(३) तालु (Plateletes)—इनका आकार रक्त-कणो से भी छोटा होता है। इनका जन्म गूदे के प्रकार तथा विटामिन से युक्त चर्बीदार भोजन के प्रभाव से होता है। इनका कार्य भी बाहरी रोगो के आक्रमण से शरीर की रक्षा करना है। शरीर म इनका विशेष स्थान होता है। इनकी सख्या कम होने पर शरीर म सूजन आ जाती है। चोट लगने पर जब खून बहने लगता है तो रक्त जमाने का कार्य तालु द्वारा ही होता है।

(४) रक्त रस (Plasma)—यह पारदर्शक, पीले रग का तरल होता है,

जिसमे रक्त कण तैरा करते हैं। इसका निर्माण ९० प्रतिशत जल तथा १० प्रतिशत विषनाशक रासायनिक पदार्थ द्वारा होता है। इन ठोस पदार्थों म फाइब्रिन, लवण तथा प्रोटीन प्रमुख रूप से मिले रहते हैं। इसके अलावा रक्त के अन्दर सोडियम क्लोराइड, कार्बन-डाइ ऑक्साइड तथा ऑक्सीजन भी मिल रहते है। इसम वसा या चर्बी का अश रहता है।

रक्त रस का प्रमुख कार्य—जीवित कोषो को चीनी, पेप्टोन, लवण तथा जल पहुचाना और बाहरी कीटाणुओ को नष्ट करने के लिए विरोधी विष (Anti toxin) तैयार करना है।

रक्त का जमना—प्राय हम देखते हैं कि हमारे शरीर से रक्त निकलने के थोडी देर बाद ही जमकर गाढा हो जाता है। थोडी देर बाद ही एक थक्का सा जम जाता है तथा उसके आस पास एक पीला पानी सा बहने लगता है। यह पीला पानी ही रक्त रस है। जब हमारे शरीर से रक्त निकलता है तब फाइब्रिन के रेशे द्वारा एक जाल सा बन जाता है जिसमे रक्त के कण उलझ जाते है और इस प्रकार खून का एक थक्का सा बन जाता है। इस थक्के के कारण ही बहता रक्त रुक जाता है। यदि रक्त के अन्दर जमने का यह गुण न हो तो चोट लगने पर रक्त बहता रहे और आदमी का जीवन ही समाप्त हो जाय।

रक्त के कार्य—

१ भोजन पचाने के अगो से भोजन तत्त्वो को शोषित करना तथा समस्त अगो को तत्त्व पहुचाना।
२ ऑक्सीजन को लेकर शरीर के समस्त कोषो तक पहुचाना तथा कार्बन डाइ-आक्साइड को फेफडो द्वारा बाहर निकालना है।
३ विभिन्न अगो से दूषित पदार्थों को एकत्रित करके मूत्र तथा पसीने के रूप म शरीर स बाहर निकालना।
४ समस्त शरीर के ताप को समान रखता है।
५ नली हीन ग्रन्थियो से हारमोन नामक रासायनिक तत्त्वो को लेकर शरीर के समस्त भाग मे पहुचाना। शरीर के उचित प्रकार स विकास के लिए हारमोन पदार्थों का होना परम आवश्यक है।
६ रोग के जीवाणुओ स शरीर की रक्षा करना।
७ शरीर के किसी अग के कट जाने पर रक्त जम कर रक्त-स्राव को रोकना है।

हृदय

हृदय रक्त-संस्थान का मुख्य भाग है। इसकी स्थिति वक्षस्थल के मध्य उदर मध्यस्थ पेशी (Diaphragm) के ठीक ऊपर तथा दोनों फुफ्फुसों के मध्य है। मध्य म होते हुए भी इसका झुकाव बायी ओर की तरफ अधिक है। इसका आकार कुछ-कुछ उल्टी नाशपाती का सा होता है। हृदय का चौड़ा भाग ऊपर

को ही खुलते हैं और जिस ओर को य खुलते हैं उस ओर को ही बहुत सा रक्त बह सकता है, इसके विपरीत दिशा म नही।

रक्त वाहिनियां (Blood Vessels)—रक्त वाहिनी तीन प्रकार की होती हैं—१ धमनी (Artery), २ शिरा (Vein), ३ केशिकाएँ (Capillaries)। धमनियो की दीवारे मोटी, मजबूत तथा लचीली होती हैं परन्तु शिराओ की दीवारें पतली और कमजोर होती हैं। धमनी दिल से शरीर को रक्त ले जाती है और जिसके द्वारा रक्त शरीर से लौटकर दिल मे आता है उसे 'शिरा' (Vein) कहते हैं। शिराओ म लचीले त तुओ की कमी के कारण कट जाने पर उनका मुख चिपक कर बन्द हो जाता है पर तु धमनियो का मुख इसके विपरीत खुला रहता है। धमनी के कट जाने पर रक्त एक वेग के साथ उछल कर गिरता है, पर्याप्त दबाव डालने पर ही रुकता है। शरीर की समस्त धमनिया गाढ़ लाल रग का शुद्ध रक्त हृदय स सारे शरीर को ले जाती है। पर तु केवल एक धमनी जिसे 'फुपफुसीय धमनी' (Pulmonary Artery) कह कर पुकारा जाता है शुद्ध रक्त नही ले जाती। इस धमनी का काय अशुद्ध रक्त को दाए निलय से फेफडे मे पहुचाना है। धमनिया मुख्यतया मास की मोटी दीवार तथा अस्थियो के मध्य मे रहती हैं।

हृदय के दाए ओर से एक धमनी जाती है जो कि मूल धमनी (Aorta) के नाम से पुकारी जाती है। आगे चलकर यह दो भागो मे विभाजित हो जाती है जिसका एक भाग गदन तथा सिर की ओर दूसरा भाग हाथो का रक्त पहुचाता है। मूल धमनी घूमकर नीचे की ओर आकर शरीर के समस्त भीतरी अगो को रुधिर पहुचाती है। पुन यह आगे चलकर दो भागो म विभक्त हो जाती है और दोनो पैरो की ओर जाती है। आमाशय यकृत, प्लीहा, गुर्दे व आतो आदि म रक्त पहुचाने के लिए इस बीच म इसकी अनेक शाखाएँ हो जाती है।

धमनियो की प्रमुख विशेषता यह है कि इनम रक्त का प्रवाह सदा हृदय स विपरीत दिशा मे होता ह।

केशिकाएँ वे धमनिया कहलाती है जो बालो के समान सूक्ष्म व पतली होती हैं। धमनिया जब आग चलकर अत्य त पतली हो जाती हैं तथा उनका आकार बालो से भी अधिक पतला हो जाता है तब वे केशिकाओ (Capillaries) के नाम स पुकारी जाती है। इनमे रक्त प्रवाह धमनियो की अपेक्षा धीरे धीरे और एक समान गति स होता रहता है। केशिकाओ का जाल शरीर के अग प्रत्यग म फैला हुआ है। इनकी दीवारें हमारे शरीर के सेलो से बिल्कुल मिली हुई रहती है। ये सेल केशिकाओ के रक्त स ही अपने भोजन तत्त्व चूसते हैं तथा उनके अन्दर दूषित पदाथ केशिकाओ की पतली झिल्ली स छनकर रक्त मे मिल जाते हैं, इस प्रकार केशिकाओ का शुद्ध रक्त गन्दा हो जाता है।

केशिकाओ का शुद्ध रक्त गन्दा होने पर कुछ गाढा भी हो जाता है। आगे चलकर केशिकाएँ क्रमश परस्पर मिलकर आकार म कुछ मोटी हो जाती हैं। इन मोटी नलियो मे ही गन्दा रक्त पहुचता है। इन गन्दी रक्त की नलियो को ही 'शिरा'

के नाम से पुकारा जाता है समस्त अंगों से अशुद्ध रक्त एकत्र करके हृदय को पहुंचाना इनका प्रमुख कार्य होता है। शिराएँ प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित हैं (१) निम्न महाशिरा (Inferior Vena-cava), (२) उच्च महाशिरा (Superior Vena cava) के नाम पुकारी जाती हैं। शिराओं में जेबी आकार के कपाट होते हैं जो रक्त को उल्टा बहने से रोकते हैं। इन कपाटों के कारण ही रक्त केवल हृदय की ओर ही जाता है। परन्तु यदि रक्त हृदय की ओर से बहना चाहे तो ये कपाट बन्द हो जाते हैं।

रक्त परिभ्रमण (Circulation of Blood)—शरीर का चक्कर करने के पश्चात् जब रक्त गन्दा हो जाता है तो विभिन्न अंगों द्वारा संचित किया जाकर रक्त उच्च महाशिरा तथा निम्न महाशिरा द्वारा हृदय के दाहिने अलिन्द में पहुँचता है।
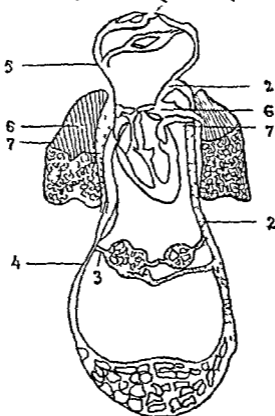
(रक्त परिभ्रमण)

(१) हृदय, (२) महाधमनी, (३) पोर्टल शिरा, (४) निम्न महाशिरा,
(५) उच्च महाशिरा, (६) फुफ्फुसीय धमनी, (७) फुफ्फुसीय शिरा।

दाहिने अलिन्द से रक्त उच्च तथा निम्न महाशिराओं में वापस नहीं जा सकता क्योंकि इन शिराओं और अलिन्दों के मिलन स्थल पर इस प्रकार के कपाट लगे हैं जो रक्त का प्रवाह अलिन्द से इन शिराओं की ओर होने पर फौरन बन्द हो जाते

हैं। रक्त पूर्ण रूप से भर जाने पर दाहिना अलिंद संकुचित हो जाता है तो द्विपत्र कपाट द्वारा रक्त दाहिने निलय में प्रवेश करता है तथा निलय में भी जब संकुचन होता है तब रक्त फुफ्फुसीय धमनी (Pulmonary Artery) में चला जाता है। हृदय से आगे चलकर फुफ्फुसीय धमनी दो शाखाओं में बँट जाती है, जो अलग अलग दोनों फेफड़ों की ओर जाती है। फेफड़ों में जाकर ये शाखाएँ क्रम से छोटे छोटे भागों में बँट जाती है तथा अन्त में जाकर केशिकाओं का रूप लेकर समस्त फेफड़ा में फैल जाती है। ये केशिकाएँ फेफड़ों में स्थित वायु नलिकाओं से ऑक्सीजन ले लेती हैं और इसके बदले कार्बन डाइ ऑक्साइड तथा वाष्प छोड़ देती हैं। इस प्रकार से अशुद्ध रक्त शुद्ध रक्त में बदलता है।

प्रत्येक फेफड़े से शुद्ध रक्त दो फुफ्फुसीय शिराओं (Plumonary Veins) से प्रवाहित होकर बाएँ अलिन्द में पहुँचता है। बाएँ अलिन्द में रक्त भर जाने पर इसमें सिकुड़नें होती हैं जिससे इसके तथा बाएँ निलय के मध्य का कपाट खुल जाता है तथा रक्त बाएँ निलय में भर जाता है। बाएँ निलय में रक्त भर जाने पर संकुचन होता है और उसका साफ रक्त मूल धमनी में प्रवेश करता है। मूल धमनी से अनेक शाखाएँ तथा उपशाखाएँ निकली हैं जो आगे चल कर पतली पतली केशिकाओं का रूप ले लेती हैं। केशिकाएँ सारे शरीर के अंगों को ऑक्सीजन प्रदान करती हैं तथा एकत्र की हुई कार्बन डाइ ऑक्साइड ले लेती हैं। कार्बन डाइ ऑक्साइड के कारण केशिकाओं में प्रवाहित होने वाला रक्त गहन लाल रंग के स्थान पर नीले रूप में बदल जाता है। शरीर के विभिन्न अंगों से रक्त फिर शिराओं द्वारा एकत्र होकर उच्च तथा निम्न शिराओं द्वारा हृदय के दाहिने अलिन्द में प्रवेश करता है। यह चक्र निरंतर चलता रहता है। इस चक्र के बन्द होते ही मृत्यु हो जाती है।

प्रश्न—रक्त सम्बन्धी रोगों का संक्षेप में उल्लेख करो।

उत्तर—

रक्त-सम्बन्धी साधारण रोग

(१) रक्त हीनता (Anaemia)—इस रोग में लाल कणों की संख्या, आकार तथा क्रिया में अन्तर आ जाता है। जब रक्त के अन्दर हीमोग्लोबिन (Haemoglobin) की कमी हो जाती है तभी इस रोग की संभावना रहती है। हीमोग्लोबिन रक्त को लाली देता है।

रोग के कारण—शरीर से रक्त का अधिक निकल जाना, शुद्ध वायु तथा सूर्य के प्रकाश का अभाव असंतुलित भोजन, पूर्ण नींद न लेना, उचित ढंग से शारीरिक व्यायाम न करना आदि रक्त हीनता के प्रमुख कारण हैं।

यह दो प्रकार का होता है—(१) प्राथमिक रक्त-हीनता (Primary Anaemia) (२) द्वितीय स्तर की रक्तहीनता (Secondary Anaemia)। प्राथमिक रक्तहीनता में शरीर की अस्थियां का गूदा लाल कणों का बनाना बन्द कर देता है। पनारामिंग (Chlorosis) तथा परनिशियस (Pernicious) इस रोग के

प्रमुख उदाहरण हैं। दूसरे प्रकार की रक्त हीनता असाधारण नही होती। साधारण-तया यह रक्त विकार के कारण होती है।

रक्त हीनता के कारण

१—भोजन में लोहे और दूसरे लवणो का कम होना।

२—शरीर के किसी भाग मे अधिक रक्त स्राव का होना।

३—सूर्य और प्रकाश का अभाव तथा कम निद्रा लेना।

४—पेट म कीडे पडना।

रोग के लक्षण—रोगग्रस्त बालक के होठो की लाली मे कमी आ जाती है, उन पर पीलापन छा जाता है। भूख कम लगती है, सिर मे पीडा का अनुभव करते हैं। थोडा सा काम करने पर थकान आ जाती है।

रोग का उपचार—रक्तहीनता के रोगी की तुरन्त डाक्टरी परीक्षा कराई जाय तथा रोग के कारणो को खोजकर उन्हे दूर करने का प्रयत्न किया जाय। रोगी को पर्याप्त आराम दिया जाय। भोजन के अन्दर विटामिन की मात्रा को बढाया जाय। थोडा थोडा करके व्यायाम आरम्भ किया जाय। रक्त के अन्दर हीमोग्लोबिन की कमी को दूर किया जाय। रोगी के निवास स्थल को शुद्ध वायु-युक्त तथा प्रकाशमय बनाया जाय।

(२) **हृदय रोग** (Heart Disease)—हृदय के रोगो को तीन भागो मे विभाजित किया जाता है—

(क) जन्मजात (Congenital), (ख) अर्जित (Acquired), (ग) क्रियात्मक (Functional)।

(क) **जन्मजात हृदय रोग**—कुछ बालक जन्म से हृदय रोग लेकर आते है। दाहिन निलय तथा फुफ्फुसीय धमनी के मार्ग सकीर्ण हो जाते हैं। कुछ बालको के वाल्वो का विभाजन जन्म मे ही दोषपूर्ण होता है।

(ख) **अर्जित हृदय रोग**—इस रोग का कारण हृदय की मासपेशियो को या कपाटो म गठिया रोग की छूत लग जाने पर होता है। इस रोग मे हृदय के कपाट अपना काय ठीक प्रकार से नही कर पाते, परिणामस्वरूप हृदय पर भार अधिक पडने लगता है और उसमे निर्बलता आ जाती है। डिप्थीरिया, लाल बुखार आदि बीमारियाँ भी इस रोग की जनक होती हैं। इस रोग से पीडित बालक थोडे से परिश्रम मे ही थकावट का अनुभव करने लगता है।

(ग) **क्रियात्मक रोग**—इस रोग मे हृदय की धडकन पर प्रभाव पडता है। रोगी के हृदय की धडकन कभी तीव्र हो जाती है तो कभी मद। पाचन क्रिया भी प्रभावित होती है, पाचन सस्थान भली प्रकार से काय नही करता और रक्त भी कम मात्रा म बनता है।

उपचार—हृदय रोग से पीडित बालको को उचित मात्रा मे विश्राम दिया जाय। यदि इस रोग के बालको पर काय भार अधिक डाला जाय तो हृदय की गति

पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। घर पर भी बालक को पर्याप्त विश्राम दिया जाय। वास्तव में विश्राम—इस रोग का प्रमुख निदान है।

सारांश

रक्त का रूप—रक्त में चार प्रकार के तत्व होते हैं—

(१) लाल रक्त कण (Red Corpuscles)

(२) श्वेत रक्त कण (White Corpuscles)

(३) तातु (Platelets)

(४) रक्त रस (Plasma)

रक्त का जमना—शरीर में जब रक्त निकलता है तो उसमें से फाइब्रिन के रेशों द्वारा एक जाल-सा बन जाता है। इस थक्के के कारण ही बहता रक्त रुक जाता है।

रक्त के कार्य—(१) समस्त शरीर में ऑक्सीजन पहुँचाना।

(२) भोजन के तत्वों को शोषित करना।

(३) शरीर से दूषित पदार्थों का बाहर निकालना।

(४) शरीर का तापक्रम समान रखना।

(५) नलीहीन ग्रंथियों से हारमोन पदार्थ लेकर समस्त शरीर में पहुँचाना।

(६) जीवाणुओं से शरीर की रक्षा करना।

(७) रक्त स्राव को रोकना।

रक्त सम्बन्धी साधारण रोग—

(१) रक्त हीनता—शरीर से रक्त अधिक निकल जाने, सूर्य प्रकाश तथा पौष्टिक भोजन के अभाव में हो जाता है। इस रोग के दो भेद हैं—(१) प्राथमिक रक्त हीनता (२) द्वितीय स्तर की रक्त हीनता।

लक्षण—होठों पर पीलापन आ जाता है। भूख कम लगती है। थकान का अनुभव होने लगता है।

रोग का उपचार—आराम दिया जाय। भोजन में विटामिन अधिक दिये जायें।

(२) हृदय रोग—ये तीन प्रकार के होते हैं—(क) जन्म जात, (ख) अर्जित, (ग) क्रियात्मक।

उपचार—पर्याप्त विश्राम दिया जाय। कार्य कम दिया जाय।

७

पाचन सस्थान

DIGESTIVE SYSTEM

Q Explain the digestive system with the help of a diagram, what are common diseases ? (L T, 1952)

प्रश्न—चित्र की सहायता से पाचन सस्थान का वणन करो। पेट सम्बन्धी कौन कौन से सामान्य रोग हैं ? (एल० टी०, १९५२)

Or

Q Explain with diagrams the functioning of the digestive system in man and indicate the diseases caused by its derangement (B T, 1960)

पाचन सस्थान की प्रक्रिया का सचित्र वणन करो तथा अपच सम्बन्धी रोगों का उल्लेख करो। (बी० टी०, १९६०)

उत्तर—

पाचन-क्रिया का अर्थ

पाचन क्रिया से हमारा तात्पय उस क्रिया से है जिससे हमारे मुख म गये भोजन के स्वरूप म परिवतन आ जाता है। भोजन को हम जिस रूप से खाते हैं, उसको तोड फोडकर दूसरे तरल पदार्थों मे बदल दिया जाता है। दूसरे शब्दों म, पाचन क्रिया का अथ—खाये हुए भोजन को अत्यन्त सूक्ष्म कणों मे विभाजित करके रासायनिक क्रियाओ द्वारा उसके रूप मे इतना परिवतन करना है कि रक्त उसका सरलता से शोषण कर सके। पाचन क्रिया मे जो अवयव भाग लेते हैं उन सबके समूह को 'पाचन-सस्थान' कहकर पुकारा जाता है। पाचन सस्थान के प्रमुख अवयव निम्नलिखित हैं—

१ मुख गत (Mouth Cavity) ३ आमाशय (Stomach)
२ अन्न प्रणाली (Alimentary Canal) ४ आँतें (Intestines)

(१) मुख गत (Mouth Cavity)—पाचन क्रिया का आरम्भ मुख से ही होता है। यह भोजन नली के ऊपर का भाग होता है जो सामने की ओर खुलता

है। मुख की पाचन क्रिया में जीभ, दाँत तथा लार ग्रंथियाँ (Salivary Glands) काम करती हैं।

जीभ—यह अत्यन्त कोमल मांसपेशियों का बना एक मांसल अंग है। इसका आगे का भाग किसी से जुड़ा नहीं रहता। पीछे का भाग मुँह के तले से जुड़ा रहता है। यह भाग इस प्रकार से जुड़ा रहता है कि मुख के अन्दर जीभ को किसी भी दिशा में घुमाया जा सकता है। जीभ में स्वाद-कोष (Taste buds) भी रहते हैं। इन स्वाद कोषों के द्वारा ही किसी वस्तु का हम स्वाद ज्ञात होता है। जीभ का प्रमुख कार्य—दांतों द्वारा चबाये हुए भोजन को इधर उधर घुमाकर लार में खूब सान देना है। जब भोजन भली प्रकार लारयुक्त हो जाता है तो वह पच भी सरलता से जाता है।

दांत (Teeth)—दाँत पाचन क्रिया को सरल बनाने में महत्वपूर्ण भाग लेते हैं। बिना दाँतों के पाचन क्रिया में अत्यधिक बाधा पड़ती है। दाँत मुख के भोजन को भली प्रकार चबाकर लुग्दी के रूप में परिणत कर देते हैं। इस प्रकार भोजन सरलता के साथ निगल लिया जाता है।

लार ग्रंथियाँ (Salivary Glands)—मुख की छः ग्रंथियाँ द्वारा लार (Saliva) उत्पन्न होती है। ये ग्रंथियाँ मुख के दाएँ ओर तीन होती हैं तथा मुख के बाएँ ओर तीन। इन ग्रंथियों से लार, छोटे आकार की नलियों द्वारा भोजन में आकर मिलती है। लार के अन्दर टायलिन (Ptylin) नामक एक तत्व होता है, जिसका कार्य—चावल, गेहूं, आलू आदि पदार्थों की माड़ी को शक्कर के रूप में बदल देना है। टायलिन के कारण ही किसी पदार्थ को चबाने में मीठापन आ जाता है। परन्तु छोटे बालकों की लार में टायलिन नहीं होता है।

(२) अन्न प्रणाली—भली प्रकार चबाये जाने के पश्चात् भोजन एक गोले के आकार में भोजन प्रणाली में प्रवेश करता है। भोजन प्रणाली की दीवारें मांसपेशियों की बनी हुई होती हैं जब भोजन नली या प्रणाली में जाता है तो इसमें सकुचन और प्रसरण होने लगता है। इस सकुचन प्रसरण के कारण ही भोजन एक दम नीचे नहीं जाता वरन् धीरे धीरे दबकर नीचे उतरता है।

भोजन नली, श्वास नली के ठीक पीछे रहती है। गले से नली वक्ष के मध्य में से होती हुई महा प्राचीरा से निकलने के पश्चात् आमाशय में पहुंचती है। आमाशय में इसका रूप तिकोना हो जाता है।

(३) आमाशय—वास्तव में आमाशय भोजन प्रणाली का फला हुआ रूप है। इसका आकार थैले के समान होता है जिसका चौड़ा सिर बायीं ओर तथा सिकुड़ा सिर दाहिनी ओर होता है। इसके आन्तरिक भाग पर श्लैष्मिक झिल्ली फैली रहती है। झिल्ली के अन्दर अनेक छोटी छोटी नलियां जिनका आकार ग्रंथियों के समान होता है, फैली रहती हैं। इनको आमाशयिक ग्रंथियाँ कहा जाता है जोकि आमाशयिक रस (Gastric Juice) उत्पन्न करती हैं। आमाशयिक रस में

हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड तथा पैप्सीन और रैनिन नामक दो खमीर सम्मिलित रहते हैं। ये रस मिलकर भोजन को पचाने में सहायता देते हैं। हाइड्रोक्लोरिक एसिड का काम आमाशय में स्थित क्षारीय (Alkaline) भोजन को आम्लिक (Acidic) बनाना है। आमाशय में भोजन पहुँचने के बाद पन्द्रह-बीस मिनट तक, लार भोजन के स्टार्च पर काम करता रहता है। इस समय तक आमाशयिक रस उचित मात्रा में आमाशय
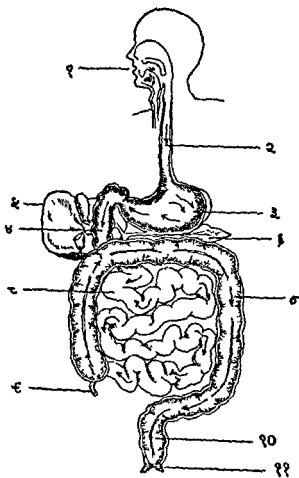
(पाचन प्रणाली)

१ मुख, २ भोजन प्रणाली, ३ पेट, ४ पक्वाशय, ५ जिगर, ६ क्लोम, ७ बृहदान्त, ८ छोटी आंतें, ९ आन्त्रपरिशिष्ट, १० मलाशय, ११ गुदा।

में प्रवेश कर चुकता है। परिणामस्वरूप समस्त भोजन आम्लिक हो जाता है। इस समय टायलिन अपना काय बन्द कर देता है। आमाशयिक रस का रैनिन खमीर दूध पर क्रिया करता है और उसके छेने को अलग करता है, फिर उस पर पैप्सीन की क्रिया आरम्भ होती है। हाइड्रोक्लोरिक एसिड की उपस्थिति में पैप्सीन भोजन के प्रोटीनों पर भी क्रिया करता है और उन्हें पेप्टोन्स में बदल देता है। पैप्टोन्स

अत्यन्त सरल घुलनशील पदार्थ है। आमाशयिक रस भोजन स्थित कार्बोहाइड्रेट तथा चर्बी पर किसी भी प्रकार का प्रभाव नहीं डालता। आमाशय की रक्त वाहिनियाँ शक्कर और पैप्टान में कुछ भाग को शोषित कर लेती हैं। आमाशय का पाचन क्रिया में भोजन के पचने में अलग अलग समय लगता है परन्तु साधारणतया ३ से ४ घण्टे में भोजन पच जाता है।

पक्वाशय (Duodenum)—पक्वाशय का आरम्भ आमाशय के निचले भाग से होता है। यह छोटी आँतों (Small Intestines) का एक भाग है। इसका आकार अंग्रेजी के C' अक्षर के समान होता है। पक्वाशय में भोजन तरल अवस्था में प्रवेश करता है। इसकी दीवारों में गोलाकार ग्रन्थियाँ होती हैं। एक नलिका जो कि यकृत से निकलती है, पित्त नलिका कहलाती है, और जो नलिका क्लोम से निकलती है वह क्लोम नलिका कहलाती है। ये दोनों नलिकाएँ पक्वाशय के निचले भाग में आकर मिलती हैं। पित्त नलिका से पित्त रस तथा क्लोम-नलिका से क्लोम रस निकलता है। ये दोनों रस भोजन को पचाने में बड़े सहायक होते हैं।

यकृत (Liver)—यह उदर की दाहिनी ओर स्थित है। यह शरीर की सबसे लम्बी ग्रन्थि है। भार में लगभग यह ३ पौंड है। इसका रंग कुछ लाली लिए हुए भूरा होता है। निचली तह में पित्ताशय स्थित है, जिसका आकार नाशपाती के समान होता है। यकृत से निकला हुआ पित्त-रस इसी में आकर एकत्र होता है। पित्त-रस हरा रंग लिए पीला होता है। इसमें कुछ चिपचिपाहट होती है। यकृत द्वारा उत्पन्न पित्त रस एक नली के द्वारा पक्वाशय में पहुँचाता है। रक्त में जो आवश्यकता से अधिक शक्कर होती है वह यकृत ले लेता है। जब हमारे शरीर में शक्कर की कमी होती है तो यकृत ही सचल शक्कर प्रदान करती है। यकृत द्वारा उत्पन्न पित्त-रस भोजन के पचाने में अत्यन्त सहायक होता है। पित्त रस वसा को भी पचाता है। जब कभी भी पित्त रस का पक्वाशय में आना बन्द हो जाता है तो वह फिर यकृत को लौट जाता है और रक्त में मिलकर सारे शरीर में फैल जाता है। इसके विकृत स्वरूप में ही पीलिया (Jaundice) रोग हो जाता है। यकृत हमारे शरीर का प्रमुख भाग है। इसके ठीक प्रकार से काम न करने पर अनेक रोग हो जाते हैं।

क्लोम (Pancreas)—क्लोम ग्रन्थि लम्बी और तंग ग्रन्थि है। यह आमाशय के नीचे उदर के पीछे की ओर स्थित है। यह क्लोम रस उत्पन्न करती है। इसकी लम्बाई लगभग ६ या ७ इंच होती है। इस नली में से क्लोम रस बहकर पित्त नली में सम्मिलित हो जाता है। फिर दोनों का रस मिलकर पक्वाशय में जाता है। क्लोम रस के अन्दर एमाईलोप्सिन जो कि श्वेतसार को पचाता है ट्रिप्सिन नामक पदार्थ प्रोटीन को पचाता है। लाइपस नामक तीसरा पदार्थ वसा को पचाने में सहायक होता है। क्लोम रस में चौथा पदार्थ इन्सुलिन होता है जो कि चीनी के ऊपर नियन्त्रण

रखकर उसे फेफड़ों में जाने से रोकना है। पाचन क्रिया मुख से प्रारम्भ होकर पक्वाशय में प्राय पूर्ण होती है।

(४) (i) क्षुद्रान्त्र (Small Intestines)—क्षुद्रान्त्र, मांसपेशियों की बनी २२ फीट लम्बी, १½ इंच चौड़ी नली है। यह श्लैष्मिक झिल्ली के आवरण से ढकी रहती है। इस झिल्ली में अनेक ग्राहकांकुर (Villi) होते हैं जिनकी लम्बाई १/५० इंच से १/२ इंच तक होती है। ग्राहकांकुर के मध्य में रक्त-केशिकाएँ तथा लसिका वाहिनियाँ रहती हैं। ग्राहकांकुर के बीच में ग्रन्थि द्वारा एक चिकना तरल पदार्थ निकलता है।

क्षुद्रान्त्र से जो रस निकलता रहता है वह आंत्रिक रस (Succus Entericus) कहलाता है। यह रस भोजन को पचाने में सबसे अधिक सहायक होता है। इस रस के अन्दर—(क) इरेप्सिन (Erepsin) (ख) एण्ट्रोकाइनेज (Entrokinage), (ग) खमीर (Ferments) आदि होते हैं।

(ii) बृहदान्त्र (Large Intestines)—यह एक ६ फीट लम्बी नली जो पेट के सीधी ओर आरम्भ होकर ऊपर बायीं ओर मुड़ जाती है। छोटी आँत और बड़ी आंत जहाँ पर मिलती हैं वहाँ एक द्वार होता है जहाँ कपाट लगा रहता है। यह कपाट बड़ी आंतों से भोजन को छोटी आँतों में आने से रोकते है। बृहदान्त्र की दीवारें श्लैष्मिक कला से बनी हैं। इसमें अनेक सिकुड़नें होती है। इन सिकुड़नों एवं फैलाव के कारण ही मल नीचे खिसकता है। बृहदान्त्र में पाचन का कोई कार्य नहीं होता। इसमें कोई भी पाचक रस नहीं बनता। बृहदान्त्र में भोजन का व्यर्थ भाग ही शेष रह जाता है जो गुदा द्वार से बाहर निकल जाता है। मल के अन्दर व्यर्थ का अंश, भोजन के बिना पचने वाले अंश तथा बैक्टीरिया आदि पाये जाते हैं। बैक्टीरिया के कारण मल में से बदबू आने लगती है।

भोजन का आत्मीकरण—भोजन का आत्मीकरण तब होता है, जबकि भोजन घुलनशील द्रवों में बदल जाता है। यह घुलनशील द्रव शरीर के प्रमुख अवयवों द्वारा शोषित होकर रक्त में सम्मिलित हो जाता है। शोषण का सबसे अधिक काम छोटी आंतों में होता है, यद्यपि थोड़ी थोड़ी पाचन क्रिया पाचन संस्थान के दूसरे भागों में भी होता रहता है। छोटी आंतों का ग्राहकांकुर पचे हुए भोजन के अधिकांश भाग का शोषण कर लेते हैं। ग्राहकांकुर में अनेक रक्त-केशिकाएँ होती हैं जो शक्कर तथा एमिनो ऐसिड को लेकर स्वयं में मिला देती हैं। लसिका वाहिनियाँ वसा ले लेती हैं। इन ग्राहकांकुरों की रक्त-केशिकाएँ आगे चलकर शिराओं का रूप धारण कर लेती हैं जो कि दूसरी शिराओं में सम्मिलित होकर प्रतिहारिणी शिरा (Portal Veins) का रूप ले लेती हैं। प्रतिहारिणी शिराएँ (Portal Veins) यकृत में पहुँच कर अनेक छोटी छोटी केशिकाओं में विभाजित हो जाती है। प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेटस के अंश यकृत से होकर रक्त की बड़ी नलियों में पहुंचते हैं। अनावश्यक श्वेतसार का अंश यकृत में बचा रहता है। इसका ग्लाईकोजन (Glycogen) जब बन जाता है,

तब वह रक्त मे मिल जाता है। चिकनाई का भाग रसहारिणी (Lacteal) नलिकाओं द्वारा ले लिया जाता है। रसहारिणी नलियो के मेल से लसीक नलिकाओ की उत्पत्ति होती है। सबसे आखिर मे चिकनाई का यह भाग गदन के निकट वाली बायी शिरा मे पहुचता है और यह अश रक्त-धारा के साथ मिलकर सारे शरीर म फैल जाता है।

अपच के सामान्य रोग

(क) कोष्ठबद्धता (Constipation)—जब नियमित रूप से उचित मात्रा म मल नही निकलना तब यह रोग हो जाया करता है। गरिष्ठ भोजन, आतो का मल को रोकना, शारीरिक व्यायाम न करना तथा जलहीन पदार्थों का भोजन करना, इस रोग के प्रमुख कारण होते हैं ताजे साग का कम प्रयोग भी एक कारण है।

लक्षण—कोष्ठबद्धता के रोगी के सिर मे दद जीभ मैली हो जाती, भूख नही लगती शरीर थक जाता है। कभी कभी नीद भी अत्यधिक आती है। रोग के पुराने पडने पर भग दर तथा एपन्डेसाइटीज (Appendicitis) होने की सम्भावना रहती है।

उपचार—कोष्ठबद्धता के रोग को दूर करने के लिए भोजन पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय। अधिक मसालेयुक्त, गरिष्ठ भोजन को त्याग कर रेशेदार तरकारी पालक के पत्ते तथा फल आदि का अधिक मात्रा मे उपयोग किया जाय। प्रात काल नियमित रूप से व्यायाम किया जाय। मल निष्कासन लगते ही करने जाना चाहिए। समय समय पर पेट साफ करने की दवा आदि ले ली जाय। रोग के अधिक हो जाने पर डाक्टर की सलाह अनिवाय है।

(ख) अजीर्ण (Dyspepsia)—इस रोग के प्रमुख कारण—अधिक मात्रा में भोजन करना, गरिष्ठ तथा अपचनीय भोजन का सेवन तथा खराब दाँत हैं। अजीर्ण के रोगी को खट्टी डकारें आती हैं, जी मचलाने लगता है। अपचनीय भोजन के कारण एक ऐसिड की उत्पत्ति होती है जो कि पेट मे पीडा उत्पन्न करती है। दस्त भी लग जाते हैं तथा कभी-कभी मुख मे खट्टा पानी आ जाता है। यदि रोग की परवाह न की जाय तो रक्त हीनता, पेचिस और सिर दद आदि के रोग लग जाते हैं।

अजीर्ण के रोगी को हल्का तथा सरलता से पचने वाला भोजन दिया जाय। गरम पानी का प्रयोग भी लाभकारी होता है। पेट साफ करने की भी दवा ली जाय।

(ग) अतिसार (Diarrhoea)—इस रोग म जल्दी-जल्दी दस्त लगते हैं। इस रोग के प्रमुख कारण—दूषित जल कीटाणु-युक्त भोजन, कच्चे फल हैं मक्खियाँ भी इस रोग के फैलाने म सहायक होती है। मक्खियाँ अपने पजो म कीटाणु लिए फिरती हैं और जिस चीज पर वे बैठ जाती हैं उसी म कीटाणु प्रवेश कर जाते

हैं। इस प्रकार से रोग फलता जाता है। कभी-कभी यह रोग पेट मे ठण्ड लग जाने से भी हो जाता है।

उपचार—इस रोग से बचने के लिए मक्खियो से भोजन की रक्षा की जाय। पानी उबाल कर पिया जाय। ताजा और गर्म भोजन का सेवन सदा किया जाय। दही और चावल इस रोग म विशेष लाभदायक होते है।

साराश

पाचन क्रिया का अर्थ—पाचन क्रिया का अर्थ—खाये हुए भोजन को अत्यन्त सूक्ष्म कणो मे विभाजित करके रासायनिक क्रियाओ द्वारा उसके रूप मे इतना परिवर्तन करना है कि रक्त उसका सरलता से शोषण कर सके।

पाचन सस्थान के प्रमुख अवयव—(१) मुख गत (Mouth Cavity), (२) अन्न प्रणाली (Alimentary Canal), (३) आमाशय (Stomach), (४) आँतें (Intestines)।

(१) मुख गत—मुख की पाचन क्रिया मे जीभ, दाँत तथा लार ग्रन्थियाँ काम करती हैं।

(२) अन्न प्रणाली—भोजन प्रणाली की दीवारें मासपेशियो की बनी होती हैं। जब भोजन नली या प्रणाली में आता है तो उसमे सकुचन और प्रसरण होने लगते हैं।

(३) आमाशय—इसका आकार थैले के समान होता है। अन्दर श्लैष्मिक झिल्लियाँ फैली रहती है। झिल्लियो मे आमाशयिक ग्रन्थियाँ होती हैं। ये आमाशयिक रस उत्पन्न करती हैं।

(४) आँतें—य दो प्रकार की होती हैं—(क) क्षुद्रान्त्र तथा (ख) वृहदान्त्र।

अवयव के सामान्य रोग

(क) कोष्ठबद्धता (Constipation)—जब मल उचित प्रकार से नही निकल पाता तब यह रोग हो जाता है। रोगी के सिर मे दर्द रहता है, जीभ मैली रहती है, भूख नही लगती। भोजन की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय। पालक तथा रेशादार तरकारी का प्रयोग किया जाय। व्यायाम से भी लाभ होता है।

(ख) अजीर्ण—रोग का कारण—अधिक मात्रा म भोजन करना है। अजीर्ण का प्रमुख कारण—गरिष्ठ तथा अपचनीय भोजन भी है। रोगी को हल्का तथा सरलता से पचने वाला भोजन दिया जाय।

(ग) अतिसार (Diarrhoea)—रोगी को जल्दी जल्दी दस्त लगते हैं। रोग का प्रमुख कारण—दूषित जल तथा गन्दा भोजन है। मक्खियों से भोजन की रक्षा की जाय। पानी उबाल कर पिया जाय। दही और चावल का प्रयोग किया जाय।

८

दांत

TEETH

Q Discuss the functions of teeth in the digestive system of human body How would you ensure development of healthy teeth among children of your school ? (A U, B T, 1953)

प्रश्न—पाचन क्रिया में दातों का क्या काय है ? अपने विद्यालय के छात्रों के दांतों की सुरक्षा के लिए क्या क्या उपाय करेंगे ? (बी० टी०, १९५३)

Or

What steps would you take to keep the teeth of School Children healthy ? Explain the evil effects of neglects of teeth (B T, 1960)

विद्यालय के छात्रों के दात स्वस्थ रखने के लिए आप क्या क्या उपाय करेंगे ? दांतों की लापरवाही के दुष्परिणामो का वणन करो ।

उत्तर—

दांतों की उपयोगिता

हमारे शरीर के पाचन सस्थान मे दातो का महत्त्वपूण स्थान है। दांत किस प्रकार पाचन क्रिया मे सहायक होते है यह पिछले अध्याय मे भली प्रकार स्पष्ट कर चुके है। वास्तव मे दात हमारे शरीर को स्वस्थ रखने म अपना महत्त्वपूण भाग अदा करते हैं। दांतो मे रोग हो जाने से शरीर मे भी अनेक रोग हो जाया करते है। दांतो का प्रधान काय भोजन को भली प्रकार चबा कर पाचन के योग्य बनाना है। यदि भली प्रकार से भोजन नही चबा पाते तो भोजन भी भली प्रकार नही पचता और शरीर मे अपच हो जाता है। हमे दातो के भेदो पर पहले विचार करना होगा।

दांतों के प्रकार

१—छेदक दन्त (Incisors)—इन दातो का आकार छेनी की धार के सदृश होता है। इनका काय—भोजन को छोटे छोटे टुकडो मे विभाजित करना है।

होती है। इसका निर्माण एक विशेष तत्व द्वारा होता है। जब कभी भी दात म दरार होती है तो उसके परिणामस्वरूप रदिन (Denline) नामक पदार्थ नष्ट हो जाता है।

(दाँतों के भाग)

१ दन्त शिखर, २ गर्दन, ३ जड, ४ दन्त मज्जा
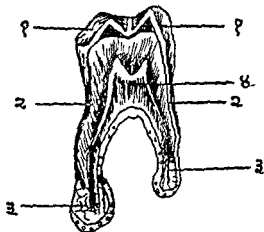
दाँतों की रचना

दन्त वेष्ठ दन्त ग्रीवा पर समाप्त हो जाता है। दन्त वेष्ठ की जगह हड्डी के समान एक सीमेन्ट की सी माटी तह स्थान ले लेती है जो दाँतो की जडो को मजबूती के साथ जमा देती है। दाँतो के अन्दर का भाग रदिन नामक तत्व से बना है। दाँतो के मध्य म जो भाग खोखला होता है उसे दन्त-कोष्ठ (Central Cavity) कहकर पुकारा जाता है। दन्त-कोष्ठ के अन्दर एक प्रकार का मज्जा (Pulp) भरा रहता है। इसके अन्दर रक्त केशिकाएँ, कोष तथा सूक्ष्म स्नायु-सूत्र होते हैं। दाँत के इस भाग मे जीवन रहता है। जब कभी भी इसके मज्जे से स्थित स्नायु प्रभावित या प्रभावित हो जाते है तो दाँतो म दर्द उत्पन्न होने लगता है।

दाँतों के साधारण रोग

(क) दाँतों में कीडा लगना (Dental Caries)—यह साधारणतया बालकों को हो जाया करता है। इस रोग के होने के निम्न कारण हैं—

१—सन्तुलित तथा पौष्टिक भोजन का अभाव—जब बालकों को पौष्टिक भोजन नही मिलता तो वे इस रोग के शिकार हो जाते हैं। भोजन के अन्दर कैल्शियम, फास्फोरस तथा विटामिन 'ए' और 'डी' का होना परमावश्यक है। ये तत्व दाँतो को मजबूत बनाते हैं। इन तत्वो के अभाव म दाँत कमजोर हो जाते हैं, परिणामस्वरूप सरलता से उनम कीडे लग जाते हैं। दाँतो के दन्त-वेष्ठ के स्वस्थ रहने के लिए कैल्शियम की आवश्यकता पडती है। साथ ही साथ विटेमिन डी का भी

होना आवश्यक है। अत भोजन के अन्दर दूध, दही, मछली, मक्खन, हरी साग-सब्जी आदि खूब प्रयोग करना चाहिए। माता के स्वास्थ्य का बालक के दांतो पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ता है। अत माता का भोजन पौष्टिक तथा विटामिन युक्त होना चाहिए। बालक को अन्य दूधो की अपेक्षा माता का दूध विशेष रूप से लाभदायक होता है। इस कारण माताओ को बालको के दांत मजबूत बनाने के लिए अपना ही दूध पिलाना चाहिए। जो माताएँ बच्चो को अपना दूध पिलाना छोड़ देती हैं, उनके बालको के दात कमजोर हो जाते हैं। डिब्बे तथा गाय भैंस का दूध, मा के दूध को नही पा सकता। बालक के दांत उचित मात्रा म विकास कर सके, इसके लिए उनके भोजन म काड लिवर आयल, अंडे की जर्दी तथा संतरे के रस का होना आवश्यक है।

२—कड़े भोजन का अभाव—कड़े भोजन को चबाने मे दांतों की कसरत हो जाती है। परन्तु कड़े भोजन के अभाव मे दांतो के अन्दर दुबलता आ जाती है। कड़ा भोजन न चबाने स मसूढ़ो की उचित रीति से कसरत नही हो पाती। परिणामस्वरूप उसम रक्त प्रवाह ठीक प्रकार से नही हो पाता। इस दोष को दूर करने के लिए बालको को अमरूद, गाजर सेब आदि फल खाने को अवश्य दिये जायें जिससे उनके दांतो की कसरत हो सके।

३—वंश परम्परा—यह हम पहले ही बता चुके हैं कि बालक अनेक गुण अपने माँ बाप स लेकर आता है। यदि मा बाप के दांत मजबूत, दृढ़ तथा नीरोग होंगे तो उनके बच्चा के दांत भी पूर्णतया नीरोग और मजबूत होंगे। इसके विपरीत यदि माँ-बाप के दांत कमजोर हुए तो उसका प्रभाव बालकों पर पड़ेगा।

४—साधारण अस्वस्थता—बालक की साधारण अस्वस्थता भी उसके दांतों को प्रभावित करती है। यदि बालक सदा रोगी बना रहता है तो उसके दात भी कमजोर हो जाते हैं। सूखा रोग—दुर्बल दांतो का प्रमुख जनक है। गर्भावस्था के समय यदि माँ अस्वस्थ रहती है तो बालक के दूध के दात कमजोर हो जाते है।

बालक के बड़े होने पर गहरी नींद, व्यायाम तथा स्वच्छ वायु का सेवन करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। इससे बालक का सामान्य स्वास्थ्य ठीक बना रहेगा जिसका प्रभाव उसके दांतों पर भी पड़ेगा।

५—दांतों को साफ न करना—यदि दांतो की नियमित रूप से सफाई नही की जाती तो इसका प्रभाव दांतो की जड़ो पर अत्यन्त हानिप्रद होता है। जो बालक खाना खाने के पश्चात् मुख ठीक प्रकार से नही धोते या कुल्ला नही करते उनके दांतो म शीघ्र कीड़ा लग जाता है, क्योंकि भोजन के उपरान्त मुख को भली प्रकार से न धोने से दांतो के बीच श्वेत पदार्थ रह जाता है जो कि मुख मे उत्पन्न लार की सहायता से शक्कर म बदल जाता है। शक्कर के दांतो के लिए परम हानिकारक है, क्योंकि मुख के बैक्टीरिया शक्कर से मिलकर लैक्टिक तेजाब (Lactic Acid) उत्पन्न कर देते हैं। [illegible]

पश्चात् धीरे-धीरे रदन भी कोमल होने के कारण नष्ट होने लगता है। उपमा के कारण कुछ समय पश्चात् इस रोग का आक्रमण दन्त कोष्ठ पर भी होने लगता है। परिणामस्वरूप दांतो की जडे खोखली होने लगती हैं, यहाँ तक उनमें पीब तक पड़ जाता है। दांतो में जोर के साथ दर्द होने लगता है, परन्तु आगे चलकर रक्त नलिकाएँ तथा स्नायु सूत्र भी नष्ट हो जाने के कारण पीड़ा बन्द हो जाती है, साथ ही दाँतो की जीवन शक्ति भी नष्ट हो जाती है।

दांतो की जीवन शक्ति नष्ट हो जाने के परिणामस्वरूप दाँतो से भोजन ठीक प्रकार से नही चबाया जा सकता, अतः अधपचा भोजन पेट के अन्दर जाकर पाचन क्रिया मे बाधा उत्पन्न करता है। कभी कभी पेट में पीड़ा होने लगती है तथा अनेक गैसे उत्पन्न हो जाती है। दांतो का पस जब पेट में जाने लगता है तो शरीर में अनेक रोग हो जाते हैं। प्राय सिर मे दर्द हो जाया करता है तथा मुँह मे बदबू आया करती है।

रोग का उपचार—दांतो को कीडा लगने से बचाने के लिए जो सबसे पहली बात ध्यान मे रखने की है वह है—दांतो की सफाई। प्रतिदिन खाना खाने के पश्चात् दाँतो मे उँगली डालकर कुल्ला करना चाहिए। कुल्ला करते समय यह ध्यान रहे कि अन्न का दाना मुख मे न रह जाय। सोने जाने से पहले एक बार दाँत माँज लिए जायँ तथा प्रातःकाल खाना खाने के पश्चात्। दांत साफ करने के लिए ब्रुश का प्रयोग करना उचित है। ब्रुश द्वारा मसूडो की मालिश हो जाती है तथा दाँतों के बीच का भाग भी साफ हो जाता है। परन्तु ब्रुश कड़ा न होना चाहिए।

गावो मे अधिकतर नीम तथा बबूल की दातुन का प्रयोग किया जाता है। यह सस्ता तथा लाभप्रद साधन है। नीम की दाँतुन कीटाणुनाशक है। पर इसका प्रयोग अत्यन्त सावधानी के साथ करना चाहिए, नही तो मसूडा के छिलने की आशंका रहती है। कोमल शाखाओ मे से दातुन बनाई जाय। बालको का नित्य दाँतुन से दाँत साफ करने की आदत डलवाई जाय।

दाँतो की सफाई के अतिरिक्त दाँतो के व्यायाम पर भी उचित ध्यान दिया जाय। बालक कड़ी वस्तुआ को खाएँ। पेस्ट्री, मुलायम बिस्कुट, हलुआ आदि खाने से दाँतो की कसरत बिल्कुल नही होती तथा ये लेक्टिक ऐसिड उत्पन्न करने वाले हैं। अतः इस प्रकार के भोजन से जहा तक हो सके, बचा जाय। सेब, नाशपाती, गन्ना, कच्चे टमाटर तथा ताजे फलो का प्रयोग करने के लिए बालकों को प्रोत्साहित किया जाय।

जो कुछ भी भोजन किया जाय वह चबाकर किया जाय। क्योंकि भोजन को खूब चबाकर खाने से दाँतो का भली प्रकार से व्यायाम हो जाता है अन्न के कण दाँतो में नहीं बच रहते।

प्रत्येक छह महीने बाद दाँतो का डाक्टरी मुआइना कराया जाय। इस प्रकार की व्यवस्था से दाँतो के रोग का प्रथम अवस्था में ही पता लग जायगा जिससे इलाज

कराने मे भी सुविधा रहेगी। जो लोग दाँतों का डाक्टरी मुआइना समय-समय पर नहीं कराते, उन्हें यह ज्ञात नहीं हो पाता कि दातो मे रोग कब से पनप रहा है। यदि एक के ऊपर एक दात उग आये तो उसे उखड़वा दिया जाय जिससे कि दात अपने प्राकृतिक रूप मे विकसित हो सकें।

गर्म भोजन के उपरान्त बर्फ का ठण्डा पानी पीने से दन्त-वेष्ठ पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अत गर्म वस्तु खाने के पश्चात् एकदम ठण्डा पेय नही लेना चाहिए। बालकों का मुख द्वारा सांस लेने से निरुत्साहित किया जाय। मुख द्वारा जो सांस ली जाती है वह नाक द्वारा ली गई श्वास की अपेक्षा कहीं ठण्डी होती है। ठण्डी वायु जब दाँतो से टकराती है तो दन्त वेष्ठ के नष्ट होने का भय रहता है। अत जहाँ तक हो सके, बालको को नाक द्वारा सांस लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाय।

(ख) पायरिया (Pyrrohea)—दातो का यह रोग अत्यधिक पाया जाता है, परन्तु बालकों की अपेक्षा प्रौढ इसके शिकार अधिक होते हैं। इस रोग के रोगी के दाँतो मे बदबू आने लगती है तथा मसूडो मे से रक्त बहने लगता है। धीरे धीरे दात हिलने लगते हैं।

इस रोग के प्रमुख दो कारण हैं—(१) दाँतो का ठीक प्रकार से सफाई न होना, (२) अस्वस्थ मसूडे।

जब मसूड़ों की उचित प्रकार से मालिश नही की जाती तथा भोजन के अन्दर विटामिन 'ए' की कमी रहती है तो वे दुर्बल होते चले जाते हैं। इसी प्रकार जब भोजन करने के पश्चात् दाँतो की ठीक प्रकार से सफाई नही हो पाती और अन्न के कण दाँतो मे ही रह जाते हैं तो दाँतो मे सड़न उत्पन्न हो जाती है और कीडे पड़ जाते हैं। ये कीडे दाँतो की जड को निर्बल कर देते हैं। कभी कभी मवाद भी पड़ने लगता है, जिससे अनेक रोगो की उत्पत्ति होती है।

उपचार—रोग के आरम्भ होते ही रोगी को तुरन्त डाक्टर के पास ले जाया जाय। जो दाँत तथा डाढ खोखले हो गये हो, उन्हें डाक्टर की सहायता से भरवा लिया जाय। मसूडो की भली प्रकार से मालिश की जाय। खाने मे विटामिन 'ए और सी' की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। दाँतो की नियमित सफाई अवश्य होती रहे। पायरिया ने यदि पहले पहले किसी एक दाँत पर आक्रमण किया है तो उस दाँत को तुरन्त निकलवा लिया जाय।

साराश

दाँतों की उपयोगिता—दाँत पाचन क्रिया मे परम सहायक होते हैं। दाँतो के रोगी हो जाने पर शरीर मे भी अनेक रोग हो जाते हैं।

दाँतों के प्रकार—

(१) अस्थायी दन्त
(२) स्थायी दन्त

(३) अग्र चर्वणक दन्त
(४) दाढ़ें
दाँतों के विभाग—
(१) जड़ या मूल
(२) दन्त-ग्रीवा
(३) दन्त शिखर

दाँत के साधारण रोग—दाँत में दो प्रमुख रोग होते हैं—

(क) कीड़ा लगना—यह प्राय बालक। मों हो जाता है। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

१ असन्तुलित तथा पौष्टिक भोजन का अभाव।
२ कड़े भोजन का अभाव।
३ वंश-परम्परा।
४ साधारण अस्वस्थता।
५ दाँतों को साफ न करना।

उपचार—दाँतों को साफ रखा जाय। खाने में कड़ी वस्तुओं का प्रयोग किया जाय। छः महीने बाद दाँतों का मुआइना कराया जाय। गर्म भोजन के उपरान्त बर्फ या ठण्डा पानी नहीं पीया जाय। गोस्त नाक से ही की जाय।

(ख) पायरिया—इस रोग के दो प्रमुख कारण हैं—

१ दाँतों की ठीक प्रकार से सफाई न होना तथा
२ अस्वस्थ मसूड़े।

उपचार—रोग के पनपने पर तुरन्त ही डाक्टर को दिखाया जाय। समय समय पर दाँतों की मालिश की जाय। खाली दाढ़ों को भरवा दिया जाय। भोजन में विटामिन 'ए' और 'सी' की मात्रा बढ़ा दी जाय। पायरिया युक्त दाँतों को निकलवा दिया जाय।

९

मल-निष्क्रमण संस्थान

THE EXCRETORY SYSTEM

Q Describe the human excretory system Illustrate your answer with sketches What would you do to promote the healthy functioning of the excretory organ ? What symptoms would lead you to suspect that the excretory processes were not proceeding normally ? (B T, 1955)

प्रश्न—मानव के मल निष्क्रमण संस्थान का सचित्र वर्णन करो। मल-निष्क्रमण अंगों को ठीक प्रकार से कार्य कराने के लिए तुम क्या करोगे ? किन संकेतों द्वारा ज्ञात होता है कि मल निष्क्रमण क्रिया ठीक नहीं हो रही है ?

Or

Explain the part played the skin in the excretion of waste matter from the human body How would you, as teacher, ensure that your pupils do not suffer from skin diseases ? (B T, 1961)

मानव शरीर से मल निष्क्रमण में त्वचा का क्या अर्थ है ? वर्णन करो। अध्यापक होने के नाते तुम किस प्रकार विश्वास करोगे कि तुम्हारे छात्रों को त्वचा सम्बन्धी बीमारी नहीं है ?

उत्तर—मल निष्क्रमण संस्थान हमारे शरीर का प्रमुख संस्थान है। इसका प्रमुख कार्य शरीर में से व्यर्थ के पदार्थों को बाहर निकालना है। भोजन के जलने से शरीर में कुछ निरर्थक पदार्थ उत्पन्न हुआ करते हैं, उदाहरण के लिए ग्लूकोस चर्बी के जलने से कार्बन डाइ-ऑक्साइड तथा वाष्प बनती है। इसी प्रकार अमीनो अम्ल के जलने से अमोनिया उत्पन्न होता है जिसे जिगर के सेल्स यूरिया में परिवर्तित कर देते हैं। कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, वाष्प तथा यूरिया को शरीर से बाहर निकालने के लिए फेफड़े, त्वचा तथा गुर्दे अपना काम करते रहते हैं। भोजन के अपच अंश को निकालने का कार्य बड़ी आँतें करती हैं।

मल निष्कासन संस्थान में निम्नलिखित अवयव आते हैं—

(१) गुर्दे (Kidneys) (२) फेफड़े (Lungs)

(३) त्वचा (Skin) (४) बड़ी आँत (Bowel)

फेफड़े और बड़ी आँतों के विषय में तो हम पीछे उल्लेख कर आये हैं, यहाँ हम केवल गुर्दे और त्वचा का उल्लेख करेंगे।

गुर्दे Kidneys

शरीर के जिस अंग में मूत्र निर्मित होता है वह अंग गुर्दा कहलाता है। गुर्दे दो होते हैं—जिनमें एक रीढ़ के दाहिनी ओर होता है और दूसरा रीढ़ के बायीं ओर होता है। प्रत्येक गुर्दा सेम के आकार का होता है और वह भूरे रंग का होता है। प्रत्येक गुर्दा ४ इंच लम्बा तथा २½ इंच चौड़ा होता है। इसके बाहर का भाग उन्नतोदर तथा भीतर का भाग नतोदर होता है। नतोदर भाग में से ही धमनी गुर्दे

(वृक्क)
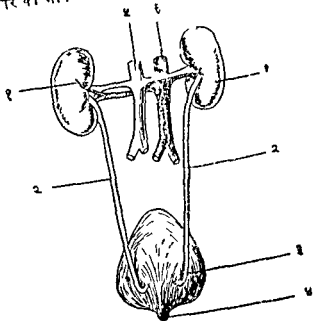
(१) वृक्क, (२) मूत्र प्रणाली, (३) मूत्राशय,

(४) मूत्र मार्ग, (५) धमनी, (६) शिरा।

में प्रवेश करती है और वहीं से एक शिरा बाहर की ओर निकलती है। यहीं से मूत्र नली (Ureter) निकलती है जो नीचे जाकर मूत्राशय (Bladder) से सम्बन्धित हो जाती है। मूत्र नली की लम्बाई प्रायः १५ इंच होती है। प्रत्येक गुर्दे से एक मूत्र नली निकलती है, इस प्रकार हमारे शरीर के अन्दर दो मूत्र नलियाँ होती हैं। इन नलियों में आया हुआ मूत्र, मूत्राशय में एकत्रित होता रहता है। मूत्राशय का निर्माण

मासपशियों से होता है तथा आकार म यह थैने मे मिलता जुलता है। जब मूत्राशय, मूत्र स भर जाता है तब यह अपने आप सिकुड जाता है तथा मूत्र, मूत्र माग मे से होकर बाहर निकल जाता है। मूत्र लगने से पूव मूत्राशय मे लगभग ६ या ८ औंस तक मूत्र एकत्र हो जाता है।

गुर्दों के काय—गुर्दों का काम—रक्त मे से उन बेकार के पदार्थों को, जो शरीर के अन्दर परिवतन क्रिया से पैदा होते रहते हैं, अलग करके रक्त को शुद्ध करना है। वास्तव मे गुर्दे का काम—रक्त छानना (Filter) है। मूत्र के अन्दर यूरिक एसिड, यूरिया और जल के अन्दर मिश्रित लवण आदि होते है। पानी की मात्रा सबसे अधिक प्राय ९५ ६ प्रतिशत होती है। आमतौर पर एक मनुष्य दिन भर म दो सर के लगभग मूत्र-त्याग कर देता है। भोजन के प्रकार और मौसम के अनुसार मूत्र की मात्रा म अन्तर होता रहता है। गर्मी मे मूत्र की मात्रा घट जाती है, क्योंकि पानी का अधिकाश भाग पसीने मे होकर बह जाता है।

गुर्दों के सामान्य रोग और उनका उपचार—भोजन के अन्दर अधिक मात्रा म प्रोटीन का उपयोग करने से मधुमेह (Diabetes) रोग होने की सभावना रहती है। अत भोजन के अन्दर प्रोटीन तथा शक्कर की मात्रा आवश्यकता से अधिक न बढाई जाय। पथरी का रोग अक्सर बालकों को हो जाया करता है। इस रोग म बालक को पेशाब करते समय अत्यन्त दद का अनुभव होता है। इस रोग का कारण—लगने हुए पेशाब को रोकना है। अत अध्यापक को चाहिए कि वह किसी छात्र को मूत्र त्यागने स न रोके। यदि छात्र मूत्र-त्याग के लिए छुट्टी मागता ह तो उसे छुट्टी तुरन्त प्रदान की जाय। कभी कभी गुर्दे के अन्दर सूजन आ जाती है। यह सूजन मुख्यतया लाल बुखार (Scarlet Fever) के बाद होती है। बुखार आने के पश्चात् रोगी को ठण्ड स बचाना चाहिए। मूत्र की कभी कभी जाच करा लेना भी ठीक है। कुछ बालक बिस्तर मे ही पेशाब कर देते हैं। इस रोग का कारण—आतों म कृमिया (Worms) का उपस्थित होना है। रोग की चिकित्सा डाक्टर से कराई जाय।

त्वचा Skin

त्वचा हमारे सारे शरीर को ढके रहती है। इसके कोषों का सदा विनाश और सृजन होता रहता है। इसकी दो तह होती है—(१) बाह्यचम (Epidermis) जो हमारे शरीर के ऊपर आच्छादित रहती है तथा (२) शरीर के भीतर की चम जो आभ्यन्तर (Dermis) के नाम से पुकारी जाती है। यहा हम दोनो का उल्लेख बारी-बारी से करेंगे—

(१) बाह्य चम (Epidermis)—हमारे शरीर के भिन्न भिन्न भागों में वाह्य त्वचा की मोटाई भिन्न भिन्न होती है। उदाहरण के लिए पाँवों के तलवों की खाल, चहरे की खाल से कहीं अधिक मोटी होती है। यह अपना आकार बदलती रहती है। जब बाह्य त्वचा परिवर्तित हो जाती है तब नई त्वचा उसकी जगह स्थान ले

(ख) रक्त कैशिकाओं से पसीना लेकर या दूषित पदार्थ लेकर शरीर से बाहर निकालना। इस प्रकार शरीर की आंतरिक स्वच्छता में त्वचा महत्त्वपूर्ण भाग लेती है।

(ग) शरीर के ताप को बाहर निकाल कर, तापमान को संतुलित रखना।

(घ) स्पर्श कणों के द्वारा ताप तथा स्पर्श का ज्ञान कराना। अनेक व्यक्तियों को किसी वस्तु का ज्ञान त्वचा के स्पर्श द्वारा ही होता है।

(त्वचा)
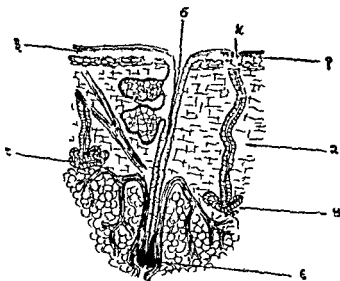
(१) उपचम, (२) चर्म, (३) वर्ण कोष, (४) स्वेद गिल्टी, (५) स्वेद, (६) केशमूल, (७) कोश, (८) चर्बी गिल्टी की नली।

त्वचा की स्वच्छता और स्वास्थ्य

ऊपर हमने देखा कि त्वचा हमारे शरीर में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। अतः त्वचा की स्वच्छता पर ध्यान देना परम आवश्यक है। यदि त्वचा की नियमित रूप से सफाई नहीं की जायगी तो उस पर धूल के कण, पसीने का नमक आदि दूषित पदार्थ एकत्र हो जायेंगे। ये दूषित पदार्थ अनेक कीटाणुओं के जनक होते हैं। पसीने के छिद्र बन्द हो जाने से शरीर में बदबू आने लगती है। पसीने के निकलने में रुकावट उत्पन्न हो जाती है। परिणामस्वरूप त्वचा सम्बन्धी अनेक रोग हो जाते हैं, जैसे—फोड़े, फुंसी, खाज तथा दाद आदि। अतः त्वचा की सफाई पर नियमित रूप से ध्यान दिया जाय। बालकों को नित स्नान करने के लिए प्रोत्साहित करना अध्यापकों का परम कर्त्तव्य है।

त्वचा के साधारण रोग

नीचे हम जनसाधारण में फैलने वाले चर्म रोगों का उल्लेख करेंगे—

(१) खुजली (Itch)—यह छूत का रोग है। एक परजीवी (Parasite)

कीटाणु द्वारा यह रोग फैलता है। रोगी के शरीर म पहले छोटे-छोटे दान तथा बाद म दाना के आकार की फुसी हो जाती है, जिनमे तीव्रता के साथ खुजली मचती रहती है। खुजली का आरम्भ प्रथम शरीर के एक भाग म होता है परन्तु लापरवाही के परिणामस्वरूप यह रोग सारे शरीर म फैल जाता है। खुजली को खुजाने म पानी निकलने लगता है और तत्पश्चात घावो म पस पड जाता है।

उपचार—(i) छूत का रोग होने के परिणामस्वरूप यह रोग एक दूसर के सम्पर्क से फैलता है अत रोगी छात्रो को विद्यालय मे आने स रोका जाय। रोगी के कपडा का प्रयोग कोई दूसरा छात्र न करे। छात्रावास मे इस रोग के रोगी छात्रो को स्नान आदि छात्रावास के तालाब म नही करने दिया जाय।

(ii) गरम पानी से स्नान कराके गधक का लेप लगाकर थोडी देर तक रोगी को धूप म खडा किया जाय तो यह रोग कुछ दिना मे ही समाप्त हो जाता है। बेंजल बेजोएट (Benzyle Benzoite) का घोल लगाने से भी बडा लाभ होता है।

(२) दाद (Ring Worm)—यह आम प्रचलित रोग है। इस रोग का जनक एक फगस (Fungus) होता है। यह भी खुजली के समान छूत का रोग है जो सम्पर्क तथा स्पश द्वारा फैलता है। रोग का आरम्भ एक लाल चकत्ते से होता है। अपनी प्राथमिक अवस्था म अत्य त छोटा रूप लिए रहता है लेकिन बाद म यह धीरे धीरे विशालकाय हो जाता है। दाद का पुराना पड जाना अत्य त हानिप्रद होता है। इसमे थोडी थोडी खुजली मचती रहती है।

उपचार—रोगी के कपडो को दूसरे छात्रो के कपडो से अलग रखा जाय। इस रोग से पीडित छात्रा को विद्यालय से छुट्टी दे दी जाय। किसी कैमिस्ट के यहाँ से दाद का मरहम लाकर उपयोग करना चाहिए।

(३) **कपाल का दाद**—यह सिर की त्वचा मे हो जाता है। सिर की त्वचा मे गोलाकार चकत्ते से (Patches) बन जाते हैं। त्वचा की चम का रग लाल पड जाता है। रोग के कीटाणु केशा की जड तक पहुच कर उन्हे निबल बना देते हैं। धीरे धीरे यह रोग फैलने लग जाता है और सिर के समस्त भाग मे चकत्त पड जाते हैं।

उपचार—सिर मे चकत्ते दिखाई देने पर बालक को तुरत डॉक्टर के पास भेजा जाय। यथासम्भव रोगी बालक को विद्यालय से अवकाश प्रदान किया जाय। रोगी बालक की किसी भी वस्तु का प्रयोग स्वस्थ बालको का नही करने दिया जाय। एक्स र इसका उत्तम इलाज है।

(४) **पैर तथा जाघ का दाद**—यह रोग प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष—दोना ढग से फैलता है। रोग का आक्रमण पैर के सबसे कोमल भाग, उँगली की खाली जगह या जाँघ के अन्त भागो म होता है।

उपचार—रोगी बालक को ऊनी मोजे पहनने का आदेश दिया जाय। मोजा

को समय समय पर उबाल लेना चाहिए। पैरो के लिए जो तौलिया प्रयोग मे लाया जाय उसे और वस्त्रो से अलग रखा जाय।

(५) एलोपेसिया (Alopecia)—यह रोग साधारणतया छोटे बालको मे पाया जाता है। रोग के आक्रमण के पश्चात् बाल शीघ्रता के साथ झडने लगते हैं। भ्रम से कभी कभी इसे दाद समझ लिया जाता है।

उपचार—यह बीमारी संसर्ग से फैलने वाली है। अत बालक को तुरन्त विद्यालय से अवकाश दे दिया जाय। रोगी भाग पर कृत्रिम सूर्योपचार उपयोगी है।

(६) एक्जिमा (Eczema)—इस रोग का आक्रमण मुख्यतया पाँच वर्ष तक के बालको पर होता है। आरम्भ मे शरीर पर लाल चकत्ते पड जाते है, परिणाम-स्वरूप खाल चिपचिपी, मोटी तथा खुरदरी हो जाती है। इस रोग से पीडित छात्रो को तुरन्त छुट्टी प्रदान कर दी जाय। रोग के बढने पर डॉक्टर से उचित सलाह ली जाय।

(७) इम्पेटिगो (Impetigo)—जो बालक गन्दे रहते है, प्राय यह रोग उनको हो जाया करता है। रोगी के मुख, सिर, ठोडी तथा शरीर के दूसरे भागो मे लाल चकत्ते निकल आते हैं। कुछ काल के पश्चात् ये खुल सूख जाते हैं और अनेक स्थानो पर एक पीला सा खुरट पड जाता है। खुरटो के अन्दर रोगी खुजली का अनुभव करता है। नाखूनो से खुजाने पर रोग के बढने की सम्भावना रहती है।

त्वचा के अन्य रोगो के समान यह भी छूत का रोग है। अत रोगी के कपडे तथा तौलिया आदि का प्रयोग दूसरे बालको को नही करने दिया जाय। रोगी बालक को विद्यालय आने से रोक दिया जाय। बालको को स्वच्छ रहने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। नाखूनो मे मैल जमा रहता है अत नाखूनो की सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाय। रोगी के नाखूनो को कटवा दिया जाय, जिससे वह खुजला न सके।

उपचार—रोगी के खुरटो को बोरिक ऐसिड से धोकर उन पर 'सल्फैनो-माइड मरहम' (Sulphanomide Ointment) का प्रयोग किया जाय। इससे रोगी को पर्याप्त लाभ होता है।

(८) बाल तथा शरीर में जुएँ पडना (Pediculosis)—इस रोग का मुख्य कारण—शारीरिक गन्दगी है। जुआ का आकार अत्यन्त सूक्ष्म होता है। बालो की जडो मे प्रवेश करके ये शरीर का रक्त पिया करते हैं। जो लोग नहाने मे असावधानी बरतते हैं व प्रमुखतया इसके शिकार होते हैं। परन्तु जुएँ वाले किसी व्यक्ति के पास बैठने से भी ये दूसरे व्यक्ति के शरीर मे पहुच जाते हैं। जुआ की अधिकता से रोगी को निद्राहीनता तथा बेचैनी का अनुभव होता है। सिर तथा शरीर मे खुजली मचती है। जिन छात्रो के शरीर मे जुएँ पड जाया करते हैं वे प्राय अपना सिर खुजाया करते हैं। यदि जुओ को समाप्त करने पर ध्यान नही दिया जाता तो रक्तहीनता तथा टाइफस (Typhus) नामक ज्वर होने की सम्भावना रहती है।

उपचार—इस रोग के रोगी को अपने बालो की स्वच्छता पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। हर दूसरे तीसरे दिन बालो को लोह की बारीक कघी से काढा जाय। जुएँ मारने के लिए डी॰ डी॰ टी॰ पाउडर का प्रयोग किया जा सकता है। गरम सिरके को बालो मे लगाने से जुओ की कीलें नष्ट हो जाती हैं। इसी प्रकार लेथान आयल' (Lethane Oil) का प्रयोग भी बडा लाभदायक होता है।

जुओ से प्रभावित कपडो को नित उबाल लिया जाय। जिन बालको के सिर मे जुएँ है, उन्हे दूसरे बालको से जहा तक हो सके दूर रखा जाय। प्रति दिन स्नान पर विशेष बल दिया जाय।

साराश

मल निष्कासन सस्थान हमारे शरीर का प्रमुख सस्थान है। इसका प्रमुख काय शरीर मे से व्यथ के पदार्थो को बाहर निकालना है। इस सस्थान के निम्न लिखित अवयव है —

(१) गुर्दे (Kidneys)
(२) फेफडे (Lungs)
(३) त्वचा (Skin)
(४) वडी आत (Bowel)

गुर्दे—इसमे मूत्र निर्मित होता है। ये दो होते हैं। प्रत्येक गुर्दा सम की तरह का होता है। लम्बाई मे यह ४ इच तथा चौडाई मे २½ इच होता है।

कार्य—गुर्दे का काय—रक्त मे से उन बेकार के पदार्थो को जो शरीर के अन्दर परिवतन क्रिया से पैदा होते रहते हैं, अलग करके शुद्ध करना है।

गुर्दे के सामान्य रोग—प्रोटीन का अधिक मात्रा मे प्रयोग मधुमेह को जन्म देता है। जगते हुए पेशाब को रोकने से गुर्दे मे पथरी पड जाती है। अत अध्यापक का कत्तव्य है कि वह बालको को पशाब जाने से न रोके। कभी कभी लाल बुखार के पश्चात् गुर्दे म सूजन आ जाती है अत बुखार आने के पश्चात् रोगी को ठण्ड से बचाना चाहिए।

त्वचा (Skin)—त्वचा सारे शरीर को ढके रहती है। इसकी दो तह होती हैं—(१) बाह्य चम (Epidermis) तथा (२) आभ्यतर चम (Dermis)।

हमारी त्वचा मे दो प्रकार की ग्रन्थियाँ होती हैं—(१) तैल ग्रन्थियाँ तथा (२) स्वेद ग्रन्थियाँ।

त्वचा के काय—(१) शरीर पर आवरण का कार्य करती है।

(२) रक्त-कणिकाओ से पसीना तथा दूषित पदाथ लेकर शरीर से बाहर निकालना।

(३) शरीर के ताप को बाहर निकालना तथा तापक्रम को सन्तुलित रखना।

(४) स्पश का ज्ञान कराना।

त्वचा की स्वच्छता और स्वास्थ्य—त्वचा के गन्दे रहने से त्वचा-सम्बन्धी अनेक रोग हो जाते हैं।

त्वचा के साधारण रोग—

(१) खुजली (Itch), (२) दाद (Ring Worm),
(३) कपाल का दाद, (४) पैर तथा जाँघ का दाद,
(५) एलोपोसिया, (६) एक्जिमा,
(७) इम्पेटिगो, (८) जुआँ।

उपचार—इस रोग के रोगी को अपने बालो की स्वच्छता पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। हर दूसरे तीसरे दिन बालो को लोहे की बारीक कघी से काढा जाय। जुएँ मारने के लिए डी० डी० टी० पाउडर का प्रयोग किया जा सकता है। गरम सिरके को बालो मे लगाने से जुओ की लीखें नष्ट हो जाती हैं। इसी प्रकार लेथान आयल' (Lethane Oil) का प्रयोग भी बडा लाभदायक होता है।

जुओ से प्रभावित कपडो को नित उबाल लिया जाय। जिन बालको के सिर मे जुएँ हैं, उन्हे दूसरे बालको से जहा तक हो सके दूर रखा जाय। प्रति दिन स्नान पर विशेष बल दिया जाय।

सारांश

मल निष्कासन संस्थान हमारे शरीर का प्रमुख संस्थान है। इसका प्रमुख कार्य शरीर मे से व्यर्थ के पदार्थों को बाहर निकालना है। इस संस्थान के निम्न लिखित अवयव हैं —

(१) गुर्दे (Kidneys)
(२) फेफडे (Lungs)
(३) त्वचा (Skin)
(४) बडी आत (Bowel)

गुर्दे—इनमे मूत्र निर्मित होता है। ये दो होते हैं। प्रत्येक गुर्दा सेम की तरह का होता है। लम्बाई मे यह ४ इंच तथा चौडाई मे २½ इंच होता है।

कार्य—गुर्दे का कार्य—रक्त मे से उन बेकार के पदार्थों को जो शरीर के अन्दर परिवर्तन क्रिया मे पैदा होते रहते हैं, अलग करके शुद्ध करना है।

गुर्दे के सामान्य रोग—प्रोटीन का अधिक मात्रा मे प्रयोग मधुमेह को जन्म देता है। लगते हुए पेशाब को रोकने से गुर्दे मे पथरी पड जाती है। अत अध्यापक का कर्तव्य है कि वह बालको को पेशाब जाने से न रोके। कभी कभी लाल बुखार के पश्चात् गुर्दे म सूजन आ जाती है अत बुखार आने के पश्चात् रोगी को ठण्ड से बचाना चाहिए।

त्वचा (Skin)—त्वचा सारे शरीर को ढके रहती है। इसकी दो तहें होती हैं—(१) बाह्य चर्म (Epidermis) तथा (२) आभ्यंतर चर्म (Dermis)।

हमारी त्वचा मे दो प्रकार की ग्रंथियाँ होती हैं—(१) तेल ग्रंथियाँ तथा (२) स्वेद ग्रंथियाँ।

त्वचा के कार्य—(१) शरीर पर आवरण का कार्य करती है।

(२) स्वेद-ग्रंथियों से पसीना तथा दूषित पदार्थ लेकर शरीर से बाहर निकालना।

(३) शरीर के ताप को बाहर निकालना तथा तापक्रम को संतुलित रखना।

(४) स्पर्श का ज्ञान कराना।

त्वचा की स्वच्छता और स्वास्थ्य—त्वचा के गन्दे रहने से त्वचा सम्बन्धी अनेक रोग हो जाते हैं।

त्वचा के साधारण रोग—

(१) खुजली (Itch),	(२) दाद (Ring Worm),
(३) कपाल का दाद,	(४) पैर तथा जांघ का दाद,
(५) एलोपोसिया,	(६) एकजिमा,
(७) इम्पेटिगो,	(८) जुआँ।

१०

नलिका-विहीन ग्रन्थियाँ

DUCTLESS GLANDS

Q What are the functions of the ductless glands ? How do these glands affect the general ability of the pupils ?

(L T, 1954)

प्रश्न—नलिका विहीन ग्रंथियो के क्या कार्य हैं ? ये ग्रन्थियाँ व्यक्ति की साधारण योग्यता को किस प्रकार प्रभावित करती हैं ? (एल० टी०, १६५४)

उत्तर—हमारे शरीर म अधिकाश ग्रंथिया शरीर के किसी विशेष भाग मे स्राव उत्पन्न करती है तथा उस विशेष भाग म वे अपना स्राव नलियो के द्वारा पहुँचाती है। इन नलियो द्वारा पहुँचाया गया स्राव, केवल उस भाग के लिए ही लाभदायक होता है, जिस भाग के लिए वह उत्पन्न किया गया है। परन्तु इसके विपरीत हमारे शरीर मे कुछ ऐसी भी ग्रंथिया होती हैं जो अपना स्राव शरीर के किसी विशेष भाग के लिए उत्पन्न न करके समस्त शरीर के लिए उत्पन्न करती हैं। इन ग्रंथियो की दूसरी विशेषता यह है कि इनका स्राव रक्त या लसिका मे मिलकर सारे शरीर के अन्दर पहुच जाता है। चूँकि इन ग्रन्थियो म से नलिकाएँ नही निकलती, अत इनको नलिका विहीन ग्रंथियाँ कहकर पुकारा जाता है। इन ग्रंथियों से जो रस उत्पन्न होता है उसे होरमोन' (Hormone) कहा जाता है। मानसिक तथा शारीरिक विकास इन ग्रंथियो की उचित क्रिया पर निभर रहता है।

हमारे शरीर में पाई जाने वाली प्रमुख नलिका विहीन ग्रन्थिया निम्न लिखित हैं—

१—पिनियल (Pineal) २—पीयूष (Pituitary)
३—थायराइड (Thyroid) ४—पैरा थायरोइड (Para thyroid)
५—थायमस (Thymus) ६—एड्रिनल (Adrenal)
७—क्लोम (Pancreas) ८—प्रजनन (Gondas)

(१) पिनियल (Pineal)—मस्तिष्क के पिछले भाग मे लघु मस्तिष्क के निकट एक छोटी सी ग्रन्थि है, जिसे 'पिनियल ग्लैण्ड' कहते है। इस ग्रन्थि का प्रमुख काय—स्त्री-पुरुष म भेद उत्पन्न करना है। इस ग्रन्थि के कारण ही पुरुषो के मूँछे आती हैं और स्त्रियो म मूँछो के स्थान पर उरोजो मे तनाव आता है। स्त्री तथा पुरुषा क स्वर म जो भेद होता है, वह भी इस ग्रन्थि के कारण होता है।
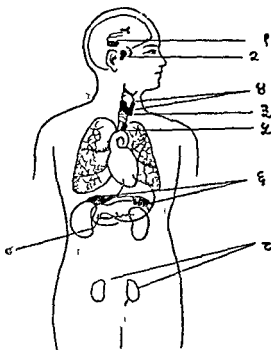
(प्रणाली विहीन ग्रन्थियाँ)

१ पिनियल, २, पिटयूटरी, ३ थायरोइड, ४ पैरा थायरोइड, ५ थाइमस, ६ एड्रीनल, ७ लैंगरहैंस के आईलेट, ८ प्रजनन-ग्रन्थिया।

(२) पीयूष (Pituitary)—यह ग्रन्थि अत्यन्त लघु आकार की लाल तथा भूरे रग का है। यह मस्तिष्क के नीचे की तली के मध्य मे लटकी रहती है। यह दो पिण्डा म विभाजित है। ये पिण्ड अपना अलग अलग स्राव तैयार करते है। अगला पिण्ड जो स्राव उत्पन्न करता है, उससे अस्थि तथा शरीर की वृद्धि पर नियन्त्रण रहता है। जब यह रस आवश्यकता से अधिक उत्पन्न हो जाता है तो बाएँ पैर और खोपडी की लम्बाई अत्यधिक हो जाती है। इसके विपरीत, इस स्राव की कमी के कारण शरीर का कद छोटा हो जाता है और उसका विकास भी मन्द हो जाता है। यह स्राव शरीर की लिंग इन्द्रियों को भी प्रभावित करता है।

पिछले पिण्ड म जो स्राव उत्पन्न होता है, उससे आँतो को गति प्राप्त होती है तथा रक्त नलिकाएँ अपना काय ठीक प्रकार से करती हैं। यह स्राव हमारे शरीर

के रक्त दाब (Blood Pressure) पर भी नियन्त्रण रखता है। इस स्राव के अभाव म, शरीर मे उपस्थित शक्कर का उपयोग उचित प्रकार से नही हो पाता। रक्त के अन्दर ग्लूकोज की मात्रा अत्यधिक बढ जाती है। श्वेतसार (Carbohydrates) शरीर के अन्दर स्फूर्ति तथा गर्मी उत्पन्न न करके, वसा के अन्दर परिवर्तित हो जाते हैं। वसा अधिक उत्पन्न होने के परिणामस्वरूप शरीर मोटा हो जाता है तथा शरीर पर आलस सा छाया रहता है।

(३) थायरोइड (Thyroid)—इस ग्रन्थि की स्थिति गले के नीचे है। रंग मे यह भूरा तथा लाल रंग का मिश्रण होती है। इसके दो भाग हैं जो श्वास-नली के दोनो ओर रहते हैं। इस ग्रन्थि से उत्पन्न स्राव सम्पूर्ण शरीर को विकसित कर पुष्ट बनाता है। इस स्राव के अन्दर आयोडीन की मात्रा अत्यधिक होती है। प्रौढा वस्था मे इस ग्रन्थि की क्रिया-शक्ति घट जाती है, परन्तु किशोरावस्था मे यह अत्यधिक क्रियाशील रहती है। इस स्राव के अभाव म या कम उत्पन्न होने पर शारीरिक तथा मानसिक विकास मे बाधा आती है, बालक का शरीर निर्बल हो जाता है तथा बुद्धि मन्द हो जाती है। ज्ञानेन्द्रियो का विकास भी रुक जाता है तथा युवा होने पर युवा वस्था के लक्षण नही प्रकट होते। चूँकि इसके स्राव मे आयोडीन नामक रस रहता है। अत जिन प्रदेशो की भूमि म आयोडीन का अभाव रहता है वहा के निवासियो के प्राय गण्डमाला (Goiter) का रोग हो जाता है। गण्डमाला के रोगियो को आयोडीन देना लाभप्रद रहता है। 'Thyroid Extract' भी आयोडीन की कमी को पूरा करता है। जब यह ग्रन्थि अपनी क्रिया तीव्रता के साथ करने लगती है तो आँखें बाहर की ओर निकलने लगती हैं हृदय तीव्रता के साथ धडकने लगता है। रक्त के अन्दर शक्कर की मात्रा अत्यधिक बढ जाती है।

(४) पैरा थायरोइड (Parathyroid Glands)—ये ग्रन्थियां आकार में मटर के समान होती हैं। थायरोइड ग्रन्थि के दाएँ और बाएँ पिण्ड के, पीछे के भाग से सम्बन्धित रहती है। इन ग्रन्थियो का काम कैलशियम के मटाबोलिज्म को अपने नियन्त्रण मे रखना है। इन ग्रन्थियां के स्राव उत्पन्न न करने पर रक्त म कैलशियम का अभाव हो जाता है तथा टेटनी (Tetany) नामक रोग होने का भय रहता है। हृदय की गति तीव्र हो जाती है, श्वास तेजी के साथ चलने लगती है। परन्तु इन ग्रन्थियो के अधिक सक्रिय होने से मासपेशियो मे दुबलता आ जाती है, शरीर मे कैलशियम की मात्रा अत्यधिक बढ़ जाती है आँतो म से रक्त निकलने लगता है।

(५) थाइमस (Thymus Gland)—इस ग्रन्थि का रंग कुछ गुलाबीपन लिए हुए धूमर होता है। यह छाती की हड्डियो के पीछे के भाग तथा गर्दन के निचले भाग मे स्थित है। इस ग्रन्थि का सम्बन्ध लैंगिक वृद्धि से है। किशोरावस्था के आरम्भ होते ही यह समाप्त हो जाती है। इस ग्रन्थि के विषय मे पूर्ण जानकारी नही प्राप्त हो सकी है। यदि यह ग्रन्थि प्रौढावस्था तक बनी रहती है तो शरीर म दुबलता तथा बुद्धिहीनता आ जाती है।

(६) एड्रीनल ग्लैण्डस (Adrenal Glands)—ये ग्रंथियां दोनों गुर्दों के ठीक ऊपर स्थित हैं। आकार मे ये त्रिभुजाकार होती हैं। इनके बाहर के भाग को कार्टेक्स (Cortex) कहा जाता है तथा अन्दर के भाग को मेडुला (Medulla) के नाम से पुकारते हैं।

मेडुला के अन्दर जो स्राव उत्पन्न होता है उसे एड्रीनलीन (Adrenalin) कहते है। इसका काय, भय के समय शरीर के समस्त अगो को उत्तेजित करना है। जब हम किसी वस्तु को देखकर भयभीत होते हैं ये ग्रन्थियाँ एड्रीनेलीन रस उत्पन्न करने लगती हैं। इस स्राव के कारण समस्त शरीर के अग उत्तेजित होने लगते हैं। हृदय तीव्रता के साथ काय करने लगता है, शरीर से पसीना छूटने लगता है। समस्त शरीर के रोंगट खडे हो जाते हैं। इस दशा मे मनुष्य या तो भागने का प्रयत्न करता है या फिर परिस्थिति का सामना करने के लिए कटिबद्ध हो जाता है।

(७) क्लोम या लगरहैंस आईलेट ग्लण्ड (Pancreas or Islets of Langerhans)—यह ग्रंथि, सम्पूण क्लोम के अन्दर छोटे छोटे कोषो के रूप मे स्थित है। इन कोषों से उत्पन्न पदार्थों को इन्सुलीन (Insulin) कहते हैं। यह पदाथ श्वेतसार को भस्म कर शरीर के लिए ताप और शक्ति उत्पन्न करता है। इस पदाथ के अभाव म शरीर के अन्दर शक्कर की मात्रा अत्यधिक बढ जाती है। रोग की उपेक्षा करने पर मधुमेह (Diabetes) के रोग होने की सम्भावना रहती है। इन्सुलीन की सुई इस रोग म अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध होती है।

(८) प्रजनन ग्रंथियां (Gondas)—स्त्री-पुरुष की प्रजनन ग्रंथियो म अन्तर रहता है। पुरुष की प्रजनन ग्रंथियो को शुक्र ग्रंथियो के नाम से पुकारते हैं तथा स्त्रियों की ग्रंथियो को डिम्ब ग्रंथियां कहा जाता है। शुक्र-ग्रंथियो म वीय उत्पन्न होता है तथा डिम्ब ग्रंथियो म रस। इसके अतिरिक्त एक अन्य रस की उत्पत्ति भी इन ग्रंथियां म होती है, जिसके कारण पुरुष म पुंस्त्व के तथा नारी म नारीत्व के चिह्न प्रकट होते हैं। इस रस के कारण ही पुरुषों के दाढ़ी-मूँछें निकलती हैं तथा उनकी आवाज म भी भारीपन आता है। स्त्रियो के स्तनो का विकास तथा स्वर मे कोमलता इसी रस के ऊपर पूणतया निभर रहता है। य ग्रंथियां मानव के व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डालती हैं। इन ग्रंथियो से उत्पन्न रस के अभाव मे मानसिक विकास रुक जाता है तथा व्यक्ति म एक प्रकार की नपुंसकता आ जाती है। इस प्रकार की गड़बड़ी उत्पन्न होने पर डाक्टर की सलाह तुरन्त ली जाय।

नलिका विहीन ग्रंथियो का सम्पूण अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कष पर पहुचते हैं कि ये बालक के शारीरिक तथा मानसिक विकास पर अपना पूण प्रभाव डालती हैं। इनके कायक्रम के सन्तुलन मे बाधा आने पर बालक की शारीरिक तथा मानसिक उन्नति अवरुद्ध हो जाती है। अत जब कभी भी इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो जाय तो तुरन्त डॉक्टर की सहायता ली जाय।

साराश

नलिका विहीन ग्र थियाँ—वे ग्रन्थिया हैं जो अपना स्राव किसी विशेष अग के लिए तैयार न करके शरीर के समस्त अगो के लिए तैयार करती हैं। इन ग्रन्थियों द्वारा उत्पन्न स्राव रक्त या लसिका मे मिलकर समस्त शरीर म पहुँचता है। इन ग्र थियो से उत्पन्न होने वाले रस को हारमो स के नाम से पुकारते है। मानसिक तथा शारीरिक विकास, इन ग्र थिया की उचित क्रिया पर निभर करता है। प्रमुख नलिका विहीन ग्र थिया निम्न हैं—

१ पिनियल (Pineal)
२ पीयूष (Pituitory)
३ थाइरायड (Thyroid)
४ पैरा थाइरोयड (Para thyroid)
५ थाइमस (Thymus)
६ एड्रीनल (Adrenal)
७ क्लोम (Pancreas)
८ प्रजनन (Gondas)

नलिका विहीन ग्रन्थिया बालक के शारीरिक तथा मानसिक विकास पर अपना पूण प्रभाव डालती है। इनके कायक्रम के स तुलन मे बाधा आने पर बालक की शारीरिक तथा मानसिक उन्नति अवरुद्ध हो जाती है।

११

नेत्र तथा दृष्टि

THE EYE AND VISION

Q Describe with the help of a diagram the structure of the human eye How does eye of a short sighted child differ from that of a normal child ? What care would you take of a short sighted child in the class room ? (B T 1953, L T 1956, B T 1959)

प्रश्न—चित्र की सहायता से आँख की बनावट का वर्णन करो। निकट दृष्टि दोष से पीड़ित छात्र सामान्य बालक से कैसे भिन्न होता है ? एक निकट दृष्टि-दोष से पीड़ित छात्र के विषय में आप क्या क्या सावधानियाँ बरतेंगे ?

Or

Describe with the help of a diagram the srtucture of the eye What conditions in a school can cause short sightedness in children ? (B T 1965)

नेत्र की बनावट का वर्णन चित्र की सहायता से करो। स्कूल की कौन सी परिस्थितियाँ बालकों में निकट दृष्टि दोष उत्पन्न कर सकती हैं ?

उत्तर—नेत्र हमारे शरीर की सबसे महत्वपूर्ण इन्द्रियाँ है। सुन्दर तथा असुन्दर का ज्ञान हमे नेत्रो के द्वारा ही होता है। यह कहने की आवश्यकता नही कि शिक्षा प्राप्त करने म नेत्रो का क्या स्थान है। बिना नेत्रो के हम कुछ देख नही सकते न कुछ काम कर सकते है। अधिकाश ज्ञान हमे नेत्रो के द्वारा ही प्राप्त होता है। अत नेत्रो की रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य हो जाता है। सव प्रथम हम नेत्रो की बनावट का अध्ययन करेंगे जिससे उनमे उत्पन्न दोषो का पता हमे ठीक प्रकार से लग सके।

नेत्र की बनावट (Structure of the Eye)—हमारी खोपडी म नाक के ऊपर दायी ओर तथा बायी ओर दो गढो मे नेत्र गोलक (Eye Ball) स्थित रहते हैं। नेत्र गोलक अन्दर से खोखले तथा जरा चपटापन लिए होते हैं। सामने का भाग

कुछ उभरापन लिए होता है । जिन गढो म नेत्र गोलक स्थित रहते हैं उन्हें आर्बिट (Orbit) कहते है । नेत्र गोलक की रक्षा के लिए पलक (Eye lids) होता है। पलक के अन्दर की तरफ सम्पूर्ण नेत्र एक कोमलतम झिल्ली द्वारा आच्छादित है। इसे नेत्राच्छादिनी झिल्ली (Conjunctiva) के नाम से पुकारा जाता है। यह पारदर्शी झिल्ली है । अश्रु ग्रंथियो से उत्पन्न अश्रु-जल तथा कुछ अपने द्वारा उत्पन्न रस से यह तरल बनी रहती है ।

अश्रु-ग्रंथियाँ (Tear Glands)—आँख की दो पलको मे अश्रु-ग्रंथियाँ रहती हैं । ये ग्रंथिया आसू उत्पन्न करती हैं । पलको मे स्थित धूल तथा बाहर से यदि कोई वस्तु आँख म आ गिरे तो आसू द्वारा साफ कर दी जाती है । जब आंसुओ का काय समाप्त हो जाता है तब ये पुन नाक से सम्बन्धित दो नलियो म लौट जाते है । परन्तु जब अत्यधिक रुलाई आती है तब आंसू नलिया द्वारा वापस न लौटकर पलको से निकल पडते हैं ।
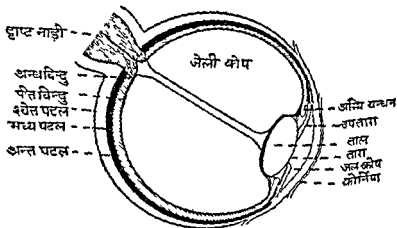
मिबोमियन ग्रंथिया (The Meibomian Glands)—य ग्रंथियाँ बरौनिया की जडो म पलको के निकट स्थित रहती हैं । य एक प्रकार का चिकना तरल पदाथ उत्पन्न करती हैं जिसका काय पलको के सिरा को नम और चिकना बनाये रखना है, जिससे जब वे आपस मे मिलें तो घषण न हो । दूसरे, आँसुओ को पलकों से बाहर जाने से रोकना है ।

नेत्र गोलक (The Eye Ball)—नेत्र गोलक को दो दो की तीन जोडे वाली मांसपेशियाँ साधे रहती हैं । इन मासपेशिया के कारण ही नेत्र गोलक को चारा ओर घुमाकर देख लेते हैं । जिस ओर को हम देखते हैं उस ओर की मासपेशी स्वत सकुचित हो जाती है । इस प्रकार हम देखते हैं कि मासपेशियाँ नेत्र-गोलक को अनेक दिशाओं म गति प्रदान करने का काय करती हैं । यदि हमारी आँख की मासपेशियाँ ठीक प्रकार से काम करना बन्द कर दें तो नेत्र गोलक का हम भली प्रकार से घुमा नही सकते, फलस्वरूप दृष्टि मे दोष उत्पन्न हो जाता है ।

नेत्र गोलक का आगे का भाग कुछ ऊपर की ओर उठा हुआ है। इसका निर्माण तीन तहों (Coats) द्वारा होता है, जो इस प्रकार हैं—

(१) श्वेत पटल (Sclerotic) तथा कनीनिका (Cornea)

(२) मध्य पटल (Choroid) तथा उपतारा (Iris) सम्मिलित रहते हैं।

(३) अंत पटल (The Retina)

१—श्वेत पटल और कनीनिका—श्वेत पटल मोटी तथा रेशेदार झिल्ली द्वारा निर्मित है। यह झिल्ली अपारदर्शक तथा ठोस होती है। प्रकाश का प्रवेश सरलता से हो सके, इस कारण सामने की ओर यह पारदर्शक होती है। यह भाग 'कनीनिका' (Cornea) कहलाता है। श्वेत पटल नेत्र के आंतरिक भाग की रक्षा करता है। इसके बाहरी भाग से अनेक मांसपेशियाँ सम्बंधित रहती हैं जिनके कारण नेत्र गोलक चारों दिशाओं में सरलता के साथ घूमता है।

२—मध्य पटल और उपतारा—श्वेत पटल की भीतरी सतह में मध्य पटल स्थित है। यह एक काली भूरी झिल्ली के सदृश है। इसके कोषों में एक तत्त्व होता है, जिसे वर्णक (Pigment) तत्त्व कहते हैं। यह तत्त्व नेत्र गोलक के आन्तरिक भाग को पूर्णतया अन्धकारमय बना देता है। अन्धकार के कारण नेत्रों में प्रकाश से चकाचौंध नहीं उत्पन्न होता। जो व्यक्ति सूरजमुखी होते हैं, उनके नेत्रों में इस वर्णक तत्त्व का अभाव रहता है। परिणामस्वरूप दिन के प्रकाश में उन्हें चकाचौंध मालूम होता है। श्वेत पटल की तरह यह भी 'ओप्टिक नर्व' (Optic Nerve) से सम्बंधित है।

मध्य पटल आगे की ओर उपतारा (Iris) से जुड़ा हुआ है। कनीनिका के पीछे कुछ दूरी पर गोल आकार का एक परदा होता है, जिसे उपतारा कहते हैं। इसमें वर्णक तत्त्व (Pigment) रहते हैं जो आंखों को नीला, भूरा तथा काला रंग प्रदान करते हैं। उपतारा के ठीक मध्य में एक छोटा छिद्र होता है, जिसे पुतली (Pupil) कहा जाता है।

आधे इंच व्यास का एक युगल उन्नतोदर ताल (Biconvex Lens) उपतारे के ठीक पीछे स्थित है। यह आकार में गोल, स्वच्छ, चमकीला तथा अर्ध पारदर्शक होता है। इसका निर्माण कोमल चिपचिप सजीव तन्तुओं (Gelatinous Living Tissues) से हुआ है। यह लटकने वाले अस्थि बन्धनों से जकड़े रहने के परिणामस्वरूप अपने स्थान पर ही ठहरा रहता है। अस्थि बन्धन ताल के सिरों से होते हुए सीलियरी प्रवर्ध तक जाते हैं तथा सीलियरी मांसपेशियों से जोड़ने का काम करते हैं। ये मांसपेशियाँ ताल के उभार को घटा-बढ़ा सकती हैं।

ताल द्वारा नेत्र-गोलक दो भागों में विभाजित है। एक भाग आगे की ओर है और दूसरा पीछे की ओर। आगे वाले भाग में एक प्रकार का रंगहीन पारदर्शी तरल (Aqueous Humour) से भरा होता है। पिछले भाग में पारदर्शी जेली जो सांद्र रस (Vitreous Humour) के नाम से पुकारी जाती है, भरी रहती है। ये

दोनो रस नेत्र मे प्रवेश करने वाली प्रकाश किरणो को भुकाने का काम करते हैं। किरणें भुकने से ठीक अत पलट पर पडती हैं, जिससे नेत्र किसी वस्तु को सरलता से देख लेते है।

३—अत पटल (The Retina)—अ त पटल दृष्टि स्नायुओ (Optic Nerves) से वना है। इनकी अनेक परतें हैं, जिनम प्रमुख दण्ड और शकु (Rods and Cones) होती ह। दण्ड का काय—अ धकार मे वस्तुएँ देखने म सहायता प्रदान करना है तथा शकु का काय—प्रकाश म।

दण्ड और शकु—दोनो दृष्टि स्नायुओ की सहायता से प्रकाश के प्रभाव को मस्तिष्क के द्र तक स्पष्टीकरण के लिए भेजते है। जिस स्थल पर प्रकाश क प्रभाव का स्पष्टीकरण होता है, वह पीत बि दु (Yellow Spot) कहलाता है। जब प्रकाश की किरणें इस बि दु पर के द्रित हो जाती है तो प्रतिमा (Image) स्पष्ट हो जाती है। पर तु पीत बि दु के आग पीछे बनने वाली प्रतिमाएँ धुँधली होती हैं।

दृष्टि (Vision)—किसी वस्तु को स्पष्ट रूप मे हम तब तक नहीं देख सकते जब तक कि उस वस्तु स निकलने वाली प्रकाश की किरण ताल (Lens) पर इस ढग से न गिरे कि के द्रीकरण (Focus) अ त पटल पर ही हो। दूसरे शब्दो म, अत पटल पर ही प्रतिबिम्ब बने। जिस वस्तु को हम पास से देखते है उससे आने वाली प्रकाश की किरणे फैली हुई होती हैं पर तु तीस फीट या उससे अधिक दूरी पर स्थित किसी वस्तु से आने वाली किरणें समाना तर रूप मे आती हैं। हमारी आखें फैली हुई तथा समानान्तर—दोनो प्रकार की किरणो के साथ समान रूप से काय करने की क्षमता रखती है। फली हुई समाना तर किरण अत पटल पर तब तक के द्रस्थ नही हो सकती जब तक उनमे वक्रता या भुकाव न आये। किरणो के अन्दर भुकाव तथा वक्रता दुहरे उन्नतोदर ताल (Biconvex Lens) से आती है। आँख के ताल के अ दर दोना प्रकार की किरणो को अत पटल पर के द्रित करने के लिए उनम भुकाव तथा वक्रता लाने की शक्ति होती है। ताल की सयोजन शक्ति ताल वक्रता तथा भुकाव को बढाकर बिम्ब का के द्रीकरण अत पटल पर करती है। किसी वस्तु के देखने म ताल की सयोजन शक्ति महत्वपूण स्थान रखती है। दूरी पर स्थित किसी वस्तु से आने वाली समाना तर किरणो को के द्रस्थ होने के लिए सयोजन शक्ति की आवश्यकता नही पडती, पर तु पास से आने वाली किरणें फैली होने के कारण अत पटल पर के द्रस्थ सयोजन शक्ति के बिना नहीं हो सकती। अत हम देखते हैं कि वस्तु के निकट होने पर सयोजन शक्ति की अधिक आवश्यकता पडेगी। इस काय को करने के लिए सीलियरी मासपेशियाँ मध्य पटल तथा सीलियरी प्रवधन को आगे बाहर को खीचती हैं जिससे ताल के स्थगन बधना (Suspensory Ligaments) पर से पकड कम हो जाती है। परिणामस्वरूप ताल आगे की ओर उभर आता है। जितना ही हम पास से पढेंगे उतना ही मासपेशियो को बल लगाना पडेगा जिससे आँखें कमजोर हो जायेंगी तथा दृष्टि म अनेक दोष उत्पन्न हो जायेंगे।

अन्य कारण—(१) महीन तथा छोटे अक्षरों की पुस्तकें पढ़ने से, बारीक सिलाई-कढ़ाई करने से आँखों की मांसपेशियों पर जोर पड़ता है, जिससे नेत्रों में दोष उत्पन्न हो जाता है। आँखों में दर्द उत्पन्न होने लगता है।

(२) कक्षा गृह में यदि उचित प्रकार से प्रकाश के आने की व्यवस्था नहीं है, तो इस रोग के होने की सम्भावना रहती है। प्रकाश के अभाव में छात्रों को पुस्तक आँख के पास लाकर पढ़नी पड़ती है। दूसरे, अनुचित डेस्क तथा अनुचित आसन भी इस रोग के जनक होते हैं। जब कभी नेत्रों की मांस पेशियों पर बल अधिक पड़ने से सूजन आ जाती है, तब इस दशा में नेत्र गोलक के निकट रक्त दूषित होकर उसे फैला देता है।

(३) अत्यधिक सिनेमा देखना भी इस रोग का कारण होता है। मुख्यतया वे छात्र जो सस्ते टिकिट लेकर परदे के पास बैठकर सिनेमा देखते हैं, जिससे आँखों की मांसपेशियों पर अत्यधिक जोर पड़ता है। फलत वे धीरे धीरे निर्बल होती चली जाती हैं।

अध्यापक का कर्त्तव्य

अध्यापक को चाहिए कि वह निकट दृष्टि-रोग से पीड़ित छात्रों पर विशेष रूप से ध्यान दे। उसे देखना है कि बालक कक्षा में ठीक प्रकार से बैठकर पढ़ते लिखते हैं या नहीं। छात्रों के बैठकर पढ़ने के आसनों पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय। जहाँ तक हो सके, बैठने में उचित आसन का प्रयोग करने पर बल दिया जाय तथा पढ़ते समय छात्र पुस्तक को बिल्कुल आँख से सटा कर न पढ़ें। पुस्तकों की छपाई भी अधिक महीन न हो।

जो छात्र निकट दृष्टि-दोष से पीड़ित हैं तथा जिनकी आँखें सूजी रहती हैं पुतली आगे की ओर उभरी रहती है आँखों से पानी निकला करता है, उन छात्रों को कक्षा में आगे की पंक्ति में बैठाया जाय। जहाँ तक सम्भव हो, शीघ्र से शीघ्र उनका डॉक्टरी निरीक्षण कराया जाय। डॉक्टर जिस लेंस के चश्मे की राय दे, उसका प्रयोग छात्रों से शीघ्र से शीघ्र करवाने का प्रयत्न किया जाय। चश्मे के प्रयोग के लिए अभिभावकों को भी प्रेरित किया जाय।

कक्षा के अन्दर उचित मात्रा में प्रकाश आ सके, इसके लिए पर्याप्त मात्रा में रोशनदान तथा खिड़कियों की व्यवस्था की जाय।

२—दूर दृष्टि दोष (Long sight or Hypermetropia)—इस रोग का प्रमुख कारण नेत्र गोलक का अत्यधिक छोटा होना या चपटा होना है। इसमें वस्तु का प्रतिबिम्ब अन्त पटल पर पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं बन पाता। दूर रखी वस्तु से जो किरणें आती हैं वे अन्त पटल के पीछे केन्द्रित होती हैं। फलत अन्त पटल पर बना प्रतिबिम्ब धुँधला होता है। अन्त पटल पर प्रतिबिम्ब को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है कि आँखों के समक्ष उन्नतोदर ताल (Convex Lens) का चश्मा लगाया जाय।

रोग के लक्षण—इस रोग का बालक पुस्तक को दूर रखकर पढता है। उसकी आँखो की पुतली कुछ छोटी और कुछ अन्दर की ओर धँसी हुई होती है। प्राय सिर म दद रहता है। आखो मे लाली छाई रहती है तथा पानी बहा करता है।

जसा कि हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, यह रोग उन्नतोदर (Convex) ग्लास का चश्मा लगाने से ठीक हो जाता है।

३—ऐंची आख (Squint)—जब आँखो की बाह्य चेष्टा से सम्बन्धित मासपेशिया शिथिल पड जाती हैं तथा मस्तिष्क का नियन्त्रण दृष्टि-यन्त्र पर नही रहता तब यह रोग होता है। रोगी अपनी दोनो आँखो से एक ओर नही देख पाता। इसमे एक आख का प्रयोग दूसरी आँख की अपेक्षा अधिक किया जाता है। जब कभी आँख की आडी मासपेशियो को लकवा मार जाता है, तब भी यह रोग हो जाता है। कुछ बालको को यह रोग अपने माता पिता से धरोहर के रूप मे भी मिलता है। इस रोग के बालक को तुरन्त डाक्टर को दिखाया जाय।

४—असम दृष्टि दोष (Astigmatism)—इस रोग के अन्दर आंशिक प्रतिबिम्ब अन्त नेत्र पटल पर बनता है। प्रतिबिम्ब के अस्पष्ट होने का कारण है—कनीनिका की तान पर असमतल बनता। चूँकि कनीनिका के विभिन्न व्यास एक से नहीं होते, अत अन्त पटल पर बना प्रतिबिम्ब पूर्ण नही बनता, उसका कुछ भाग आगे या पीछे बनता है। इस रोग के अन्दर आँख का एक भाग दूर दृष्टि के रोग से पीड़ित रहता है तथा दूसरा भाग निकट दृष्टि से।

लक्षण—रोगी छात्र के सिर मे प्राय दद रहता है, वह प्राय अपनी आखें मला करता है और उसे वस्तुएँ अस्पष्ट दिखाई देती हैं। रोगी को किसी वस्तु को देखने के लिए मासपेशियो पर बल डालना पडता है जिससे कि नेत्र गोलक स्थान पर आ जाय। फलस्वरूप रोगी के सिर मे दद बना रहता है।

उपचार—रोगी छात्र को 'Compound Lens' के चश्मे का प्रयोग करना चाहिए। यदि नियमित रूप मे इसका प्रयोग किया जाय तो असमतल दोष स्वत दूर हो जायगा।

उपर्युक्त नेत्र-सम्बन्धी रोगो के अतिरिक्त अन्धापन भी नेत्र सम्बन्धी रोग है। इस रोग के प्रमुख कारण—जन्मजात मोतिया बिन्द तथा जन्मजात गर्मी आदि होते हैं। कुछ बालक पूर्ण रूप से अन्धे नही होते, उन्हे अर्द्ध अन्धो की श्रेणी मे रखा जाता है। अर्द्ध अन्धे थोडा बहुत लिख-पढ सकते हैं, यदि उन्हे निकट-दृष्टि वाले बालको के साथ बैठकर सावधानी से पढाया जाय।

नेत्र के बाह्य रोग—यहाँ हम नेत्रो के सामान्य रोगो का उल्लेख करेंगे—

(क) रोहे (Granules)—आँखो का यह आम प्रचलित रोग है। इस रोग के अन्दर पलको म दानो की तरह के रोहे हो जाते हैं, फलत पलको मे मोटापन आ जाता है और आँखों का स्वरूप बिगड जाता है। रोगी प्रकाश मे चुँधिया चुँधिया

कर देखता है। आखो मे हल्का हल्का दर्द उठा करता है। पसिलिन का मरहम इसमे अत्यन्त लाभदायक रहता है। जहाँ तक हो सके, डॉक्टर से तुरन्त सलाह लेनी चाहिए।

(ख) आँखो का दुखना (Sore Eyes)--यह रोग भी हमारे देश म आम तौर पर प्रचलित है। गर्मी तथा सर्दी के कारण आखो की पलको म सूजन आ जाती है। आखें अन्दर से पूणतया लाल हो जाती हैं। आँखा से कीचड निकलने लगता है जोकि रात के समय पलको पर जम जाता है, जिससे प्रात रोगी को पलक खोलते समय असुविधा का अनुभव होता है। यह रोग मुख्यतया निधन तथा गन्दे बालकों को हुआ करता है। अक्सर बालक अपने गन्दे हाथो से आखे मला करते हैं जिससे आखो के अन्दर कीटाणु प्रवेश करके उन्हे विषैला बना देते हैं।

दुखती आखो की सफाई पर विशेष रूप से ध्यान रखा जाय। कीटाणु नाशक मरहम इसमे विशेष रूप से लाभदायक होता है। गुलाब जल तथा फिटकरी से भी आख धोने से पर्याप्त आराम मिलता है, आख का पैसलिन ओयण्टमेण्ट भी लाभ पहुचाता है। यदि आखे बार बार दुखती हो तो डाक्टर को दिखाया जाय।

(ग) मोतियाबिन्द (Cataract)—इस रोग के अन्दर अन्त पटल पर एक झिल्ली का आवरण सा छा जाता है जिससे नेत्रो की ताल की पारदर्शकता समाप्त हो जाती है। फलत रोगी को कुछ नही दिखाई देता, यह रोग कभी कभी धीरे धीरे फैलता है। आखो मे साधारण चोट लग जाने से या लम्बी बीमारी से भी यह रोग हो जाया करता है। कभी कभी यह रोग माता पिता से पैतृक सम्पत्ति के रूप म भी मिलता है। इस रोग के उपचार के लिए आपरेशन द्वारा ताल निकलवा दिया जाय और उसकी जगह कृत्रिम ताल का प्रयोग किया जाय।

(घ) फुल्ली (Keratits)—इस रोग मे कनीनिका के सिरा की ओर सफेद रग के फफोले से पड जाते हैं। रोगी आखा मे दर्द का अनुभव करता है। फफोलो के अधिक बढ जाने से दृष्टि भी चले जाने का भय रहता है। रोग का कारण—असन्तुलित भोजन तथा मुख से सास लेना है। अत रोगी बालक का पौष्टिक भोजन न दिया जाय। प्राकृतिक कृत्रिम सूर्य की किरणा द्वारा इसका उपचार अत्यन्त लाभदायक होता है। विद्यालय के वातावरण को हवादार तथा स्वास्थ्यवर्द्धक बनाया जाय।

(ङ) गुहेरी (Stye)—जब पलका का वसा ग्रन्थियो (Meibomian Glands) म सूजन आ जाती है तो हमारी आख के पास एक छोटी सी फुन्सी सी उठ आती है जिसे गुहेरी कहा जाता है। यह आँखा मे गन्दे हाथ लगाने और आँख पोछने म गन्दे कपडे का प्रयोग करने तथा आँखा का बार-बार मलने से हो जाया करती है। कभी कभी पेट की खराबी भी इसका कारण हो जाया करती है।

यह रोग कोई विशेष हानिकारक नही है, प्राय स्वय ठीक हो जाता है। सिन्दूर का मन म मिलाकर लगाने म लाभ होता है। साग पिसकर लगाने म भी

आराम मिलता है। परन्तु रोगी को गुहेरी को बार-बार मलना नही चाहिए। यथा सम्भव पर साफ रखा जाय।

(च) रतौंधी (Xerophthalmia)—इस रोग का कारण विटेमिन 'ए' का अभाव है। रोगी तीव्र प्रकाश म अच्छी तरह से देख सकता है परन्तु प्रकाश के अभाव म उसे कुछ नही दिखाई देता। रोगी टटोल टटोल कर प्रत्येक वस्तु को देखता है।

रोगी क भोजन के प्रति विशेष ध्यान दिया जाय। अधिकतर वे पदार्थ दिये जाय जिनम विटामिन 'ए' की मात्रा अधिक हो। दूध, अण्डे, मक्खन तथा मछली के तेल का प्रयोग किया जाय।

साराश

नेत्र का हमारे शरीर म विशेष स्थान है। सम्पूर्ण ससार का प्रत्यक्ष ज्ञान हमको नेत्रो द्वारा ही होता है।

नेत्र की बनावट—दाएँ बाएँ गढ्ढे म नेत्र गोलक स्थित रहते है। नेत्र गोलक की रक्षा के लिए पलकें होती है। दोनो पलको मे अश्रु ग्रन्थियां होती है जो बाहर से गिरने वाली वस्तु को बाहर निकाल देती हैं। मिबोमियन ग्रन्थियाँ बरौनियो की जड़ म पलको को स्थित रखती हैं। य एक चिकना तरल पदार्थ उत्पन्न करती है।

नेत्र गोलक को मासपेशियां साधे रहती है। नेत्र-गोलक का आगे का भाग ऊपर की ओर उठा रहता है। इसका निर्माण निम्नांकित तीन तहो के द्वारा होता है—

(१) स्वेत पटल, (२) मध्य पटल, (३) अन्त पटल।

दृष्टि दोष—जब किसी वस्तु से नेत्रो मे प्रवेश करती हुई प्रकाश किरणे उचित स्थान पर केन्द्रीभूत नही होती तो दृष्टि-दोष उत्पन्न हो जाता है। दृष्टि-दोष निम्न होते हैं—

(१) निकट दृष्टि दोष (२) दूर दृष्टि दोष
(३) ऍंची आँखे (४) असम दृष्टि दोष।

नेत्र के बाह्य रोग

(क) रोहे (ख) आँखो का दुखना
(ग) मोतियाबिन्द (घ) फुल्ली
(ङ) गुहेरी (च) रतौंधी।

१२

कर्ण—श्रवण-शक्ति

EAR—THE HEARING POWER

Q Describe with the help of a diagram how the human ear functions What should be done to keep the ear in a healthy condition ? (L T, 1959)

प्रश्न—चित्र की सहायता से बताइये कि मनुष्य का कान किस प्रकार काय करता है ? कानों को स्वस्थ रखने के लिए क्या करना चाहिए ? (एल० टी०, १९५९)

Or

How would you detect cases of 'Partial Deafness' in your class ? What steps would you take about them ? (B T, 1953)

आप अपनी कक्षा में बधिरता के रोगियों का कैसे पता लगायेंगे ? इस दिशा में आप क्या क्या पग उठायेंगे ? (बी० टी०, १९५३)

उत्तर—आखो के समान कानो का हमारे जीवन मे अत्यधिक महत्व है। अध्यापक द्वारा बताई गई प्र येक बात तथा आदेश, बालक कानो के द्वारा ही सुनता है। कानो का प्रमुख काय—शब्द तरगो को एकत्र करके मस्तिष्क तक पहुचाना है। कान को तीन भागो मे विभाजित किया जाता है—

१—बाह्य कण (The Outer Ear)

२—मध्य कण (The Middle Ear)

३—अ तस्थ कण (The Internal Ear)

१—बाह्य कण (Outer Ear)—बाह्य कण कोमल अस्थियिा द्वारा निर्मित है। आकार म यह सीपी के समान है। यही से श्रवण-नलिका (Auditory Canal) का आरम्भ होता है। इस नली की लम्बाई लगभग १½ इच की होती है जिसके अ दर मुलायम झिल्ली (Membrane) का परदा (Drum) लगा रहता है। इसके उपर छोट छोट बाल उगे रहते हैं तथा कुछ ग्र थियां भी रहती हैं, जिनसे एक मोम के समान तरल पदाथ निकलता रहता है जो साधारण बोलचाल म 'कान'

का 'मल' (Ear Wax) कहकर पुकारा जाता है। यदि कान की नियमित रूप से सफाई न की जाय तो मैल की तह की तह जमती चली जाती हैं। इस तरह पदार्थ का प्रमुख कार्य बाहर के आने वाले धूल-कणों को अन्दर जाने से रोकना है। श्रवण-नलिका का आन्तरिक भाग एक पतली वृत्ताकार झिल्ली द्वारा बन्द होता है जिसे 'कर्ण पटल' (Ear Drum) कहकर पुकारा जाता है। कर्ण पटल, बाह्य कर्ण को मध्य कर्ण से अलग करता है।

(कर्ण)
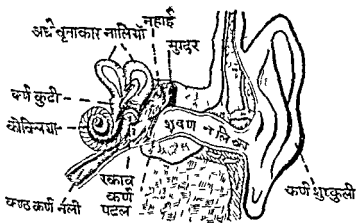
२—मध्य कर्ण (Middle Ear)—मध्य कर्ण शंखास्थित के भीतर रिक्त स्थान है। इसके अन्दर श्लैष्मिक कला का अस्तर रहता है। यह रिक्त स्थान वायु से भरा रहता है। इसके भीतर की ओर एक तंग नली होती है जिसे कंठ कर्ण-नली (Eustachian) कहते हैं जोकि कण्ठ से मिली रहती है। इस नली के कारण मध्य कर्ण का सम्बन्ध बाहर की वायु से साथ रहता है तथा कर्ण-पटल के चारों ओर वायु का दबाव एक सा रहता है। जब कभी अचानक धमाके का शब्द होता है तो कान के अन्दर की वायु कण्ठ की तरफ चली जाती है और कर्ण पटल को फटने से बचा लेती है। कण्ठ की सूजन इस नली से होकर मध्य कर्ण तक जा सकती है। गला खराब होने पर कान में दर्द हो सकता है अतः गले की सूजन (टॉन्सिलस) का तुरन्त इलाज कराया जाय, नहीं तो उसका प्रभाव कानों पर भी पड़ेगा। मध्य कर्ण के अन्दर तीन अस्थियाँ होती हैं जो आपस में प्रबन्धना (Ligament) द्वारा बँधी रहती हैं। इन अस्थियों का कार्य—शब्द तरंगों से कर्ण पटल में जो कम्पन होता है, उसे अन्तस्थ कर्ण तक पहुँचाना है। यदि किसी प्रकार गले के रोगाणु इन अस्थियों के प्रबन्धनों तक पहुँच जाते हैं तथा उन्हें नष्ट कर देते हैं तो व्यक्ति सदा के लिए बहरा हो जाता है। इन अस्थियों को 'मुग्दरास्थि' (Hammer), 'नेहाई' (Anvil) तथा 'रकाब' (Stirrup) के नाम से पुकारते हैं।

३—अन्तस्थ कर्ण (Internal Ear)—अन्तस्थ कर्ण की रचना अत्यन्त जटिल है। अपनी जटिलता और विचित्रता के कारण यह घोंघा कर्ण भी कहलाता है। कनपटी की अस्थि के अन्दर यह स्थित है। इसमें एक बन्द झिल्ली की बनी होती है जिसमें 'एण्डोलिम्फ' (Endolymph) नामक तरल पदार्थ भरा रहता है। झिल्ली की थैली को झिल्लीय गहन' (Membraneous Labyrinth) के नाम पुकारा जाता है। यह थैली श्रवणेन्द्रिय का प्रमुख भाग है। इसके तीन भाग हैं —

(१) कर्ण कुटीर (Vestibule)
(२) कोकलिया (Chochlea)
(३) अर्द्ध चन्द्राकार नलियाँ (Semi-circular Canals)

१—कर्ण कुटीर (Vastibule)—कर्ण कुटीर के आगे की तरफ शंखाकार कोकलिया तथा पीछे की ओर अर्द्ध चन्द्राकार नलियाँ रहती हैं। यह अन्तस्थ कर्ण के भीतर एक केन्द्रीय गर्त की रचना करती है। इसकी प्राचीर (दीवार) में अण्डाकार छिद्र रहता है जिसके मुख पर रकाबास्थि का चौड़ा भाग लगा रहता है। यह अण्डाकार छिद्र एक झिल्ली से ढका रहता है।

२—कोकलिया (Chochlea)—इसके अन्दर श्रवण नाड़ी (Auditory Nerve) के सिरे होते हैं जिनका कार्य कान को मस्तिष्क में श्रवण केन्द्र से सम्बन्धित करना है। कोकलिया आकार में घोंघे के समान होती है। इसकी स्थिति कर्ण कुटीर के निचले भाग में आगे की ओर है।

३—अर्द्ध-चन्द्राकार नलियाँ (Semi circular Canals)—ये कर्ण-कुटीर के पिछले तथा ऊपर के सिरे से निकलती हैं। ये लघु मस्तिष्क को जाने वाली नाड़ियाँ हैं। संख्या में ये तीन होती हैं। ये भिन्न भिन्न तलों में रहती हुई आपस में समकोण बनाती हैं तथा कर्ण कुटीर के साथ पाँच छिद्रों द्वारा जुड़ी रहती हैं। श्रवण से सम्बन्धित न होकर इनका कार्य शरीर का सन्तुलन बनाये रखना है।

श्रवण क्रिया—हमारे बोलने से वायु कम्पित होती है तथा शब्द-तरंगें चारों ओर फैल जाती हैं। शब्द तरंगें वायु में उसी प्रकार उठकर फैलती हैं। जिस प्रकार कि तालाब में बीचोबीच पत्थर फेंकने पर लहरें एक जगह से उठकर चारों ओर फैल जाती हैं। ये शब्द तरंगें वाह्य कर्ण में एकत्र होकर श्रवण नलिका में प्रवेश करती हैं और कर्ण पटल से जाकर टकराती हैं जिससे वाह्य पर्दे में कम्पन हो जाता है। इस कम्पन के मध्य कर्ण की अस्थियों तथा आन्तरिक पर्दे में भी कम्पन होता है। इसके पश्चात् अन्तस्थ कर्ण (Inner Ear) का तरल पदार्थ कम्पित होने लगता है जिससे श्रवण नाड़ी के समस्त सिरे प्रभावित हो जाते हैं। यह प्रभाव ही मस्तिष्क में पहुँच कर शब्द ज्ञान उत्पन्न करता है।

कानों का बहरापन Deafness

बहरापन दृष्टि-दोष की अपेक्षा कम प्रचलित है। यदि बालक को कान से सुनाई नहीं पड़े तो उसे अध्ययन करने में बड़ी असुविधा रहती है। वह अपने

अध्यापक के मौखिक शिक्षण का तनिक भी लाभ नही उठा सकता। बहरे बालकों को हम निम्न श्रेणियो मे विभाजित कर सकते हैं

१—गूँगे तथा बहरे—ये जन्मजात होते हैं। पूर्णतया बहरे होते है।

२—अर्द्ध गूँगे—इस श्रेणी मे वे बालक आते हैं जो अपने शैशव मे ही बहरे हो जाते हैं। ये नाम मात्र को सुन लेते हैं।

३—बहरे—ऐसे बालक बोलना सीखने के पश्चात् बहरे हो जाते है। इन्हें 'वाक् प्रणाली' (Speech Method) द्वारा सरलता से प्रशिक्षित किया जा सकता है।

४—अल्प बहरे—इस प्रकार के बालक जोर से बोलने पर ही सुन सकते हैं। साधारण बोलचाल के शब्द उन्हें सुनाई नही देते।

बहरेपन के कारण (Causes of Deafness)—

१—कुछ बालक यह रोग माँ-बाप से लेकर पैदा होते हैं।

२—एन्नाइडज (Adenoids) या टान्सिल (Tonsils) के हो जाने से नाक का पृष्ठ भाग अवरुद्ध हो जाता है। अत नाक से सास लेने मे कठिनाई होने के कारण बालक मुख से सास लेने लगता है। परिणामस्वरूप कण्ठ नली के भाग मे सूजन आ जाती है जो कि बहरेपन का प्रमुख कारण है।

३—छूत के अनेक रोग भी बहरेपन के कारण होते हैं। कुकर खासी, खसरा, इन्फ्लूएंजा तथा निमोनिया आदि रोगों मे प्राय गला खराब हो जाता है। गले का विष कंठ कर्ण नली के द्वारा मध्य कर्ण तक पहुँच जाता है जिससे कान बहने लगता है। रोग का निदान ठीक प्रकार न होने पर बहरापन आ जाता है। जब कभी यह विष कर्ण और मस्तिष्क से सम्बन्धित अस्थि तक चला जाता है तो अस्थि गलने लगती है और मस्तिष्क तक भी विष पहुच कर उसे गला देता है।

४—जब कभी कोई बाहरी वस्तु से कर्ण पटल पर चोट लग जाती है तो बालक बहरा हो जाता है।

५—कान की सफाई ठीक प्रकार से न करने पर कान के पर्दे पर मैल जम हो जाता है, परिणामस्वरूप बालक ऊँचा सुनने लगता है। अत कान की सफाई की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय।

६—मस्तिष्क की झिल्ली मे सूजन आ जाने पर कान बहरे हो जाते हैं।

बहरेपन के लक्षण (Symptoms of Deafness)—

१—कर्णदोष से पीडित बालक प्राय मुख से श्वास लेते हैं।

२—कान निरन्तर बहते रहते हैं।

३—सिर मे दर्द रहता है।

४—यदि बालक अध्यापक का मुख नही देख पाता तो वह अध्यापक की बात भी नही सुन पाता।

५—किसी बात को सुनने के लिए बालक अपने कान को आगे की ओर झुका देता है।

६—कानो के अदर भनभनाहट रहती है।

७—बालक एकाग्र होकर नही पढता।

८—मानसिक विकारो का उत्पन्न होना भी एक लक्षण है।

कानों की सुरक्षा (Safety of Ears)—

१—कानो की निरन्तर सफाई की जाय। मास मे एक या दो बार हल्का गम कडवा तेल कान मे डाला जाय।

२—माता पिता तथा अध्यापक को चाहिए कि वे बालक का कान म सींक या सलाई न डालने दें।

३—गले की स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया जाय। ऊपर हम बता चुके हैं कि गले मे खराबी आने पर रोग के कीटाणु कणनली द्वारा मध्य कण तक पहुच जाते हैं। इस प्रकार कान म अनेक रोग उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। अत गले के टॉसिल आदि बढने पर तुरन्त इलाज कराया जाय।

४—कान का जब बहना आरम्भ हो तो तुरन्त ही उसका इलाज किया जाय।

५—अध्यापक को चाहिए कि वह बालक के कान पर कभी भी कसकर घूँसा या थप्पड न मारे। इससे कान के पर्दे के फटने की सम्भावना रहती है।

६—बालको को नाक द्वारा सांस लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाय।

७—कान मे किसी प्रकार का दद होने पर उसका उपचार किया जाय। रोग का प्रथम अवस्था मे उपचार शीघ्रता से हो जाता है।

श्रवण दोषयुक्त बालकों की शिक्षा

इस रोग से पीडित बालको की शिक्षा पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय। जहा तक हो सके, विशेष स्कूलो मे ही भेजा जाय, जहाँ विशेषज्ञो द्वारा बहरों की शिक्षा का उचित प्रबध रहता है। परन्तु देश मे निधनता के कारण विशेष स्कूलों की सख्या बहुत कम है। अत साधारण विद्यालयो मे अद्ध बहरों को शिक्षा देते समय कुछ विशेष बातो पर अवश्य ध्यान दिया जाय। अद्ध बहरे बालको को आगे की पक्तियो म बैठाया जाय। जहा तक हो सके, कक्षा मे छात्रो की सख्या कम हो जिसम इस प्रकार के छात्रो पर विशेष रूप से ध्यान दिया जा सके। कक्षा म अध्यापक अपनी आवाज को ऊँचा करके बोले। परन्तु यह सब कम सुनने वाले छात्रो के लिए ही हो सकता है। पूर्ण बहरे तथा अद्ध बहरे छात्रो को तो गूँगे-बहरे छात्रो के स्कूल (School for Deaf and Dumb) म ही भेजा जाय।

साराश

आँखो के समान कानो का हमारे जीवन मे बडा महत्त्व है। कानो का प्रमुख

काय—शब्द तरंगों को एकत्र कर मस्तिष्क तक पहुंचाना है। कान के निम्न विभाग हैं—

(१) वाह्य कर्ण (Outer Ear)
(२) मध्य कर्ण (Minddle Ear)
(३) अन्तस्थ कर्ण (Internal Ear)

श्रवण क्रिया—शब्द-तरंगें वाह्य कर्ण में एकत्र होकर श्रवण-नलिका में प्रवेश करती हैं और कर्ण पटल में जाकर टकराती हैं जिससे वाह्य परद तथा मध्य कर्ण की अस्थियों में कम्पन होता है जिसके परिणामस्वरूप अन्तस्थ कर्ण का तरल पदार्थ कम्पित होकर श्रवण नाड़ियों को प्रभावित करता है। यह प्रभाव ही मस्तिष्क में पहुंच कर शब्द ज्ञान उत्पन्न करता है।

कानों का बहरापन—बहरेपन से बालक को अध्ययन में बड़ी असुविधा होती है। बहरे बालकों को हम निम्न श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) गूंगे तथा बहरे (३) बहरे
(२) अर्द्ध गूंगे (४) अल्प बहरे।

बहरेपन के कारण

१ यह रोग पैतृक भी होता है।
२ एडनाइड्ज या टॉन्सिल्स का होना।
३ कुकर खांसी, खसरा, इनफ्लूएँजा तथा निमोनिया भी कारण हो सकते हैं।
४ कर्ण-पटल पर बाहरी चोट का लगना।
५ कान की सफाई न होने से भी यह रोग हो जाता है।
६ मस्तिष्क की झिल्ली में सूजन भी इसका कारण हो सकता है।

कानों की सुरक्षा

१ कानों की नित्य सफाई हो। हल्का गर्म तेल डाला जाय।
२ कान में सीक न डालने दी जाय।
३ गले की स्वच्छता पर विशेष बल दिया जाय।
४ बहते कान का इलाज किया जाय।
५ कान पर चाँटे न मारे जाएँ।
६ सांस नाक द्वारा ही ली जाय।
७ कान के दर्द का तुरन्त इलाज किया जाय।

श्रवण दोषयुक्त बालकों की शिक्षा—बहरे बालकों के लिए विशेष शिक्षा का आयोजन किया जाय। उन्हें कक्षा में आगे बैठाया जाय।

शारीरिक आसन
POSTURES

Q What are the causes of incorrect postures and what bodily deformities result from them? What measures would you adopt to prevent and remedy? (B T, 1951)

प्रश्न—विद्यालय के बालकों के आसन सम्बन्धी विभिन्न दोषों का वर्णन कीजिये तथा उनके कारणों एवं निराकरण के उपायों का विवेचन कीजिए। (बी० टी०, १९५१)

Or

What are the causes of incorrect postures and what bodily deformities result from them? What measures would you adopt to prevent and remedy them? (A U, B T, 1958)

अनुचित आसनों के क्या कारण हैं? तथा दोषपूर्ण आसनों के कारण छात्रों के शरीर में कौन से दोष उत्पन्न हो जाते हैं? इन दोषों को रोकने तथा निराकरण के लिए आप किन उपायों को प्रयोग में लायेंगे? (बी० टी०, १९५८)

उत्तर—कक्षा में बैठे छात्रों के आसन का ध्यान अध्यापक को सदा रखना चाहिए। प्राय छात्र कक्षा में अशुद्ध आसन से बैठते हैं। उचित आसन से हमारा तात्पर्य शरीर के इस प्रकार सधे रहने से है कि शरीर को कम से कम थकान का अनुभव हो। जी० पी० टेरी ने अपनी पुस्तक में उचित आसन की व्याख्या की है, "उचित आसन वह है जिसमें मनुष्य अपने शरीर को साधने में किसी प्रकार के प्रयत्न का अनुभव नहीं करता और उसके शरीर का भार दोनों पैरों पर सन्तुलित रूप से सधा रहता है जिससे कम से कम थकान अनुभव होती है। धड़ की धुरी, सिर और गर्दन एक लम्बी रेखा (Vertical Line) के समानान्तर होती है और शरीर के अंग सुचारु, सम तथा परस्पर सहयोग में एक लय होकर बिना किसी प्रयत्न और

थकान से सचालित होते हैं। पीठ के स्वाभाविक मोड गहरे या अधिक झुके तथा मुडे हुए नही होते।" Avery के अनुसार उक्त आसन का अर्थ है, 'Good posture is one in which the body is so balanced as to produce least fatigue' इस प्रकार हम देखते हैं कि उचित आसन मे शरीर के समस्त अग उचित रूप से काम करते हैं तथा बालक के स्वास्थ्य और आत्म विश्वास मे दृढता आ जाती है।

इसके विपरीत अनुचित आसन के अन्दर बालक को थकावट, उदासीनता, तथा अस्वस्थता का अनुभव होता है। बच्चो की अस्थियाँ कोमल होती हैं, अत अनुचित आसन द्वारा उनमे विकार उत्पन्न होने का भय रहता है। धँसी कमर (Hollow Back), चपटे पैर (Flat Foot) झुके कधे (Round Shoulders) आदि अनुचित आसन का ही परिणाम है।

अनुचित आसनों के कारण

बालक अनुचित आसनो का प्रयोग प्राय घर और विद्यालय—दोनो जगह करते हैं। अत हम घर के तथा विद्यालय—दोनो जगह के कारणो पर विचार करेंगे —

(क) घर के कारण—१—अधिकाशतया घरो का वातावरण अत्यन्त दूषित होता है। कमरे मे प्रकाश का अभाव छात्रों को झुककर पढने के लिए मजबूर करता है।

२—पौष्टिक एव सतुलित भोजन का न मिलना भी अनुचित आसन का कारण होता है, क्योकि सतुलित भोजन के अभाव मे बालक का शारीरिक विकास नही हो पाता, वह थोडे से काम मे ही थकावट का अनुभव करने लगता है अत बैठते उठते, पढते लिखते वह शरीर को झुका कर बैठता है।

३—अनुचित तथा भारी वस्त्रो को पहनने से बालको के कन्धे आगे की ओर झुक जाते हैं। बालक बोझे के कारण झुककर बैठता है।

४—घर पर अनुचित ढग से व्यायाम करना भी एक कारण है।

५—आवश्यकतानुसार नीद तथा आराम के न मिलने से बालक अनुचित आसनो का प्रयोग स्वत करने लगता है।

६—आजकल शरीर को झुकाकर चलना एक प्रकार का फैशन हो गया है। छात्र एक-दूसरे की नकल मे अपने शरीर को झुकाकर चलते हैं, इससे उन्हे खडे होने तथा बैठने के अनुचित आसनो का प्रयोग करने का अभ्यास हो गया है।

७—घर पर बालको को कभी-कभी पर्याप्त काल तक एक सा ही काम करना पडता है, परिणामस्वरूप वे थक जाते हैं तथा अपने शरीर का बोझा शरीर

के कम थकने वाले अगो पर डाल देते हैं। इस प्रकार वे अनुचित आसनो के अभ्यस्त हो जाते हैं।

८—आखो और कानो म दोष उत्पन्न हो जाने पर भी बालक को एक ओर भुककर सुनने तथा देखने का प्रयत्न करना पडता है। यह भी अनुचित आसन का एक कारण होता है।

(ख) **स्कूल में उत्पन्न होने वाले कारण**—१—कक्षाओ म सूरज के प्रकाश का उचित प्रकार से प्रब ध न होने से छात्रा को भुककर लिखना पडता है। जिसस उन्ह अनुचित आसना की आदत पड जाती है।

२—कक्षा मे छात्रा के कद के अनुसार डेस्को का न होना भी अनुचित आसनो का प्रमुख कारण है, क्योंकि छात्रो को भुककर लिखना तथा पढना पडता है।

३—यदि कक्षा म छात्र अनुचित आसनो से बैठते हैं और अध्यापक उनके बैठने के ढग पर ध्यान नहीं देते तब भी अनुचित आसनो का छात्रा को अभ्यास हो जाता है।

४—विद्यालय मे छात्रो की थकान तथा मनोरजन का ध्यान न रखना।

५—अधिकाश छात्र एक ही कन्धे पर पुस्तकें या बस्ता लाद कर लाते हैं। इससे एक ओर का कन्धा आगे को भुक जाता है।

६—लगातार लिखित काय करने से छात्र थक जाते हैं और वे अपने शरीर को एक ओर भुकाकर बठते हैं।

उपयुक्त दोषो का निराकरण

१—बालक के घर का वातावरण स्वास्थ्यप्रद होना चाहिए। समस्त कमरो मे प्रकाश के आने जाने का उचित प्रबन्ध हो। विद्यालय के अन्दर भी कक्षाओं म पर्याप्त सख्या म दरवाजे तथा खिडकियाँ हो। पर्याप्त मात्रा म वायु न आने से छात्रों के अन्दर सुस्ती आ जाती है और वे लापरवाही से एक ओर को भुककर बैठते हैं। प्रकाश का प्रबन्ध सबसे मुख्य है, क्योंकि इसके अभाव मे छात्रो को भुककर लिखना व पढना पडता है।

२—कक्षा म उपयुक्त फर्नीचर का प्रब ध होना चाहिए। डेस्क तथा कुर्सियाँ छात्रो की आयु तथा कद के अनुकूल हो।

३—छात्रो को उचित मात्रा म सतुलित तथा पौष्टिक भोजन प्रदान किया जाय। जिससे वे शरीर म शक्ति का अनुभव करें तथा उन्हे उचित आसन अपनाने म किसी प्रकार की असुविधा न हो।

४—अध्यापक का कत्तव्य है कि वह कक्षा म छात्रा का उचित आसन अपनाने के लिए प्रोत्साहित करता रहे। जो छात्र अनुचित आसना के अभ्यस्त है उन्हे बार बार टोका जाय।

५—विद्यालय मे छात्रो को उचित रीति से व्यायाम करने का अभ्यास डलवाया जाय।

६—कण दोष तथा नेत्र दोष वाले छात्रो को कक्षा के अन्दर सबसे आगे वाली पंक्ति म बैठाना चाहिए।

७—थकान उत्पन्न करने वाली परिस्थितियो का पता लगाकर जहाँ तक हो सके उन्ह दूर किया जाय। विद्यालय म छात्रो के लिए मनोरंजन का भी प्रबन्ध हो। यथासम्भव ढीने वस्त्र पहने जाएँ।

८—वस्त्र भारी तथा तग न हों, जिसस बालक को उठने बैठने म असुविधा हो।

९—छात्रो को एक स्थान पर निरन्तर एक ही आसन से नही बैठा रहने देना चाहिए। स्थान तथा आसन मे परिवतन होता रह।

१०—छात्रो के अभिभावको को भी उचित आसनो के महत्त्व को समभाया जाय जिसम वे बच्चो के आसनो पर ध्यान दे सकें।

११—इस प्रकार के व्यायाम कराये जाएँ जो आसन सम्बन्धी दोषो का निराकरण कर सकें।

१२—छोट बालको से थकान वाली कसरत तथा ड्रिल कराना पूणतया अनुचित है।

१३—छात्रो को कन्ध पर भारी बस्ता लेकर चलने से रोका जाय।

१४—छात्रो को उचित आसनों के महत्त्व के विषय म बताया जाय।

किस प्रकार बठना चाहिए, किस प्रकार लिखना चाहिए आदि सब बातें अध्यापक को छात्रा को बतानी चाहिए। नीचे हम उन स्थितियो पर विचार करेंगे जबकि छात्रो के आसन पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय—

(क) खडे रहने का उचित आसन (Correct Posture of Standing)— प्राय छात्र शरीर का भार एक पैर पर रखकर खडे होत हैं जिससे मरुदण्ड टेढा हो जाता है। वक्षस्थल भीतर की ओर धँस जाता है। श्वास लेन म असुविधा रहती है। अत खडे होने म शरीर का भार दोना पैरो पर समान रूप से रहना चाहिए। पैरा की एडिया इस प्रकार समतल भूमि पर रखी जाएँ कि पैरो की मासपेशिया पर किसी भी प्रकार का बल न पडे। सिर तथा कमर दोना सीधे रह। वक्षस्थल आवश्यकता से अधिक निकला हुआ न हो। हाथ भी सीध रह।

अध्यापक छात्रो को अधिक देर तक खडे रहने की कभी सजा न द। इस प्रकार की सजा अनुचित आसना की जनक होती है।

(अधिक समय तक खडे होने की दशा)

(अल्प समय तक खडे होने का ठीक आसन)

(खडे होने का गलत आसन)

(ख) बैठने का उचित आसन (Correct Posture of Sitting)—बैठने की स्थिति मे शरीर का सन्तुलन ठीक प्रकार से हो। मेरुदण्ड के अन्दर किसी प्रकार का टेढापन न हो। कटि प्रदेश बैठने के स्थल पर उचित प्रकार से स्थित रहे। सिर का भाग, कन्धे, नितम्ब—सब का एक सीध मे होना आवश्यक है। साथ ही दोनो भुजाओ का सन्तुलन ठीक रहे। दोनो जाँघें एक सीध म रहे तथा टाँगें पैरों पर लम्बवत् टिकी रहनी चाहिए।

(बैठने का गलत आसन) (बैठने का ठीक आसन)

जो छात्र कुर्सी पर बठते समय कुर्सी की कमर का सहारा नही लेते तथा पैर टेढ़े करके गदन तथा सिर भुकाकर बैठते है वे शीघ्र ही थक जाते है। शरीर के विभिन्न भाग आराम नही ले पाते और उनके फेफडे पर बुरा प्रभाव पडता है।

(ग) पढ़ते समय का उचित आसन (Correct Posture of Reading)—यदि पढते समय के आसन पर ध्यान न दिया गया तो आँखे खराब होने का भय
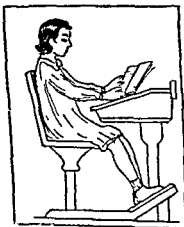
(पढने का उचित आसन) (पढ़ने का अनुचित आसन)

रहता है। अत पुस्तक पढ़ते समय कुर्सी पर ठीक ढग से बैठा जाय। पुस्तक को

आँख से ४५° का कोण बनाते हुए साधारणतया एक फुट की दूरी पर रखा जाय। जहाँ तक हो सके, बालकों को मोटे अक्षरों की पुस्तकें पढ़ने को दी जाय। पुस्तक को जहाँ तक बन सके, आँखों की सीध से बहुत नीचे नहीं रखना चाहिए। हाथों को डेस्क तथा उचित प्रकार से साधा जाय। सिर पूर्णतया सीधा रहे। पढ़ते समय धन डेस्क का प्रयोग किया जाय।

पढ़ते समय जो छात्र अनुचित आसन का प्रयोग करते हैं उनका वक्ष सिकुड़ जाता है श्वासोच्छ्वास अपूर्ण रहता है, रीढ़ की मांस-पेशियों में तनाव आ जाता है। बालक पुस्तक को आँख के पास लाकर पढ़ता है जिससे आँखें कमजोर हो जाती हैं।

(घ) लिखने का उचित आसन (Correct Posture of Writing)—लिखने के आसन पर भी विशेष रूप से ध्यान दिया जाय। प्राय बालक मेज पर सिर झुकाकर लिखते हैं। यह पूर्णतया हानिकारक ढंग है। कुर्सी का आंतरिक भाग डेस्क के आंतरिक भाग में घुसा हुआ हो। दूसरे शब्दों में, ऋण डेस्क (Minus Desk) का प्रयोग लिखने में सबसे अच्छा रहता है। लिखित कार्य आरम्भ करने से

(लिखने का ठीक ढंग)

(लिखने का गलत ढंग)

पूर्व बालक को अपने शरीर को एक सीध में संतुलित रखना चाहिए। कुर्सी पर जाँघें सीधी रहें तथा उनका निचला भाग लम्ब के रूप में रहना चाहिए। पैर फर्श पर टिके हों। बाएँ हाथ से कागज को सम्भाला जाय। हाथ को कोहनी के बल इस प्रकार रखना चाहिए कि जिससे हथेली प्रदर्शित होती रहे। आँखें कापी से लगभग एक फुट की दूरी पर रहें।

जो छात्र मेज पर झुककर लिखते हैं तथा टाँग लापरवाही से इधर उधर फेंककर कुर्सी पर बैठते हैं—उनका मेरुदण्ड झुक जाता है, वक्षस्थल अन्दर की ओर धँस जाता है तथा आँखें कमजोर पड़ जाती हैं। सिर दर्द, अपच, शक्ति की कमी

आदि—लिखते समय अनुचित आसन अपनाने का परिणाम है। अत लिखते समय निम्नलिखित बातो पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय।

(i) **कलम पकडने का ढग**—कलम को इस ढग से पकडा जाय कि वह अगूठे और अँगुली के गड्ढे म आ जाय तथा कलम का मुख कन्धे के बाहर की ओर रहे। लिखते समय हथेली स्पष्ट दिखाई देती रहे।

(ii) **कागज की स्थिति**—कागज को डेस्क के किनारो के समानान्तर रखा जाय, जिससे सीधी लिखावट आये। इस प्रकार कागज रखने से शरीर सधा भी रहता है तथा शरीर मे थकावट नही आती।

लिखने की शैली (Style of Writing)—लिखने की शैली दो प्रकार की होती है—(१) तिरछी लिखावट, (२) सीधी लिखावट।

१—तिरछी लिखावट (Slanting Hand writing)—इस प्रकार का लिखना दोषयुक्त है। इसमे कागज डेस्क के किनारो के समानान्तर नही रहता और उसे शरीर की दाँयी ओर कुछ तिरछा करके रखना पडता है। सिर तथा मेरुदण्ड बायी तरफ को झुक जाता है, जिससे दोनो आखें कापी से समान दूरी पर नही रह पाती। बालक की मास पेशियो पर दबाव पडता है, जिसके परिणामस्वरूप शीघ्र ही थकावट आ जाती है।

२—सीधी लिखावट (Vertical Hand-writing)—बालको को इसी ढग की आदत डलवाई जाय। यह सीधी लिखावट, लिखने का सबसे उत्तम ढग है। इस शैली को बालक सरलता के साथ ग्रहण कर लेता है। कागज मेज या डेस्क के किनारो के समानान्तर रहता है। अक्षर स्पष्ट, सुडौल तथा सीधे बनते हैं। कागज और आंखो का अन्तर भी अधिक नही रहता। बालक को अधिक देर तक लिखने मे किसी प्रकार की असुविधा नही रहती।

लिखने का ढग (Method of Writing)—सुन्दर लेख का अभ्यास करवाने के लिए सर्वप्रथम श्यामपट का प्रयोग किया जाय। बालको की मास-पेशियो को संचालित करने के लिए छोटे छोटे बालको से श्यामपट पर चित्र बनवाए जाएँ। इसके बाद अक्षर और अन्त मे शब्द तथा वाक्य। काली पट्टी पर मोटी कलम से लिखना प्रारम्भिक अवस्था मे ठीक रहता है। पट्टी के पश्चात् स्लेट और सबसे बाद म, जबकि बालक का हाथ पूर्णतया सध जाय तब कागज का प्रयोग किया जाय। छोटी अवस्था के बालको को पट्टी पर ही लिखाया जाय, उन्हे कागज-पेंसिल पर लिखाना पूर्णतया अनुचित है।

लिखते समय बाँए हाथ का उपयोग कापी या कागज को डेस्क पर सीधा रखने के लिए किया जाय। कागज को ऊपर-नीचे सरकने से रोकने के लिए बाए हाथ का प्रयोग सरलता के साथ किया जा सकता है।

आसन सम्बन्धी दोष

अनुचित आसनों द्वारा छात्रों के शरीर में अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। नीचे हम प्रमुख दोषों का उल्लेख करेंगे। यथा—

(क) मेरुदण्ड या रीढ़ का टेढ़ा होना (Spinal Curvature)—यह रोग आमतौर पर पाया जाता है। छोटी अवस्था में मेरुदण्ड पर अत्यधिक भार पड़ने के कारण उसमें टेढ़ापन आ जाता है, फलतः उसमें निम्न दोष उत्पन्न हो जाते हैं—

१ कूबड़ का निकल आना (Kyphosis)

२ कटि-प्रदेश में रीढ़ के मोड़ का आगे की ओर बढ़ना (Lordosis)

३ मेरुदण्ड का एक ओर झुक जाना (Scoliosis)

१—**कूबड़ निकल आना (Kyphosis)**—इसमें सिर आगे की ओर झुक जाता है, वक्षस्थल में चपटापन आ जाता है, पीठ गोल हो जाती है तथा कन्धों में गोलाई आ जाती है। कभी कभी कमर में गड्ढा पड़ जाता है।

(कूबड़ का निकलना)
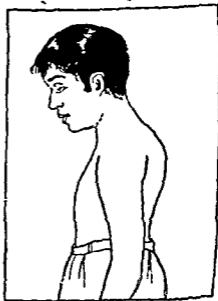
(कूबड़ तथा गोल कन्धे)

कूबड़ निकलने का प्रमुख कारण—अपौष्टिक भोजन, पुरानी बीमारी, भीड़ भाड़ में रहना, वायु तथा प्रकाशहीन दूषित वातावरण है। इसके अलावा अनुपयुक्त डेस्क पर बैठना, आँखों का कमजोर होना, कन्धों पर अधिक भार रखना आदि से भी यह दोष उत्पन्न हो जाता है।

दोष का निराकरण—अध्यापक को बालकों के आसनों की ओर ध्यान देना चाहिए। बालक उचित आसनों को अपनाते हैं या नहीं, यह देखना अध्यापक का परम कर्त्तव्य है। उन्हें उचित आसनों के महत्व के लाभ बताये जायँ। उचित

व्यायाम द्वारा यह दोष सरलता से दूर किया जा सकता है। यदि दोष अधिक बढ गया हो तो अस्पताल द्वारा उपचार करवाया जाय।

२—कटि प्रदेश में रीढ़ के मोड का आगे बढना (Lordosis)—जब पीठ का मोड पीछे की ओर धँस जाता है तथा कटि-प्रदेश का मोड आगे की ओर बढ जाता है तब यह दोष उत्पन्न होता है। इस दोष के वे ही कारण हैं, जिनसे कूबड निकलता है। इस दोष को देखकर क्षय रोग और कूल्हे के रोग होने का अनुमान लगाया जा सकता है। उचित व्यायाम द्वारा इस दोष को धीरे-धीरे दूर किया जा सकता है।

३—मेरुदण्ड का एक ओर झुक जाना (Scoliosis)—इस दोष के उत्पन्न होने पर रीढ की हड्डी दायीं या बायीं ओर झुक जाती है। कूल्हा एक ओर को झुक जाता है और कन्धास्थि (Infantile Paralysis) भी एक ओर को उठ जाती है। इस दोष मे बालक की पीठ मे दर्द होता है और चलते समय लगडापन आ जाता है।
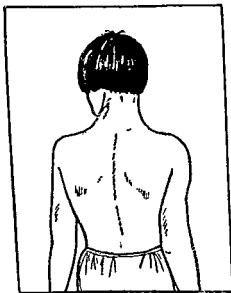
(एक दिशा को झुकी रीढ़)

टाँगो का सम्पूर्ण रूप से विकसित न होना, अस्थि-सधियो के रोग, सूखा-रोग तथा बाल पक्षाघात (Infantile Paralysis) आदि, इस दोष के प्रमुख कारण हैं। कुछ बालक खडे होते समय दोनो पैरो पर शरीर का समस्त भार डालते हैं, इससे भी यह दोष उत्पन्न हो जाता है। बालक की रीढ की हड्डी अंग्रेजी के 'सी' (C) अक्षर के आकार की हो जाती है। कक्षा-गृह में अपर्याप्त प्रकाश तथा दोषपूर्ण डेस्को का होना भी इस विकृति का कारण बन जाता है।

इस दोष को दूर करने के लिए अध्यापक को चाहिए कि वह छात्रा को उचित आसन अपनाने पर बल दे। प्रात नियमित रूप से व्यायाम करना भी लाभकारी होता है।

(ख) चपटे पैर (Flat Foot)—छोटी आयु म कमजोर बच्चा म यह दोष उत्पन्न हो जाया करता है। घण्टो बिना आसन के पैरो पर खडे रहना, भारी जूते पहनना तथा अत्यधिक पैरा से काम लेना—इस दोष के प्रमुख कारण होते हैं। इसम पैरो के अस्थि बन्धन शिथिल पड जाते हैं जिससे मास-पेशिया और पैरों म मेहराब ठीक स्थिति म नही आ पाते और पैरो मे चपटापन आ जाता है। पैरो को पर्याप्त रूप से विश्राम दिया जाय। कोई भी थकान वाला काय न किया जाय। मास-पेशियों को शक्ति देन वाला व्यायाम किया जाय।

साराश

अध्यापक को छात्रा के आसना पर विशेष ध्यान दना चाहिए। उचित आसन स हमारा तात्पय—शरीर के इस प्रकार साध रहने से है कि शरीर को कम स कम थकान का अनुभव हो। अनुचित आसनो के अ दर बालक को थकावट, उदासीनता तथा आलस का अनुभव होता है।

अनुचित आसनों के कारण

(क) घर के कारण—

१ घर का वातावरण।
२ पौष्टिक और सन्तुलित भोजन का न मिलना।
३ भारी वस्त्र पहनने से।
४ अनुचित ढग से व्यायाम करना।
५ नीद तथा आराम का अभाव।
६ आधुनिक फैशन।
७ घर पर एक सा ही कार्य करना।
८ आँखो और कानो मे दोष उत्पन्न हो जाना।

(ख) विद्यालय के कारण—

१ कक्षा मे सूरज के प्रकाश का अभाव।
२ कक्षा म उपयुक्त डस्को का अभाव।
३ अनुचित आसनो का अभ्यास—अध्यापक द्वारा उचित आसनो पर ध्यान न देना।
४ छात्रो के मनोरजन तथा थकान पर ध्यान न दना।
५ एक कन्धे पर भार रखना।
६ लगातार लिखित काम।

दोषों का निराकरण—

१ घर का वातावरण स्वास्थ्यप्रद होना चाहिए।
२ कक्षा म उपयुक्त फर्नीचर हो।
३ सन्तुलित पौष्टिक भोजन दिया जाय।
४ उचित आसन के लिए छात्रो को प्रोत्साहित किया जाय।
५ उचित रीति से व्यायाम का अभ्यास कराया जाय।
६ कण तथा नेत्र रोग के यालको को आगे बैठाया जाय।
७ थकान दूर की जाय।
८ वस्त्र हल्के हा।
९ अभिभावको को आसन का महत्त्व समझाया जाय।
१० थकाने वाला व्यायाम न हो।
११ छोटे बालको को थकाने वाले व्यायाम न कराये जाएँ।
१२ बालका को कन्धे पर बस्ता रखकर चलने से रोका जाय।

विभिन्न उचित आसन—

(क) खडे रहने का उचित आसन—शरीर का भार दोनो पैरो पर रहे। सिर तथा कमर—दोनो सीधे रहे।

(ख) बठने का उचित आसन—बैठने मे मेरदण्ड के अन्दर किसी भी प्रकार का टेढापन न हो। सिर का भाग कन्धे, नितम्ब—सब एक सीध मे हो।

(ग) पढ़ने का उचित आसन—कुर्सी पर ठीक प्रकार से बैठा जाय। पुस्तक को आँख से ४५ का कोण बनाते हुए एक फुट की दूरी पर रखा जाय।

(घ) लिखने का उचित आसन—लिखने मे ऋण डेस्क का प्रयोग किया जाय। कुर्सी पर जाघ सीधी रहे तथा उनका निचला भाग लम्ब रूप मे रहे पैर फश पर टिके हा। बाएँ हाथ मे कागज हो। लिखते समय निम्न बातो पर ध्यान दिया जाय—

१ कलम पकडने का ढग।
२ कागज की स्थिति।
३ लिखने की शैली।

आसन सम्बन्धी दोष—

(क) मेरुदण्ड या रीढ का टेढ़ा हो जाना।
(ख) चपटे पैर।

१४

थकावट

FATIGUE

Q Explain, how 'Fatigue' can be an important factor hindering students' progress What measures should be taken to minimize fatigue in school ? (B T, 1962)

प्रश्न—स्पष्ट करो 'थकावट' छात्रों की प्रगति में एक महत्त्वपूर्ण बाधा कैसे हो सकती है ? किन उपायों द्वारा विद्यालय में थकावट को कम किया जा सकता है ? (बी० टी०, १९६२)

Or

What is fatigue and how it is caused ? What measures can be adopted to remove fatigue in school ? (B T, 1964)

थकान क्या है ? और इसके क्या कारण हैं ? किन उपायों द्वारा थकावट को दूर किया जा सकता है ? (बी० टी०, १९६४)

Or

Discuss various causes of fatigue in children How can fatigue be prevented ? What should be done in severe cases of fatigue ? (B Ed 1967)

बच्चों में थकान के विभिन्न कारणों का वर्णन करिये। थकान को कैसे रोका जा सकता है ? कष्टदायक थकान की स्थिति में क्या करना उचित है ? (बी० एड०, १९६७)

उत्तर—

थकान का अर्थ

किसी कार्य के करने में हमारी शक्ति का ह्रास होता है तथा एक ऐसी अवस्था आती है जब हमारे अन्दर कार्य करने की इच्छा नहीं करती। शरीर की यह दशा 'थकान' कहलाती है। थकान में शरीर के अन्दर शैथिल्य की भावना आती है और

काम करने की शक्ति कम हो जाती है। शरीर के अधिक कार्य करने से शरीर में व्यर्थ पदार्थ एकत्र हो जाते हैं जिससे हमें थकान का अनुभव होता है।

थकावट को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—(१) शारीरिक, तथा (२) मानसिक। 'शारीरिक थकान' से हमारा तात्पर्य उस थकान से है जो अत्यधिक शारीरिक श्रम करने से उत्पन्न होती है। 'मानसिक थकावट' तब उत्पन्न होती है जबकि हम अपनी शक्ति का व्यय मानसिक कार्यों में करते हैं। दोनों थकानों का प्रभाव हमारे शरीर पर पड़ता है। मानसिक थकावट आने पर शरीर में भी शिथिलता आ जाती है। M B Davies के अनुसार, "Fatigue has been defined as progressive incapacity to work" Avery के शब्दों में, "Fatigue is the sum of results of activity which show themselves in a capacity for doing work"

थकान के लक्षण

१—छात्र किसी भी कार्य को करने में अनिच्छा प्रकट करता है।
२—शरीर में शिथिलता आ जाती है।
३—थकावट में बालक एक ओर को कूल्हे को लटकाये खड़ा रहता है।
४—पाठ में बालक का चित्त एकाग्र नहीं होता, वह निगाह बचा कर इधर-उधर देखने लगता है।
५—कार्य में बार बार गलती करता है।
६—आँखों में सुस्ती, चेहरे पर पीलापन छा जाता है। छात्र बार बार जमुहाई लेता है। कभी कभी आँखों में झपकी भी आने लगती है।
७—गलत आसनों का उपयोग आरम्भ हो जाता है।
८—अत्यधिक थकान की अवस्था में छात्र का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। खुलकर भूख नहीं लगती तथा रात में नींद भी कम आती है।
९—बालक शीघ्र क्रुद्ध हो जाता है।

थकावट के कारण

कक्षा में पढ़ते पढ़ते छात्र कभी कभी इधर उधर देखने लगते हैं। अध्यापक समझता है कि छात्र मक्कारी कर रहे हैं, पर वास्तव में इधर-उधर देखने का कारण थकावट होता है। अतः अध्यापक को थकावट के कारणों को जानना चाहिए जिससे वह आवश्यकता पड़ने पर उन्हें दूर कर सके। थकावट के मुख्यतया निम्न कारण हैं।

१—शारीरिक दुर्बलता—अपौष्टिक भोजन तथा लम्बी बीमारी के कारण शरीर में दुर्बलता आ जाती है, फलतः छात्र शीघ्रता से थक जाता है। पौष्टिक भोजन के अभाव में मांस पेशियों में दुर्बलता आ जाती है, जिससे थकावट शीघ्रता से आती है।

२—रक्त में ऑक्सीजन की कमी—एनीमिया (Anaemia)—आदि रोगों के कारण रक्त म लाल कण बहुत कम हो जाते हैं, जिससे त तुओ और स्नायु केन्द्रों को उपयुक्त मात्रा म ऑक्सीजन नही पहुँच पाती।

३—अधिक काय भार—जब छात्रो को अधिक काय प्रदान कर दिया जाता है तो वे शीघ्र ही थक जाते हैं। अधिक मात्रा म दिया हुआ गृह काय छात्रो म थकान उत्पन्न करता है।

४—खेल या व्यायाम के बाद तुरत ही मानसिक काय करना भी थकावट का एक प्रमुख कारण होता है। जहाँ तक हो सके, खेल या व्यायाम के बाद छात्रों को नही पढाया जाय।

५—नींद पूरी न लेना—नीद कम लेना, थकावट का प्रमुख कारण होता है। प्राय छात्र रात को अधिक देर तक जागकर बातचीत मे अपना समय बरबाद किया करते है। इस प्रकार के छात्रो पर कक्षा मे थकावट का आक्रमण शीघ्र हो जाता है।

६—विद्यालय का समय विभाग चक्र—विद्यालय के समय विभाग चक्र पर थकावट का आना बहुत कुछ निभर करता है। यदि समय विभाग चक्र का निमाण उचित सिद्धा तो द्वारा किया गया है तो अध्यापक तथा छात्र—दोनो को थकावट का अनुभव कम होगा। प्रथम दो घण्टो मे छात्र चेतनता का अनुभव करते हैं। अत इन घण्टो म गणित, अंग्रेजी, व्याकरण जैसे विषय पढाये जायें। लम्बे-लम्बे पाठो का पढाया जाना पूणतया अनुचित है। लम्बे पाठ छात्रो को शीघ्र थका देते हैं। कठिन विषय एक के बाद एक न आएँ। उदाहरण के लिए—गणित के बाद विज्ञान का पढाना पूणतया अनुचित है।

७—विद्यालय का वातावरण—विद्यालय का वातावरण यदि अस्वास्थ्यकारी है, अर्थात् कक्षाओ मे प्रकाश तथा वायु का प्रबन्ध पूणतया उचित नही है तथा छात्रो को अनुपयुक्त डेस्को पर बैठना पडता है तो छात्रो को शीघ्र ही थकावट आ जाती है।

थकान का निवारण

१—विद्यालय का समय विभाग चक्र इस ढग का बनाया जाय जिससे छात्रो को कम से कम थकावट का अनुभव हो। इसके लिए चार बातो को अवश्य ध्यान म रखा जाय —

(क) विषयों का क्रम—कठिन विषयो को क्रम से न रखा जाय। उदाहरण के लिए—यदि छात्रो को गणित के पश्चात् एकदम अंग्रेजी पढाई जाय तो दो घण्टो म ही इतने थक जायेंगे कि आगे पढना उनके लिए कठिन हो जायगा।

(ख) लिखित तथा मौलिक काय क्रम से हो—लिखित काय भी यदि लगातार

कराया जाय तो छात्रो मे थकावट आ जाती है। लिखने का काय अधिकता के साथ करने से छात्रो म उसके प्रति अरुचि भी उत्पन्न हो जाती है। इस कारण लेखन काय के घण्टे के पश्चात् मौखिक कार्य कराया जाय।

(ग) छात्रों की आयु तथा घण्टों का समय—छोटी आयु के बालक किसी विषय पर अधिक देर तक ध्यान नही केद्रित कर सकते, उन्हें शीघ्र ही थकान अनुभव होने लगती है। अत समय विभाग चक्र का निर्माण करते समय यह अवश्य देखा जाय कि छोटे बालकों के लिए कही घण्टे अधिक लम्बे तो नही हो गये।

(घ) मध्यान्तर का समय—१—विद्यालय मे दिन भर के कायक्रम के पश्चात् छात्रो को विश्राम मिलना चाहिए। हर समय पढते रहना तथा लिखते रहना छात्रो को पूण रूप से थका देगा। अत चौथे घण्ट के पश्चात् मध्यान्तर रखा जाय।

२—विद्यालय का वातावरण स्वच्छ एव स्वस्थ हो। बदबू, सीलन, शोरगुल, का आस पास होना—थकावट का कारण होता है।

३—कक्षाओ मे उचित प्रकार के फर्नीचर का प्रबन्ध किया जाय। डेस्क तथा कुर्सियाँ पूणतया आरामदायक तथा छात्रो की आयु के अनुकूल हो।

४—छात्रो को गृह काय उतना ही दिया जाय, जितना कि वे करके ला सकते हैं।

५—बालको की रुचि के खेल तथा मनोरजन का प्रब ध विद्यालय म अवश्य किया जाय।

६—छात्रा का घर पर पर्याप्त रूप स विश्राम तथा निद्रा की व्यवस्था की जाय।

७—छात्रों स लगातार एक सा काय न करवा कर उसम समय समय पर परिवतन भी करत रहना चाहिए।

८—शिक्षण विधियाँ रोचक तथा सरस हो।

साराश

किसी काय के करन म हमारी शक्ति का ह्रास होता है तथा ऐसी अवस्था आती है जब हमार अन्दर काय करने की इच्छा नहीं रहती। शरीर की यह दशा ही 'थकान' कहलाती है। थकान दो प्रकार की होती है—शारीरिक तथा मानसिक।

थकान के लक्षण—

१ किसी काय के करने मे अनिच्छा।
२ शरीर का शिथिल होना।
३ एक आर कूल्हे लटक जाते हैं।
४ पाठ म बालक का चित्त एकाग्र नही होता।
५ काय म बार बार गलती होती है।

६ आँखों में सुस्ती और चेहरे पर पीलापन रहता है।

७ गलत आसनों का उपयोग आरम्भ हो जाता है।

८ स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है।

थकान का कारण—(१) शारीरिक दुर्बलता, (२) रक्त में ऑक्सीजन की कमी, (३) अधिक कार्य भार, (४) खेल या व्यायाम के बाद मानसिक कार्य, (५) नींद पूरी न लेना, (६) विद्यालय का समय विभाग चक्र, (७) विद्यालय का वातावरण।

थकान के निवारण—(१) समय विभाग-चक्र में निम्न सावधानी—(क) विषयों का क्रम, (ख) लिखित और मौखिक कार्य क्रम से हों, (ग) छात्रों की आयु तथा घण्टों का समय, (घ) मध्यान्तर का समय, (२) विद्यालय का वातावरण सुन्दर हो (३) फर्नीचर का उचित प्रबन्ध, (४) मनोरंजन का अवसर, (५) घर पर पर्याप्त विश्राम, (६) गृह कार्य सीमित, (७) एक सा कार्य न दिया जाय।

१५
निद्रा
SLEEP

Q "Sleep is indispensable as good food to the child" Discuss (B T, 1950)

प्रश्न—"बालक के लिए जितना आवश्यक भोजन है, उतनी ही निद्रा है।" (बी० टी०, १९५०)

उत्तर—

निद्रा का महत्त्व

भोजन और जल के समान निद्रा का हमारे जीवन म अत्यधिक महत्त्व है। जीवन का लगभग एक तिहाई भाग सोने म ही बीत जाता है। अत हम निद्रा को किसी प्रकार भी महत्त्वहीन नही कह सकते। दिन-भर काय करने से शरीर मे थकावट आ जाती है और इस थकावट को दूर करने के लिए प्रतिदिन हम निद्रा देवी की गोद म लीन हो जाते है। अत पुन अपने को तरोताजा पाते हैं। सोते समय हमारे हृदय की धडकन तथा श्वास क्रिया दिन की अपेक्षा कम हो जाती है जिससे हृदय को कुछ आराम मिल जाता है। मस्तिष्क म भी रक्त की मात्रा कम हो जाती है। साराश यह कि निद्रा के समय हमारे शरीर के समस्त अवयव किसी-न-किसी सीमा तक विश्राम करते हैं। बालक मानसिक काय उचित रूप से नही कर पाता, उसका स्वभाव चिडचिडा हो जाता है और कक्षा म वह उदासीन तथा आलसपूर्ण मुद्रा मे बैठता है।

प्रगाढ निद्रा निम्नलिखित बातो पर निभर करती है—

१—शयनागार मे पर्याप्त मात्रा मे रोशनदान तथा खिडकिया हो, जिससे स्वच्छ वायु का प्रवेश होता रहे।

२—स्वच्छता का प्रबन्ध शयनागार मे अवश्य हो। किसी प्रकार की सील व बदबू निद्रा के आने मे बाधक होती है।

३—शयनागार के आस पास का वातावरण शान्त हो, आस पास शोर न मचता हो।

४—सोते समय पूर्ण अंधकार रहना चाहिए।

५—बिस्तर आरामदायक हो। एक पलंग एक व्यक्ति के लिए ही रहे।

६—सोने और उठने का समय निश्चित रहना चाहिए।

निद्रा की मात्रा Amount of Sleep

विभिन्न आयु मे नींद की मात्रा विभिन्न होनी चाहिए नीचे की तालिका मे निद्रा की औसत मात्रा दिखाई गई है

बालक की आयु	निद्रा के घण्टे
४ वर्ष से ८ वर्ष तक	१२ घण्टे
८ वर्ष से १२ ,, ,,	११ ,,
१२ वर्ष से १४ ,, ,,	१० ,,
१४ वर्ष से १८ ,, ,,	९ ,,
१९ वर्ष के लिए	८ ,,

अनिद्रा का रोग

नींद का न आना अत्यन्त कष्टदायक रोग है। कभी कभी रात भर बुलाने से नींद नही आती। परन्तु नींद लाने के लिए कभी भी अफीम आदि नशीले पदार्थों का प्रयोग न किया जाय। नींद लाने की दवा या टिकिया का प्रयोग करना भी हानिकारक होता है। नींद लाने के कुछ उपचार नीचे दिये जाते है

१—सोने से आध घण्टे पूर्व कोई भी थकावट का कार्य न किया जाय।

२—जाडो मे सोते समय गर्म पानी की बोतल रखी जाय।

३—सोने से पूर्व गरम दूध का लेना ठीक रहता है।

४—मस्तक तथा पैरो की ठीक प्रकार से मालिश कराई जाय।

५—भगवान् का स्मरण करते हुए सोया जाय।

६—कमरा पर्याप्त रूप से खुला तथा हवादार हो।

७—प्रातःकाल मे व्यायाम करना तथा टहलने जाना विशेष रूप से लाभदायक होता है।

अध्यापक को चाहिए कि वह छात्रों के अभिभावकों को निद्रा के महत्त्व को समझाये, जिससे वे अधिक देर तक छात्रों को न जगने दें।

साराश

भोजन और जल के समान निद्रा का हमारे जीवन मे अत्यधिक महत्त्व है। दिन भर की थकान को दूर करने के लिए हम सो जाते हैं। सोते समय हमारे हृदय की धड़कन तथा श्वास क्रिया दिन की अपेक्षा कम हो जाती है। मस्तिष्क मे भी रक्त की मात्रा कम हो जाती है।

प्रगाढ़ निद्रा के लिए निम्न बातों का होना आवश्यक है

१ हवादार शयनागार।
२ स्वच्छता।
३ शान्त वातावरण।
४ सोते समय पूर्ण अन्धकार।
५ बिस्तर आरामदायक हो।
६ सोने और उठने का निश्चित समय हो।

अनिद्रा रोग—यह रोग अत्यन्त भयंकर है। नींद लाने के लिए दवा का प्रयोग हानिकारक है। नींद लाने के लिए सोने के पूर्व थकावट का कार्य न किया जाय। सोने के पूर्व गरम दूध ठीक रहता है। मस्तिष्क तथा पैरों की मालिश लाभ पहुँचाती है।

अध्यापकों को चाहिए कि वे अभिभावकों को निद्रा का महत्त्व समझाएँ।

१६

सन्तुलित भोजन और अपूर्ण पोषण
BALANCED DIET AND MALNUTRITION

Q What effects of a unbalanced diet are usually noticeable in children ? How can these be remedied by the school authorities ? Answer with example (B T 1953)

प्रश्न—असन्तुलित भोजन का प्रभाव विद्यालय के छात्रों पर क्या दृष्टिगोचर होता है ? विद्यालय इस दिशा में क्या सुधार कर सकता है ? उदाहरण सहित स्पष्ट करो। (बी० टी० १९५३)

Or

What is meant by balanced diet ? If young growing children are maintained on a diet which is not balanced, what results are likely to ensure ? (B Ed 1967)

सन्तुलित भोजन से क्या तात्पर्य है ? यदि युवा अवस्था में पदार्पण करने वाले बच्चों को ऐसा भोजन दिया जाय जो सन्तुलित न हो, तो उसके क्या परिणाम होने की सम्भावना है ? (बी० एड० १९६७)

उत्तर—

भोजन का महत्त्व

मानव जीवन की आवश्यकताओं में वायु और जल की भाँति भोजन का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। बिना भोजन के हम अल्प काल तक ही जीवित रह सकते हैं।

भोजन की आवश्यकता

१—हर एक प्रकार का कार्य करने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है। यह शक्ति भोजन के द्वारा ही उत्पन्न होती है।

२—भोजन द्वारा हमारे शरीर का तापक्रम ठीक रहता है।

३—शरीर के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण तत्त्व भोजन में ही प्राप्त होते हैं।

४—शरीर के टूटे हुए कोष तथा तन्तुओं की मरम्मत भोजन ही करता है।

भोजन के तत्त्व—हमारे भोजन के अन्दर निम्नलिखित रासायनिक तत्त्व पाये जाते हैं

१ प्रोटीन (Protein)
२ श्वेतसार (Carbohydrates)
३ वसा (Fats)
४ खनिज लवण (Mineral Salts)
५ कैलसियम (Calcium)
६ जल (Water)
७ विटामिन (Vitamins)

१—प्रोटीन (Protein)—हमारे स्वास्थ्य के लिए प्रोटीन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसका निर्माण कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन तथा गन्धक और फासफोरस आदि तत्त्वों से होता है। यह वनस्पति जगत् तथा जन्तु जगत्—दोनों से ही प्राप्त खाद्य-पदार्थों में रहता है। परन्तु जानवरों के गोश्त से प्राप्त प्रोटीन अधिक लाभदायक होता है।

प्रोटीन का महत्त्व—प्रोटीन का प्रमुख कार्य शरीर में व्यय हुई शक्ति की पूर्ति करना है। यह नये कोषों के निर्माण में भी सहायक रहता है। जब शरीर में चर्बी का अभाव रहता है तो प्रोटीन शरीर में शक्ति उत्पन्न करता है। आवश्यकता पड़ने पर प्रोटीन चर्बी के रूप में बदल जाता है। प्रोटीन शरीर के अन्दर पाचक रस, खमीरा तथा प्रणाली विहीन गिल्टियों के रस का उत्पादन करता है। प्रोटीन का सबसे बड़ा कार्य—बीमारी के कीटाणुओं से लड़ने की शक्ति उत्पन्न करना है। प्रोटीन की अधिकता शरीर के लिए हानिकारक होती है परन्तु इसकी न्यूनता से शारीरिक अस्वस्थता तथा शक्तिहीनता उत्पन्न हो जाती है।

दाल, मटर, चना, दूध, बादाम, अंडा व मांस में प्रोटीन अधिक मात्रा में पाया जाता है। मांस में पाये जाने वाला प्रोटीन अत्यधिक लाभदायक होता है।

२—कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate)—इसका निर्माण कार्बन, हाइड्रोजन व आक्सीजन के मिश्रण से होता है। इसके अन्दर शक्कर तथा श्वेतसार सम्मिलित हैं।

कार्बोहाइड्रेट हमारे शरीर में शक्ति तथा गर्मी उत्पन्न करता है। जो व्यक्ति अत्यधिक शारीरिक परिश्रम करते हैं उनके लिए अत्यन्त लाभदायक होता है।

यह स्टार्च, चावल, जौ, मक्का तथा आलू और शकरकन्द में मिलता है। थोड़ी मात्रा में चीनी, गुड़, अंगूर, गन्ना आदि में भी मिलता है। इसके अधिक प्रयोग से अपच, अतिसार तथा मधुमेह रोग होने की आशंका रहती है।

३—वसा (Fats)—वसा का निर्माण भी कार्बोहाइड्रेट के समान कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन नामक तीन तत्त्वों से हुआ है। इसकी प्राप्ति शाकाहारी तथा मांसाहारी—दोनों प्रकार के भोजनों से होती है।

वसा का प्रमुख कार्य—आवश्यकतानुसार नई चर्बी बनाना तथा शरीर में गर्मी व शक्ति उत्पन्न करता है। इसके द्वारा शरीर में चिकनाई भी उत्पन्न होती है। वसा के कारण शरीर को गर्मी सर्दी का प्रभाव कम ज्ञात होता है। हमारे शरीर में वसा गर्मी उत्पन्न करता है।

मक्खन, घी, बादाम, सूखे फल, वनस्पति तेल तथा सूअर की चर्बी—वसा प्राप्त करने के प्रमुख स्रोत हैं। इन पदार्थों का अत्यधिक सेवन करने से शरीर में स्थूलता आ जाती है।

४—खनिज लवण (Mineral Salts)—हमारे शरीर के लिए खनिज-लवणों का अत्यधिक महत्त्व है। सोडियम क्लोराइड, सोडा फासफेट, मैगनीशियम, तांबा आदि शरीर के लिए आवश्यक लवण हैं।

खनिज लवणों का कार्य—मांस-पेशियों तथा स्नायुओं की कार्य करने की शक्ति को बनाये रखना है। हमारे शरीर की अस्थियों तथा दाँतों के निर्माण में खनिज पदार्थ अत्यन्त सहायक होते हैं। इनके द्वारा शरीर के सामान्य विकास में भी योग मिलता है। शरीर में अम्ल तथा क्षार के सन्तुलन को ये ही बनाये रखते हैं।

दूध, अंडा, पालक, गाजर तथा फलों में खनिज लवण अत्यधिक पाये जाते हैं।

५—कैलसियम (Calcium)—हमारे शरीर में अस्थि तथा दाँतों के लिए कैलसियम की परम आवश्यकता होती है। कैलसियम के अभाव में बालकों की वृद्धि रुक जाती है, अस्थि रोग होने का भय रहता है तथा दाँतों में कमजोरी आ जाती है। दमा तथा चर्म रोग भी कैलसियम के अभाव के कारण होते हैं।

हरी तरकारियों, दूध, पनीर, अंडे की जर्दी तथा मछली में कैलसियम पाया जाता है। छोटे बालकों को दूध देना अत्यधिक लाभदायक होता है, क्योंकि उसमें कैलसियम पर्याप्त मात्रा में होता है।

६—जल (Water)—हमारे शरीर के अन्दर ५६% जल है। भोजन के गलने तथा उसके पचाने में जल अत्यन्त सहायक होता है। जल के कारण ही हमारे शरीर के समस्त रस तथा रक्त तरल रूप में हैं। शरीर का विष भी जल की सहायता से शरीर के बाहर निकलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जल हमारे शरीर के लिए आवश्यक है। प्रतिदिन प्रायः दो-तीन सेर जल का सेवन करना चाहिए। जल का स्वच्छ होना परम आवश्यक है।

७—विटामिन (Vitamin)—विटामिन भोजन के प्रमुख तत्व हैं। ये शरीर की वृद्धि, भोजन पचाने की शक्ति, रोग के कीटाणुओं से लड़ने की शक्ति उत्पन्न करते हैं। विटामिन खाद्य पदार्थों में पाये जाने वाले सूक्ष्म रासायनिक पदार्थ हैं। इनका स्वास्थ्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनकी कमी तथा अभाव से शरीर में अनेक रोग हो जाते हैं। अतः स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए भोजन में पर्याप्त मात्रा में विटामिन का होना आवश्यक है।

स्वास्थ्य के लिए छ विटामिन प्रमुख माने गये हैं—

१ विटामिन 'ए' (Vitamin 'A')—शारीरिक विकास के लिए विटामिन 'ए' का होना परम आवश्यक है। इस विटामिन से समस्त चम या श्लैष्मिक झिल्ली स्वस्थ रहती है। भूख लगने तथा पाचन सस्थान को ठीक रखने मे इसकी प्रमुख आवश्यकता रहती है।

विटामिन 'ए' के अभाव मे चम रोग, नेत्र-रोग (रतौंधी आदि), खाँसी, निमोनिया, गुरदे म पथरी आदि के रोग हो जाया करते हैं।

मछली का तल, पनीर, मक्खन तथा अण्डे की जर्दी मे विटामिन 'ए' पर्याप्त मात्रा म होता है। हरी सब्जी भी इसका प्रमुख स्रोत है।

२ विटामिन 'बी' (Vitamin B)—विटामिन 'बी' के अ तगत ६ प्रकार के विटामिन आते है। जिनमे विटामिन बी १, बी २, बी ७ तथा बी १२ अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। य स्वत त्र रूप से अपना अलग प्रभाव रखते है और सम्मिलित रूप म भी मिश्रित होकर (Vitamin 'B' Complex) शरीर पर प्रभाव डालते हैं। ये विटामिन ताप सहन करने की शक्ति रखते है।

विटामिन बी १—इसके द्वारा शरीर के अन्दर भोजन शक्ति मे परिवर्तित होता है। इस विटामिन द्वारा शरीर के बढने तथा स्वास्थ्य के ठीक रहने मे सहायता मिलती है। यह स्नायुक त तु मे सवेदना का सचार भी करता है। इसके अभाव म भूख मे कमी, उत्साह की कमी तथा थकान शीघ्र आ जाती है। बरी बेरी का रोग भी इसी की कमी के कारण होता है।

इस विटामिन को प्राप्त करने के लिए बिना पालिश के चावल, अन्न की भूसी, मटर छिलकेदार दालें, हरी सब्जी, अण्डे की जर्दी तथा खमीर से बनी चीजो का प्रयोग किया जाय। दूध तथा गोश्त मे इसकी मात्रा बहुत कम होती है।

शारीरिक परिश्रम करने वाले व्यक्तियो को विटामिन 'बी' की अत्यधिक आवश्यकता रहती है।

विटामिन 'बी' २—यह विटामिन हमारे शरीर के लिए परम आवश्यक है। यह हमारे यौवन की रक्षा मे सहायक होता है। इस विटामिन के अभाव मे रक्त के श्वेत कणो मे जीवाणु से युद्ध करने की शक्ति नही रहती। चेहरा झुर्रियो-युक्त हो जाता है और शरीर की खाल लटकने लगती है। नेत्रों के अनेक रोग हो जाते हैं।

खमीर, पनीर, अडे की सफेदी, हरी सब्जी, मछली, जिगर, गुर्दा और जानवरो के गोश्त म यह अत्यधिक पाया जाता है।

विटामिन 'बी' १२—यह पी० बी० विटामिन के नाम से भी पुकारा जाता है। शरीर म इसकी कमी होने पर पैलग्रा (Palgra) नामक रोग हो जाता है। त्वचा म खुजलाहट खाने का ठीक प्रकार से न पचना—इसी के अभाव के कारण हैं।

इसके प्राप्त करने के साधन—अडे, गोश्त, शोरवा तथा यकृत हैं।

३ विटामिन 'सी' (Vitamin 'C')—इस विटामिन का भी हमारे शरीर के लिए अत्यधिक महत्त्व है। भोजन में इसकी कमी से स्कर्वी (Scurvy) का रोग हो जाता है। शरीर के अन्दर शैथिल्य, रक्त की कमी आदि रोग भी इसके अभाव में हो जाते हैं।

इस विटामिन के कारण ही शरीर के घाव शीघ्र ठीक हो जाते हैं। शरीर की अस्थियों के उचित विकास के लिए तथा दाँतों को मजबूत रखने के लिए इस विटामिन की परम आवश्यकता होती है।

विटामिन 'सी' ताजे फल, जैसे—अंगूर, सन्तरा, सेब, टमाटर तथा हरी तरकारियों में अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। आँवले के अन्दर यह प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

४ विटामिन 'डी' (Vitamin 'D')—यह विटामिन हमारी हड्डियों और दाँतों को स्वस्थ व दृढ़ बनाता है। इसकी उपस्थिति कैलशियम के आत्मीकरण में सहायता पहुँचाती है।

इस विटामिन के मुख्य स्रोत—अंडे की जर्दी तथा काडलिवर आयल हैं।

सूर्य की किरणें जब हमारे शरीर पर पड़ती हैं तो इस विटामिन की उत्पत्ति हो जाती है।

५ विटामिन 'ई' (Vitamin 'E')—यह अनाजों के बीज तथा हरे सागों में अधिकता से पाया जाता है। दूध, अण्डा तथा गोश्त में यह अल्प मात्रा में पाया जाता है।

इसके अभाव में स्त्रियों में गर्भपात तथा बाँझपन का रोग हो जाता है। और पुरुषों में नपुंसकता आ जाती है।

६ विटामिन 'के' (Vitamin 'K')—शरीर में विटामिन 'के' की आवश्यकता रक्त जमाने के लिए होती है। इसके अभाव में रक्त का थक्का नहीं जमता और चोट लगने पर रक्त बहता रहता है।

सन्तुलित भोजन
(Balanced Diet)

भोजन के समस्त तत्त्वों के विषय में ज्ञान लेने के पश्चात् यह आवश्यक है कि हम इस ज्ञान का सदुपयोग कर अपने को स्वस्थ बनाएँ। यह हमारा कर्त्तव्य है कि पूर्ण स्वस्थ रहने के लिए यह जानने का प्रयत्न करें कि भोजन में किस वस्तु की कितनी मात्रा होनी चाहिए। नित के भोजन में प्रोटीन चर्बी, कार्बोहाइड्रेट आदि तत्त्व उचित मात्रा में होने चाहिए। एक भी तत्त्व या पदार्थ की कमी या अधिकता से शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। अतः यह आवश्यक है कि छात्रों को विद्यालय में दोपहर के समय नाश्ता या भोजन देते समय अग्रलिखित बातों को अवश्य ध्यान में रखा जाय—

१—जो कुछ भोज्य पदार्थ छात्रों को प्रदान किये जायें, उनमें भोजन के प्रमुख तत्व—प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, चर्बी, विटामिन, खनिज लवण तथा जल, उचित मात्रा में हों।

२—भोज्य पदार्थ प्रदान करते समय छात्रों की आयु का भी ध्यान रखा जाय।

३—भोजन पकाते समय स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया जाय। जहाँ तक सम्भव हो—धूल और मक्खी से भोजन की रक्षा की जाय, नहीं तो हैजा और पेचिश होने की सम्भावना हो सकती है।

४—भोजन को अधिक तेज आँच पर देर तक न पकाया जाय। अधिक गर्मी में विटामिन शीघ्रता से नष्ट हो जाते हैं।

५—भोजन के अन्दर समस्त तत्त्व उपयुक्त मात्रा में होने चाहिए। दूसरे शब्दों में कोई भी तत्त्व न तो आवश्यकता से अधिक हो और न कम।

६—भोजन को सरल तथा पाचनशील होना चाहिए। गरिष्ठ तथा अपचनशील भोजन में लाभ के बजाय हानि की सम्भावना अधिक रहती है।

सन्तुलित भोजन का एक नमूना

गेंहू या चने का आटा	४ छटाक
गोश्त (मछली या अंडा)	२ छटाक
दाल	२ छटाँक
घी या तेल	१ छटाँक
हरे साग	२½ छटाँक
शक्कर	१½ छटाँक
दूध	½ सेर

जो छात्र गोश्त नहीं खाते, वे गोश्त के स्थान पर दाल की मात्रा में वृद्धि कर सकते हैं। परिश्रम, शरीर का आकार, लिंग-भेद तथा आयु आदि को ध्यान में रखकर भोजन की मात्रा को घटाया-बढ़ाया जा सकता है।

अपूर्ण पोषण
(Malnutrition)

Q Malnutrition among children is one of the basic causes of their backwardness in class How would you locate such cases and what remedial measures would you take ? (A U, 1952)

प्रश्न—अपूर्ण पोषण बालकों के पिछड़ेपन का मुख्य कारण होता है। आप ऐसे बालकों को कैसे छाँटेंगे तथा उनका निदान कैसे करेंगे ?

Or

How can malnutrition be detected ? How can the problem of malnutrition be tackled in schools ? (B T, 1956, 1964)

अपूर्ण पोषण किस प्रकार पहचाना जा सकता है ? अपूर्ण पोषण की समस्या को विद्यालयो में किस प्रकार सुलझाया जा सकता है ?

उत्तर—अधिकांशतया अपूर्ण पोषण का कारण भोजन की कमी समझा जाता है। परन्तु अधिक भोजन करने से शरीर का पोषण उचित रूप से हो, यह आवश्यक नही है। अपूर्ण पोषण के सामान्यतया दो कारण होते है—बालक की निवास या अन्य परिस्थितिया जो उसकी शारीरिक पौष्टिकता म बाधा डालती हैं। दूसरा कारण—नित लिए जाने वाले भोजन मे पोषण शक्ति के अभाव का होना है। आजकल हमारे देश मे अधिकांश घरा मे इस प्रकार के भोज्य-पदार्थों का उपयोग किया जाता है जिनमे पोषण शक्ति बिल्कुल नही होती।

अपूर्ण पोषण के कारण

(क) वातावरण के कारण

(१) घर तथा स्कूल का दूषित वातावरण—सकीण गलियाँ, प्रकाशहीन घर, छात्रा म भरे हुए कक्षा गृह जिनम वायु के आने जाने का किसी भी प्रकार का प्रबन्ध नही होता प्रमुखतया छात्रा के पोषण मे बाधक होते हैं।

(२) निद्रा तथा विश्राम का अभाव—सीलन, घुटन से युक्त कमरो म भली प्रकार से नीद का न आना, या रात को कार्य भार के कारण देर तक जागना, अपूर्ण पोषण का कारण होना है।

कार्य के अनुसार भोजन न मिलने स भी पोषण म बाधा आती है।

(३) शारीरिक रोग—बढ़े हुए टान्सिल (Tonsil), एडिनोइड (Adenoid) दोषपूर्ण दांत अधिक लम्बी बीमारी के कारण पोषण का अभाव ज्ञात होन लगता है।

(४) घर तथा विद्यालय में उपेक्षा—जब बालक की घर तथा स्कूल म उपेक्षा होती है तो यह दोष उत्पन्न हो जाता है।

(ख) भोजन सम्बन्धी कारण

(१) वास्तव मे अपूर्ण पोषण का प्रमुख कारण—स्वास्थ्य वर्द्धक पौष्टिक भोजन का अभाव है। हमारे देश म निर्धनता के कारण प्रतिदिन लिए जाने वाले भोजन मे आवश्यक तत्वों का प्राय अभाव रहता है, जिससे हमारे शरीर का अपूर्ण पोषण होता है। उदाहरण के लिए जैसे—प्रोटीन, विटामिन कार्बोहाइड्रेट वसा आदि।

(२) दूसरे अमीर घरानों म धन के होते हुए भी भोजन अत्यन्त तत्वहीन बनता है, क्योंकि वह अत्यन्त गरिष्ठ तथा अपचनीय होता है। धनी लोग मैदा की वस्तुएँ अधिकतर प्रयोग म लाते हैं, जोकि पूर्णतया तत्वहीन और हानिप्रद होती हैं।

(३) कुछ लोग भोजन करते म समय का ध्यान नहीं रखते हैं। जब मन म आया तब भोजन कर लिया। दिन रात समय-कुसमय का तनिक भी ध्यान नहीं किया जाता है। परिणामस्वरूप अपच बदहजमी हो जाती है जो आगे चलकर अपूर्ण पोषण का रूप धारण कर लेती है।

अपूर्ण पोषण के लक्षण

जिन बालकों का उचित रूप से पोषण नहीं होता, उनका चेहरा और कद आदि को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि वे अपूर्ण पोषण से पीड़ित हैं (१) पोषण के अभाव मे बालक अपनी आयु के विचार से कद मे छोटा, निर्बल तथा शक्तिहीन होता है। (२) उसका वजन कम होता है, शरीर मे मांस की कमी होती है, आँखो से उदासी का भाव टपकता रहता है। (३) वह कक्षा मे बैठते तथा खड़े होते समय अनुचित आसनो का प्रयोग करता है। (४) भोजन मे चर्बी के अभाव के कारण शरीर की त्वचा पीली, ढीली तथा खुरदरी हो जाती है। (५) इसी प्रकार भोजन मे खनिज पदार्थों के अभाव के कारण अस्थियाँ और दाँत ठीक प्रकार से विकसित नही हो पाते। बालक का शरीर शीघ्र ही थक जाता है तथा रात को नीद भी ठीक प्रकार से नही आती।

अपूर्ण पोषण से ग्रसित बालक व्यग्र तथा भयभीत रहता है। कक्षा मे वह एकाग्रचित्त से नही बैठता तथा शीघ्र ही खाँसी और जुकाम का शिकार हो जाता है।

अपूर्ण पोषण का उपचार

१—अपूर्ण पोषण का मुख्य कारण—सन्तुलित भोजन का अभाव होता है। अतः गृहिणियों को स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन बनाने की शिक्षा प्रदान की जाय। वे अपने रसोईघर में ऐसे भोजन को पकायें जो विटामिन तथा खनिज और चर्बी युक्त हो।

२—जो छात्र अपूर्ण पोषण से पीड़ित हो उन्हें प्रत्येक कक्षा मे छाँट लिया जाय तथा ऐसे प्रत्येक बालक को महीने मे एक बार अवश्य तोला जाय और उसका कद नापा जाय। यदि बालक के शारीरिक विकास की वृद्धि रुक गई है तो उसके माँ-बाप के द्वारा भी बच्चे के रहन सहन के ढग के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करके डॉक्टर को तुरन्त सूचना दी जाय।

३—छात्रो के माता पिता को भी बताया जाय कि भोजन, नीद, स्वच्छ वायु के विषय मे किन किन सिद्धान्तो को अपनाना चाहिए।

४—विद्यालय की ओर से अपूर्ण पोषण से पीड़ित बालको को पौष्टिक भोजन प्रदान किया जाय।

५—विद्यालय और घर के वातावरण को स्वास्थ्यकारी बनाया जाय। जहा रहते हो तथा अध्ययन करते हो वे स्थान प्रकाश युक्त तथा वायु युक्त होने चाहिए।

विद्यालय मे मध्याह्न भोजन की व्यवस्था

Q Discuss the importance of mid day meals in school How would you provide a balanced diet without heazy cost ?

(A U, L T, 1959, 1963)

प्रश्न—विद्यालय में दोपहर के भोजन के महत्त्व की विवेचना कीजिये। अल्प व्यय में एक सन्तुलित पथ्य देने का आप किस प्रकार प्रयत्न करेंगे ?

उत्तर—

विद्यालयीय भोजन का महत्त्व

१—हमारे देश मे अधिकाश छात्र ऐसे मिलेंगे जिन्हे पौष्टिक भोजन नही मिलता। अधिकाश घरो मे ऐसा भोजन पकता है, जिसमे पौष्टिक भोजन के प्रमुख तत्त्वो का अभाव रहता है। परिणामस्वरूप आये दिन किसी न किसी रोग का आक्रमण उन पर होता रहता है। जैसा कि हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं—सन्तुलित भोजन के अभाव मे शरीर के अन्दर रोग निवारण क्षमता का अभाव रहता है, जिससे बालक शीघ्र ही रोग ग्रस्त हो जाते है। अत इस दोष को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि विद्यालय म छात्रो के भोजन की व्यवस्था की जाय।

२—विद्यालय के अन्दर भोजन की आवश्यकता इस कारण और महत्त्व रखती है, क्योकि छात्रो को विद्यालय म ६ ७ घण्टे रहना पडता है। इतनी देर बिना बीच मे कुछ खाये पीये वह अपने पाठ मे चित्त नही लगा सकता। विद्यालय म खेल कूद तथा पढने म जो शक्ति का व्यय होता है, उसकी पूर्ति के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि किसी न किसी मात्रा मे भोजन किया जाय।

३—यदि विद्यालय मे भोजन की व्यवस्था नही की जाती है तो ऐसी दशा म छात्र अपनी भूख मिटाने के लिए गन्दे खोमचे वालो से चाट, पकौडी तथा मदा की हानिकारक वस्तुएँ खायेगे या फिर खाना खाने घर जायेंगे।

४—विद्यालयीय भोजन से छात्रो म सामाजिकता की भावना का विकास होता है वे एक साथ बैठकर खाना पीना सीखते हैं। वे सामूहिक रूप स बैठकर खाने पीने के शिष्टाचारो से अभ्यस्त होते हैं।

५—विद्यालयीय भोजन से छात्रो मे परस्पर प्रतियोगिता की भावना समाप्त होती है। यदि विद्यालय मे मध्याह्न भोजन की कोई व्यवस्था नही रहती तो कुछ अमीर घरानो के छात्र घर से नाश्ता लेकर आते हैं, फलत दूसरे छात्र उनसे कुछ जलन करने लगते है। यदि विद्यालय मे मध्याह्न भोजन की व्यवस्था की जाय तो यह दोष दूर हो जाता है।

६—विद्यालयीय भोजन छोटे बालको मे विद्यालय आने के लिए आकर्षण उत्पन्न करता है। इस प्रकार उपस्थिति बढती है।

७—विद्यालयीय भोजन स्कूल के बच्चो को असाम्प्रदायिक बनाता है। विद्यालय म पढने वाले विभिन्न जातियो के छात्र बिना किसी भेद भाव के परस्पर बैठकर खाते है।

आवश्यक सुझाव

१—इस प्रकार हम देखते हैं कि छात्रो को पूर्ण स्वस्थ रखने तथा विभिन्न रोगो स बचाने के लिए विद्यालय म दोपहर मे भोजन की व्यवस्था करना आवश्यक हो जाता है। यदि पूर्ण रूप से भोजन की व्यवस्था नही की जा सकती है तो नाश्ते

का प्रबन्ध किया जा सकता है। भोजन या नाश्ते का व्यय धनवान माता पिता द्वारा प्राप्त किया जा सकता है तथा जो बालक निर्धन हैं, उनके व्यय का भार सरकार तथा विद्यालय की कमेटी को उठाना चाहिए।

२—यदि विद्यालय मे भोजन की व्यवस्था की जाती है तो सबसे पहले यह देखना होगा कि छात्रो को जो भोजन प्रदान किया जा रहा है क्या वह पौष्टिक है? क्या उसमे जीवन शक्ति प्रदान करने वाले तत्त्व उपस्थित हैं? भोजन के अन्दर प्रोटीन, चर्बी, कार्बोहाइड्रेट्स तथा लवण उचित मात्रा म होने चाहिए। हमारे देश में साग खाने की प्रथा नही है, अत हरे साग, फल तथा दूध आदि को भोजन मे अवश्य सम्मिलित किया जाय। दाल भी उचित मात्रा मे उपस्थित रहनी चाहिए।

३—नाश्ते के प्रबन्ध मे दूध को विशेष महत्त्व दिया जाय। शाकाहारियो के लिए दूध का प्रयोग आवश्यक है—क्योंकि दूध के अन्दर प्रोटीन, चर्बी तथा कार्बोहाइड्रेट्स उचित मात्रा मे होते है। दूध के साथ गाजर और टमाटर को भी दिया जा सकता है।

४—मौसम के फल भी नाश्ते के अन्दर सम्मिलित किये जा सकते हैं, परन्तु फल ताजे होने चाहिए। सडे गले फल लाभ पहुँचाने के बजाय नुकसान पहुँचाते हैं।

५—दोषपूर्ण पोषण से पीडित छात्रो के लिए अलग से पौष्टिक भोजन की व्यवस्था की जाय।

६—विद्यालयीय भोजन की व्यवस्था वर्ष भर चलती रहे।

७—छात्रो को भोजन आत्मीयता से परोसा जाय।

८—जहाँ भोजन पके, वह स्थान स्वच्छ हो।

सारांश

भोजन की आवश्यकता निम्न कारणो से है—(१) शक्ति की पूर्ति होती है, (२) तापक्रम ठीक रहता है, (३) महत्वपूर्ण तत्वो की पूर्ति, (४) टूटे कोषो की मरम्मत होती है।

भोजन के तत्त्व—१ प्रोटीन
२ श्वेतसार
३ वसा
४ खनिज लवण
५ कैलसियम
६ जल
७ विटामिन।

सन्तुलित भोजन—नित्य के भोजन मे प्रोटीन, श्वेतसार, वसा, विटामिन तथा लवणो का उचित मात्रा म होना परम आवश्यक है। एक भी तत्त्व का अधिक या

कम होना शरीर के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। छात्रों को भोजन प्रदान करते समय निम्न बातों पर विशेष ध्यान दिया जाय

(१) भोजन मे प्रमुख तत्व हो, (२) आयु का ध्यान रहे, (३) स्वच्छता, (४) तेज आंच में न पके, (५) तत्वों का सन्तुलन हो, (६) सरल तथा पाचन शील हो।

अपूर्ण पोषण—उसके दो कारण हैं—(१) अनुचित वातावरण और (२) भोजन मे पौष्टिकता की कमी।

अपूर्ण पोषण के लक्षण—आयु के अनुसार कद छोटा तथा वजन कम होता है। आंखों से उदासीनता तथा खोयापन टपकता है।

उपचार—(१) गृहिणियों को स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन का ज्ञान कराया जाय, (२) इस दोष के छात्रों को छाँट लिया जाय, (३) अभिभावकों को शिक्षा दी जाय, (४) विद्यालय की ओर से पौष्टिक भोजन दिया जाय, (५) वातावरण में सुधार किया जाय।

विद्यालय में मध्याह्न भोजन—घर के भोजन मे अधिकतर पौष्टिकता का अभाव रहता है। अतः पौष्टिकता के लिए विद्यालय में भोजन का प्रबन्ध किया जाय। निर्धन छात्र इस योजना से विशेष रूप से लाभ उठा सकते हैं। धनाभाव में नाश्ते का आयोजन किया जा सकता है। दूध का नाश्ता विशेष रूप से लाभदायक होता है।

१७

व्यक्तिगत स्वच्छता
PERSONAL CLEANLINESS

Q If your head puts you in charge of the sanitary and hygienic arrangement of your school, how would you proceed to discharge your duties ? What notices permanent or occasional, would you put up in this connection ? (B T, 1951)

प्रश्न—यदि आपके प्रधान आपको व्यक्तिगत स्वास्थ्य तथा स्वच्छता का उत्तरदायित्व देते हैं तो उसे आप कैसे निभायेंगे ? इस सम्बन्ध में आप क्या क्या बात ध्यान में रखेंगे ? (बी० टी०, १९५१)

उत्तर—शरीर को पूर्ण स्वस्थ बनाने के लिए केवल पौष्टिक भोजन ही आवश्यक नहीं है। पौष्टिक भोजन प्राप्त करते हुए भी यदि कोई व्यक्ति अपने शरीर की स्वच्छता की ओर ध्यान नहीं देता तो उसका पूर्ण स्वस्थ रहना अत्यन्त कठिन है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण स्वस्थ रहने के लिए अपने शरीर की सफाई का ध्यान स्वयं करना चाहिए। व्यक्तिगत स्वच्छता में जिन बातों को ध्यान में रखना चाहिए, वे निम्न हैं

१ अच्छी आदतें—आदतें एक बार पड़ जाती हैं तो वे मानव के स्वभाव में इस प्रकार से घुलमिल जाती हैं कि व्यक्ति को इस बात का पता भी नहीं लगता कि अमुक आदत उसने कब सीखी। अतः किसी भी आदत को सदा सोच समझ कर जीवन में स्थान दिया जाय। एक बार किसी बात की आदत पड़ जाने पर उसे छोड़ना अत्यन्त कठिन हो जाता है। प्रातःकाल सूरज उगने से पूर्व उठना, समय से शौच जाना, प्रतिदिन स्नान करना, अपने कमरे की स्वयं सफाई करना आदि जीवन को नियोजित करने वाली आदतें हैं। यदि छात्रों की अभ्यास द्वारा इस प्रकार की आदतें डलवा दी जाती हैं तो वे भविष्य में बराबर अपने जीवन को तथा देश को समृद्धिशाली बना सकेंगे। इन आदतों के अतिरिक्त छात्रों को सत्य बोलने, बड़ों का कहना मानने, बात-बात पर क्रोध न करने की आदतें डलवाई जायें। इस प्रकार की

अच्छी आदतें छात्रो के मानसिक स्तर को ऊँचा उठाती हैं। छात्र जीवन के वास्तविक अर्थ को समझते है और सच्चे रूप मे अपने जीवन के प्रति सजग रहते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अच्छी आदतें व्यक्ति को उचित मार्ग की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती हैं। परन्तु इसके विपरीत बुरी आदतें व्यक्ति का विनाश की ओर ले जाती हैं। जो छात्र बुरी सगति के परिणामस्वरूप सिगरेट, बीडी तथा सिनेमा आदि की आदतें डाल लेते हैं, वे शीघ्र ही अपने स्वास्थ्य तथा मान सम्मान को धूल मे मिला देते है। गाली बकना, अपने मित्रो को मारना पीटना, किताब चुराकर बेचना आदि भी ऐसी अनिष्टकारी आदतें हैं जो भविष्य मे चलकर छात्रो के जीवन तक को नष्ट कर डालती हैं। इस प्रकार के बालको के साथ अध्यापको को विशेष सावधानी रखनी चाहिए। अध्यापक को चाहिए कि वह इस प्रकार के दोषी बालको की बुरी आदते मनोवैज्ञानिक प्रणाली द्वारा छुडाये। केवल दण्ड और भय से ही इस रोग का उपचार नही होगा। बुरी आदतें यदि प्यार द्वारा छुडवाई जाय तो वे सदा के लिए छूट जायेगी। इस काय मे छात्रो के सरक्षको से भी सहायता ली जा सकती है।

२ **त्वचा और उसकी स्वच्छता**—त्वचा हमारे समस्त शरीर को ढके रहती है। अत समस्त शरीर की स्वच्छता के लिए त्वचा की सफाई की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। त्वचा के अन्दर अनेक लघु छिद्र होते है, जिनमे से पसीने के रूप मे विषैले पदार्थ निकला करते हैं। जब नियमित रूप से त्वचा की सफाई नही होती तो त्वचा की सतह पर मैल जम जाता है और ये छिद्र बन्द हो जाते हैं, परिणामस्वरूप शरीर का मैल पसीने के रूप म शरीर से बाहर नही निकल पाता। पसीने के उचित रूप म बाहर न निकलने से अनेक रोग हो जाते हैं। दाद खाज, फोडे, फुन्सी आदि त्वचा की गन्दगी के कारण ही होते हैं। त्वचा को सदा स्वच्छ रखना हमारे लिए परम आवश्यक है।

३ **स्नान और उससे लाभ**—हमारे देश मे स्नान को प्राचीन काल से ही विशेष महत्व दिया गया है। आज भी कोई भी धार्मिक अनुष्ठान बिना स्नान किये नही होता है। वास्तव म त्वचा को स्वच्छ रखने के लिए नित स्नान करना परम आवश्यक है। जल द्वारा स्नान करने से त्वचा के छिद्र खुल जाते हैं तथा पसीना सरलता के साथ शरीर से बाहर निकलने लगता है। स्नान करने से शरीर म रक्त का चक्कर तीव्रता के साथ घूमने लगता है जिससे हम एक नवीन स्फूर्ति का अनुभव होता है।

जहाँ तक सभव हो शीतल जल से स्नान किया जाय, क्योकि शीतल जल से त्वचा पर बुरा प्रभाव नहीं पडता है। गर्म जल से स्नान करने पर त्वचा में कमजोरी आ जाती है।

स्नान करते समय शरीर को खूब मलना चाहिए। साबुन का प्रयोग करना

ो उचित है, क्योंकि इससे त्वचा पर का मैल साफ हो जाता है। साबुन सदा नहाने ा प्रयोग किया जाय, नही तो त्वचा खुरदरी हो जायगी।

४ **नेत्रों की स्वच्छता**—नेत्र हमारे शरीर की महत्त्वपूर्ण इंद्रियाँ हैं। नेत्र-ान इस सुदर ससार को बिना देखे ही रह जाता है। कभी कभी आँखों वाले व्यक्ति ापरवाही के कारण अपनी आखो की दृष्टि खो देते हैं। अत प्रत्येक अध्यापक का त्तव्य हो जाता है कि वह छात्रो को नेत्र रक्षा के उपाय बताये।

आखो की स्वच्छता की ओर सदा ध्यान देना चाहिए। आँखो को धूल से जहा तक हो सके बचाया जाय। धूल के कण आखो के लिए अत्यत हानिकारक होते हैं। इन कणो के कारण आँखें लाल हो जाती हैं और आखो म से पानी बहने लगता है। यह पानी कीचड युक्त होता है जिससे कभी-कभी पलकें आपस मे जुड जाती हैं और अत्यत पीडा के बाद ही खुलती हैं।

इन दोषो को दूर करने के लिए नेत्रो को ठण्डे जल मे धोना परम आवश्यक हो जाता है। नित प्रात काल उठकर शीतल जल स नेत्रो को धोया जाय। यदि जल म कभी कभी त्रिफला भी मिला दिया जाय तो विशेष लाभ होता है।

आखों को गन्दे रूमाल तथा ग दे हाथों से नही मलना चाहिए। कभी कभी छात्र आखो को हाथो स मल कर लाल कर लेते हैं। इससे आखो म मैल भर जाता है जोकि अनेक रोगो को उत्पन्न कर सकता है।

नेत्रो की सफाई के अतिरिक्त छात्रो के पढने के लिए उचित प्रकाश की व्यवस्था होनी चाहिए। कम प्रकाश मे पढने मे नेत्रो पर जोर पडता है। प्रकाश सदा बाई ओर से आये। यदि प्रकाश पढते समय दायीं ओर से आता है तो कलम, पेंसिल की परछाई कापी पर पडेगी। पुस्तको का प्रिण्ट भी अधिक महीन नहीं होना चाहिए। अधिक सिनेमा देखने को निरुत्साहित किया जाय।

आँखो म ताजगी तथा शक्ति लाने के लिए घी, मक्खन तथा ठण्डक पहुचाने वाले फलो का प्रयोग किया जाय। लाल मिर्चो का कम से कम प्रयोग किया जाय।

५ **नाखूनो की सफाई**—हमारे देश म मुख्यतया हाथो से ही भोजन खाया जाता है। पर साथ ही हाथो द्वारा अनेक ग दे काय किये जाते हैं, जैसे—गुदा आदि की सफाई। परिणाम-स्वरूप हाथो के नाखून यदि लम्बे लम्बे होते हैं तो उनम मैल भर जाता है और जब हम हाथों द्वारा भोजन करते हैं तो वही मैल हमारे मुख मे पेट मे चला जाता है। पेट म पहुच कर यह मैल अनेक रोग उत्पन्न करता है। अत भोजन को विष युक्त होने से बचाने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि नाखूनो को समय समय पर काटा जाय। आजकल लडकियाँ लम्बे लम्बे नाखून रखने लगी हैं। इस प्रकार के नाखूनो की सफाई ब्रुश से नित्य होनी चाहिए। परन्तु जहा तक हो सके, नाखूनो का काटना ही उचित है।

६ **बालों की सफाई**—त्वचा की सफाई के साथ साथ बालो की सफाई भी आवश्यक है।

की सफाई करते हैं तो शरीर के अधिकाश वालो की सफाई स्वय हो जाती है। किन्तु फिर भी हमे सिर के बालो के प्रति विशेष ध्यान दने की आवश्यकता है। सिर के वाल शरीर के अ य भागो की अपेक्षा बडे होते है। अत यदि उन्ह नियमानुसार साफ नही किया जाय तो उनमे मैल भर जाता है। बिना बालो को साफ किय तेल डालने से बालो की जटा म धूल जम जाती है। अधिक समय तक सिर गन्दा रहने से सिर मे जूँ पड जाती हैं जोकि बालो की जडो म चिपक कर खून चूसा करती हैं। य जूएँ इतनी भयकर हो जाती हैं कि कघे से बाल काढने पर भी नही निकलती हैं। इम्पेटीगो (Impetigo) रोग जुओ के काटने से ही फैलता है।

उपयु क्त हानियो से बचने के लिए बालो की नित 'सफाई' आवश्यक है। सप्ताह म दो वार, रीठा, मुलतानी मिट्टी या दही से सिर धोया जाय। बाल जब सूख जाएँ तब उनमे तेल डाला जाय।

७ कान की स्वच्छता—शरीर के अन्य अगो की भाति कानो को स्वच्छ रखना आवश्यक है। कानो के अन्दर एक मोम के प्रकार का पदार्थ निकला करता है, जिसका काय कान मे धूल आदि के प्रवेश को रोकना होता है। यह धूल कान के बाह्य भाग म एकत्र होती रहती है। अधिक मैल एकत्र हो जाने पर कान म दर्द तथा कम सुनाई पडने लगता है। अत कानो से समय समय पर सरसों का तेल डाला जाय तथा अत्यन्त सावधानी से रुई की फुरहरी द्वारा कान के अन्दर के मल को बाहर निकाल दिया जाय। कान के अन्दर दियासलाई की सीक तथा अत्यधिक गरम तेल डालना अत्य त हानिकारक है। इनसे कानो के परदे फटने का भय है।

८ दाँतो की सफाई—दाँतो के महत्व पर हम पीछे पर्याप्त रूप म प्रकाश डाल चुके है। दातो का स्वच्छ रहना शारीरिक स्वास्थ्य के लिए परम आवश्यक है। दातो के गन्दे रहने से उनमे लगा मैल खाने के साथ पेट म चला जाता है जिससे अपच होने की सम्भावना रहती है। दाँतों के मैल के कारण मुख में बदबू आने लगती है। दातो की नियमित सफाई न करने के कारण कुछ काल वाद उनमे कीडा लग जाता है और वे समय से पहले ही गिर जाते हैं। अत सुबह शाम—दाना समय खाना खाने के पश्चात् कुल्ला करके दाँतों को अवश्य साफ किया जाय।

दातो की सफाई के लिए मजन या पेस्ट का प्रयोग किया जा सकता है। गाव मे नीम या बबूल की दातोन का प्रयोग भी लाभदायक रहता है।

अध्यापक का कत्तव्य है कि वह छात्रो को नित दात साफ करने पर बाध्य करे। जो छात्र दात साफ करके न आएँ उन्ह दात साफ करने की चेतावनी दी जाय। छात्रो को बताया जाय कि वे दिन मे कम मे कम दो बार (सुबह शाम) दाँतों को साफ करें। खाने और नाश्ते के पश्चात् तुरन्त कुल्ला अच्छी तरह से किया जाय। यदि छात्र वार बार कहने-सुनने पर भी साफ करके नही आते हैं तो उनके माता पिता को दातो की स्वच्छता का महत्व समझाया जाय, जिससे वे अपने बच्चे को दात साफ करने के लिए उत्साहित कर सकें।

९ वस्त्र और उनकी स्वच्छता—हम दिन-रात कुछ न-कुछ वस्त्र पहने ही रहते हैं। इस कारण हमारे ही जीवन मे वस्त्रो का अत्यधिक महत्व हो गया है। वस्त्र हमारे शरीर का केवल सौंदय ही नही बढाते, वरन् गर्मी तथा तेज वायु से हमारे शरीर की रक्षा भी करते हैं।

वस्त्र पहनने के नियम—वस्त्र अधिक भारी नही होने चाहिए। किसी भी वस्त्र के लिए, जो कपडा प्रयोग मे लाया जाय, वह सछिद्र (Porous) हो, जिससे वायु सरलता से अन्दर आ जा सके। बिना छिद्र के वस्त्र शरीर के लिए हानिकारक होते हैं, क्योंकि उनमे से होकर वायु प्रवेश नही कर पाती जिससे शरीर का पसीना नही सूखता।

भारी वस्त्र शरीर मे थकान उत्पन्न करते है, अत यथासम्भव हल्के वस्त्रो का प्रयोग किया जाय। परन्तु साथ ही यह भी ध्यान रहे कि वस्त्र मौसम के अनुकूल हों। गर्मी के मौसम म सूती कपडे तथा शीतकाल मे ऊनी कपडो का प्रयोग किया जाय।

कसे या तग वस्त्रो का पहनना हानिकारक है। अत सदा ढीले कपडे उपयोग मे लाये जाएँ। तग कपडे उठने बैठने म असुविधा उत्पन्न करते हैं। पट और शरीर के कसे रहने के परिणामस्वरूप भोजन पचने और रक्त परिभ्रमण मे बाधा आती है।

अध्यापक का वक्तव्य है कि वह छात्रों को अधिक चमकीले, रेशमी तथा कीमती वस्त्रो का पहनने के लिए प्रोत्साहित न करे। अमीर घराने के छात्र कीमती तथा भडकीले वस्त्र पहन कर विद्यालय म आते हैं, तो निधन छात्रो के मन म हीनता और प्रतियोगिता की भावना का उदय होता है। अत जहा तक हो सके, विद्यालय के समस्त छात्र सादा तथा आवश्यकता के अनुकूल वस्त्र धारण करके आएँ।

वस्त्रों की स्वच्छता

विद्यालय म आने वाले छात्रो की सफाई पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय। गन्दे वस्त्र पहनने से शरीर म से बदबू आती है तथा त्वचा के अनेक रोग, जैसे—खुजली आदि हो सकते हैं। अत्यधिक गन्दे कपडो मे जूँ तक पड जाते हैं। वस्त्र रंगमय हो तथा अधिक चुस्त न हो। वस्त्र अधिक भारी भी न हो, यथासम्भव हल्के वस्त्र पहने जायें।

अत अध्यापक छात्रो को वस्त्रो की सफाई का महत्व बताएँ। वस्त्र चाहे फटे हों, परन्तु साफ होने चाहिए। जाँघिया और बनियान को प्रतिदिन धोया जाय।

साराश

प्रधान अध्यापक और व्यक्तिगत स्वास्थ्य—प्रधान अध्यापक का वक्तव्य है कि वह छात्रो के व्यक्तिगत स्वास्थ्य की ओर विशेष रूप से ध्यान दे। विद्यालय के आरम्भ तथा प्रार्थना के पश्चात् नित्य एक कक्षा को रोक लिया जाय तथा अध्यापक की सहायता से प्रत्येक छात्र के व्यक्तिगत स्वास्थ्य का निरीक्षण किया जाय। गन्दे तथा लापरवाह छात्रों पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय। विद्यालय के वातावरण का

छात्रों पर विशेष प्रभाव पड़ता है, अत यह आवश्यक है कि विद्यालय के वातावरण म स्वच्छता का विशेष ध्यान रखा जाय ।

पूर्ण स्वस्थ रहने के लिए केवल पौष्टिक भोजन ही आवश्यक नहा है । व्यक्तिगत स्वच्छता के अभाव म व्यक्ति स्वस्थ नहीं रह सकता । व्यक्तिगत स्वच्छता निम्न बातों को ध्यान म रखा जाय—

१ **अच्छी आदतें**—आदतों का जीवन मे विशेष महत्त्व है । अध्यापकों का कर्तव्य है कि वह बालकों को अच्छी आदतों के लिए प्रोत्साहित करे । बुरी आदतें प्यार तथा मनोवैज्ञानिक ढंग से छुड़वाई जाएँ ।

२ **त्वचा और उसकी स्वच्छता**—समस्त शरीर की स्वच्छता के लिए त्वचा की सफाई की ओर विशेष ध्यान दिया जाय जिससे त्वचा के छिद्र स्वच्छ हो जाए । त्वचा के साफ न होने पर दाद खाज, फोड़े आदि चर्म रोग हो जाते हैं ।

३ **स्नान और उसके लाभ**—स्नान त्वचा की स्वच्छता म परम सहायक है । स्नान करने से रक्त शरीर म चक्कर लगाता है । जहा तक सम्भव हो, शीतल जल से स्नान किया जाय ।

४ **नेत्रों की स्वच्छता**—जहा तक सम्भव हो आँखो को धूल से बचाया जाय । नेत्रो को शीतल जल से धोया जाय । आखों को मलना हानिकारक है । पढ़ने लिखने के लिए उचित प्रकाश का प्रबन्ध भी आवश्यक है । भोजन म चिकनाई का प्रयोग किया जाये ।

५ **नाखूनों की सफाई**—नाखूनो को काटना परम आवश्यक है । नाखून न काटने से भोजन म विष मिल जाता है ।

६ **बालों की सफाई**—सिर के बालो की सफाई न करने पर उनमे मल भर जाता है तथा जूएँ पड जाते है । रीठा मुल्तानी मिट्टी तथा दही से सिर धोया जाय ।

७ **कानों की स्वच्छता**—कानो की सफाई के लिए सरसो का हल्का गरम तेल डाला जाय । सिलाई या सींक आदि कान म न डाली जाय ।

८ **दांतों की सफाई**—स्वस्थ रहने के लिए दातो की सफाई परम आवश्यक है । दिन म दो बार दात साफ करने चाहिए । अध्यापक को छात्रों को दात की सफाई के लिए बाध्य करना चाहिए ।

९ **वस्त्रों की स्वच्छता**—वस्त्र अधिक भारी तथा छिद्र हीन नहा होने चाहिए । कसे वस्त्र न पहिने जायें । वस्त्रों की स्वच्छता पर ध्यान दिया जाय ।

१८

सक्रामक रोग

INFECTIOUS DISEASES

Q What are the infectious diseases that generally trouble our school children ? How would you save your children from them ?

(A U, B T, 1957, 1964)

प्रश्न—वे कौन से सक्रामक रोग हैं जो हमारे विद्यालय के बालकों को प्राय परेशान करते हैं ? आप उन रोगों से अपने बालकों की रक्षा किस प्रकार करेंगे ?

(बी० टी०, १९५७, १९६४)

उत्तर—सक्रामक रोग हमारे देश मे अत्य त तीव्रता के साथ फैलते हैं। विद्यालय में इनकी रोकथाम के लिए विशेष रूप से सजग रहने की आवश्यकता है। प्रतिवर्ष अनेक बालक सक्रामक रोगो के शिकार होते हैं। सक्रामक रोग का अर्थ उन रोगों से है, जोकि एक व्यक्ति से दूसरे को अप्रत्यक्ष रूप से लग जाया करते हैं। वायु, जल भोजन आदि के द्वारा रोग का एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को लग जाना ही 'सक्रामक रोग' कहलाता है। इसके विपरीत, जब रोग प्रत्यक्ष सम्पर्क (स्पर्श आदि) द्वारा दूसरे व्यक्ति तक पहुचता है, तो उसे 'समगज रोग' (Contagious Disease) के नाम से पुकारते हैं।

सक्रामक रोगों का कारण—सक्रामक रोगों का प्रमुख कारण छोटे छोटे जीवाणु हैं। इन जीवाणुओ के द्वारा ही विभिन्न रोग फैलते हैं। प्रत्येक रोग के कीटाणुओं का अपना अलग रूप होता है। कुछ जीवाणु कॉमा (,) के आकार के होते हैं, तो कुछ धाग के आकार के। ये आकार मे इतने छोटे होते है कि इन्हे हम साधारण दृष्टि से नहीं देख पाते हैं। किसी न किसी रूप मे अवसर पाते ही ये जीवाणु शरीर म प्रवेश कर जाते हैं और शारीरिक अवस्था के अनुसार इनकी अन्दर ही अन्दर वृद्धि होती रहती है।

सक्रामक रोगों के फैलने की विधि

१—वायु द्वारा—कुछ रोग वायु द्वारा प्रसारित होते हैं। रोगी की छींक,

रूप से देखने पर सभी सक्रामक रोगो में कुछ समान गुण होते हैं, जिनका उल्लेख हम नीचे करेंगे

१—प्रत्येक सक्रामक रोग एक निश्चित अवधि (Period) तक रहता है। अवधि की समाप्ति पर रोग भी समाप्त हो जाता है।

२—प्रत्येक सक्रामक रोग का कारण रोगाणु या जीवाणु होते हैं। ये रोगाणु हर रोग के अलग अलग होते हैं। उदाहरण के लिए हैजे के रोगाणुओं से हैजा ही फैलेगा, मलेरिया नही। इसी प्रकार मलेरिया के कीटाणुओं से मलेरिया ही फैलेगा, हैजा नही। ये रोगाणु शरीर के अन्दर रक्त मे विष उत्पन्न करते हैं जो कि समस्त शरीर मे फैल जाता है।

३—आमतौर पर सक्रामक रोग का एक ही बार किसी व्यक्ति पर आक्रमण होता है। प्रथम बार के आक्रमण के पश्चात् व्यक्ति में उस रोग से मुक्त होने की शक्ति आ जाती है। लेकिन इन्फ्लुएँजा तथा डिफ्थीरिया इस नियम के अपवाद हैं।

४—ये रोग एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को लग जाते हैं।

५—सक्रामक रोग का आक्रमण होने पर रोगी को कुछ विशेष अवस्थाओं मे से गुजरना पडता है। रोग की प्रथम अवस्था को 'सप्राप्ति काल' (Incubation Period) कहते हैं। इस अवस्था मे रोग के लक्षण नहीं प्रकट होते, अत रोग का पता ठीक प्रकार से नही लग पाता। इस काल मे रोगाणु शरीर मे अपनी सख्या की वृद्धि करते रहते हैं। सप्राप्ति काल के पश्चात् 'आक्रमण काल' (Onset) का आरम्भ होता है। इस अवस्था मे सक्रामक रोग अपने लक्षण प्रकट कर देता है। सिर मे भारीपन अनुभव होने लगता है तथा धीरे धीरे बुखार आ जाता है। गले मे हल्की सी सूजन आ जाती है तथा खाल पर लाल लाल दाने उभर आते हैं। धीरे-धीरे रोग गम्भीर रूप धारण कर लेता है।

सक्रमण काल का अन्त, रोगी की मृत्यु या प्रतिविष (Anti toxins) द्वारा रोगाणुओं के नष्ट करने पर ही होता है। प्रतिविष देने से रोग के सकट का भय दूर हो जाता है, परन्तु रोग का प्रभाव कुछ काल तक चलता रहता है। रोगाणुओं के आक्रमण तथा सघर्ष के कारण रोगी का शरीर जर्जरित हो जाता है। अत पुन स्वस्थ होने मे पर्याप्त समय लगता है। यदि शरीर के स्वस्थ होने मे अत्यधिक समय लग जाता है, तो रोग के आक्रमण की आशका रहती है जिसे पुन आक्रमण (Relapse) कहकर पुकारते हैं।

सक्रमण अवस्था की रोकथाम

१—सूचना (Natification)—छूत के जितने भी रोग हैं, उनके फैलने की सूचना सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग को शीघ्र से शीघ्र दे दी जाय जिससे वे रोगो की रोकथाम का उचित प्रबन्ध कर सकें।

२—पृथक्करण (Isolation)—छूत के रोग एक-दूसरे के सम्पर्क से फैलते हैं अतः रोगी व्यक्तियों को स्वस्थ व्यक्तियों से अलग रखा जाय।

३—अलग करना (Segregation)—रोगी के पास रहने वाले व्यक्तियों को विद्यालय में आने से रोक देना चाहिए।

४—रोग क्षमता की उत्पत्ति करना (Immunisation)—रोगाणुओं से शरीर की रक्षा रोगी के टीके लगवा कर की जा सकती है। हैजे आदि के टीके लग जाने से शरीर में रोगाणुओं के विरुद्ध क्षमता उत्पन्न हो जाती है। रोग के बढ़ने का भय कम रहता है।

५—निरोधपन काल (Quarantine Period)—जो व्यक्ति संक्रामक वातावरण में रह चुके हैं तथा जिनसे छूत लगने का भय है, ऐसे व्यक्तियों को संप्राप्ति काल के समाप्त होने तक अलग विशेष देख रेख में रखा जाय। इस काल के पश्चात् या मध्य में रोग के चिह्न प्रकट हो जायेंगे या छूत से छुटकारा प्राप्त हो जायगा।

६—विसंक्रमण (Disinfection)—रोगी जिन वस्तुओं का प्रयोग करता है वे रोगाणु युक्त हो जाती हैं। अतः रोगी के वस्त्र, बर्तन, बिस्तर, मेज, कुर्सी आदि सभी प्रयोग की गई वस्तुओं को सावधानी के साथ नष्ट कर दिया जाय। रोगी द्वारा प्रयोग की गई वस्तुओं को प्रयोग करने से रोग तीव्रता के साथ फैलते हैं।

विसंक्रमण के साधन—विसंक्रमण का तात्पर्य रोगाणुओं को पूर्ण रूप से नष्ट करने से है। अग्नि या तीव्र ताप द्वारा रोगाणु नष्ट हो जाते हैं। अतः रोगी के मल, मूत्र, थूक आदि को जलाया जा सकता है। कुछ रोगाणु तीव्र धूप में नष्ट हो जाते हैं, उदाहरण के लिए टाइफाइड और राजयक्ष्मा के कीटाणु। इस प्रकार के रोगी के वस्त्र तथा प्रयोग की गई वस्तुएँ धूप में सुखा दी जाएँ। वस्त्रों को पानी में उबालने से भी संक्रामक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। पानी में यदि सोडियम कार्बोनेट मिला दिया जाय तो विसंक्रमण और अधिक प्रभावशाली हो जाता है।

विसंक्रमण के प्रमुख तत्त्व—कार्बोलिक एसिड, पोटाश या लाल दवा, फारमेलिन, सल्फर डाइ ऑक्साइड आदि हैं। लाल दवा का प्रयोग पीने के पानी में डालने के लिए किया जाता है, इससे हैजे के कीटाणु मर जाते हैं। क्लोरीन के घोल से कमरे की सफाई की जा सकती है। यह घोल शुद्ध करने के काम में भी आता है। सल्फर डाइ ऑक्साइड के धुएँ द्वारा कमरा शुद्ध हो जाता है।

सारांश

संक्रामक रोग अत्यन्त तीव्रता से फैलते हैं। संक्रामक रोग का अर्थ—उन रोगों से है जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को अप्रत्यक्ष रूप से लग जाया करते हैं।

संक्रामक रोगों के कारण—संक्रामक रोगों का प्रमुख कारण छोटे-छोटे जीवाणु हैं। इन जीवाणुओं के द्वारा ही विभिन्न रोग फैलते हैं। ये जीवाणु आकार में अत्यन्त लघु होते हैं। इन्हें हम साधारण दृष्टि से नहीं देख सकते।

सक्रामक रोगों के फलने की विधि—(१) वायु द्वारा, (२) भोजन तथा जल द्वारा, (३) कीट द्वारा, (४) सम्पक द्वारा, (५) चम के माध्यम स, (६) जननन्द्रियो क माध्यम से, (७) रोग के सवाहक द्वारा।

सक्रामक रोगो की विशेषताएँ—(१) प्रत्यक रोग की निश्चित अवधि। (२) प्रत्यक रोग का कारण जीवाणु या रोगाणु। (३) प्रथम बार क आक्रमण से रोग-क्षमता आ जाती है। (४) एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के लग जाता है। (५) सक्रामक राग का आक्रमण होने पर भी रागी को कुछ विशेष अवस्था मे से गुजरना पडता है।

सक्रामक अवस्था की रोकथाम—(१) सूचना, (२) पृथक्करण, (३) अलग करना, (४) राग क्षमता की उत्पत्ति करना, (५) निरोधपन काल, (६) विसक्रमण।

विसक्रमण के साधन—अग्नि का तीव्र ताप, तीव्र धूप, उबालना।

विसक्रमण के प्रमुख तत्व—कार्बोलिक ऐसिड, पोटाश या लाल दवा, फोरमलिन, सल्फर डाइ ऑक्साइड।

१६

विभिन्न सक्रामक रोग

VARIOUS INFECTIOUS DISEASES

Q Give the symptoms of small pox What precautions would you ask your students to take when disease appears in the locality ? (B H U, 1952)

प्रश्न—चेचक के लक्षणों का उल्लेख करो। जब आस पास इसका प्रकोप हो तो आप उसकी रोकथाम के लिए छात्रों को क्या आदेश देंगे ?

उत्तर—

विभिन्न सक्रामक रोग

१ चेचक (Samll Pox)—हमारे देश म यह रोग आमतौर से प्रचलित है। गाँवो म असावधानी के कारण यह बहुत तीव्रता के साथ फैलता है। परन्तु वर्तमान काल मे इसका टीका बन जाने से इस रोग की पर्याप्त रोक थाम हो गई है।

रोग के लक्षण सप्राप्ति काल के १०, १२ दिन के बाद ही प्रगट हो जाते हैं।

रोग के लक्षण (Symptoms of the Disease)—इस रोग म शरीर के ऊपरी भाग पर लाल दाने प्रगट हो जाते हैं तथा रोगी को सिर म और कटि प्रदेश मे पीडा, ज्वर आदि का आभास होने लगता है। धीरे धीरे य दोनो आकार म बड़े हो जाते हैं और इनम पीव पड जाता है। कुछ दिन के पश्चात् दाने सूख जाते हैं और उनमे खुरट पड जाता है।

रोग की रोकथाम—(1) चेचक अत्यधिक तीव्र सक्रामक रोग है। इसके रोगाणु रोगी की साँसो, थूक, वस्त्र, खुरट आदि म प्रवेश कर जाते हैं। जो वायु द्वारा स्वस्थ व्यक्तियो के शरीर म जाकर अस्वस्थ बना देते हैं। अत रोगाणुओं को नष्ट करने का भरसक प्रयत्न किया जाय। रोगी के खखार या थूक, खुरट, पहने कपड़ो आदि को पूर्णतया जला देना चाहिए। प्रयोग म आने वाले बरतन तथा बिस्तरे का भली भाँति विसक्रमण कर दिया जाय।

(ii) जिन स्थानो पर यह रोग फल रहा हो वहा सबको टीका अवश्य लगवा लेना चाहिए। छोटे बालको के टीका लगवाना परम आवश्यक है। यह रोग बालको म शीघ्रता स फलता है। टीके का प्रभाव प्राय सात वप तक रहता है।

(iii) जो व्यक्ति इस रोग से पीडित है उसे स्वस्थ लोगो से अलग कमरे मे रखा जाय। उसके आस पास आने जाने वाले को टीका लगवा लेना चाहिए।

(iv) रोगी के मल मूत्र आदि को भस्म कर दिया जाय।

विद्यालय में सावधानी—विद्यालय के किसी छात्र मे इस रोग के लक्षण दिखाई दें, तो उसे तुरन्त घर भेज दिया जाय तथा सक्रमण काल जब तक समाप्त नहो हो जाय, तब तक उन्हे विद्यालय म प्रवेश करने की आज्ञा न दी जाय।

२ खसरा (Measles)—चेचक की भाति यह रोग भी छोटे बालको को अधिक पीडित करता है। रोग की लापरवाही करने से कभी कभी भयकर परिणाम होते है। अत रोग के चिह्न प्रकट होते ही तुरन्त उपचार होना चाहिए। फिर भी यह रोग चेचक स कम हानिप्रद होता है।

खसरे का सप्राप्ति काल प्राय ६ से १४ दिन तक चलता है।

रोग क लक्षण—प्रारम्भ म साधारण जुकाम होता है तथा सिर के अन्दर हल्का-हल्का दद होता है। धीरे धीरे ज्वर बढ जाता है। चौथे शरीर पर छोटे-छोटे लाल दाने निकल आते हैं। दानो का आरम्भ सवप्रथम छाती से होता है। रोगी का शरीर दुबल हो जाता है। अत एसी दशा म जरा सी असावधानी से निमोनिया होने का भय रहता है। निमोनिया का सन्देह होने पर तुरन्त डाक्टर को सूचना दी जाय। तीव्र बुखार क दो या तीन दिन बाद दाने ढल जाते है और भूसी शेष रह जाती है।

खसरा के रोगाणु रोगी की साँस तथा मुख से निकलने वाली लार मे रहते है जो वायु तथा सम्पक द्वारा दूसरो तक पहुच जाते हैं।

रोग की रोकथाम—(i) जिन छात्रो म रोग के लक्षण प्रकट हो जाएँ उन्ह कम से कम तीन सप्ताह का अवकाश प्रदान किया जाय। एक बालक के रोगी होने के पश्चात् यदि कोई दूसरा बालक सर्दी या जुकाम का अनुभव करता है तो उसे भी विद्यालय से छुट्टी प्रदान की जाय।

(ii) रोगी छात्रो क अभिभावकों को रोग की गम्भीरता तथा उपचार के विषय म उचित निर्देश प्रदान किए जायें।

(iii) रोगी छात्र को अलग कमरे म लिटाया जाय। जहाँ तक हो सके शीत के आक्रमण स रोगी की रक्षा की जाय।

३ छोटी माता (Chicken Pox)—यह रोग भी हमारे देश म आमतौर म प्रचलित है परन्तु शरीर पर इसका अधिक बुरा प्रभाव नही पडता है।

रोग का सप्राप्ति काल प्राय १२ स २०, २१ दिन तक का होना है।

इसमे भी दाने सर्वप्रथम छाती से आरम्भ होते हैं और दो दिन पश्चात् मुख, हाथ, पैर पर छा जाते हैं। दानो का स्वरूप पहले छोटा होता है पर कुछ समय पश्चात् फफोलो का रूप ले लेते है जिनमे पानी भर जाता है। तीन चार दिन के पश्चात् फफोले सूख जाते हैं और उनमे पपडी सी पड जाती है। कुछ काल के बाद पपडी भी सूखकर गिर जाती है।

रोग के लक्षण—ज्वर के साथ रोगी के शरीर पर दाने निकल आते हैं।

इस रोग मे भी रोगाणु रोगी के थूक तथा खुरण्टो द्वारा फैलते हैं। रोगी के जब तक खुरण्ट पूर्णतया नष्ट नही हो जाते, तब तक रोग की छूत फैलने की सम्भावना रहती है।

रोग की रोकथाम—(i) रोग के चिह्न प्रकट होते ही तुरन्त सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग को सूचना दे दी जाय।

(ii) रोग ग्रस्त छात्रो को विद्यालय मे आने दिया जाय, जब तक कि पपडी पूर्णतया अलग न हो जाय।

(iii) रोगी को अलग कमरे मे रखा जाय तथा उसके द्वारा प्रयोग किये गए कपडे तथा बर्तनो का विसंक्रमण कर दिया जाय। खुरण्टो को जहाँ तक हो सके जला दिया जाय।

४ हैजा (Cholera)—हैजे के कीटाणु शरीर मे भोजन तथा जल द्वारा प्रवेश करते है। यह Cholera Vibrio नामक रोगाणुओ द्वारा फैलता है। यह आकार मे अंग्रेजी के कामा ( ) की तरह का होता है। रोगी के कै तथा दस्त मे ये रोगाणु अत्यधिक मात्रा मे होते है। मक्खियो के द्वारा ये अच्छे भोजन को भी दूषित कर देते है। गर्मी तथा वर्षा काल मे यह रोग अधिक फैलता है।

रोग के लक्षण—वमन के साथ ही दस्त आरम्भ हो जाते हैं। प्रथम दस्त और वमन मे भोजन का ही अंश निकलता है, लेकिन बाद मे चावल की माडी के समान दस्त होते है। दस्त और वमन की गति तीव्रता के साथ बढने लगती है। प्यास अधिक लगती है। चेहरे पर उदासीनता छा जाती है तथा रोगी अपने मे दुर्बलता का अनुभव करने लगता है। हाथ, पैर, मांसपेशियों मे दर्द और ऐंठन होने लगती है। रोगी की यदि तुरन्त चिकित्सा न की जाय तो चार-पाँच घण्टे मे मृत्यु हो सकती है।

रोग की रोकथाम—(i) यदि नगर या विद्यालय मे किसी छात्र को हैजा होता है तो उसकी सूचना तुरन्त सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग को दी जाय। जहाँ तक सम्भव हो रोगी को अस्पताल मे प्रवेश करा दिया जाय। नगर मे हैजा फैलने की सूचना मिलने पर विद्यालय के समस्त छात्रो को टीका लगवा दिया जाय। छात्रो को सडे गले फल तथा बाजार की चीजें खाने के लिए मना कर दिया जाय।

(ii) रोगी के मल तथा वमन को जला दिया जाय।

(iii) पीने के पानी मे लाल दवा डालकर प्रयोग मे लाया जाय।

(iv) पेशावघर तथा पाखाने की पूर्ण रूप से सफाई की जाय तथा प्रतिदिन उनमें फिनाइल डलवाया जाय।

(v) बरसात के दिनो मे हल्का, ताजा तथा ढका हुआ भोजन दिया जाय।

(vi) भोजन को जहाँ तक हो सके, मक्खियो से बचाया जाय।

(vii) फल तथा साग आदि को प्रयोग करने से पहले लाल दवा से धो लिया जाय।

५ कण्ठ रोहिणी (Diptheria)—इस रोग का आक्रमण प्रमुखतया २ वर्ष से ५ वर्ष तक के बालको पर होता है।

सप्राप्ति काल २ से ३ दिन तक होता है।

रोग के लक्षण—बालक का गला सूज जाता है, गर्दन पर की लसिका ग्रन्थियाँ बढ जाती है—कभी कभी श्वास लेने मे कठिनाई होती है। शरीर के किसी भी अग पर लकवे का आक्रमण हो सकता है। ज्वर १०३° से १०४° तक हो जाता है। कभी-कभी हृदय की मासपेशियाँ जड हो जाती हैं, परिणामस्वरूप रोगी की मृत्यु हो जाती है।

इस रोग की छूत का प्रसार रोगी के थूक, नाक के स्राव तथा खासते या बोलते समय रोगाणुओ के हवा मे मिल जाने से होता है। कभी कभी रोगी द्वारा प्रयोग किये जाने वाले पात्रो को यदि कोई स्वस्थ व्यक्ति प्रयोग कर लेता है, तो उसके शरीर मे मुख द्वार से रोगाणु चले जाते हैं।

रोग की रोकथाम—(i) जिन छात्रो को कण्ठ रोहिणी हो गई है, उन्हे विद्यालय से अवकाश प्रदान कर दिया जाय तथा जिन बालको के गले मे डिप्थीरिया के रोगाणु हो, उन्हे भी विद्यालय से अलग कर दिया जाय।

(ii) यदि किसी छात्र के गले मे सूजन तथा बुखार आदि का आक्रमण हो रहा हो उसे भी तुरन्त छुट्टी दे दी जाय।

(iii) जिस बालक पर डिप्थीरिया के आक्रमण का सन्देह हो, उसके थूक तथा खकार की जाँच करवाई जाय।

(iv) रोगी छात्र के किसी भी भाई बहिन को विद्यालय मे १० दिन तक न आने दिया जाय। रोगी बालक की समस्त वस्तुओ का विसक्रमण कर दिया जाय।

(v) रोग के लक्षण प्रकट होने पर तुरन्त ही (Anti Diptheria Injection) लगवा दिया जाय।

(vi) शिक टेस्ट (Shick Test) द्वारा स्वस्थ छात्रो की जाँच करवाई जाय।

६ इन्फ्लूएँजा (Influenza)—यह रोग अत्यन्त तीव्रता के साथ फैलता है। इसका प्रसार एक विषैले तत्व के कारण होता है। कभी-कभी यह महामारी का रूप धारण कर लेता है।

रोग का प्रसार, रोगी की श्वास, खकार तथा थूक मे मिले रोगाणुओ के वायु मे मिलकर स्वस्थ व्यक्ति तक पहुँचने से होता है।

रोग का सम्प्राप्ति काल कुछ घण्टो से कुछ दिन तक रहता है।

रोग के लक्षण—शरीर म पहले हल्का ज्वर होना है तथा साथ ही छींकें आने लगती है। सिर म पीडा का अनुभव होने लगता है तथा कमर में ऐंठन उठने लगती है। गले के अन्दर सूजन भी आ जाती है। एक दो दिन के ज्वर म ही रोगी अत्यधिक थकान का अनुभव करने लगता है। शरीर म निर्बलता आ जाती है। शीत लग जाने पर निमोनिया हो जाने का भय रहता है जिसम रोगी की मृत्यु तक हो जाने की सम्भावना रहती है। कभी कभी यह रोग एक नगर से दूसरे नगर म इतनी तीव्रता के साथ बढ़ता है कि इसे रोकना कठिन हो जाता है।

रोग की रोकथाम—(i) नगर म रोग फैलने पर जहाँ तक हो सके भीड़ भाड के स्थलो स बचा जाय। सिनेमा, थियेटर, पुस्तकालय आदि का कुछ काल तक के लिए बन्द करवा दिया जाय। आवश्यकता पडने पर विद्यालयो को भी बन्द किया जा सकता है।

(ii) यदि विद्यालय बन्द करने की परिस्थिति नही हो, तो रोगी छात्रों का विद्यालय म आने से कम से कम १५ दिन तक के लिए रोका जाय।

(iii) रोगी छात्र ठीक होने के बाद भी खाँसते या बात करते समय रूमाल मुख पर रख ले।

(iv) बर्फ का पानी तथा बाजार की चीजो का खाने म प्रयोग न करें।

(v) रोगी को अधिक से अधिक आराम दिया जाय।

७ **मलेरिया (Malaria)**—हमारे देश मे मलेरिया से प्रति वर्ष असख्य व्यक्ति रोगग्रस्त होते है। वैसे इस रोग का आक्रमण वर्ष म चाहे जब हो सकता है परन्तु वर्षा काल म इसका जोर अधिक रहता है।

यह रोग एक 'पराश्रयी' (Parasite) द्वारा होता है। ये पराश्रयी 'एनोफिलीज' (Anopheles) मच्छर के शरीर मे प्रवेश कर जाते हैं और जब यह मच्छर किसी व्यक्ति को काटता है तो उसके अन्दर के पराश्रयी व्यक्ति के शरीर म चले जाते हैं। वहा इन पराश्रयियो का अमथुनी चक्र (Asexual Cycle) आरम्भ हो जाता है और इनकी सख्या रक्त मे तीव्रता के साथ बढ़ने लगती है। मच्छर के शरीर के अन्दर इनका मैथुनी चक्र (Sexual Cycle) चलता है। जब मानव शरीर म इन पराश्रयियो की सख्या अत्यधिक बढ जाती है तो मलेरिया बुखार आ जाता है।

रोग के लक्षण—ज्वर का आक्रमण तीव्रता के साथ होता है तथा ज्वर आने मे पूर्व रोगी को शीत का अनुभव होता है। कुछ देर के लिए रोगी का शरीर कम्पायमान हो जाता है। शरीर पीडा से भर जाता है, बुखार की तीव्रता पर कभी कभी वमन भी हो जाता है। ज्वर का ताप चार-पाँच घटे अत्यन्त उच्च रहता है, फिर हल्का हो जाता है। बुखार उतरते समय अधिक पसीना आता है।

रोग की रोकथाम—(i) यदि नगर म मलेरिया का प्रकोप आरम्भ हो जाता

है तो सप्ताह म एक बार स्वस्थ व्यक्तियो को कुनैन की एक गोली खा लेनी चाहिए। कुनैन के स्थान पर पैलोड्रीन का भी प्रयोग किया जा सकता है।

(ii) रोग की रोकथाम के लिए मच्छरो का विनाश परम आवश्यक है। आस पास की भूमि म जो गड्ढे आदि हो, जिनम कीचड एकत्र होने की सम्भावना रहती हो, उन्हे मिट्टी से भरवा दिया जाय। जलपूर्ण गड्ढो मे ही मच्छर अण्डे देते हैं।

(iii) जिन स्थानो पर मच्छरो के अधिक निवास की आशका हो, उन स्थानो पर डी० डी० टी० खूब अच्छी प्रकार से छिडकवा दी जाय।

(iv) वर्षाकाल तथा वर्षाकाल के बाद सोते समय मच्छरदानी का प्रयोग किया जाय।

८. कण फेर (Mumps)—यह रोग अधिक भयकर नही है। कान के सामने वाली गिल्टी सूज जाती है। कीटाणुओ का आक्रमण Subauxilary Glands तथा Sublingual Glands (जिह्वा ग्रन्थियो) पर होता है। कभी-कभी अधिक सूजन के कारण खाना निगलने म बडी दिक्कत होती है। यह कभी कभी खसरे तथा टाईफाइड के साथ भी हो जाता है।

रोग के लक्षण—जबडे के आस पास सूजन आ जाती है। धीरे धीरे दर्द बढता जाता है, जिससे मुख के खोलने तथा भोजन को निगलने म परेशानी होती है।

रोग का सप्राप्ति काल प्राय एक दिन से दो दिन तक रहता है। रोग के कीटाणु रोगी की सास तथा लार मे रहते हैं।

उपचार—रोगी बालक को विद्यालय स दूर रखा जाय। रोगी के बिस्तर को गरम रखा जाय तथा जब तक सूजन रहे हल्का भोजन ही दिया जाय।

९. लाल बुखार (Scarlet Fever)—यह रोग प्राय ५ से १० वर्ष तक की आयु के छात्रो म फैलता है। इस रोग के कीटाणु टान्सिलो के माध्यम से शरीर म पहुचते हैं। रोग का आक्रमण अचानक होता है।

लक्षण—रोगी पीला पड जाता है तथा कभी कभी कँपकँपी का अनुभव होने लगता है। वमन के साथ साथ पीडा का भी अनुभव होता है। चर्म शुष्क हो जाती है तथा चेहरे पर लालपन छा जाता है। गर्दन से वक्षस्थल पर छोटे-छोटे दाने (Rash) निकल आते हैं। धीरे धीरे ये दाने आमाशय तथा हाथ पैरो पर फैल जाते हैं। ये दाने लालपन लिए होते हैं। जीभ भी लाल हो जाती है टान्सिलो म सूजन आ जाती है।

साधारणतया यह रोग थूक म मिले कीटाणुओ द्वारा फैलता है। नाक सिनकने से भी रोग फैलता है। रोगी द्वारा प्रयोग म लाई गई वस्तुएँ भी प्रसार का कारण बन जाती हैं।

उपचार—जो बालक इस रोग से पीडित हो, उन्हे विद्यालय से तुरन्त अवकाश दे दिया जाय। जब तक रोगी बालक पूर्ण स्वस्थ न हो जाय, तब तक उसे

विद्यालय म न जाने दिया जाय। जिन दिनो यह रोग फैल रहा हो उन दिनो जिन बालको पर स देह हो, उनकी डिक टेस्ट' (Dick-Test) प्रणाली से परी ा ली जाय।

१० क्षय रोग (Tuberculosis)—यह अत्यन्त तीव्र तथा घातक संक्रामक रोग है। इस रोग का प्रसार क्षय रोगाणु (Tubercle Bacillus) द्वारा होता है। इन रोगाणुओ की खोज राबर्ट कोच (Robert Koch) ने की थी। रोगाणु के दो रूप होते है—(१) मानवी (Human), (२) पाशविक (Bovine)। पहले प्रकार के रोगाणु मनुष्यो पर आक्रमण करते हैं तथा दूसरे प्रकार के पशुओ पर। रोगाणुओ का आक्रमण शरीर के किसी भी अंग पर हो सकता है।

हमारे देश म यह रोग दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है, यद्यपि इसकी रोक थाम के लिए सरकार प्रयत्नशील है। मुख्यतया इस रोग को निम्नाकित दो भागो म बाटा गया है—

१—फुफ्फुसीय (Pulmonary)

२—अफुफ्फुसीय (Non Pulmonary)

१ फुफ्फुसीय क्षय रोग Pulmonary Thysis

इस रोग म रोगाणुओ का आक्रमण, प्राय फेफडो पर ही होता है।

रोग के कारण—रोग के कारणो को हम दो भागो मे बाट सकते हैं—(१) पूर्व निर्धारित (Pre disposing) तथा (२) निश्चयात्मक (Determining)।

१ **पूर्व निर्धारित कारण**—इनम वंश परम्परा का कारण प्रमुख है। एक बार किसी परिवार म क्षय रोग हो जाता है तो वह पीढी दर पीढी चलता रहता है। लम्बी व्याधि तथा निमोनिया, इन्फ्लूएँजा आदि रोगो म शरीर म निबलता आ जाती है तो रोगाणु सरलता से पनपते है।

घनी बस्तियो म प्रकाशहीन घर जिनमे वायु का प्रवाह नहा होता तथा आस पास धूल उडती रहती है, इस प्रकार के घरो म रहने वाले व्यक्ति प्राय क्षय रोग से पीडित रहते है।

अधिक काय, अपौष्टिक भोजन तथा मद्यपान करने से क्षय का आक्रमण सरलता से होता है। क्षय पीडित गायो का दूध पीना भी इस रोग का कारण है।

२ **निश्चयात्मक कारण**—इनम क्षय रोग के रोगाणु स्वय भाग लेते हैं। इन रोगाणुओ की प्रमुख विशेषता यह है कि य अत्य त कठिनाई से नष्ट होते हैं। केवल धूप के प्रकाश म ही इनका विनाश होता है। रोगी के थूक तथा कफ म इनका निवास रहता है। यह थूक और कफ धूल म मिलकर सूख जाता है और हवा चलने पर धूल उडकर स्वस्थ व्यक्तियो तक पहुच कर नाक द्वारा फेफडो म रोगाणु पहुचा देती है।

रोग के लक्षण—खांसी का बना रहना, इस रोग का प्रमुख लक्षण है। रोग के बढ़ जाने पर शरीर में हल्का-हल्का ज्वर बना रहता है। दुर्बलता धीरे-धीरे शरीर पर अधिकार जमा लेती है। खांसते समय खकार के साथ रक्त भी निकल आता है। वजन घटता जाता है, भूख कम हो जाती है। दिन भर शरीर थका थका सा रहता है। खेलने-कूदने की इच्छा बिलकुल नहीं होती।

रोग की रोकथाम—(i) जहाँ तक सम्भव हो सके, क्षय रोग के रोगियों से दूर रहा जाय। मकानों में पर्याप्त रूप से रोशनदान तथा खिड़कियाँ हों, जिसमें प्रकाश और वायु का प्रवेश सरलता के साथ हो सके।

(ii) भीड़ तथा धूल युक्त वातावरण से बचा जाय। भोजन की पौष्टिकता पर विशेष रूप से बल देना चाहिए।

(iii) क्षय के रोगी को चाहे जहां नहीं थूकने दिया जाय। थूकदान के थूक को तुरन्त जला दिया जाय।

(iv) लम्बी खांसी का तुरन्त उपचार किया जाय। निमोनिया तथा ब्रोंकाइटिस जैसे रोगों के उपरान्त पौष्टिक भोजन और विशेष टानिक प्रयोग करना उचित है, जिससे शरीर में रोग क्षमता आ जाय।

(v) रोग क्षमता प्रदान करने वाले B C G के इन्जेक्शनों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

२ अफुफ्फुसीय क्षय रोग Non Pulmonary Thysis

अफुफ्फुसीय क्षय का तात्पर्य रोगाणुओं का शरीर के किसी अंग या तन्तु को प्रभावित करने से है। इसमें निम्नलिखित रोग सम्मिलित हैं—

(क) लसिका ग्रन्थियों का क्षय—रोगाणुओं का सबसे अधिक आक्रमण गर्दन की ग्रन्थियों पर होता है। ग्रन्थियों में सूजन आ जाती है और उनमें घाव पड़ जाते हैं।

इस रोग के उपचार के लिए पराकासनी रश्मियों (*Ultraviolet Rays*) का प्रयोग अत्यधिक लाभदायक रहा है।

(ख) अन्तड़ियों का क्षय—आँतों पर क्षय के रोगाणु जब आक्रमण कर देते हैं तब आँतों का क्षय हो जाता है। इस रोग का आक्रमण मुख्यतया छोटे बालकों पर अधिक होता है। यह मुख्यतया रोगग्रस्त गाय का दूध पीने से होता है। इसमें रोगी को या तो दस्त आते हैं या कब्ज रहता है। शरीर को ज्वर घेरे रहता है। योग्य डाक्टर द्वारा उपचार करवाया जाय।

(ग) अस्थियों का क्षय—अस्थियों के जोड़ों में थोड़ी सूजन आ जाती है तथा कुछ पीड़ा का अनुभव होता है, बाद में पस पड़ जाता है। इस रोग में सूर्य का उपचार (Helio therapy) अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है।

जहाँ तक सम्भव हो सके रोगी छात्रों को सेनिटोरियम में रखा जाय।

११ मोतीझरा (Typhoid)—इस रोग के रोगाणु Bacillus Typhoid के नाम से पुकारे जाते हैं। मनुष्य के पेट में ये रोगाणु भोजन तथा जल द्वारा पहुंच जाते है। मल के अन्दर रोगाणु सबसे अधिक पाये जाते हैं। मक्खियाँ मल पर से उड़कर, भोजन और जल पर बैठ जाती हैं, जिससे भोजन और जल में रोगाणु प्रवेश कर जाते हैं।

सामान्य १२ से १४ दिन में रोग के लक्षण प्रगट हो जाते हैं।

रोग के लक्षण—शरीर पर ज्वर का आक्रमण होता है। ज्वर का प्रकार धीरे धीरे बढ़ता है तथा कम से-कम तीन सप्ताह तक रहता है। सन्ध्या समय तापक्रम तीव्र हो जाता है तथा प्रातःकाल घट जाता है। पेट खराब रहता है। दूसरे सप्ताह में गले के आस पास दाने निकल आते हैं।

रोग की रोकथाम—(i) रोग फैलने की सूचना तुरन्त ही सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग को दे देनी चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो सके, रोगी को पृथक छूत के रोगों के अस्पताल में रखा जाय। रोगी की कै, दस्त, थूक आदि को जला दिया जाय तथा वस्त्रों और प्रयोग में आने वाली वस्तुओं का विसंक्रमण कर देना चाहिए।

(ii) रोगी की जूठन को कदापि न खाया जाय। स्वस्थ व्यक्तियों को मोती झरे का टीका लगवाना चाहिए। भोजन की वस्तुओं को खुला न छोड़ा जाय।

(iii) रोगी को बिस्तर पर ही लेटे रहने दिया जाय।

(iv) रोगी को ज्वर काल में अन्न तनिक भी नहीं दिया जाय। दूध तथा फल डाक्टर की राय से दिये जायें।

Q Write note on (1) Prevention of infection, (2) Whoo pign Cough (B H U 1931)

प्रश्न—(१) संक्रामक रोग की रोकथाम और (२) काली खांसी पर टिप्पणी लिखो।

उत्तर—१ काली खाँसी (Whooping Cough)—यह रोग मुख्यतया छोटे बालकों को सताता है। छोटे बालकों पर जब इसका आक्रमण होता है तो उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती है। खांसते खांसते बच्चों का बुरा हाल हो जाता है। रोग के अधिक दिन तक रहने पर निमोनिया या क्षय रोग होने का भय रहता है। अतः इस रोग का तुरन्त उपचार कराया जाय।

रोग के लक्षण—रोगी प्रथम सप्ताह जुकाम से पीड़ित रहता है, बाद में खांसी के दौरे एक के बाद एक शीघ्रता के साथ पड़ने लगते है। रात्रि को प्रकोप और भी अधिक हो जाता है, यहाँ तक कि बालक को ठीक से नींद तक नहीं आ पाती। कभी कभी खांसते खांसते उल्टी तक हो जाती है।

रोग प्रसार संसर्ग तथा रोगी की वस्तुओं के प्रयोग करने से होता है।

रोग की रोकथाम—(i) रोगी को शीत से बचाया जाय। रोग के बढ़ने पर डॉक्टर को दिखाकर सावधानी से उपचार कराना चाहिए।

(ii) काली खाँसी के रोगी को विद्यालय मे न आने दिया जाय। यह रोग वायु द्वारा एक-दूसरे के सम्पक से अत्यन्त तीव्रता के साथ फैलता है। रोगी को हल्का, पौष्टिक भाजन दिया जाय।

२ निद्रा रोग (Encephalitis Lethargicia)—इस रोग का प्रभाव स्नायविक सस्थान पर पडता है।

रोग का सप्राप्ति काल ७ दिन से २ सप्ताह तक चलता है।

रोग के लक्षण—रोग का आरम्भ गले की सूजन से होता है। रोगी नेत्रो मे जलन का अनुभव भी करने लगता है। धीरे-धीरे रोगी पर सुस्ती छा जाती है जोकि आगे चलकर मूर्च्छा का रूप धारण कर लेती है। वालक की जवान भी लड-खडाने लगती है।

रोगाणु एक दूसरे के सम्पक द्वारा फैलते हैं तथा आख, नाक, कान या गले मे प्रवेश कर जाते हैं।

रोग की रोकथाम—रोगी वालक को स्वस्थ वालको से तुरन्त अलग कर दिया जाय। जहा तक सम्भव हा सके, रोगी को अस्पताल भेज दिया जाय। जो वालक रोगी के सम्पक म रहे हो, उ ह भी विद्यालय से एक सप्ताह का अवकाश प्रदान कर देना चाहिए।

३ शिशु पक्षाघात (Poliomyelitis)—यह रोग पाच वष तक की आयु के वालका को होता है। इसके रोगाणु शरीर मे प्रवेश करके वे द्र त्यागी सूत्रो का विनाश कर दत हैं।

रोग का सप्राप्ति काल प्राय २ से १० दिन तक है। यह रोग रोगी के थूक तथा मल मूत्र द्वारा प्रसारित होता है। सवाहक द्वारा भी यह रोग फैलता है।

लक्षण—पहले रोगी साधारण जुकाम और हरारत का अनुभव करता है। धीरे धीरे गले मे सूजन हाने लगती है, कमर म भी दद उठने लगता है। मासपेशिया दुवल हो जाने के कारण लकवे का शिकार हो जाती हैं।

रोग की रोकथाम—रोगी को स्वस्थ छात्रो से अलग रखा जाय। रोग सवा-हको को विद्यालय म आने से रोका जाय।

४ मस्तिष्क सुषुम्ना की झिल्ली में सूजन (Cerebro Spinal Fever, Meningitis)—यह रोग भी पाँच वष से कम आयु के वालको को होता है। रोग का कारण मस्तिष्क तथा सुषुम्ना पर चढी झिल्ली पर सूजन का आना है।

इसका सप्राप्ति काल २ से ५ दिन होता है।

रोग के लक्षण—रोगी के सिर म तीव्र पीडा होती है। ज्वर और गदन मे कडापन एक साथ अनुभव होता है। धीरे धीरे कडापन समस्त शरीर म फैल जाता है। मस्तिष्क म सुस्ती तथा सज्ञाहीनता आ जाती है। कभी कभी शरीर पर दाने भी निकल आते हैं। शरीर के कुछ अग निष्क्रिय भी वने रह सकते हैं।

रोग की रोकथाम—यह रोग रोगी की नाक तथा थूक द्वारा प्रसारित रोगाणुओं से फैलता है। रोगी के नाक छिनकते तथा खाँसते समय रोगाणु वायु में प्रसारित हो जाते हैं और स्वस्थ व्यक्तियों तक पहुँच कर उन्हें प्रभावित करते हैं।

रोगी की भयंकरता को ध्यान में रखते हुए जहाँ तक सम्भव हो, रोगी को स्वस्थ बालकों से दूर रखा जाय। यदि अस्पताल में रोगी को रखा जा सके तो अति उत्तम है।

प्लेग
(Plague)

Q Write a short note on plague (L T 1956)

प्रश्न—प्लेग पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखो। (एल० टी० १९५६)

उत्तर—प्लेग हमारे देश का अत्यन्त भयंकर संक्रामक रोग है। यह महामारी के रूप में जब फैलता है तो गाँव के गाँव नष्ट हो जाते हैं। प्लेग का जीवाणु बेसिलस पेस्टिस (Bacillus Pestis) होता है। यह जीवाणु पहले चूहों पर फैलता है तथा बाद में मनुष्यों में फैलता है। जिन चूहों पर प्लेग का आक्रमण हो जाता है उनके परों का रंग हल्का लाल होता है। इस रोग का प्रसार-काल शरद तथा मार्च अप्रैल का महीना है।

इसका सम्प्राप्ति काल १० से १४ दिन तक का है।

रोग के लक्षण—जब यह रोग फैलता है तो कुछ काल में ही अनेक चूहे मरने लगते हैं। रोग के आक्रमण के पश्चात् ज्वर तीव्रता के साथ चढ़ता है तथा कुछ काल में ही १०७ फा० तक तापक्रम पहुँच जाता है। प्यास बड़ी तीव्रता के साथ लगने लगती है। कभी कभी अत्यन्त पतले दस्त होते हैं। चार पाँच दिन में जंघा के ऊपर के भाग में गिल्टी उछल आती है। रोग के अधिक बढ़ जाने पर निमोनिया होने की सम्भावना रहती है।

रोग की रोकथाम—जिस मकान में अधिक संख्या में चूहे मरने लगें उसे तुरंत छोड़ देना चाहिए। सील युक्त स्थानों पर गंधक जलाना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर इंजक्शन लगवाया जाय।

१ चेचक (Small Pox)—लक्षण—शरीर के ऊपरी भाग पर दाने चमकने लगते हैं। सिर तथा कटि प्रदेश में ज्वर। बाद में दानों में पीव पड़ने लगता है।

रोकथाम—अत्यन्त संक्रामक रोग है। रोगाणुओं को नष्ट करने का प्रयत्न किया जाय। थूक, खकार, गुरण्ट तथा रोगी के कपड़ों को जला दिया जाय। जहाँ यह रोग फैल रहा हो वहाँ सबको टीका लगवा देना चाहिए।

२ खसरा (Measles)—छोटे बालकों को होता है। सम्प्राप्ति काल ७ से १४ दिन तक रहता है।

लक्षण—प्रारम्भ मे साधारण जुकाम, चौथे दिन शरीर पर छोटे छोटे दाने निकल आते हैं। असावधानी से निमोनिया का भय। रोगाणु रोगी की लार तथा साम म रहते हैं।

रोकथाम—रोगी को कम से कम तीन सप्ताह का अवकाश दिया जाय। सन्देहास्पद छात्रों को अवकाश दे दिया जाय। रोगी को शीत से बचाया जाय।

३ छोटी माता (Chicken Pox)—सम्प्राप्ति काल प्राय १२ से २० दिन तक होता है।

लक्षण—ज्वर के साथ रोगी के शरीर पर दाने निकल आते है। पहले दाने छोटे होते है, बाद म बडे होकर फफोले बन जाते हैं। इस रोग के भी रोगाणु रोगी के थूक तथा पुरण्टा द्वारा फैलते हैं।

रोकथाम—स्वास्थ्य विभाग को सूचना दी जाय। रोग ग्रस्त छात्रों को अलग रखा जाय।

४ हैजा—इसके कीटाणु शरीर म भोजन तथा जल द्वारा प्रवेश करते हैं।

लक्षण—वमन के साथ दस्त आरम्भ हो जाते हैं। अधिक प्यास लगती है।

रोकथाम—सूचना दी जाय। रोगी का मल तथा वमन जला दिया जाय।

५ इन्फ्लुएंजा—रोगी की श्वास, खकार तथा थूक म मिले कीटाणु होते है। पहले हल्का ज्वर होता है, सिर म पीडा का अनुभव होने लगता है। थकान का अनुभव होने लगता है। भीड भाड के स्थलों से बचा जाय। बाजार की कोई वस्तु प्रयोग म न लाई जाय। रोगी को आराम दिया जाय। आवश्यकता पडने पर स्कूल बन्द कर दिए जाएँ।

६ मलेरिया (Malaria)—यह रोग एक पराश्रयी (Parasite) द्वारा होता है, जो कि एनाफिलीज मच्छर म प्रवेश कर जाते हैं। ज्वर का आक्रमण तीव्रता से होता है। रोगी शीत का अनुभव करता है। कुनैन की गोली इस रोग म विशेष लाभदायक है। मच्छरों का विनाश किया जाय।

७ क्षय रोग—इसके रोगाणु दो प्रकार के होते हैं—(१) मानवी, और (२) पाशविक। रोग दो भागों म बाँटा जा सकता है—(i) फुफ्फुसीय, और (ii) अफुफ्फुसीय।

२०

घायलों की प्रारम्भिक चिकित्सा

FIRST AID FOR INJURED

Q What epuipment and organization would you have in your school to provide first aid in case of usual accidents to children (A U B T, 1951)

प्रश्न—आप अपने विद्यालय में बालको की सामा य दुघटनाओं की चिकित्सा के हेतु किस साज सज्जा का प्रब ध करेंगे ?

Or

What first aid would you render in the following cases —

(a) Fainting (b) Bleeding, (c) Fracture of the thigh bone or dislocation of elbow joint, and (d) Snake bite ?

अधोलिखित अवसरो पर आप क्या प्राथमिक सहायता प्रदान करेंगे —

(अ) बेहोशी, (ब) खून निकलने पर, (स) जाघ की हड्डी टूट जाने पर, (द) साप के काटने पर ?

Or

What are the common school accidents ? Describe any two of them in details State how you would render proper First aid (B T, 1952)

विद्यालय में होने वाली कौन कौन सी सामा य दुघटनाएँ हैं ? उनमें से दो का उल्लेख करो । आप उनको प्राथमिक चिकित्सा किस प्रकार प्रदान करेंगे ?

Or

What first aid would you render in one of the following cases —

(a) Severe electric shock, (b) A snake, bite, (c) A boy or girl whose clothes caught fire, (d) Excessive bleeding, (e) A fainting fit (A U, B T, 1958)

निम्नलिखित दशाओं में से किसी एक पर आप क्या प्राथमिक सहायता करेंगे ?

(अ) बिजली का झटका लगना, (ब) सांप का काटना, (स) लड़का या लड़की जिसके कपड़ों में आग लग गई हो, (द) रक्त स्राव की अधिकता हो, (य) बेहोशी का दौरा।

उत्तर—विद्यालय के अन्दर आकस्मिक दुर्घटनाएँ प्राय हो जाया करती है। किशोरों के अन्दर अतिरिक्त शक्ति का भण्डार होता है व सभी कुछ न-कुछ दौड़-भाग करते ही रहते हैं, अत चोट आदि का लग जाना एक साधारण सी बात हो जाती है। इसी प्रकार प्रयोगशाला म काम करते समय बालक आये दिन गड्ढे म फस जाया करते हैं। छात्रों की चोटों का तथा सामान्य दुर्घटनाओं का उपचार करने के लिए 'प्राथमिक चिकित्सा' का ज्ञान परम आवश्यक है।

प्राथमिक चिकित्सा का एक विभाग विद्यालय म स्थापित किया जाय। जिसके कार्य आदि की देख भाल के लिए एक योग्य अध्यापक की नियुक्ति होनी चाहिए, जो प्राथमिक चिकित्सा का पर्याप्त ज्ञान रखता हो। प्राथमिक चिकित्सा म आने वाले निम्न सामान को प्राथमिक चिकित्सा विभाग म मँगवा कर रखा जाय।

१—तिकोन आकार की पट्टियाँ (Triangular Bandages)—इनका प्रयोग घावो तथा हड्डी टूटने पर किया जाता है।
२—खपचियाँ (Splints)—इनका प्रयोग हड्डी टूटने पर किया जाता है।
३—पर्याप्त मात्रा म स्वच्छ रुई।
४—पैडस (Pads)
५—आलपिन तथा सेफ्टीपिन।
६—कैंची।
७—घाव पर बाँधने की पट्टियाँ।

उपर्युक्त सामान के अतिरिक्त कुछ दवाइयों का होना परम आवश्यक है, जैसे—

१—टिंचर आयोडीन (Tincture of Iodine),
२—लाल दवा,
३—सोडा बाई कार्ब,
४—स्प्रिट
५—पीली दवा,
६—नमक (Common Salt) और
७—जैतून का तेल (Olive oil)

मोच (Sprain)—फुटबॉल या दौड़ते-भागते समय हड्डी के जोड़ो पर अचानक झटका लग जाने से मोच आ जाती है। मोच आने के कारण जोड़ा के चारो ओर के अस्थि बन्धनों (Ligaments) का खिंच जाना या टूट जाना है।

मोच के लक्षण—जिस स्थान पर मोच आती है वहाँ पर अत्यधिक पीड़ा होता है। सूजन अत्यधिक आ जाती है।

उपचार—१ जिस स्थान पर मोच आई हो, उस स्थान पर जल की शीतल पट्टी का उपयोग किया जाय। अफीम का लेप भी लाभ पहुँचाता है।

२ कड़ुए तेल को गर्म करके मालिश करने से विशेष लाभ होता है।

३ जिस अंग में मोच आई हो उस अंग को पूर्ण विश्राम दिया जाय।

४ गर्म पानी से सेंकने से भी लाभ होता है।

अस्थि भंग (Fracture)—किसी गहरे आघात के कारण प्राय अस्थि भंग हो जाया करती है। अस्थि के घाव या न होने की दशा के विचार से अस्थि भंग के निम्न भेद हैं—

१—विषम अस्थि भंग (Compound Fracture)—इसमें अस्थि भंग के साथ साथ घाव भी हो जाता है।

२—सामान्य अस्थि भंग (Simple Fracture)—जब अस्थि बिना किसी घाव के टूटती है तो उसे सामान्य अस्थि भंग कहते हैं।

३—जटिल अस्थि भंग (Complicated Fracture)—सामान्य अस्थि भंग लापरवाही के कारण या दुर्घटना से शरीर के किसी कोमल अंग को घायल कर देता है तो उसे हम जटिल अस्थि भंग कहते हैं। उदाहरण के लिए पसली की अस्थि भंग होकर फफड़ा में घुस जाय। स्वयं अस्थि की दशा के विचार से अस्थि भंग के निम्न भेद हैं

(१) कच्ची टूट (Green Stick Fracture)—छोटे बालकों की अस्थि सरलता से नहीं टूटती लचक कर या चटक कर रह जाती है। इस प्रकार की टूट को कच्ची टूट (Green Stick Fracture) कहते हैं।

(२) बहुखण्ड टूट (Communicated Fracture)—जब कभी हड्डी टूटकर टुकड़े टुकड़े हो जाती है, तो उसे बहुखण्ड टूट कहते हैं—

अस्थि-भंग के लक्षण—(१) अस्थि भंग का प्रमुख लक्षण दर्द का तीव्रता से उठना है, (२) जिस अंग में चोट लगती है, उसे हिलाने डुलाने की शक्ति नहीं रहती है (३) टूटे हुए स्थान से किरकिराने की आवाज आती है (४) वह स्थान सूज जाता है और अस्थि उभर आती है।

अस्थि भंग के उपचार के सामान्य नियम

१—अस्थि भंग के साथ साथ यदि रक्त भी बह रहा है तो सर्वप्रथम रक्त को बन्द करने का प्रयत्न किया जाय। रक्त को बन्द न करने से शरीर में दुर्बलता आ जाती है।

२—चोट लगने के कारण अस्थि भंग होने पर उस अंग को हिलाया डुलाया न जाय, नहीं तो सामान्य अस्थि भंग भी जटिल अस्थि भंग में बदल जायगा।

३—यथासम्भव अस्थि की टूट का उपचार उसी स्थल पर किया जाय जहाँ पर कि अस्थि टूटी है।

४—घायल को पूर्ण विश्राम दिया जाय।

५—टूटी अस्थि को बाँधने के लिए Splints का प्रयोग करते समय इस बात का ध्यान रहे कि पट्टियों में जो गाँठ बाँधी जाय वह रीफ गाँठ हो।

६—शीतकाल में जहा तक सम्भव हो घायल को गर्म रखा जाय, नहीं तो सर्दी लगने या सदमा लगने का भय रहता है।

७—घायल की घबराहट को सान्त्वना भरे शब्दों से दूर किया जाय।

८—शीघ्र से शीघ्र डाक्टर को सूचना देनी चाहिए।

अस्थि का उतर जाना (Dislocation)—कभी कभी जोड़ पर से अस्थि उतर जाती है, परिणामस्वरूप जोड़ों में तीव्र पीड़ा का अनुभव होता है। जिस जोड़ पर की अस्थि उतर जाती है, वह भाग सूज जाता है।

सामान्यतया घुटने, टखने, कन्धे आदि की अस्थियाँ उतर जाती है। जिस जगह की अस्थि उतरी हो उसे भली प्रकार सेंकना चाहिए। यदि सेंकने से कोई विशेष लाभ न हो तो डाक्टर से सलाह ली जाय।

रक्त स्राव (Bleeding)—शरीर में खरोंच व चोट लग जाने से रक्त बहने लगता है। यह रक्त केशिका, धमनी तथा शिरा नाम की नलिकाओं के कट जाने से बहता है।

धमनी का रक्त स्राव (Arterial Bleeding)—धमनी का रक्त चमकीला लाल होता है। जिस समय धमनी से रक्त निकलता है, तो वह उछलता हुआ निकलता है, यही इसकी विशेष पहचान है। इस रक्त का बहाव सदा हृदय की विपरीत दिशा में होता है।

उपचार—धमनी के रक्त-स्राव का तुरन्त उपचार करना चाहिए। इसको रोकना अत्यन्त कठिन है। यदि घाव हल्का है तो उस पर मजबूती से कपड़ा बाँध देने से प्राय रक्त बन्द हो जाता है।

यदि रक्त का बहाव अत्यन्त तीव्रता के साथ है और वह कपड़ा बाँधने से भी नहीं रुकता, तब ऐसी दशा में रक्त बहने वाले स्थान से पास वाले दबाव के स्थान (Pressure point) को दबाया जाय। दबाव अँगूठे के द्वारा डाला जा सकता है और आवश्यकता पड़ने पर 'Tourniquet' का भी प्रयोग किया जा सकता है। रक्त बहने वाले अंग को ऊपर उठा देना चाहिए।

शिरा का रक्त स्राव (Veinous Bleeding)—शिरा से बहता हुआ रक्त नीलापन लिए गहरे लाल रंग का होता है। इसका बहाव हृदय की ओर धीरे धीरे होता है। परन्तु यह एक बँधी हुई धार में बहता है।

उपचार—१—लाल दवा में या किसी कीटाणु-नाशक दवा के घोल में कपड़ा भिगो कर, रक्त बहते स्थान पर रखकर उस पर कसकर पट्टी बाँध देनी चाहिए।

२—घायल अंग पर हृदय की विपरीत दिशा में कसकर 'Tourniquet' बांधने से रक्त स्राव तुरंत बन्द हो जाता है।

३—घायल अंग को नीचा कर देना चाहिए।

केशकीय रक्त स्राव (Capillary Bleeding)—इसमें रक्त अत्यन्त मन्द गति से बहता है। इस रक्त-स्राव में किसी प्रकार के भय की आवश्यकता नहीं। जहाँ रक्त बह रहा है, उस स्थल को कसकर दबा दिया जाय। स्वच्छ पट्टी को पानी में भिगोकर कसकर बाँधने से रक्त का बहना बन्द हो जाता है।

नाक का रक्त स्राव (Bleeding from the nose)—गर्मी के कारण, या नाक में चोट लगने के कारण प्रायः नाक से रक्त बहने लगता है।

उपचार—कमरे की खुली खिड़की के पास कुर्सी पर बालक को बैठा दिया जाय। सिर को पीछे की ओर झुका देना चाहिए। हाथों को सिर से ऊपर उठा दिया जाय, जिससे सिर की ओर रक्त प्रवाह की गति अत्यन्त मन्द रहे। नाक पर या गर्दन के पीछे शीतल जल में कपड़ा भिगोकर रखना चाहिए। पैरों को गर्म पानी में डुबो दिया जाय। गर्दन और छाती पर के कपड़ों को ढीला कर दिया जाय। बालक को मुख से साँस लेने को कहा जाय। नाक से रक्त बहने की दशा में छींकना नहीं चाहिए नहीं तो रक्त तीव्रता के साथ बहने लगेगा।

जलना और झुलसना (Burns and Scolds)—सूखी गर्मी से जलने को 'जलना' कहते हैं और नम गर्मी से जलने को 'झुलसना' कहते हैं। दोनों प्रकार के जलने का उपचार एक सा ही है।

उपचार—जलने वाले घायल व्यक्ति का इलाज अत्यन्त सावधानी के साथ किया जाय। जो व्यक्ति जल गया हो, उसके प्रति निम्न बातें ध्यान में रखी जायें

१—जले अंग पर यदि कोई कपड़ा चिपक गया हो तो उसे अत्यन्त सावधानी से हटा दिया जाय। यदि कपड़ा बुरी तरह से चिपक गया हो तो आस पास के कपड़े को कैंची से काटकर गोले का तेल लगा दिया जाय।

२—यदि शरीर पर फफोले पड़ गये हों तो उनको भूल कर भी नहीं फोड़ा जाय।

३—घावों पर पानी नहीं लगने देना चाहिए।

४—जले घावों पर सोडा-बाइ-कार्बोनेट के घोल में भीगा कपड़ा रखा जाय। टैनिक एसिड जैली आयोडिक्स (Iodex) मरहम घावों पर लगाये जा सकते हैं।

५—घावों को गर्द या धूल से बचाने के लिए साफ रुई से ढककर रखा जाय।

६—जलने में सदमा पहुँचने का अत्यधिक भय रहता है। रोगी का चेहरा पीला पड़ जाता है वह शीत का अनुभव करता है, अतः घायल को शीत से बचाने के लिए कम्बल में ढक कर रख दिया जाय। पीने के लिए चाय या कॉफी दी जानी चाहिए।

घाव (Wounds)—खेल-कूद तथा दौड़-भाग में अक्सर घाव हो जाया करते हैं।

उपचार—शरीर के जिस अंग में घाव लगा हो, उस भाग को पूर्णतया स्वच्छ रखा जाय। यदि घाव पर धूल या गन्दगी जम गयी, तो उसके विषाक्त (Septic) होने की सम्भावना रहती है। घाव गहरा है और उसमें रक्त तीव्रता के साथ बह रहा है तो सर्वप्रथम बहते हुए रक्त को रोका जाय। घाव को कार्बोलिक ऐसिड के घोल से धोकर उस पर टिंचर आयोडीन लगा देनी चाहिए। टिंचर की जगह स्प्रिट का भी प्रयोग किया जा सकता है।

यदि घाव में कोई वस्तु घुस गई है तो उस वस्तु को अत्यन्त सावधानी के साथ निकाल दिया जाय।

कीड़ों द्वारा डंक मारना (Insect Stings)—बर्र ततैया तथा मधुमक्खी के डंक मारने पर उसे तुरन्त निकाल दिया जाय। डंक निकालने के लिए चिमटी तथा सुई का प्रयोग किया जा सकता है। यदि डंक गहराई में घुस गया है तो ऐसी दशा में चाबी के गुच्छे द्वारा डंक को दबाकर निकाला जा सकता है। डंक निकालने के पश्चात् उस पर लाल दवा या पानी में घुला हुआ नौसादर लगाया जाय।

आघात (Shock)—किसी आकस्मिक घटना द्वारा नाड़ी-जाल का क्रम शिथिल दशा में हो जाता है, दशा को ही 'आघात' या सदमा कहते हैं। कभी आघात लगने के कारण घायल या रोगी की मृत्यु तक हो जाती है, अतः प्रत्येक दशा में आघात का उपचार सावधानी के साथ किया जाय।

लक्षण—आघात के लगते ही समस्त शरीर में शिथिलता आ जाती है। चेहरे तथा होठों का रक्त पीला पड़ जाता है। चेहरे पर हल्की हल्की पसीने की बूँदें आ जाती हैं। रोगी कम्पन के साथ ठंडक का अनुभव करता है। धीरे धीरे मूर्च्छा आ जाती है। नाड़ी की गति अत्यन्त मन्द हो जाती है। रोगी अत्यन्त धीमे-धीमे साँस लेता है।

उपचार—रोगी को स्वच्छ वायु में लिटा दिया जाय। आस-पास की भीड़ को तुरन्त हटा दिया जाय। यदि रोगी शीतलता का अनुभव करता है तो उसे गर्म करने का प्रयत्न किया जाय। कम्बल उढ़ाकर गर्म पानी की बोतल बगल में रखने से शीत शीघ्र चला जाता है। Smelling Salt सुँघाकर उसे होश में लाने का प्रयत्न किया जाय। चेतनता आने पर उसे चाय या कहवा पीने को दिया जाय।

रोगी की घबराहट को सान्त्वना भरे शब्दों से दूर करना चाहिए।

नेत्र में विजातीय पदार्थ (Foreign Bodies in the Eye)—आँख में कीड़ा, तिनका आदि प्रायः बालकों के गिर जाया करते हैं। बालक इन चीजों के गिर जाने से घबरा जाता है और आँख को मलने लगता है। ऐसी दशा में बालक को आँख मलने से रोका जाय। आँख को बार-बार खोलने और बन्द करने से तिनका

अपने आप निकल जाता ह । प्राय तिनका या कोई वस्तु ऊपरी पलक म ही गिरती है । अत नीचे वाले पलका के बालो को ऊपर वाले पलको म प्रवश कराकर वस्तु को निकाला जा सकता है ।

यदि आख मे काई वस्तु गहरी प्रवेश कर जाय तो तुरन्त डाक्टर के पास ले जाया जाय ।

कान मे विजातीय पदाथ (Foreign Bodies in the Ear)—बालका को अपने कान म कुछ न-कुछ डालते रहने की आदत पड जाती है । कभी कभी कान म कोई वस्तु अटक जाती है तो बडी पीडा होती है । कभी कभी बहरापन भी इसी कारण स हो जाता है ।

उपचार—कान मे हलका सा गम करके कडुआ जतून का तल डाल दन स कान के अ दर का पदाथ ऊपर तैर कर आ जाता है । यदि इस प्रकार भी वह वस्तु बाहर न निकले तो स्वय कुछ न करके डाक्टर के पास तुर त ले जाना चाहिए ।

गले मे विजातीय पदाथ—गले म किसी वस्तु का अटक जाना अत्य त कष्ट दायक होता है । प्राय बालक मुख मे दो पैसे, पाच पसे निगल जाया करत हैं । एसी दशा मे बालक का चेहरा नीला पड जाना है, आँखे बाहर को निकल आती है दम घुटने लगता है ।

बालक के गले मे उँगली डालकर गले म फँस पदाथ को निकाला जाय । यदि इस पर भी पदाथ बाहर नही निकलता तो गदन झुकाकर पीठ के ऊपरी भाग को झुकाकर थपथपाया जाय । गदन पर हल्का सा मुक्का मारने से भी पदाथ गल से बाहर निकल आता है । यदि बालक कम आयु का है तो उसके परो को पकड कर उलटा लटका दिया जाय ।

पेट में विजातीय पदाथ—यदि बालक भूल स पैसा या सुई जसी वस्तु निगल जाता है तो उसे हलवा खिलाना चाहिए जिससे कडा पदाथ मल के साथ निकल जाय । दस्त की दवा भूलकर न दी जाय ।

डूबना (Drowning)—नदी या तालाब म प्राय बालक डूब जाया करते हैं । आजकल विद्यालयो मे तैरने के तालाब होते हैं जिनमे बालक असावधानी के कारण डूब जाया करते हैं । डूबन की दशा मे बालक के पेट तथा फेफडो म पानी भर जाता है, जिससे श्वास क्रिया मे बाधा हो जाती और व्यक्ति अचेत हो जाता है ।

उपचार—डूबे हुए व्यक्ति के वस्त्रो को उतार देना चाहिए । रोगी को पट के बल लिटा कर पीठ को धीरे धीरे दबाया जाय जिससे पट का समस्त पानी बाहर निकल जाय ।

श्वास चलन के लिए कृत्रिम श्वास का प्रब ध किया जाय । जब श्वास भली प्रकार स चलन लग ता रोगी को गम रखने के लिए कम्बल म लपट दना चाहिए । आवश्यकता पडने पर गम पानी की थलियो का उपयोग किया जाय । गम चाय या काफी रोगी को दनी चाहिए ।

विषपान (Poisoning)—विष दो प्रकार के होते हैं—

(१) दाहक विष (Corrosive Poison)

(२) अदाहक विष (Non Corrosive Poison)

१—दाहक विष (Corrosive Poisons)—दाहक विष अत्यन्त घातक होते हैं। इनका पान करने से शरीर के तन्तु नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार के विषों में सल्फ्यूरिक ऐसिड, कास्टिक सोडा आदि आते है। इनका पान करने से होठ तथा आँत बुरी तरह जल जाते हैं। इस प्रकार के विषपान में वमन न कराया जाय। यदि रोगी ने कास्टिक सोडा या कास्टिक पुटाश का विष खा लिया है तो सिरके का घोल या पानी में नीबू मिलाकर दिया जाय, और यदि घायल ने ऐसिड जिनमें नाइट्रिक ऐसिड, सल्फ्यूरिक ऐसिड आते हैं, ले लिया है तो उसे मीठा सोडा पानी में मिलाकर दिया जाय। दूसरे शब्दों में जब घायल ने अम्ल (Acid) का पान किया हो तो उसे क्षार (Alkali) का घोल दिया जाय तथा यदि घायल ने क्षार का पान कर लिया है तो उसे अम्ल का घोल दिया जाय।

२—अदाहक विष (Non Corrosive Poisons)—इनका पान करने पर होठ और गला नहीं जलता, अतः ऐसी दशा में वमन कराना ही उचित है।

वमन करने के लिए दोनों उँगलियों को गले में डाला जाय। नमक को अधिक मात्रा में घोलकर देने से भी वमन हो जाता है। एक चम्मच सूखी सरसों का एक गिलास भर पानी में डालकर देने से वमन हो जाता है।

साँप का काटना (Snake Bite)—हमारे देश में सर्पदंश की घटनाएँ आये दिन होती रहती हैं। प्रमुखतया बंगाल में नित प्रति साँप काटने से मृत्यु हो जाया करती है।

लक्षण—साँप जहाँ पर काटता है, वहाँ से रक्त बहता है तथा दांत के निशान बन जाते हैं। रोगी को धीरे धीरे नींद आने लगती है, अन्त में रोगी बेहोश हो जाता है, और उसका समस्त शरीर नीला पड़ जाता है। यदि उपचार ठीक तरह से नहीं होता है तो मृत्यु तक होने की सम्भावना रहती है।

उपचार—जिस स्थल पर साँप ने काटा हो वहाँ ब्लेड से क्रास का निशान लगाकर लाल दवा भर दी जाय। हृदय की ओर टूरनीकेट बाँध दी जाय जिससे विष सारे रक्त में न फैल सके।

यह बात ध्यान में रखी जाय कि रोगी को नींद अपनी गोद में न समेट ले। यदि रोगी सोना चाहता है तो उसे बातों में लगाकर जगाया जाय। नींद आने पर विष फैलने की अधिक सम्भावना रहती है।

रोगी की दशा गम्भीर होने पर डाक्टर को सूचना दी जाय।

लू लगना (Sun stroke)—मई-जून की धूप में गर्म हवा लग जाने को 'लू लगना' कहते हैं।

लक्षण—शरीर का तापक्रम एक दम तीव्र हो जाता है। प्यास का अनुभव

बार बार होता है, सिर में चक्कर आने लगते हैं। रोगी साँस लेने में कठिनाई का अनुभव करता है नाडी की गति तीव्र हो जाती है। कभी कभी तापक्रम इतना ऊँचा हो जाता है कि रोगी की मृत्यु हो जाती है।

उपचार—रोगी को ठण्डक या छायादार जगह पर ले जाना चाहिए। शरीर के समस्त कपड़ों को ढीला कर दिया जाय। सिर पर बर्फ को रखा जाय। भुने हुए कच्चे आम का पना लू में अत्यन्त लाभ पहुँचाता है। प्यास लगने पर रोगी को ठण्डा पानी पीने को दिया जाय।

रोगी की दशा गम्भीर होने पर डाक्टर को बुलाना परम आवश्यक है।

लू लगने पर शरीर का तापमान अत्यन्त ऊँचा हो जाता है, अतः जहाँ तक सम्भव हो रोगी के तापक्रम को नीचे उतारने का प्रयत्न किया जाय।

Q What would you do in dealing with the following cases

(a) Fainting, (b) Fracture of thigh bone, (c) A severe electric shock?

उत्तर—(a) बेहोशी (Fainting)—बेहोशी का कारण मस्तिष्क में रक्त का अभाव प्रमुख रूप से होता है। कभी कभी दिल अपना काम ठीक प्रकार से नहीं करता तो उसी दशा में रक्त का प्रवाह कम हो जाता है। अचानक किसी घटना का होना भी बेहोशी का कारण हो सकता है, जैसे असाधारण दुःख तथा असाधारण हर्ष या अत्यधिक भयभीत हो जाना आदि आदि। रक्त का अत्यधिक बह जाना भी बेहोशी का कारण हो जाता है।

लक्षण—१ चेहरा पीला पड़ जाता है।

२ बेहोश होने से पूर्व रोगी एक प्रकार की बेचैनी का अनुभव करता है।

३ माथे पर पसीने की बूँदें झलक आती हैं।

४ सिर में रक्त का प्रभाव कम हो जाता है।

५ नाड़ी की गति धीमी पड़ जाती है।

६ रोगी की साँस धीमे धीमे चलती है।

७ चेतना लुप्त हो जाती है।

उपचार—१ सिर में अधिक मात्रा में रक्त पहुँचाने के लिए रोगी को जमीन पर चित्त लिटाकर उसके पैर ऊपर कर दिए जायें।

२ कमरे की समस्त खिड़कियाँ तथा रोशनदान खोल दिए जायें।

३ जहाँ तक सम्भव हो, शुद्ध वायु का प्रबन्ध किया जाय।

४ हाथ तथा पैरों को गर्म रखा जाय।

५ चुस्त तथा कसे हुए कपड़ों को ढीला कर दिया जाय।

६ नौसादर तथा चूने का मिलाकर (Smelling Salt) सुँघाना विशेष लाभदायक रहता है।

७ यदि रक्त बह रहा है तो उसे तुरन्त बन्द किया जाय।

शौचगृह—विद्यालय भवन से आधी फर्लांग दूर हटकर शौचगृह का निर्माण करवाया जाय। ये शौचगृह कम से कम ढाई फीट चौडे होने चाहिए। प्रत्येक शौचगृह मे प्रकाश और वायु के आने का प्रबध किया जाय। मूत्रालय शौचगृह से अलग निर्मित किये जायें। जहाँ तक सम्भव हो, फर्श सीमेंट के बनाये जायें। शौचगृह और मूत्रालयो की स्वच्छता पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय।

साराश

विद्यालय निमाण के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(i) विद्यालय की स्थिति—

१ विद्यालय का अडोस पडोस आनन्ददायक हो।
२ विद्यालय नगर से न अधिक दूर हो और न पास।
३ निकट मे कारखाने न हो।
४ बस स्टैण्ड, सिनेमाघर तथा होटल पास मे न हो।
५ अधिक घने वृक्ष भी न हो।
६ पीने के पानी की व्यवस्था निकट ही हो।

(ii) विद्यालय के भवन की रचना—

१ मिट्टी—मिट्टी को दो भागो म बाटा जा सकता है

(अ) भेद्य या छिद्रपूर्ण मिट्टी, (ब) अभेद्य या अप्रवेश्य मिट्टी।

जहा तक सम्भव हो, विद्यालय का निर्माण भेद्य मिट्टी मे ही किया जाय। मिट्टी के विषय मे दो बातो को और ध्यान मे रखा जाय

(क) धरती स्थित जल (Under ground Water)
(ख) धरती स्थित वायु (Under ground Air)

२ भवन की दिशा,
३ भूमि की नाप,
४ खेल का मैदान,
५ भवन की दीवारें,
६ छत,
७ फर्श,
८ मंजिल,
९ प्रकाश तथा वायु,
१० कक्षाओं का आकार,
११ शौचगृह।

(iii) भवन का स्वरूप—

१ केन्द्रीय हॉल वाला विद्यालय,
२ आन्तरिक मैदान वाला विद्यालय,
३ मण्डपाकार विद्यालय।

२२

विद्यालय का फर्नीचर

FURNITURE OF SCHOOL

Q What are the essentials of a good desk ? Also dis[illegible] various types of desks

(A U, B T 19[illegible]

प्रश्न—एक अच्छी डेस्क के आवश्यक तत्त्व कौन से हैं ? डेस्कों के प्र[illegible] का भी विवेचन कीजिये।

(बी० टी० १९५[illegible]

Or

Write short note on use of the black board

(A U, B T, 1952

श्यामपट के प्रयोग पर टिप्पणी लिखो।

(बी० टी० १९५२)

उत्तर—महत्त्व—विद्यालय म फर्नीचर का अ यधिक महत्त्व है। उपयुक्त डेस्क और कुर्सियो के अभाव मे छात्रो के नेत्रो और आसनो पर प्रभाव पडता है। अनुचित आसनो का अभ्यास मुख्यतया दोषपूर्ण फर्नीचर के कारण ही होता है। फर्नीचर के महत्त्व पर P C Wren लिखते हैं—' Furniture plays an extremely important part in the physical, moral and mental welfare of the scholars " यह खेद का विषय है कि हमारे देश मे फर्नीचर की मुख्यता पर कोई विशेष ध्यान नही दिया जाता है। अत यह आवश्यक हो जाता है कि विद्यालय के अन्दर उपयुक्त फर्नीचर रखा जाय। आगे हम कुर्सी, डेस्क, श्यामपट आदि की उपयुक्तता का उल्लेख करेंगे—

१—कुर्सी (Chair)

(क) कुर्सी छात्रो की आयु के अनुसार छोटी तथा बडी होनी चाहिए।

(ख) प्रत्यक कुर्सी के पीछे पीठ होनी चाहिए।

(ग) कुर्सी की सीट पर्याप्त रूप स बडी हो जिसम छात्रो को बठने म पूर्ण सुविधा रहे। प्रत्यक छात्र का कम से कम १८ इच चौडा स्थान मिलना चाहिए।

(घ) कुर्सी के आगे के किनारे गोल होने चाहिए, नहीं तो जाँघों का रक्त रुकने की सम्भावना रहती है।

(ड) कुर्सियाँ दीवार से सटाकर न लगाई जायें। प्रत्येक कुर्सी के मध्य में पर्याप्त स्थान छोड़ा जाय।

२—डेस्क (Desk)

डेस्कों के चुनाव में अत्यधिक सावधानी रखी जाय। डेस्कों में निम्नलिखित गुण होने चाहिए—

(क) जहाँ तक सम्भव हो, डेस्क जुड़े होने के बजाय कुर्सियों से अलग हों तो अच्छा है।

(ख) डेस्कों का इकहरा होना उत्तम है। अलग अलग डेस्कों के होने से छात्रों को पढ़ने-लिखने में सुविधा रहती है। इसके विपरीत जुड़ी डेस्कों से छात्रों को बैठने में असुविधा रहती है साथ ही छूत के रोग फैलने का भय रहता है। यदि अभाव के कारण अलग अलग डेस्कों का इन्तजाम न हो सके तो जुड़ी या लम्बी डेस्कों का प्रयोग करते समय कुर्सियाँ अलग-अलग रख दी जायें।

(ग) प्रत्येक डेस्क का ढाल १५° क्षितिज से होना चाहिए।

(घ) डेस्कों की ऊँचाई फर्श से इतनी हो कि बैठते समय छात्र अपने पैरों के ऊपरी भाग को भूमि के समानान्तर कर सके तथा पैरों को भूमि पर सरलता से टेक सकें।

(ड) पढ़ते समय डेस्क का ढाल ४५° रखा जाय।

डेस्कों के प्रकार

१—शून्य डेस्क (Zero Desk)—शून्य डेस्क में कुर्सी केवल डेस्क को स्पर्श करती है। लिखने में इसका प्रयोग उत्तम रहता है।

२—ऋण डेस्क (Minus Desk)—ऋण डेस्क उस डेस्क को कहते हैं जिसमें कुर्सी डेस्क के अन्दर थोड़ी सी घुसी रहती है। यह डेस्क लिखने के लिए सर्वोत्तम होती है। इसमें छात्र को झुकना नहीं पड़ता।

३—धन डेस्क (Plus Desk)—इसमें कुर्सी डेस्क से पर्याप्त दूरी पर रहती है। इसका उपयोग लिखने के लिए नहीं करना चाहिए, क्योंकि छात्र को लिखने के लिए अपने शरीर को डेस्क पर झुकाना पड़ता है, परिणामस्वरूप आमाशय तथा फेफड़ों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। शरीर का सन्तुलन ठीक न रहने से छात्रों में आसन सम्बन्धी अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। चूँकि छात्र को डेस्क पर झुकना पड़ता है, अतः उसकी आँखों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है और वे कमजोर हो जाती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि धन डेस्कों का प्रयोग विद्यालय में जहाँ तक सम्भव हो न किया जाय।

ऋण डेस्क का उपयोग विद्यालय के लिए सबसे उत्तम है। परन्तु डेस्क छात्रों की आयु के अनुसार हो। स्थिर ऋण डेस्क का उपयोग नही किया जाना चाहिए, क्योंकि बालक को इस दशा मे खड़े होने मे असुविधा रहेगी।

(डेस्क के प्रकार)

१ प्लस, २ जीरो, ३ माइनस

४—फॉरिंग्डन डेस्क (Feringdon Desk)—इस डेस्क की प्रमुख विशेषता यह है कि इसे आवश्यकतानुसार शून्य, धन तथा ऋण की दशा मे लाया जा सकता है। सुविधानुसार इस डेस्क के ढाल को १५° लिखने के लिए तथा ४५ पढने के लिए किया जा सकता है।

३—श्यामपट (Black Board)

विद्यालय मे श्यामपट का अत्यधिक महत्त्व है। अध्यापक श्यामपट के अभाव मे अध्यापन का कार्य किसी प्रकार से नही कर सकता। श्यामपट दो प्रकार के होते हैं —

१—भित्ति श्यामपट (Wall Black Board)—जो श्यामपट दीवार मे लगा रहता है उसे 'भित्ति श्यामपट' कहते। यह मूल्य मे सस्ता पडता है। परन्तु इसका सबसे बडा दोष यह है कि एक जगह से दूसरी जगह नही ले जाया जा सकता। इसके केवल एक ओर ही लिखा जा सकता है।

३—इजिल श्यामपट (Easel Black Board)—यह तख्ते वाला श्यामपट होता है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि इसे इच्छानुसार इधर-उधर ले जाया जा सकता है। प्रकाश के अनुसार इसके कोण म परिवतन किया जा सकता है। अध्यापक एक ओर लिखन के पश्चात् दूसरी ओर भी आवश्यकतानुसार लिख सकता है। यदि कक्षा किसी वृक्ष के नीचे लगानी हो तो इसे सरलता से कक्षा के बाहर ले जाया जा सकता है।

श्यामपट के आवश्यक गुण

(१) श्यामपट का रग गहरा काला होना चाहिए। यद्यपि फ्रास आदि देशो म हरे रग के श्यामपटो का प्रयोग किया जाने लगा है, परन्तु काले रग के श्यामपट ही उचित हैं।

(२) श्यामपट अधिक चिकना न हो, जिस पर कि चाक फिसल जाय।

(३) श्यामपट ऐस स्थान पर लगा हो या खडा किया जाय कि कक्षा का प्रत्येक छात्र उस पर लिखे अक्षर को पढ सके।

(४) श्यामपट पर खिडकी का प्रकाश अधिक न पडे।

(५) श्यामपट ऐसा हो जिसे आवश्यक्तानुसार ऊपर नीचे किया जा सके।

(६) श्यामपट पर्याप्त बडा होना चाहिए।

४—मप स्टण्ड (Map Stand)

भूगोल, विज्ञान तथा इतिहास के अध्ययन म मानचित्र तथा चाट टाँगने की आवश्यक्ता होती है। दीवार पर मानचित्र टागने से श्यामपट के ढकन का भय रहता है तथा मानचित्र छात्रो से अधिक दूर हो जाता है। इस दोष को दूर करने के लिए मप स्टैण्ड की आवश्यकता पडती है। मप स्टैण्ड को हम कक्षा मे चाहे जहाँ सुविधानुसार रख सकते हैं।

मैप स्टैण्ड लकडी का, न अधिक हल्का और न अधिक भारी होना चाहिए कक्षा के अनुसार उसकी ऊँचाई भी उपयुक्त हो।

साराश

विद्यालय म फर्नीचर का विशेष महत्व है। उपयुक्त फर्नीचर के अभाव मे छात्रो के नेत्रों और आसनो पर प्रभाव पडता है।

कुर्सी के आवश्यक गुण

(क) छात्रों के अनुसार हो।

(ख) कुर्सी के पीठ हो।

(ग) पर्याप्त बडी हो।

(घ) आगे के किनारे गोल हों।

(ङ) बीच मे स्थान छोडा जाय।

डेस्क के आवश्यक गुण

(क) डेस्क और कुर्सी अलग अलग हो।
(ख) डेस्क इकहर हो।
(ग) लिखते समय डेस्क का ढाल १८ होना चाहिए।
(घ) पर्याप्त ऊँचाई हो।
(ङ) पढते समय का ढाल ४५ हो।

डेस्कों के प्रकार

१ शून्य डेस्क (Zero Desk)
२ ऋण डेस्क (Minus Desk)
३ धन डेस्क (Plus Desk)
४ फरिंगडन डेस्क (Feringdon Desk)

ऋण डेस्क का प्रयोग सबसे उत्तम रहता है।

श्यामपट (Black Board)

१ भित्ति श्यामपट (Wall Black Board)
२ इजिल श्यामपट (Easel Black Board)

श्यामपट के आवश्यक गुण—(१) गहरा काला हो, (२) चिकना न हो, (३) प्रत्येक छात्र देख सके, (४) अधिक प्रकाश न पडे, (५) नीचा तथा ऊँचा किया जा सके, (६) पर्याप्त बडा हो।

मप स्टण्ड (Map Stand)—कक्षा के अनुसार ऊँचा हो।

विद्यालय मे डॉक्टरी निरीक्षण
MEDICAL INSPECTION OF SCHOOL

Q What should be the objects of the medical inspection of a school ? How often and when in the course of the session should it be made ? What should be its chief features ?

(A U, 1958)

प्रश्न—विद्यालय के डॉक्टरी निरीक्षण के क्या उद्देश्य होने चाहिए ? यह कब और विद्यालय के किस भाग में किया जाना चाहिए ? डॉक्टरी निरीक्षण की क्या विशेषताएं होनी चाहिए ?

Or

Discuss the objects and methods of medical inspection of school children (A U, B T 1957)

विद्यालय के डॉक्टरी निरीक्षण के उद्देश्य तथा प्रणाली पर प्रकाश डालो।

(बी० टी०, १९५७)

उत्तर—

डॉक्टरी निरीक्षण का महत्त्व

विद्यालय म डॉक्टरी निरीक्षण का प्रब ध करना परम आवश्यक है। विद्यालय म अनेक एस छात्र आते हैं जिनके कान, दात तथा आखें आदि रोगयुक्त होते हैं। अभिभावकों के पास इतना धन और समय नहीं होता कि वे रोगों के विषय मे जानकारी प्राप्त कर सकें। इस प्रकार की लापरवाही के कारण रोग भयकर रूप धारण कर लता है और फिर पैसा बहाने पर भी रोगी ठीक नहा हो पाता। अत यह आवश्यक है कि विद्यालय म छात्रो के शरीर का समय समय पर निरीक्षण होता रहे। आरम्भ म ही यदि रोग का पता लग जाता है और उसका उपचार आरम्भ हो जाता है तो छात्रो को अनेक शारीरिक रोगो से बचाया जा सकता है।

डॉक्टरी निरीक्षण के लाभ

(१) रोग का विनाश—*डॉक्टरी निरीक्षण द्वारा रोग को उसकी प्रारम्भिक* दशा म नष्ट किया जा सकता है।

(२) स्वास्थ्य विभाग को लाभ—विद्यालय म बालको का डाक्टरी निरीक्षण *जन स्वास्थ्य विभाग (Public Health Department) के काम को हल्का कर देता* है। रोगो का पता लग जाने से उनका उपचार करना स्वास्थ्य विभाग के लिए सरल हो जाता है। दूसरे, विद्यालय म क्षय के रोग फैलने की जब सम्भावना होती है तो सावजनिक स्वास्थ्य विभाग सूचना मिलने पर उसकी रोकथाम का प्रबन्ध कर लेता है।

(३) अभिभावकों को लाभ—डॉक्टरी निरीक्षण द्वारा छात्रो के अभिभावको को रोग की सूचना देकर रोग के प्रथम काल म ही सकेत किया जा सकता है।

(४) विद्यालय की उपस्थिति को लाभ—चूँकि डॉक्टरी निरीक्षण से रोगो *की रोकथाम तुरन्त ही हो जाती है। अत विद्यालय मे छात्रो की अनुपस्थिति भी* कम हो जाती है।

(५) अपंग छात्रों को लाभ—डॉक्टरी निरीक्षण का सबसे बडा लाभ यह है कि इसके द्वारा अपग, मन्द-बुद्धि छात्रो का पता चल जाता है, अत उनके लिए विशेष स्कूलो मे पढने का प्रबन्ध सरलता से किया जा सकता है।

(६) छात्रों को लाभ—जब तक छात्र पूर्ण स्वस्थ नही होंगे, *तब तक उनका* पढने लिखने मे मन भी नही लगेगा। डाक्टरी निरीक्षण द्वारा उनकी शारीरिक कमजोरी ज्ञात हो जाती है जिसका उपचार कर वे पूर्ण स्वस्थ हो सकते है।

(७) अध्यापकों को लाभ—*डाक्टरी निरीक्षण द्वारा अध्यापक को छात्रो के* रोगो का ज्ञान हो जाता है जिससे वह रोगी और दुबल छात्रो को गृह काय तथा कक्षा-काय देने मे सावधानी बरतता है।

स्वास्थ्य परीक्षण के प्रकार—विद्यालय स्वास्थ्य परीक्षण के दो प्रमुख रूप है

१—दैनिक परीक्षण

२—विशेष परीक्षण

१—दैनिक स्वास्थ्य परीक्षण—यह सत्य है कि स्वास्थ्य परीक्षण का काय वैसे तो चिकित्सक और स्वास्थ्य विशेषज्ञ का ही है, परन्तु उसके लिए यह सम्भव नही है कि वह प्रतिदिन विद्यालय म उपस्थित होकर समस्त छात्रो के स्वास्थ्य का परीक्षण कर सके। यह काय तो कक्षा अध्यापक ही कर सकता है जोकि अपनी कक्षा के छात्रो के सबसे अधिक निकट रहता है। इस विषय म डॉ० जे० पी० टारो लिखती है—"कक्षा में कोई बालक सुस्त रहता है, उसे भूख नहीं लगती, काय में रुचि नही लेता, सिर में दर्द रहता है, खेल के मैदान में नहीं जाता, उसका भार कम हो रहा है आदि प्रारम्भिक शारीरिक दोषों व रोगों के लक्षणों को कक्षाध्यापक,

व्यायाम शिक्षक, स्वास्थ्य विज्ञान शिक्षक, विद्यालय परिचारिका आदि पहचान कर चिकित्सक के उचित परामश से उनका उपचार व निराकरण कर सकते हैं।" कक्षा-अध्यापक या व्यायाम शिक्षक का कत्तव्य है कि वह दुबल छात्रों को खोजे और उन्हें डाक्टर के पास भेजे।

२—विशेष परीक्षण—छात्रों की शारीरिक बीमारियों तथा दुर्बलताओं का ठीक-ठीक पता चिकित्सक ही लगा सकता है, अत समय-समय पर किसी कुशल चिकित्सक को बुलाकर छात्रों का स्वास्थ्य परीक्षण कराना आवश्यक हो जाता है।

विद्यालय में डाक्टरी निरीक्षण की योजना

१—विद्यालय के स्वास्थ्य सगठन का सम्बन्ध सावजनिक स्वास्थ्य विभाग से करना चाहिए। छात्रों को अनेक एस रोग होते हैं, जिनका उपचार ठीक प्रकार से अस्पताल म ही हो सकता है। दूसरे, सावजनिक स्वास्थ्य विभाग मे अनेक योग्य रोग विशेषज्ञ काम करते हैं, उनके अन्तगत रोग का उपचार कराने से छात्रों को विशेष लाभ पहुंचेगा।

२—विद्यालय म प्रत्येक छात्र की कम से कम चार बार डॉक्टरी परीक्षा ली जाय। प्रथम तो उस समय जबकि छात्र विद्यालय म प्रवेश करता है, दूसरी परीक्षा प्रथम परीक्षा के दो या तीन वष बाद ली जाय। तीसरी परीक्षा छात्रों की किशोरावस्था म ली जानी चाहिए। इस अवस्था म छात्रों की शारीरिक और मानसिक अवस्था म एक अपूव परिवतन आता है। चौथी परीक्षा तब ली जाय, जबकि छात्र विद्यालय छोडता हो। चौथी परीक्षा द्वारा अध्यापक को छात्रों के विषय मे ज्ञान हो जायगा कि उन्होंने विद्यालय के जीवन मे कितनी शारीरिक उन्नति की है।

३—डाक्टरी निरीक्षण की रिपोट विस्तार से लिखी जाय। रिपोट की एक प्रति छात्रों के अभिभावकों को प्रदान की जाय तथा दूसरी विद्यालय मे रिकाड के रूप मे रखी जाय।

४—डॉक्टरी निरीक्षण द्वारा जिन रोगों का पता चले, उनका उपचार कराने के लिए अभिभावकों को प्रेरित किया जाय। निधन छात्रों का उपचार विद्यालय की ओर स कराया जाय।

५—डाक्टरी निरीक्षण विद्यालय के अन्दर ही होना चाहिए।

६—डाक्टरी निरीक्षण केवल खाना पूरी के लिए नहीं, अपितु प्रत्येक छात्र के कान, नाक, आँख, फेफडे तथा मानसिक क्षमता का भली प्रकार स निरीक्षण करवाया जाय।

७—डाक्टरी निरीक्षण द्वारा रोग का पता चलने पर उसका तुरन्त उपचार कराया जाय।

डॉक्टर का काय

१—विद्यालय के समस्त छात्रों का उचित प्रकार से निरीक्षण करना।

२—विशेष रोगों से पीड़ित छात्रों का सावधानी से पुन निरीक्षण करना।

३—मन्द बुद्धि तथा संक्रामक रोगों से पीड़ित छात्रों को सामान्य छात्रों से अलग छाँटना। मन्द-बुद्धि छात्रों को विशेष स्कूलों में भेजना तथा संक्रामक रोगों के छात्रों को विद्यालय से अवकाश दिलाना।

४—अभिभावकों द्वारा भेजे गये छात्रों की विशेष परीक्षा करना।

५—प्रत्येक बालक के स्वास्थ्य की रिपोर्ट लिखना।

६—संक्रामक रोगों की रोकथाम के लिए प्रयत्न करना।

७—विद्यालय के वातावरण का निरीक्षण करना तथा प्रधान अध्यापक को उचित सलाह देना।

८—विद्यालय की नल के कार्यों का निरीक्षण करना।

९—निर्धन छात्रों के लिए दूध की सिफारिश करना।

अध्यापक का कर्त्तव्य

१—उन छात्रों को छाँटना जिन्हें डॉक्टरी निरीक्षण की विशेष आवश्यकता है।

२—अध्यापक को स्वयं सामान्य रोगों का ज्ञान रखना चाहिए।

३—ज्ञात होने पर संक्रामक रोग से पीड़ित छात्रों को दूसरे छात्रों से अलग करवाना।

४—डॉक्टरी रिपोर्ट में दी गई सलाह को छात्रों के अभिभावकों द्वारा पालन करवाना।

५—छात्रों की नाप-तोल के समय नर्स तथा डाक्टर दोनों की सहायता करना।

Q What is the present system of medical inspection of school children in Uttar Pradesh? What measures would you suggest to make it really effective? (A U, B T, 1959, 1961)

प्रश्न—उत्तर प्रदेश में स्कूली बच्चों के स्वास्थ्य परीक्षण का वर्तमान से क्या सम्बन्ध है? उसमें सुधार के लिए आप क्या सुझाव देना चाहेंगे?

उत्तर—उत्तर प्रदेश के विद्यालयों में डाक्टरी परीक्षा का जो प्रबन्ध है वह अत्यन्त दोषपूर्ण है। विद्यालयों में जो कुछ डाक्टरी निरीक्षण होता है वह केवल खानापूरी के लिए होता है।

वर्तमान डाक्टरी निरीक्षण के दोष

(१) निरीक्षण केवल खानापूरी के लिए—विद्यालयों के अधिक होने के कारण डाक्टरी निरीक्षण में केवल खानापूरी होती है। विद्यालय में आकर डाक्टर ऊँचाई, सीना आदि नाप कर अपने कर्त्तव्य की इति समझते हैं। शारीरिक तथा संक्रामक रोगों की जाँच के विषय में छानबीन करने का कोई प्रयत्न नहीं करता। भीतरी बीमारी का पता लगाने के लिए डाक्टरों के पास अवकाश ही नहीं रहता है।

(२) डाक्टरी सुविधाओं का अभाव—उत्तर प्रदेश मे डाक्टरी सुविधाओ का अत्यधिक अभाव है। कहीं-कहीं तो कितने से एक ही डॉक्टर समस्त विद्यालयो का निरीक्षण कर लेता है। ऐसी दशा म निरीक्षण उचित प्रकार से नहीं हो पाता है।

(३) सामान का अभाव—डॉक्टरी निरीक्षण के दोषपूर्ण होने के साथ-साथ स्कूल डिस्पेंसरी म उपयोगी दवाइयो तथा अन्य सामान का अभाव है।

(४) ग्रामीण विद्यालयों की उपेक्षा—डॉक्टर मुख्यतया ग्रामीण क्षेत्रो की पूर्ण उपेक्षा करते हैं। वहाँ न तो स्कूल डिस्पेंसरी की सुविधा है और न उचित निरीक्षण की। प्राथमिक विद्यालयो को तो बिलकुल छोड दिया गया है।

मुधार के उपाय

(१) निरीक्षण को प्रभावशाली बनाया जाय—निरीक्षण का उद्देश्य केवल खाना-पूरी करना ही न हो, वरन् उसका उद्देश्य छात्रो को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाना है। छात्रो के समस्त शरीर की जाँच की जाय और विभिन्न रोगो के उपचार के लिए अभिभावको को सलाह दी जाय।

(२) डाक्टरों की संख्या में वृद्धि—विद्यालयो तथा छात्रो की सख्या को ध्यान म रखते हुए डाक्टरो की सख्या म भी वृद्धि की जाय। एक डॉक्टर को उतना ही काम दिया जाय, जिससे कि वह छात्रो की पूर्ण परीक्षा कर सके।

(३) स्कूल डिस्पेंसरियों में सुधार—निरीक्षण को उपयोगी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि स्कूल डिस्पेंसरियो म समस्त आवश्यक डाक्टरी सामान हो। हर प्रकार की दवाइयो का होना परम आवश्यक है।

(४) साल में दो बार परीक्षा हो—बालको के स्वास्थ्य की जाँच वर्ष म कम से कम दो बार अवश्य हो। विशेष रोग-पीडित बालको के लिए उपचार का विशेष प्रबन्ध किया जाय।

(५) ग्रामीण क्षेत्रों पर ध्यान—डाक्टरी निरीक्षण की व्यवस्था ग्रामीण क्षेत्रो म अवश्य की जाय। डॉक्टरो को ग्रामीण क्षेत्रों का दौरा करने का विशेष भत्ता दिया जाय।

(६) अभिभावकों के सहयोग की प्राप्ति—डॉक्टरी निरीक्षण को प्रभावशाली तथा उपयोगी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि अभिभावको का सहयोग अधिक-से अधिक प्राप्त किया जाय। छात्रों के प्रत्येक रोग की सूचना उनके अभिभावको को दी जाय तथा उन्हें स्वास्थ्य के सामान्य नियमो से परिचित कराया जाय। अभिभावको की लापरवाही से ही छात्र अनेक रोगो से पीडित होते हैं।

(७) विद्यालय के वातावरण में सुधार—विद्यालय का वातावरण छात्रो मे स्फूर्ति तथा उत्साह भरने वाला होना चाहिए। स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालने वाले तत्वो को यथासम्भव दूर किया जाय।

साराश

विद्यालय म डाक्टरी निरीक्षण का विशेष महत्व है। निरीक्षण से शिक्षक तथा अभिभावक दोनो को लाभ है।

डाक्टरी निरीक्षण के लाभ

१ रोग का विनाश।
२ स्वास्थ्य विभाग को लाभ।
३ अभिभावको को लाभ।
४ विद्यालय की उपस्थिति को लाभ।
५ अपग छात्रा को लाभ।
६ छात्रा को लाभ।
७ अध्यापको को लाभ।

डाक्टरी निरीक्षण की योजना

१ स्वास्थ्य विभाग से सम्पक।
२ कम से कम चार बार छात्रा की परीक्षा हो।
३ रिपोट विस्तार से लिखी जाय।
४ निरीक्षण विद्यालय म ही हो।
५ निरीक्षण पूण हो।
६ तुर त उपचार हो।

डाक्टरी के काय—(१) उचित निरीक्षण, (२) विशष रोग क छात्रा का निरीक्षण, (३) म द बुद्धि छात्रों को छाँटना, (४) अभिभावको द्वारा भेजे गय छात्रो पर ध्यान देना (५) स्वास्थ्य रिपोट लिखना, (६) सक्रामक रोगा की रोकथाम, (७) वातावरण का निरीक्षण, (८) नस के कार्यों का निरीक्षण, (९) निधन छात्रो को दूध के लिए छाँटना।

अध्यापक का कत्तव्य—(१) छात्रो को छाँटना, (२) सामा य रोगो का ज्ञान रखना, (३) रोगी छात्रा को अलग करना, (४) अभिभावको से सम्पक, (५) डॉक्टर की सहायता करना।

उत्तर प्रदेश में डाक्टरी निरीक्षण के दोष—

(१) खानापूरी होती है, (२) डाक्टरी सुविधाओ का अभाव, (३) सामान का अभाव, (४) ग्रामीण विद्यालयो की उपक्षा।

सुधार के उपाय

१ निरीक्षण को प्रभावशाली बनाया जाय।
२ डॉक्टरो की सख्या म वृद्धि हो।
३ स्कूल डिस्पे सरियो म सुधार।
४ साल मे कम से कम दो बार परीक्षा।
५ ग्रामीण क्षेत्रो पर ध्यान।
६ अभिभावको के सहयोग की प्राप्ति।
७ वातावरण मे सुधार।

२४

शुद्ध जल

PURE WATER

Q What is the importance of pure water in the maintenance of health ? What steps should the school take to ensure the supply of pure water to its pupils ? (L T, 1959)

प्रश्न—स्वास्थ्य रक्षा में शुद्ध जल का क्या महत्त्व है ? शुद्ध जल की पूर्ति में विद्यालय क्या योग प्रदान कर सकता है ? (एल० टी० १६५६)

Or

Write short note on 'Drinking Water arrangements in schools' (A U ,B T, 1965)

'विद्यालय में पानी पीने की व्यवस्था' पर टिप्पणी लिखो।

उत्तर—

जल की मुख्यता

वायु और भोजन की भाँति, जल के बिना जीवन असम्भव है। प्रत्येक जीव को जल की आवश्यकता रहती है। मानव शरीर का ⅔ भाग जल द्वारा ही निर्मित है। यह ७९ प्रतिशत रक्त में तथा मांसपेशियों में प्राय ८० प्रतिशत उपस्थित रहता है। हमारे भोजन में किसी न किसी मात्रा में जल अवश्य रहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जल का हमारे जीवन में प्रमुख स्थान है।

विद्यालय में जल की व्यवस्था

विद्यालय में शुद्ध जल की व्यवस्था पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय। जिन पात्रों में जल भरा जाय उनको शुद्ध रखना परम आवश्यक है। ताँबे और मिट्टी के घड़ों में जल का रखना उचित है। उनके पात्र सदा ढके रहें तथा प्रतिदिन उनका पानी बदला जाय।

जल का निर्माण—हाइड्रोजन और आक्सीजन के मिलने पर जल बनता है। जल बनने के लिए हाइड्रोजन के दो अणु और आक्सीजन के एक परमाणु की आवश्यकता पड़ती है। वैज्ञानिक भाषा में जल का संकेत H_2O है।

जल के साधन—जल प्राप्त करने के विभिन्न साधन हैं—

१—वर्षा द्वारा—प्रथम वर्षा के जल म धूल, तिनके, गैसें आदि मिली रहती है। अत वर्षा के प्रथम जल को प्रयोग नही करना चाहिए। वर्षा का जल अन्य साधना की अपेक्षा शुद्ध होता है, क्योकि उसम चूना तथा मैग्नीशियम के लवण का अभाव रहता है। यह जल पच भी सरलता स जाता है तथा जीवाणु भी इसम नही रहते। परन्तु वर्षा के जल का सग्रह करन म विशेष सावधानी बरतनी चाहिए।

२—कुओं द्वारा—हमारे देश की साधारण जनता अधिकतर कुआ द्वारा ही जल प्राप्त करती है। कुआ का जल प्रयोग करने म विशेष सावधानी की आवश्यकता है, क्योकि गाव के लोग कुओ पर कपडे धोकर तथा नहाकर उसके जल को अशुद्ध कर देते है। गन्दी रस्सियो को कुआ मे डालने से पानी के दूषित होने का भय रहता है। साधारण तौर पर कुएँ तीन प्रकार के होते है—प्रथम उथले कुएँ जिनका जल शुद्ध नही रहता, क्योकि ऊपर के धरातल की गन्दगी उनमे प्रवेश करके जल को दूषित कर देती है। दूसरे गहरे कुएँ होते है। गहरे कुओ का जल किसी सीमा तक शुद्ध रहता है। धरातल की गन्दगी इनके अन्दर तक प्रवेश नही कर पाती। गहरे कुआ का जल कभी कभी भारी और कठोर भी मिलता है। तीसरे प्रकार के आर्टिजन कुएँ होते है जिन्हे पाताल तोड कुएँ के नाम से भी पुकारा जाता है। इन कुओ का जल पूर्ण रूप से शुद्ध होता है।

कुआ का निर्माण करते समय कुछ बातो का विशेष रूप स ध्यान रखा जाय—कुआँ शौच स्थान से कम से कम १०० फीट की दूरी पर हो। कुएँ की जगत पर्याप्त ऊँचाई की रखी जाय। जगत के चारो ओर पलास्तर चढा दिया जाय। कुए के आस पास पेड नही होना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो, कुएँ के ऊपर टीन का शेड डलवा दिया जाय। कुएँ की जगत के चारो ओर नाली का इन्तजाम होना चाहिए। कुएँ के आस-पास नहीं जमा होने दिया जाय।

किसी भी व्यक्ति को कुएँ पर नहाने, कपडे धोने तथा बतन माजने की सुविधा न दी जाय। समय समय पर कुएँ म लाल दवा डलवा दी जाय।

३—तालाब द्वारा—तालाब का जल प्राय अशुद्ध रहता है। जहाँ तक हो सके, तालाब का पानी पीने के लिए प्रयोग म नहा लाया जाय। गाँव म तालाब का प्रयोग बडे अनुचित ढग से किया जाता है। ग्रामीण नहान, कपडे धोना, शौच आदि सभी काय तालाब के अन्दर करते हैं। वहा वही पर जानवरो तक को तालाब मे स्नान कराया जाता है।

जिन स्थानो पर तालाब ही एकमात्र आधार है, वहाँ पर उपयुक्त कार्यों पर रोक लगा दी जाय। तालाबो को पक्का बनाया जाय और सम्भव हो तो उन पर ढकने का भी आयोजन कर दिया जाय।

४—झरने द्वारा—झरने का पानी प्राय हानि रहित शुद्ध होता है। परन्तु झरने अनेक प्रकार के होते हैं। कुछ झरनो का पानी पेट के लिए परम हानिकारक

होता है, इस प्रकार के झरना को कच्चे झरनों के नाम से पुकारा जाता है। झरनो के पानी का प्रयोग करने से पहले उसके विषय में पता लगा लिया जाय कि उसके अंदर हानिकारक तत्त्व तो नहीं घुसे हैं।

५—नदी द्वारा—नदी का पानी निरन्तर बहते रहने के कारण प्राय शुद्ध रहता है। अत उसके अशुद्ध होने की कम सम्भावना रहती है। परन्तु घनी बस्तियों के पास का पानी गन्दी नालियों के कारण प्राय मैला और दूषित हो जाता है। कुछ स्थानों पर तो लाशें तक बहा दी जाती हैं जिनसे जल में अनेक रोगाणु सम्मिलित हो जाते हैं। जहा तक हो सके, घनी बस्तियों से दूर का पानी प्रयोग में लाया जाय।

दूषित जल का पान करने से हानि

१—जल में मिले हुए धूल के कण तथा मिट्टी आंतों में जाकर जम जाते हैं।

२—कच्चे झरना का पानी पीने से हिलडाधिरा हो जाता है।

३—बहुत से कीड़े पानी में ही अण्डे देते हैं, अत दूषित पानी को पीने से अण्डे भी पेट में चले जाते हैं।

४—दूषित जल में हैजा, मोतीझरा तथा अतिसार के जीवाणु मिले रहने की सम्भावना रहती है। जब कभी भी इन रोगाणुओं से युक्त जल का पान किया जाता है तो स्वस्थ व्यक्ति रोगग्रस्त हो जाता है।

५—जल में मिले अभ्रक के कण अतिसार तथा लोह के कण मन्दाग्नि उत्पन्न करते हैं।

जल को शुद्ध करने के ढग

१ भौतिक (Physical)

२ रासायनिक (Chemical)

३ यन्त्रों द्वारा (Mechanical Means)

१—भौतिक प्रणाली—इस प्रणाली में दो ढग आते हैं—

(क) उबाल कर—तेज आंच पर पानी को खूब उबाल लिया जाता है। उबालने से पानी के अन्दर के जीवाणु नष्ट हो जाते हैं तथा विषैली गैसों का प्रभाव भी नष्ट हो जाता है।

(ख) भाप के द्वारा या स्रावण (Distillation) विधि से—इस विधि में पानी पूर्ण रूप में शुद्ध हो जाता है। पानी को उबाला जाता है और उबालने के पश्चात् भाप को ठण्डा करके पुन जल बनाया जाता है। परन्तु विशाल मात्रा में इस विधि के द्वारा जल को शुद्ध बनाने में अत्यधिक व्यय होता है। फिर भी इस विधि द्वारा निर्मित जल में किसी भी प्रकार के जीवाणुओं के रहने की शंका नहीं रहती।

२—रासायनिक प्रणाली—इसमें दो विधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं—

(क) तलछट में बैठा करके अवक्षेपक (Precipitants) के द्वारा—इसमें फिटकरी या इसी प्रकार की वस्तु डाल दी जाती है, जिससे पानी के ऊपर की धूल तथा मिट्टी इकट्ठी होकर तलहटी में जम जाती है। इस विधि में पानी पूर्ण रूप में शुद्ध नहीं होता, केवल मिट्टी और धूल तलहटी में जम जाती है।

(ख) रोगाणु नाशक दवाओं द्वारा—इस प्रणाली के अन्दर रोगाणु नाशक वस्तुएँ पानी म डाल दी जाती है, जिससे पानी मे घुले रोगाणु नष्ट हो जाते हैं। रोगाणुओं को नष्ट करने के लिए प्रमुखतया निम्न वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है—

१—पोटेशियम परमैंगनेट या लाल दवा, २—ब्लीचिंग पाउडर,
३—तूतिया, ४—क्लोरीन, ५—आयोडीन।

नगरो मे ब्लीचिंग पाउडर तथा लाल दवा का प्रयोग अत्यधिक किया जाता है। कुओ म लाल दवा डलवा कर दूषित पानी को अत्यन्त सरलता के साथ शुद्ध किया जा सकता है।

३—यन्त्र द्वारा—तीव्र निस्यन्दन तथा धीमे निस्यन्दन द्वारा भी जल को शुद्ध किया जा सकता है।

शुद्ध जल का हमारे जीवन म अत्यधिक महत्त्व है, अत विद्यालय के अन्दर शुद्ध जल का उचित प्रबन्ध करवाना प्रधान अध्यापक का प्रमुख कर्त्तव्य है। जहाँ पर जल रखा जाय वह स्थान हर प्रकार से सुरक्षित हो और उसम किसी भी प्रकार के रोगाणुओं के प्रवेश करने की सम्भावना न हो।

साराश

जल का महत्त्व—जल का हमारे जीवन म विशेष स्थान है। रक्त तथा मासपेशियो म जल पर्याप्त मात्रा मे रहता है।

जल का निर्माण—हाइड्रोजन तथा आक्सीजन से मिलकर होता है।

जल के साधन

१ वर्षा द्वारा
२ कुओ द्वारा
३ तालाब द्वारा
४ झरने द्वारा
५ नदी द्वारा।

दूषित जल-पान से हानि—(१) धूल कण आतो मे लग जाते हैं। (२) कच्चे झरने का पानी हिलडारिया करता है। (३) हैजा, मोतीझरा तथा अतिसार जसे रोग हो जाते है। (४) पेट म अण्डे चल जाते हैं। (५) मन्दाग्नि हो जाती है।

जल को शुद्ध करने के ढग

१ भौतिक (Physical)
२ रासायनिक (Chemical)
३ यन्त्रो द्वारा (Mechanical)

१—भौतिक प्रणाली—(क) उबाल कर, (ख) भाप द्वारा।

२—रासायनिक प्रणाली—(क) तलहट म बठाकर, (ख) रोगाणु नाशक दवाओ द्वारा।

३—यन्त्रों द्वारा—तीव्र निस्यन्दन तथा धीमे निस्यन्दन द्वारा भी जल को शुद्ध किया जा सकता है।

२५

नाडी-सस्थान तथा मानसिक विकार

NERVOUS SYSTEM & MENTAL DEFICIENCY

Q Give the brief description of the nervous system Discuss its role in Education

प्रश्न—सक्षेप में नाडी सस्थान का उल्लेख करो। शिक्षा के क्षेत्र में इसके महत्त्व की विवेचना करो।

उत्तर—नाडी सस्थान की मुख्यता—नाडी-सस्थान का शरीर के अन्य सस्थानो से अधिक महत्त्व है। इसके द्वारा ही शरीर के अन्य अगो तथा तन्त्रा पर नियन्त्रण रखा जाता है। इस सस्थान के अभाव मे शरीर के समस्त अग काय करना बन्द कर देते हैं। दूसरे शब्दो मे, हम कह सकते है कि हमारी मानसिक तथा शारीरिक क्रियाओ का सम्बन्ध मुख्य रूप से हमारे शरीर म स्थित नाडी सस्थान से है।

नाडी सस्थान की रचना—इसकी रचना कोषो द्वारा हुई है। इन कोषो के अन्दर तन्त्रिकातन्तु (Axon) होते हैं। कोषो म से कुछ रेशे निकलते है जो ग्राही तन्तु के नाम से पुकारे जाते है। ये ग्राही-तन्तु अपने आस पास के स्नायु-कोषो से सम्बन्धित रहते हैं। इस प्रकार समस्त नाडी सस्थान हमारे शरीर म तारा के जाल के समान फैला हुआ है। जिस प्रकार बिजली के तार समस्त शहर से सम्बन्धित रहते हैं, उसी प्रकार शरीर के अन्दर रहने वाली भिन्न भिन्न नाडियाँ भी शरीर के एक भाग का सम्बन्ध दूसरे भाग से जोडती हैं। एक लेखक के अनुसार—"जिस प्रकार बिजली का एक प्रधान केन्द्र (Central Power House) होता है जहा से बिजली भिन्न भिन्न भागो को भेजी जाती है, उसी प्रकार नाडी मण्डल (सस्थान) मे भी एक ऐसा केन्द्रीय स्थान होता है जहाँ आकर भिन्न भिन्न नाडियाँ मिलती हैं—जहाँ से उनके कार्यों का सचालन होता है।"

नाडी सस्थान के भाग—(१) त्वक या परिधीय नाडी सस्थान (Peripheral Nervous System), (२) मध्यस्थ या केन्द्रीय नाडी मण्डल (Central Nervous System), (३) स्वतन्त्र नाडी मण्डल (Autonomic Nervous System)।

१ त्वक या परिधीय नाडी संस्थान (Peripheral Nervous System)—परिधीय नाडी संस्थान दो प्रकार की नाड़ियों से निर्मित है—

(क) ज्ञानवाही (Afferent) या अन्तर्गामी नाड़ियाँ।

(ख) गतिवाही (Efferent) या निर्गामी नाड़ियाँ।

ये नाड़ियाँ एक ओर तो त्वचा या मांसपेशियों तथा शरीर के विभिन्न अवयवों से सम्बन्धित रहती हैं तो दूसरी ओर इनका सम्बन्ध मेरुदण्ड (Spinal Cord) से रहता है। ये नाड़ियाँ मुख्य रूप में बाहर से उत्तेजना ग्रहण करके शरीर पर पड़ने वाली प्रतिक्रियाओं पर नियंत्रण करती हैं।

सहज क्रियाएँ (Reflex Actions)—सहज क्रियाएँ, वे क्रियाएँ होती हैं जो अपने आप होती हैं। इन क्रियाओं में छींक खुजलाना आदि आती हैं। ज्ञानवाही (Afferent) नाड़ियाँ समस्त उत्तेजनाओं को सर्वप्रथम मेरुदण्ड में ले जाती हैं। सहज क्रियाओं का वर्णन एक विद्वान लेखक के शब्दों में—"कुछ उत्तेजनाएँ यहाँ गतिवाही (Efferent) नाड़ियों को प्रभावित करके मस्तिष्क की ओर न जाकर सीधी शारीरिक प्रतिक्रियाओं में परिणत हो जाती हैं और कुछ मस्तिष्क की ओर जाती हैं। जिन क्रियाओं में संचालन सीधे मेरुदण्ड से होता है तथा जिनका मस्तिष्क से कोई सम्बन्ध नहीं होता, ऐसी क्रियाओं को सहज क्रियाएँ कहते हैं।" साधारण जीवन में हम देखते हैं कि जरा सी ठंड लगने पर हमें तुरन्त छींक आ जाती है, इसी प्रकार तीव्र प्रकाश आने पर हमारी आँखें एकदम बन्द हो जाती हैं।

२ मध्यस्थ या केन्द्रीय नाडी संस्थान (Central Nervous System)—केन्द्रीय नाडी संस्थान को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) मेरुदण्ड (Spinal Cord), (२) मस्तिष्क (Brain)।

१—मेरुदण्ड (Spinal Cord)—मेरुदण्ड का निर्माण स्नायविक पदार्थ से निर्मित एक रस्सी से होता है। यह रीढ़ खम्भ की केशरुक नली (Spinal Canal) में सुरक्षित रहता है। मेरुदण्ड की रचना एक प्रकार से मस्तिष्क के समान है। यह भी धूसर तथा श्वेत पदार्थों से बनी है तथा तीन आवरण होते हैं। इसके आगे और पिछली ओर एक एक दरार बनी होती है। बीच में एक सँकरा स्थान होता है। इस सँकरे स्थान को केन्द्रीय नहर के नाम से पुकारा जाता है। अनेक उत्तेजनाओं की प्रतिक्रिया मेरुदण्ड में ही आरम्भ हो जाती है। मेरुदण्ड के ऊपरी भाग को जहाँ से उसका सम्बन्ध मस्तिष्क से रहता है उसे मेरुदण्ड शीर्ष (Medulla Oblongata) के नाम से पुकारा जाता है। मस्तिष्क की उत्तेजनाएँ यहाँ से होकर मेरुदण्ड में जाती हैं।

मेरुदण्ड (सुषुम्ना) के कार्य—(i) सहज क्रियाओं का नियन्त्रण मेरुदण्ड द्वारा होता है।

(ii) विभिन्न आदतों के पुष्ट हो जाने पर सहज क्रियाओं से उनका संचालन भी मेरुदण्ड द्वारा होने लगता है।

(iii) श्वेत पदार्थ मस्तिष्क द्वारा शरीर को तथा शरीर के माध्यम से मस्तिष्क को सूचना पहुचाता है।

(iv) मेरुदण्ड से ही शरीर के दाहिने भाग की सूचना बायें भाग म पहुचती है। इसी प्रकार शरीर के बाय भाग की सूचना मस्तिष्क के दाहिने भाग म पहुचती है।

(v) मेरुदण्ड पर आघात लगने पर उसके निचले अग गतिहीन हो जाते हैं।

२—मस्तिष्क—नाडी सस्थान का प्रमुख अग है। सिर की मजबूत अस्थियो मे यह सुरक्षित रखा रहता है। इसमे तीन झिल्लियाँ और होती हैं, जो इस प्रकार हैं—(क) बाह्य आवरण (Dura mater), (ख) मध्यस्थ आवरण (Arachnoid), (ग) अन्तावरण (Pia mater)।

मस्तिष्क के भाग—मस्तिष्क को निम्नांकित भागो म विभाजित किया जा सकता है—

(i) वृहत मस्तिष्क (Cerebrum)
(ii) लघु मस्तिष्क (Cerebellum)
(iii) सेतु (Pons)
(iv) मेरुदण्ड शीर्ष (Medulla Oblongata)

(i) वृहत् मस्तिष्क (Cerebrum)—इसका निर्माण दाएँ-बाएँ गोलार्द्धों से मिलकर होता है। यह मस्तिष्क का सबसे बडा भाग है। सीताओ (Fissures) के द्वारा मस्तिष्क अनेक भागो मे विभाजित है। प्रत्येक भाग का कार्य निश्चित होता है। वृहत् मस्तिष्क के अन्दर श्वेत पदार्थ (White Matter) की धूसर पदार्थ (Grey Matter) बाहर से ढके रहता है। बाहर के धूसर पदार्थ को Cortex कहकर पुकारा जाता है। इसका निर्माण स्नायु कोषो से होता है।

इसके निम्न कार्य हैं—

(क) वृहत् मस्तिष्क के द्वारा ही ज्ञान तथा सामान्य क्रियाओ का सचालन होता है।

(ख) किसी आघात या अन्य कारण से मस्तिष्क तथा मेरुदण्ड का सम्बन्ध टूट जाय तो हम अपने शरीर म कोई भी क्रिया उत्पन्न नही कर सकेंगे।

(ग) वृहत मस्तिष्क ही विभिन्न सवेगो को जन्म देता है।

(घ) शरीर की समस्त क्रियाओ तथा चेष्टाओं पर नियन्त्रण इस मस्तिष्क के द्वारा ही होता है।

(ii) लघु मस्तिष्क (Cerebellum)—लघु मस्तिष्क, वृहत् मस्तिष्क के नीचे स्थित है। यह एक ओर नाडी-तन्तुओ से मेरुदण्ड शीर्ष से सम्बन्धित, और दूसरी ओर सेतु के द्वारा इसका सम्बन्ध वृहत् मस्तिष्क से रहता है। वृहत् मस्तिष्क के समान यह भी दो भागो म विभाजित रहता है। ऊपर धूसर रहता है तथा अन्दर श्वेत रहता है। वृहत मस्तिष्क की अपेक्षा इसकी सीमाएँ अधिक गहन होती हैं।

लघु मस्तिष्क के कार्य—(क) विभिन्न प्रकार की उत्तेजनाओ मे सम्बन्ध की स्थापना करना।

(ख) शारीरिक गतियो को समता प्रदान करना।

(ग) जब लघु मस्तिष्क कार्य करना बन्द कर देता है तो शरीर की गति स तुलित दशा मे नही रहती।

(घ) मासपशियो की चेष्टाओ पर भी इसका निय त्रण रहता है।

(iii) सेतु (Pons)—इसकी स्थिति लघु मस्तिष्क के दोनो भागो के बीच म स्थित है। इसका निर्माण श्वेत स्नायविक पदार्थों द्वारा हुआ है। दूसरे शब्दो म, हम कह सकते हैं कि यह स्नायु सूत्रो का सेतु है जो सुषुम्ना शीर्षक का सम्ब ध वृहत मस्तिष्क से स्थापित करता है। वृहत मस्तिष्क से सम्बन्धित समस्त स्नायु यहा स होकर जाती हैं। सेतु का मुख्य कार्य—मस्तिष्क के विभिन्न भागो म सम्ब ध स्थापित करना है। सेतु किसी स्वत त्र क्रिया को उत्तेजित नही करता।

(iv) मेरुदण्ड शीर्ष (Medulla Oblongata)—यह स्नायु-सूत्रो का बना हुआ एक पिण्ड है। इसकी स्थिति वृहत मस्तिष्क के नीचे है। ऊपर की ओर यह वृहत तथा पीछे की ओर लघु मस्तिष्क से सम्बन्धित है। समस्त स्नायु सूत्र जोकि सुषुम्ना से होकर वृहत तथा लघु मस्तिष्क को जाते हैं व सब मरुदण्ड शीर्षक स होकर जाते है।

३—स्वतन्त्र नाडी मण्डल (Autonomic Nervous System)—यह नाडी मण्डल मेरुदण्ड के सीधी तथा बायी ओर गर्दन तक फैला हुआ है। आकार म यह डोरियो के समान होता है। थूकना तथा मूत्राशय, आमाशय आदि की क्रियाएँ इन्ही के द्वारा नियन्त्रित रहती है। ये नाडियाँ हृदय तथा फेफडा स भी सम्बन्धित रहती हैं। इस नाडी मण्डल का निचला भाग काम उद्दीपन से भी सम्बन्धित रहता है। स्वत त्र नाडी मण्डल म दो प्रकार की नाडिया होती हैं—(१) सहायनी, (२) परा सहायनी। इस मण्डल म अनेक ग्रन्थियाँ स्थित हैं जो ऐसे रस उत्पन्न करती हैं कि उनसे उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है तथा शरीर म विशेष शक्ति का सचार हो जाता है। जिन कार्यों को हम साधारण अवस्था म नहीं कर सकते, वे कार्य उत्तेजना की दशा मे सरलता से किये जा सकते है।

Q What do you understand by backward children? What are the causes of backwardness? What provision will you make for the education of backward children?

Or

Describe the physical, mental and emotional characteristics of feeble minded children

उत्तर—विद्यालय म अधिकतर निम्न प्रकार क विकारयुक्त बालक होते हैं—

१ पिछडा बालक (Backward Child)

२ मन्द-बुद्धि बालक (Dull Child)
३ ज्ञानेन्द्रियों से निर्बल बालक (Feeble minded Child)
४ मूढ़ (Imbeciles)
५ मूर्ख (Morones)

१—पिछड़ा बालक (Backward Child)—पिछड़े बालक वे कहलाते हैं जो किसी बात को सरलता से नही समझ पाते। दूसरे शब्दो मे, कक्षा के अन्दर जो बालक बात को अनेक बार समझाने पर भी नहीं समझ पाते या औसत छात्रों के समान वे प्रगति नही करते ऐसे छात्र 'पिछड़े छात्र' कहकर पुकारे जाते हैं। कक्षा मे इस प्रकार के छात्र मिल जाते हैं, जो निम्न कक्षा का काम भी नही समझ पाते हैं। बालकों के पिछड़ेपन का कारण—पौष्टिक भोजन का अभाव तथा अस्वस्थता है।

२—मन्द बुद्धि बालक (Dull Child)—मन्द बुद्धि वाले बालक कुछ विशेष शारीरिक विशेषताएँ लिए होते हैं। शरीर से ये निर्बल तथा अस्वस्थ होते हैं। इनकी बुद्धि उपलब्धि (I Q) ७० से भी कम होती है। इस प्रकार के बालकों में तर्क-शक्ति का पूर्ण अभाव रहता है। वे जो कुछ भी कार्य करते हैं, अत्यन्त सुस्ती से और धीरे धीरे करते हैं। प्राय ऐसे बालक जन्मजात होते है। इस प्रकार के बालक देर मे बोलना सीखते हैं तथा देर मे चलना सीखते हैं। पिछड़ेपन तथा मन्द बुद्धि के कारणो को समझना परम आवश्यक है।

ऊपर हमने उल्लेख किया था कि अपौष्टिक भोजन मानसिक अस्वस्थता का प्रमुख कारण होता है। अपौष्टिक भोजन के साथ-साथ आँखो तथा कानो की खराबी भी मन्द बुद्धि को जन्म देती है। कभी कभी सूखा रोग तथा टान्सिल की खराबी भी मानसिक विकास मे बाधक होती है। कम निद्रा तथा अधिक थकान से भी मानसिक विकार उत्पन्न होते है। जहाँ तक सम्भव हो इस प्रकार के बालको को बढईगीरी दरी का काम कपड़े बुनने का काम तथा अन्य दस्तकारियों की शिक्षा दी जाय। दूसरे शब्दों में, इस प्रकार के बालको की शिक्षा व्यवहारात्मक (Practical) होनी चाहिए। विद्यालय में इस प्रकार के छात्रों का अधिक से अधिक हाथ का काम कराया जाय। समय समय पर उन्हे खेलने तथा दौड़ने भागने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाय। विद्यालय का वातावरण स्वास्थ्यप्रद तथा खुला हुआ होना चाहिए। कक्षाओं का आकार अधिक बड़ा हो परन्तु उत्तम छात्रों की संख्या २० या २५ से अधिक न हो जिससे अध्यापक प्रत्येक छात्र पर व्यक्तिगत ध्यान भली प्रकार से दे सके। प्रधान अध्यापक का कर्त्तव्य है कि मन्द बुद्धि तथा पिछड़े छात्रों के लिए पौष्टिक भोजन का प्रबन्ध करे।

३—ज्ञानेन्द्रियों मे निर्बल बालक (Feeble minded Children)—इस प्रकार के बालकों की ज्ञानेन्द्रियाँ जन्म से ही निर्बल होती हैं। वे औसत छात्रों की अपेक्षा किसी बात को बहुत देर में समझते है। किसी विषय को या प्रश्न को स्वय

समझने के बजाय दूसरे के सहारे समझने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार के छात्रो के लिए अलग से विद्यालयो की स्थापना की जाय तो उत्तम है। जो छात्र ज्ञानेंद्रियो से निबल होते है वे औसत छात्रो से तीन वष पीछे होते हैं।

४—मूढ़ (Imbeciles)—मूढ या जड (Idiots) छात्रो को विशेष निदशन की आवश्यकता होती है। य बालक बिना निदशन क कोई भी काय नही कर पाते। यहाँ तक कि कपडा पहनना साइकिल चलाना, लिखना, खाना पीना आदि सभी कार्यों म इन्ह निदशन की आवश्यकता रहती है। इस प्रकार के छात्र अपने मानसिक भावो को बोलकर भी प्रकट नही कर पात। किसी भी प्रकार के सकट का ये सामना नही कर सकते।

५—मूख (Morones)—य छात्र किसी भी प्रकार का मानसिक काय करने म असमथ रहत है। शारीरिक काय भी किसी व्यक्ति क पथ प्रदशन से ही कर सकते हैं स्वय नही। ये छात्र निम्न स्तर की मानसिक क्षमता रखने वाल होते हैं। एसे छात्रो को शिक्षा देना अत्यन्त कठिन है।

मानसिक विकार तथा शिक्षा

मानसिक विकारो से ग्रस्त छात्रो का शिक्षा सामान्य छात्रो के समान नही दी जा सकती। प्रधान अध्यापक को कक्षा-अध्यापक की सहायता से इस प्रकार के छात्रो को छाँटकर अलग से शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। प्रत्येक शिक्षक का कतव्य है कि वह मानसिक विकार ग्रस्त छात्रो के लक्षणो को भली प्रकार समझ तथा उनके उपचार का प्रबन्ध करे। य लक्षण दो प्रकार के होते हैं—

१ शारीरिक तथा २ मानसिक।

१ शारीरिक लक्षण—(क) जो छात्र मानसिक विकार से ग्रस्त होते हैं उनके शारीरिक विकास की क्रिया अत्यन्त मन्द गति से चलती है।

(ख) इस प्रकार के बालको के दाँत देर मे निकलते हैं तथा बोलना और चलना भी देर म आता है।

(ग) शरीर मे एक प्रकार की शिथिलता रहती है।

(घ) मासपेशियो का नियन्त्रण अत्यन्त ढीला रहता है।

(ङ) मानसिक विकार से ग्रस्त छात्रो के कानो की आकृति असामान्य होती है।

२ मानसिक लक्षण—(क) मानसिक विकार वाले छात्रो की स्मरण शक्ति कुछ कमजोर होती है।

(ख) उनकी तार्किक शक्ति नष्ट हो जाती है।

(ग) वे एकाग्र चित्त होकर किसी काम को नही कर सकत।

(घ) उनकी इच्छा शक्ति दुबल हो जाती है।

(ङ) व अनुकरण म कुशल होत हैं। इस प्रकार के बालक अनुकरण से बहुत कुछ सीखत हैं।

(च) व ढग स बोल नही सकत तथा बोलना भी देर म सीखते हैं।

उपचार—मानसिक विकार वाले छात्रा को शिक्षा प्रदान करते समय कुछ विशेष बातें ध्यान म रखनी चाहिए। जैसे—

(i) अध्यापक का कत्तव्य है कि वह कक्षा म से मानसिक विकार ग्रस्त छात्रो को छाटकर डाक्टर को दिखाये।

(ii) डाक्टर को दिखाते समय छात्रो के मॉं बापा का उपस्थित रहना परम आवश्यक है, जिससे उन्ह छात्र का सम्पूण इतिहास मालूम हो सके।

(iii) डाक्टर द्वारा विकास ग्रस्त निश्चित हाने पर विशेष विद्यालयो मे दाखिल किया जाय।

(iv) ऐसे बालको के लिए स्थूल तथा क्रियात्मक विषयो के पढाने की व्यवस्था करनी चाहिए। मानसिक विकार ग्रस्त बालक सूक्ष्म विषया को नही समझ सकते। बौद्धिक विषयो म वे साधारण बालको से पीछे होते हैं। पर तु क्रियात्मक कार्यो मे उनकी क्षमता साधारण बालको के समान ही होती है। अत ऐसे छात्रा को जहा तक सम्भव हो, क्रियात्मक शिक्षा प्रदान की जाय। इस विषय म सिरिल बट लिखते हैं—"म द बुद्धि बालको के मस्तिष्क म ज्ञान अथवा कुशलता की पूरी मात्रा भर देने का प्रयास उतना ही मूखतापूण होगा, जितना ८ औस की बोतल मे १२ औस औषध भरने का प्रयत्न करना।"

(v) विद्यालय का वातावरण स्वास्थ्यप्रद हो। छात्रा को खेल कूद तथा शारीरिक व्यायाम का पूण अवसर मिले।

(vi) जहाँ तक सम्भव हो, एस बालको स वे काय कराये जायँ जो उनकी रुचि के अनुकूल हो।

(vii) ज्ञानेंद्रिया के माध्यम से शिक्षा दना—इस प्रकार क बालको के लिए विशेष उपयोगी होगा।

(viii) सामाजिकता भी प्रदान की जाय। एस बालको म दूसरा की सहायता करन की भावना उत्पन्न करनी चाहिए। उन्हे कुछ उत्तरदायित्व भी सौंपा जाय तथा सदाचार एव स्वच्छता का ज्ञान कराया जाय।

(ix) यदि बालक के घर का वातावरण अच्छा नही है तो उसे उपचार-गृह मे भेज दिया जाय।

वात-सस्थान के रोग

Q Describe the common diseases relating to Nervous System What steps will you take to cure them ?

प्रश्न—नाडी-सस्थान से सम्बद्ध सामान्य रोगों का वणन करो। उन्ह ठीक करने के लिए आप क्या करेंगे ?

उत्तर—वात-सस्थान के निम्न रोग होते हैं—

१ मस्तिष्क का गठिया (Chorea or Stvitus Dana)

२ हकलाना (Stammering) तथा तुतलाना (Stuttering)

३ मिरगी (Epilepsy)
४ हिस्टीरिया (Hysteria)

१—मस्तिष्क का गठिया—यह एक गम्भीर स्नायु विकार है। इसके बिगड़ जाने पर हृदय रोग होने की सम्भावना रहती है।

कारण—(क) विशेष प्रकार के कीटाणु इस रोग के जनक होते हैं।
(ख) तीव्र ज्वर, खसरा, लाल बुखार भी इसके कारण हो सकते हैं।
(ग) कभी-कभी अधिक भय तथा चिंता भी इस रोग के कारण हो जाते हैं।
(घ) हृदय रोग से भी मस्तिष्क का गठिया हो जाता है।

लक्षण—(क) बालक का चेहरा विकृत तथा बेडौल हो जाता है।
(ख) शरीर पर सुस्ती छा जाती है।
(ग) हाथ पैर, नाक तथा शरीर के अन्य अंग कंपित रहते हैं।
(घ) मांसपेशियाँ अनियंत्रित रहती हैं।
(ङ) सिर में दर्द रहता है तथा बालक चिड़चिड़ा हो जाता है।
(च) बालक अपना चित्त एकाग्र नहीं रख सकता।

उपचार—इस रोग के निवारण के लिए तुरन्त उपचार करना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो रोगी को आराम दिया जाय। जब तक बालक ठीक न हो जाय, तब तक उसे विद्यालय न भेजा जाय। बालक स्वास्थ्य पूर्ण वातावरण में रखा जाय। संतुलित भोजन की परम आवश्यकता है। आराम तथा नींद का भी पूरा पूरा प्रबंध करना आवश्यक है। रोग के बढ़ने पर योग्य डाक्टर की देख-रेख में इलाज कराया जाय।

२—हकलाना—कुछ विद्वानों के अनुसार वाणी सम्बन्धी अन्तर दोषों का कारण संवेगात्मक स्थिरता का न होना है। जिस घर में सदा आतंक का राज्य रहता है, वहाँ बच्चे अक्सर हकलाने लगते हैं। कभी कभी जब बालक उच्चारण की ओर अधिक ध्यान देने लगते हैं तो श्वासेंद्रिय के कार्य में बाधा पड़ जाती है। हकलाहट दो प्रकार की होती है—(१) आरम्भिक हकलाहट, (२) पुनर्वाद।

कारण—(i) आत्मविश्वास का अभाव।
(ii) घबराहट।
(iii) वंश परम्परा से स्नायुओं का दुर्बल होना।
(iv) टॉंसिल का बढ़ जाना।
(v) तुतलाने वाले छात्रों का अनुकरण।
(vi) किसी आकस्मिक दुर्घटना का होना।

उपचार—(i) बालक में आत्मविश्वास का विकास किया जाय तथा भय से मुक्त रखा जाय।
(ii) तुतलाने वाले बालक पर अन्य बालक हँसें नहीं।

(iii) बालक को पौष्टिक भोजन दिया जाय और रक्तहीनता तथा एडिनाएड्ज का इलाज कराया जाय।

(iv) जहाँ तक सम्भव हो, स्वच्छ वायु का प्रबंध किया जाय।

(v) बालक को हर प्रकार की चिंता से मुक्त किया जाय।

(vi) श्वास सम्बन्धी व्यायाम नियमित रूप से कराये जायँ।

(vii) हकलाने का उपचार किसी मनोविज्ञानवेत्ता के संरक्षण में किया जाय।

(viii) हकलाने वाले छात्रों से प्रश्नों के उत्तर धैर्यपूर्वक सुने जायें तथा उन्हें शुद्ध उच्चारण के लिए प्रोत्साहित किया जाय।

३—मिरगी—यह रोग मुख्यता वंशानुगत होता है। इस रोग का आक्रमण अधिकतर बचपन तथा युवावस्था में होता है। अधिक विकृत होने पर यह रोग मानसिक विकार के रूप में परिणत हो जाता है। मिरगी दो प्रकार की होती है—(१) साधारण मिरगी, तथा (२) गम्भीर मिरगी। साधारण मिरगी में दौरे के बाद, रोगी ठीक हो जाता है तथा अपना काम करने लगता है। लेकिन गम्भीर मिरगी के पश्चात् रोगी की मानसिक दशा पर्याप्त काल तक बिगड़ी रह सकती है।

लक्षण—(i) रोगी पर सुस्ती सी छा जाती है तथा चेहरा पीला पड़ जाता है।

(ii) कभी-कभी बच्चा एकदम चीख कर बेहोश हो जाता है।

(iii) तेजी से शरीर एठने लगता है तथा कड़ापन आ जाता है।

(iv) रोगी तेजी से हाथ पैर चलाने लगता है तथा मुख से झाग निकलने लगते हैं।

(v) मुख विकृत हो जाता है तथा कभी कभी पेशाब भी निकल जाता है।

उपचार—दौरा आते ही रोगी को गिरने से रोका जाय। यह भी ध्यान में रखने की बात है कि रोगी दौरे के समय अपने को चोट न पहुचा ले। रोगी के आस पास की भीड़ भाड़ को हटा दिया जाय तथा रोगी के तंग वस्त्रों को ढीला कर दिया जाय। वह जीभ न काट ले, इस कारण एक पैंसिल पर कपड़ा लपेट कर दांतों के बीच में रख दिया जाय। किसी भी प्रकार के नशे की वस्तु न दी जाय। रोगी जितना भी चाहे उसे सोने दिया जाय। यदि दौरे जल्दी-जल्दी आते हैं तो इस प्रकार के बालकों को विशेष स्कूलों में ही भेजा जाय।

४—हिस्टीरिया—इस रोग के शिकार लड़कों की अपेक्षा लड़कियां अधिक होती हैं। हिस्टीरिया का रोग अधिकतर यौवनावस्था में होता है जिसका प्रमुख कारण उत्तेजना तथा मानसिक अवस्था है।

लक्षण—(क) दौरा पड़ते ही रोगी की दशा अस्त व्यस्त हो जाती है, वह कभी रोता है तो कभी हँसता है।

(ख) रोगी कभी कभी उत्तेजित हो जाता है।

(ग) चीखना, पुकारना प्राय लगा रहता है।

(घ) रोगी की नब्ज ठीक रहती है, पर वह अनाप-सनाप बकता है।

उपचार—(i) रोगी के मुख पर ठण्ड पानी के छींटे मारो।

(ii) रोगी के आस-पास भीड़ भड़क्का मत होने दो।

(iii) मनोवैज्ञानिक चिकित्सा की जाय।

(iv) रोगी के इतिहास का पता लगाकर उपचार किया जाय।

सारांश

नाड़ी-सस्थान की मुख्यता—नाड़ी सस्थान का शरीर के अन्य सस्थानो म विशेष महत्त्व है। इस सस्थान के अभाव मे शरीर के अन्य अग काय करना बन्द कर देते हैं।

नाड़ी सस्थान की रचना—नाड़ी सस्थान की रचना कोषो द्वारा होती है। ये कोष शरीर के अन्य कोषो से भिन्न होते है।

नाड़ी सस्थान के भाग—(१) त्वक या परिधीय नाड़ी सस्थान।

(२) मध्यस्थ या केन्द्रीय नाड़ी सस्थान।

(३) स्वतन्त्र नाड़ी सस्थान।

१—त्वक या परिधीय नाड़ी सस्थान—यह दो प्रकार की नाडियो स निर्मित है—(क) ज्ञानवाही या अन्तर्गामी नाड़िया

(ख) गतिवाही या निर्गामी नाड़िया।

२—मध्यस्थ या केन्द्रीय नाड़ी सस्थान—यह दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है—(१) मेरुदण्ड, (२) मस्तिष्क।

३—स्वतन्त्र नाड़ी सस्थान—यह नाड़ी मण्डल मेरुदण्ड के सीधी तथा बायी ओर गरदन तक फैला हुआ है। थूकना मूत्राशय तथा आमाशय आदि की क्रियाएँ इसी के द्वारा नियन्त्रित रहती है।

मानसिक विकार—हमारे विद्यालयो म निम्न प्रकार के विकार युक्त बालक पाये जाते हैं—

१ पिछड़ा बालक

२ मन्द-बुद्धि बालक

३ ज्ञानेन्द्रियो से निर्बल बालक

४ मूढ

५ मूर्ख

मानसिक विकार तथा शिक्षा—इस प्रकार के छात्रो के लिए अलग से शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए।

लक्षण—(१) शारीरिक लक्षण—(क) विकास मन्द-गति से, (ख) दाँत देर

से निकलत हैं (ग) शिथिलता रहती है, (घ) निय त्रण ढीला, (ङ) कानो के आकार की *आकृति विकृत* ।

(२) **मानसिक लक्षण**—(क) स्मरण-शक्ति का कमजोर होना, (ख) तार्किक शक्ति का नष्ट होना, (ग) एकाग्रता का नष्ट होना, (घ) इच्छा शक्ति का दुर्बल होना, (ङ) अनुकरण म कुशल (च) वे ढग से बोल नही सकत ।

उपचार—(i) विकार ग्रस्त छात्रा को छाँटा जाय, (ii) डाक्टर को दिखाया जाय (iii) विशेष विद्यालयो म भेजा जाय, (iv) स्कूल तथा क्रियात्मक विषय पढाये जायें (v) विद्यालय का वातावरण स्वास्थ्यप्रद हो ।

वात सस्थान के रोग

(i) मस्तिष्क का गठिया,
(ii) हकलाना,
(iii) मिरगी,
(iv) हिस्टीरिया ।

२६

मानसिक स्वास्थ्य

MENTAL HYGIENE

Q What steps should an educator take to ensure mental hygiene in a school ?

प्रश्न—विद्यालय में मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की दृष्टि से शिक्षक को कौन कौन से साधन अपनाने चाहिए ?

Or

Define mental health and explain its concept What are the class-room implications of mental health ? What should a modern teacher be fully conversant with the principles of mental hygiene ?

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के अर्थ और स्वरूप की व्याख्या करो। कक्षा गृह की दृष्टि से मानसिक स्वास्थ्य का क्या महत्त्व है ? आधुनिक अध्यापक को मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के सिद्धान्तों का ज्ञान क्यों होना चाहिए ?

उत्तर—बालकों के सर्वाङ्गीण विकास के लिए मानसिक स्वास्थ्य पर ध्यान देना परम आवश्यक है। शारीरिक स्वास्थ्य के साथ साथ मानसिक स्वास्थ्य का महत्त्व है। यदि अध्यापक बालकों के मानसिक विकास की ओर ध्यान देता है तो छात्रों का मानसिक सन्तुलन (Mental Adjustment) भी ठीक बना रहता है। जीवन की जटिलताओं को देखते हुए मानसिक स्वास्थ्य का अपना अलग महत्त्व हो जाता है। मानसिक स्वास्थ्य की परिभाषा विद्वानों ने अपने ढंग से दी है।

विद्वान् क्रो और क्रो (Crow and Crow) के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य एक ऐसा विज्ञान है जो मानव-कल्याण के लिए है तथा मानवीय सम्बन्धों से सभी क्षेत्रों में इसका पदार्पण है। वैबस्टर शब्द कोश के अन्दर मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ उस विज्ञान से लगाया गया है, जिसके द्वारा हम मानसिक स्वास्थ्य को स्थिर रखते हैं तथा पागलपन और स्नायु सम्बन्धी रोगों को पनपने से रोकते हैं। साधारण

स्वास्थ्य विज्ञान केवल शारीरिक स्वास्थ्य से ही सम्बन्धित है। परन्तु मानसिक स्वास्थ्य में मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान दिया जाता है, क्योंकि बिना शारीरिक-स्वास्थ्य की ओर ध्यान दिये, मानसिक स्वास्थ्य ठीक नहीं हो सकता।

दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि मानसिक स्वास्थ्य के अभाव में बालकों का मानसिक सन्तुलन ठीक नहीं रहता तथा उन्हें पग पग पर निराशाओं का सामना करना पड़ता है। मानसिक स्वास्थ्य के माध्यम से ही बालक में तथा समाज के अन्य सदस्यों के साथ सन्तुलन बनाया जा सकता है। साथ ही साथ वे अपनी शक्ति और क्षमताओं के अनुसार सन्तोष प्राप्त कर सकते हैं तथा जीवन की वास्तविकताओं को समझ सकते हैं। कभी कभी बालकों में मानसिक अव्यवस्थाएँ (Mental Disorders) उत्पन्न हो जाती हैं जिनका उपचार मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के माध्यम से ही हो सकता है। बालक का विकास समाज में जैसे जैसे होने लगता है, वैसे-वैसे उसके सामने अनेक कठिनाइयाँ तथा बाधाएँ आने लगती हैं। यदि बालक का मानसिक सन्तुलन ठीक रहता है तो वह जीवन में आने वाली समस्त बाधाओं और कठिनाइयों का सामना कर लेगा तथा अपने को समाज के वातावरण के अनुकूल बना सकेगा।

मानसिक स्वास्थ्य का महत्त्व

(१) जिस अध्यापक को मानसिक स्वास्थ्य का ज्ञान है वह छात्रों को हर प्रकार से लाभ पहुँचा सकता है। हम देखते हैं कि बालक विद्यालय की अपेक्षा घर में अपने को अधिक सन्तुष्ट पाता है, क्योंकि वहाँ उसकी अधिकांश इच्छाओं की पूर्ति हो जाती है। दूसरे शब्दों में, घर पर बालक संवेगात्मक सुरक्षा (Emotional Security) का अनुभव करता है। परन्तु विद्यालय का परिवार बड़ा होता है वहाँ समाज के विभिन्न सदस्य विभिन्न विचारधाराओं के होते हैं। बालक समाज के इन सदस्यों से सन्तुलन बनाये रखने में कभी कभी असफल रहते हैं, जिसके परिणाम-स्वरूप उन पर मानसिक आघात लगता है। ऐसी दशा में जिस अध्यापक को मानसिक स्वास्थ्य का ज्ञान होता है वह निराश बालकों की परम सहायता कर सकता है।

(२) मानसिक स्वास्थ्य का ज्ञान हो जाने पर अध्यापक शिक्षण प्रणाली और पाठ्यक्रम में आवश्यकता तथा स्थिति के अनुसार परिवर्तन कर सकता है। वह देखता है कि पाठ्यक्रम का कौन सा भाग अमुक छात्र के लिए कितना लाभदायक रहेगा। इसी प्रकार स्थिति के अनुसार शिक्षण प्रणाली में भी परिवर्तन किया जा सकता है।

(३) विद्यालय में अनेक समस्या प्रधान बालक होते हैं। अज्ञानी अध्यापक इस प्रकार के बालकों का ठीक प्रकार से नियन्त्रण नहीं कर पाते। परिणामस्वरूप ऐसे बालकों की समस्या दिन प्रति दिन विकट होती चली जाती है। अध्यापक को स्वास्थ्य विज्ञान का ज्ञान होता है, वह इस प्रकार के समस्या प्रधान बालकों का

उपचार भली प्रकार कर सकेगा तथा हर प्रकार से बालक की कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न करेगा।

(४) अल्प आयु के बालको के मस्तिष्क पर शीघ्र प्रभाव पडता है, अत मानसिक असतुलन सम्बधी रोगो का उपचार तुरत ही हो जाना चाहिए। यह तभी सम्भव है जबकि अध्यापक को स्वास्थ्य विज्ञान का ज्ञान हो।

(५) मानसिक स्वास्थ्य का ज्ञान होने पर अध्यापक मानसिक असतुलन से पीडित छात्रो को छाँटकर किसी मनोवैज्ञानिक या मानसिक रोगो से सम्बधित अन्य डॉक्टर के पास भेजकर बालक के जीवन की रक्षा कर सकता है।

मानसिक स्वास्थ्य उत्पन्न करने के साधन

(१) **अध्यापक का व्यवहार**—अध्यापक का कर्तव्य है कि वह छात्रो के साथ अपना व्यवहार अत्यत नम्र तथा सहानुभूतिपूर्ण रखे। एक तानाशाह अध्यापक बालको के मन मे ग्रथियाँ उत्पन्न कर देता है। अध्यापक का काय तो केवल मार्ग दर्शक का है। जहा तक सम्भव हो, अध्यापक को अपने मस्तिष्क को पूर्ण रूप से सतुलित रखना चाहिए।

(२) **बालक का स्वास्थ्य**—शारीरिक स्वास्थ्य का मानसिक स्वास्थ्य से घनिष्ठ सम्बध है। विद्यालय मे उन समस्त साधनो को जुटाया जाय जिससे छात्रो के स्वास्थ्य मे वृद्धि हो सके। रोगो का तुरत ही उपचार किया जाय। सतुलित भोजन की व्यवस्था करना भी परम आवश्यक है। खुले मैदान मे शारीरिक व्यायाम का आयोजन किया जाय जिसमे प्रतिदिन छात्र भाग लें। बालको की रुचि के अनुकूल खेलो का प्रबध भी आवश्यक है।

(३) **स्वतत्रता का वातावरण**—विद्यालय मे बालको को पर्याप्त स्वतत्रता प्रदान की जाय। हर समय उन्हे आतक तथा अनुशासन मे रखना उचित नही। विद्यालय का वातावरण इस प्रकार का हो जिसमे बालक पर्याप्त स्वतत्रता का अनुभव करें तथा अपनी आतरिक इच्छाओ का स्पष्टीकरण कर सकें।

(४) **आत्म-विश्वास की भावना**—स्वतन्त्रता के साथ-साथ छात्रो मे आत्म विश्वास की भावना भी पैदा की जाय। उन पर कुछ उत्तरदायित्वपूर्ण काय सौंपे जायें तथा उन्हे काय करने की पूर्ण स्वतत्रता प्रदान की जाय। ऐसा करने से उनमे आत्म विश्वास का उदय होता है।

(५) **सुरक्षा की भावना**—अध्यापक को चाहिए कि वह बालकों मे घर जसी सवेगात्मक सुरक्षा (Emotional Security) उत्पन्न करे। बालको मे यदि सवेगात्मक सुरक्षा की भावना नही आती तो वे विभिन्न स्नायु सम्बधी रोगो से ग्रसित हो जाते हैं। अत यह आवश्यक है कि विद्यालय मे घर जैसी सवेगात्मक सुरक्षा उत्पन्न की जाय। बालक यह अनुभव कर सकें कि वह घर के समान सुरक्षित हैं।

(६) **पाठातर क्रियाओं का सगठन**—बालक क्रियाशील होते हैं, वे हर समय

कुछ-न-कुछ करते रहना पसन्द करते हैं। कभी ढेले फेंकते हैं तो कभी पेड पर चढ जाते हैं। वे साहसपूर्ण कार्य करने में विशेष आनन्द का अनुभव करते है। छात्रो की इस प्रवृत्ति की पूर्ति के लिए विद्यालय मे विभिन्न पाठान्तर क्रियाओ का सगठन किया जाय। बालचर सस्था की स्थापना भी आवश्यक है क्योंकि इसमे छात्रो को अनेक साहसपूर्ण कार्य करने का अवसर मिलता है।

(७) जनता द्वारा मान्यता देना—हैमली (Hamley) और रोजर्स (Rogers) आदि मनोवैज्ञानिको के अनुसार बाल अपराधी (Delinquents) तथा असन्तुलित (Maladjusted) छात्रो के लिए जनता द्वारा मान्यता (Recognition) देना परम आवश्यक है। अध्यापक तथा समाज के सदस्यो का कर्तव्य है कि वे छात्रों के व्यक्तित्व का सम्मान करें। जिन छात्रो का आत्म सम्मान नही किया जाता तथा जिन्हे किसी प्रकार की मान्यता (Recognition) नही मिलती तो वे सर्वसाधारण का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए शरारत या कोई-न-कोई अनोखा काम करते हैं। यदि इस प्रकार के बालको को मान्यता नही दी जायेगी तो उनमे बाल-अपराध की प्रवृत्तियाँ विकसित हो जायेगी।

(८) निर्देशन की व्यवस्था—यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि प्रत्येक बालक एक दूसरे से भिन्नता रखता है अत व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर शिक्षा देना परम आवश्यक है। इसके लिए निर्देशन (Guidance) की परम आवश्यकता है। निर्देशन शिक्षा सम्बन्धी तथा जीविका-सम्बन्धी दोनो प्रकार का होना चाहिए। निर्देशन से छात्रो को अनेक लाभ होते हैं। प्रथम तो बालक के व्यक्तित्व का विकास होता है तथा वे अपनी योग्यता तथा रुचि के अनुसार शिक्षा प्राप्त करते हैं। दूसरे, निर्देशन से बालको को उनके उद्देश्य का पता लग जाता है, अत वे उसकी प्राप्ति का पूरा पूरा प्रयास करते हैं।

(९) पाठ्यक्रम का स्थिति के अनुसार प्रयोग—पाठ्यक्रम का प्रयोग करते समय छात्रो की मानसिक स्थिति का अवश्य ध्यान रखा जाय। छात्रो की मानसिक क्षमताओ को ध्यान मे रखते हुए पाठ्यक्रम का प्रयोग किया जाय। अधिक थकाने वाला पाठ्यक्रम अनुचित होता है अत पाठ्यक्रम मे उन बातो का भी समावेश किया जाय जो छात्रो की रुचि के अनुकूल हो।

सक्षेप मे, मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान तो एक प्रकार का दृष्टिकोण है जिसे अध्यापक को अपनाना चाहिए। एक विद्वान् के शब्दों मे—'इसका सम्बन्ध तो पाठशाला सम्बन्धी सभी क्रिया-कलापों से है, जैसे—उसका प्रश्न पूछने का ढग उत्तर ग्रहण करने या परीक्षा लेने की विधि, खेल के मैदान में भिन्न भिन्न क्रियाओं का निरीक्षण तथा सचालन करना, कक्षा सम्बन्धी क्रियाओं में भाग लेने के लिए विद्यार्थियों को प्रेरणा देने का ढग, चोर बालक, दूसरों को तग करने वाला बालक तथा डरपोक बालक, इन सबके प्रति उसका दृष्टिकोण है।"

साराश

शारीरिक स्वास्थ्य के साथ साथ मानसिक स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान देना चाहिए ।

मानसिक स्वास्थ्य का महत्त्व—अध्यापक के लिए मानसिक स्वास्थ्य का विशेष महत्त्व है । छात्रो म सवेगात्मक सुरक्षा की भावना का उदय होता है । पाठ्यक्रम तथा शिक्षण प्रणाली मे आवश्यकतानुसार परिवतन हो सकता है । समस्या प्रधान छात्रो का निदान होता है ।

मानसिक स्वास्थ्य उत्पन्न करने के साधन—

१ अध्यापक का व्यवहार ।
२ बालक का स्वास्थ्य ।
३ स्वत त्रता का वातावरण ।
४ आत्म विश्वास की भावना ।
५ सुरक्षा की भावना ।
६ पाठा तर क्रियाओ का सगठन ।
७ जनता द्वारा मा यता देना ।
८ निदशन की व्यवस्था ।
९ पाठ्यक्रम का स्थिति के अनुसार प्रयोग ।